VISHWA MITRA
AUG 1944 G.K.U.

विश्वमित्र
080268
080268
विश्वमित्र कार्यालय, कलकत्ता।

DELICIOUS
Lily
BISCUITS

नव वर्ष तथा अन्य सभी
विशेष शुभ अवसरों के निमित्त

अपने प्रियजनोंको लिलि बिस्कुट का उपहार देकर तृप्त करें। सर्वदा ताजा और कुरमुरा स्वाद व सुगन्धमें अतुलनीय

लिलि ब्राण्ड बार्ली, भारत का श्रेष्ठ पथ्य और पेय खाद्य थकावट और सुस्ती दूर करने में अतुलनीय।

LILY BISCUIT Co.
CALCUTTA BOMBAY
MANUFACTURERS OF THE FAMOUS "LILY BRAND" BARLEY
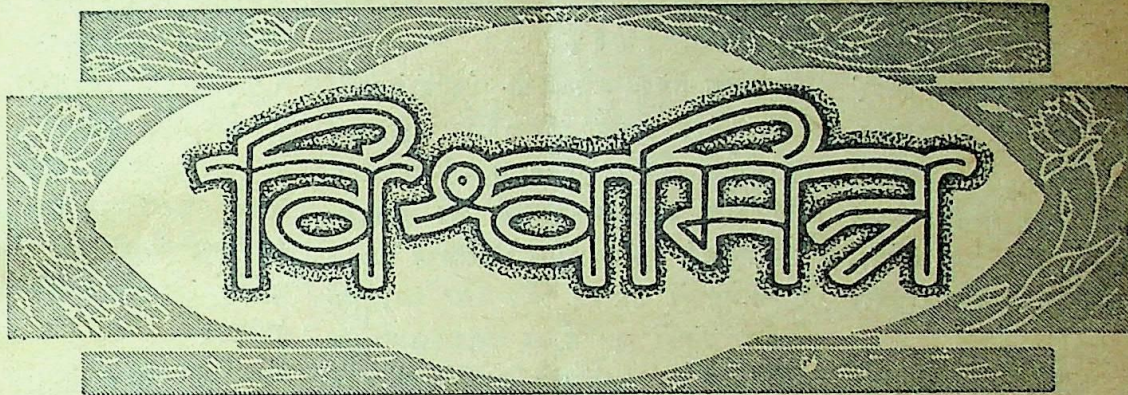
१ अगस्त, १९४४

आ गये तुम भूल जैसे

आ गये तुम भूलतेसे—

नैन—नीलभ्—नभ पलक—घन घिर निकट गहरे
दे रहा नित हो सजग मद—कोष—तट पहरे
सांवली—सी पुतलियोंपर पलक—पट पहिरे
वरुणियोंकी डाल रेशम डोरियां, पिय, झूलतेसे
आंसुओंकी पैंग भरते, जब, मृगासे, हूल जैसे
आ गये फिर भूलतेसे—

वरुणियोंकी खोल सांकल, पुतलियोंके द्वार खोले
हृदयिनी लज्जित वधु सी सकपकाई, कौन बोले
प्राण अपने देश आये पर नया ही वेष जो ले
यह हुआ कौतुक तुम्हें, पर, अरुक दुख—गोधूलि मेरे—
बिध गयी उरमें, पधारे तुम तिमिर आकूल जैसे
आ गये जब भूलतेसे—

नेह—आसव पी चढ़ा मैं, शूलि भी बन पंखुडी सी
हार स्वागतका लिये थी मरण वेला मी गड़ी सी
मुकुर मय दृगके—महल पिय—मूर्ति पायी अब जड़ी सी
पंच प्राणोंमें अगिन सुख दीप तारक फूलते थे
नैनके नभ निकल आए तुम कभी जब भूलतेसे
आ गये तुम भूलतेसे—

—प्रभाकर माचवे

बर्माका भविष्य

श्री रामनारायण यादवेन्दु बी० ए०, एल-एल० बी०,

बर्मा इस समय जापानके अधिकारमें है और उसे हस्तगत करनेके लिए अमेरिकन और ब्रिटिश सेनाएं युद्ध कर रही हैं। इस समय बर्मामें तीन मोर्चोंपर मित्र सेनाएं लड़ रही हैं—उत्तरमें मितकीना मोर्चेपर, मध्यमें और दक्षिणमें अराकान मोर्चेपर। गत फरवरीमें मित्र सेनाएं बर्मामें उतरी थीं और उन्होंने वहां अपना सामरिक अड्डा कायम कर लिया। यहींसे बर्माकी लड़ाई लड़ी जा रही है। सम्पूर्ण बर्माको शत्रुसे मुक्त करनेमें अभी काफी समय लग जायगा, लेकिन अभीसे बर्माके भविष्यके सम्बन्धमें विचार होने लगा है।

यद्यपि मित्रराष्ट्रोंने धुरी अधिकृत प्रदेशोंको मुक्त करके उन्हें स्वाधीन राष्ट्रकी स्थितिमें पुनः लानेके लिए अपनी नीति आजसे तीन साल पहले ही घोषित कर दी थी, लेकिन बर्माके सम्बन्धमें अभीतक किसी नीतिकी घोषणा नहीं की गयी है।

गत नवम्बरमें काहिरा-सम्मेलनमें यह तो घोषणा कर दी गयी कि जापान द्वारा अधिकृत सभी प्रदेश स्वतन्त्र कर दिये जायंगे और कोरिया तथा मंचूरिया (मंचूको) भी स्वाधीन कर दिया जायगा। लेकिन बर्माके सम्बन्धमें इस प्रकारकी भेद-पूर्ण नीतिका अवलम्बन क्यों किया जा रहा है, इस तथा इससे सम्बन्धित प्रश्नोंपर इस लेखमें आगे विचार करनेका प्रयत्न किया जायगा। यहां हम पहले बर्माकी आर्थिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय स्थितिपर विचार कर लेना उचित समझते हैं। क्योंकि इनका बर्माके भविष्यसे घनिष्ट सम्बन्ध है।

भौगोलिक स्थिति

बर्मा भारतकी पूर्वीय सीमापर स्थित है। उसके पूर्वमें चीनी प्रान्त यन्नान और थाईलैण्ड अर्थात् श्याम हैं। उत्तरमें हिमालयकी पर्वतमाला है, जहां भारत, चीन और तिब्बतकी सीमाएं मिलती हैं। दक्षिणमें बङ्गालकी खाड़ी है। इस प्रकार उसकी तीन सीमाओंपर अभेद्य पर्वत मालाएं हैं और एक ओर समुद्रकी उत्ताल तरंगें उसके चरणोंका स्पर्श कर रही हैं। बर्माका क्षेत्रफल २६०,००० वर्गमील है। इसके मध्यमें होकर तीन बड़ी नदियां इरावदी, सीताङ्ग, और सालवीन बहती हैं, जिनके कारण यह देश बहुत ही उर्वरा और हरा-भरा है।

बर्माके उत्तर, उत्तर-पश्चिम और उत्तर-पूर्वमें हिमालय पर्वतमाला एक ऊंची दीवालकी भांति खड़ी हुई है। यह चिन और काचिन पर्वतोंके नामसे प्रसिद्ध है। ये पर्वत कहीं-कहीं १९,००० फीटसे भी अधिक ऊंचे हैं।

बर्माके पश्चिमी भागमें जो पर्वत हैं, वे बर्मा-जावा पंक्तिके नामसे प्रसिद्ध हैं। ये कुकाङ्गसे शुरू होते हैं और पटकोई, नागा, मणिपुर, चिनहिल और अराकान योमससे केप नेकराइस तक जाते हैं, उसके बाद यह सिलसिला समुद्रके कारण भङ्ग हो जाता है और फिर अण्डमान-निकोबर द्वीपसे शुरू होकर सुमात्रा-जावा तक जारी रहता है। यहां सबसे बड़ा पर्वत १२,००० फीट ऊंचा है, जो आसामकी सीमापर है।

बर्माके पूर्वमें जो पर्वतमाला है, उसका सम्बन्ध इण्डो-मलय पर्वत श्रेणीसे है। इसीमें शान पठार भी शामिल है। इसमें सबसे ऊंची पर्वतमाला लोइलिङ्ग है जो ८७७१ फीट ऊंची है।

यद्यपि बर्मामें झीलें कम ही हैं, तथापि बर्मा नदियोंके कारण काफी हरा-भरा है। चिंदविन और इरावती नदियां उत्तरकी पर्वतमालासे शुरू होकर बर्माके मध्यमें होकर बङ्गाल की खाड़ीमें गिरती हैं। इरावतीमें चिंदविन नदी मिल जाती है। रंगून इरावती नदीके तटपर ही स्थित है। इरावती नदीके मैदानमें धानकी फसल सबसे अधिक और अच्छी होती है। इसमें ९०० मील तक जहाज जा सकते हैं।

बर्मामें तीन ऋतुएं होती हैं—ग्रीष्म, शरद् और वर्षा। समुद्र तटीय प्रदेशों तथा अराकान और टेनासरिम पर्वत श्रेणियोंमें साल भरमें २०० इञ्च तक वर्षा होती है। रंगूनमें १०० इञ्च और मध्य बर्मामें ३० इञ्च वर्षा होती है।

आर्थिक साधन

बर्मा प्राकृतिक साधनोंसे सम्पन्न देश है। यहां कृषि, वन-सम्पत्ति, और खनिज-सम्पत्ति ही आर्थिक जीवनके मुख्य साधन हैं। बर्मामें चावल सबसे अधिक पैदा होता है। चावलकी उपजका ४० प्रतिशत भाग दूसरे देशोंको भेजा जाता है यहांकी ७१ प्रतिशत जनता कृषि और जङ्गलातके कारोबारमें व्यस्त रहती हैं। उत्तरी बर्मामें मक्का, रूई, ज्वार, मटर आदिकी फसलें भी बोई जाती हैं। दक्षिणी बर्मामें केवल धानकी ही खेती होती है। सन् १९३०-३९ में किसानोंने अपने खेत बैङ्करों और जमीन्दारोंके पास रेहन रख दिये। इस प्रकार आधेसे भी अधिक धानके खेतोंपर बैङ्करों और पूंजीपतियोंका अधिकार हो गया। दक्षिणी बर्माके धान उपजानेवाले १… जिलोंमें लगभग आधे खेतोंपर चेटियर (मद्रासी) फर्मोंका कब्जा हो गया था और जो जमीन्दार बर्मासे बाहर थे, वे अधिकतर गैर बर्मावासी ही थे। सन् १९४१ में, बर्माके जापानी अधिकार में जानेसे पूर्व, भूमि-क्रय-कानून (Land Purchase Act) बनाया गया, जिसके अनुसार सरकारको यह अधिकार दिया गया कि वह जमीन्दारों तथा बैङ्करोंसे, जो स्वयं खेती नहीं करते जमीनें लेकर किसानोंको दे दी जायं। प्रतिवर्ष बर्मासे ३० लाखसे ३९ लाख टन तक चावल विदेशोंको भेजा जाता था। सबसे अधिक चावल भारतमें आता था। १९-२० लाख टन की मात्रामें भारत बर्मासे चावल मंगाता था ग्रेटब्रिटेन, लङ्का, और मलय तथा पश्चिमी अफ्रीका और वेस्ट इण्डीजमें बर्माका चावल जाता था। लेकिन सन् १९३०—३८ में यूरोपके चावल आयात करनेवाले ६ प्रमुख देशोंने कम चावल मंगाया। नीदरलैण्ड इण्डीज पहले अपने यहांसे बर्मामें चीनी भेजकर उसका चावल खरीदते थे। लेकिन अब वहां भी चावलकी फसल तैयार होने लगी है। चावलके बाद दूसरी महत्वपूर्ण फसल है—तिलकी। इसका तेल बर्मा में खाद्य वस्तुएं तैयार करनेमें प्रयोग किया जाता है। रूई की भी खेती होती है। अब बर्मामें गन्नेकी भी खेती होने लगी है। उत्तरी शान स्टेटोंमें चायके बगीचे हैं। चायके बगीचे यूरोपियनोंके नियन्त्रणमें हैं। बर्माकी तम्बाकू सर्व श्रेष्ठ मानी जाती है, लेकिन उसे वैज्ञानिक तरीके से तैयार नहीं किया जाता और उसकी बिक्रीकी भी अच्छी व्यवस्था नहीं है।

कृषिके बाद वन-सम्पत्तिका बर्माके आर्थिक जीवनमें महत्वपूर्ण स्थान है। बर्मामें सागौन और बांस अधिकतासे पैदा होते हैं। सरकारने २ करोड़ एकड़-भूमिपर विस्तृत जङ्गलोंको सुरक्षित कर दिया था। बर्मामें हर साल ५ लाख टन सागौनकी लकड़ी काटी जाती है। इसमेंसे ८… प्रतिशत भारतको भेजी जाती थी।

बर्मामें विविध प्रकारके खनिज पदार्थ मिलते हैं। इनमें सबसे प्रमुख है पेट्रोलियम। सन् १८८६ में बर्मा आयल कम्पनीकी स्थापना की…

गयी और उसकी ओरसे तेल निकालनेका प्रबन्ध किया गया। सन् १८८७ में २३ लाख गैलन तेल निकाला गया। लेकिन आधुनिक यन्त्रोंके प्रयोगके फलस्वरूप सन् १९३७ में तेलका उत्पादन बढ़कर ३० करोड़ गैलन हो गया। इस कम्पनीके तेल क्षेत्रोंमें सन् १९३९ में १९,०९४ मजदूर कार्य करते थे। तेलके सिवा चांदी,शीशा, टिन, तांबा और जवाहरात भी प्रमुख खनिज-पदार्थ हैं।

बर्मन और उनका सामाजिक जीवन

बर्मामें कुल आबादी १ करोड़ ६८ लाख है। इनमें प्रायः दो तिहाई बर्मन हैं। वे लोग बर्मन भाषाका प्रयोग करते हैं। इसके अतिरिक्त बर्मा की शेष जनताका ७० प्रतिशत भाग बड़ी आसानीके साथ बर्मन भाषाका प्रयोग करता है। बर्मामें कुल १२६ देशी भाषाएं तथा बोलियां हैं। इन्हें ११ वर्गोंमें वर्गीकृत किया गया है। बर्मन के सिवा कारने भाषाका भी प्रयोग किया जाता है। व्यापारिक एवं सांस्कृतिक दृष्टिसे यह भाषा अधिक महत्वपूर्ण है। शान, कुकीचिन, और मोन आदि भाषाएं भी प्रयोग की जाती हैं।

बर्मन उन अनेक जातियोंकी सन्तानें हैं, जो ईसवीकी ८ वीं सदीमें दक्षिण पूर्वीय तिब्बत और दक्षिण पश्चिमी चीनके पार्वतीय प्रदेशोंसे बर्माके मध्य और दक्षिण भागमें बस गयीं थीं। आज भी वे उसी भागमें बसे हुए हैं। वे मङ्गोलियन हैं। उनका रङ्ग चीनियोंकी अपेक्षा कुछ गहरा है, कद छोटा और केश काले होते हैं। इस समय विशुद्ध बर्मन उत्तरी बर्मामें ही पाये जाते हैं। उनका रङ्ग भी कुछ साफ है।

चाल-चलन और स्वभावमें वे अपने पड़ोसी इण्डोचीनके समान ही हैं। उनके व्यक्तित्वमें आकर्षण होता है और वे उग्र व्यक्तिवादी होते हैं।

शान लाओ ताई जातिके हैं। वे स्याम-वासियोंके रक्त-बन्धु प्रतीत होते हैं। भाषा और संस्कृतिकी दृष्टिसे उनका झुकाव स्याम (थाईलैण्ड) की ओर ही अधिक है।

कारेन जातिके लोग पहले पहाड़ियोंमें ही रहते थे। लेकिन अब तो टेनासिरिम, पेगू, सालवीन और तुंगो (दक्षिणी बर्मा) के सनुद्रतटोंमें भी वे अधिक संख्यामें पाये जाते हैं। यद्यपि यूरोपियनोंके आगमनके समय वे आरण्य-स्थितिमें थे। उनकी न कोई लिखित भाषा थी और न साहित्य ही। लेकिन यूरोपियन प्रभावसे उन्होंने काफी सुधार कर लिया है। उनमें ईसाई धर्मका भी अधिक प्रचार है।

मोन जातिके लोग एक जमानेमें सारे दक्षिणी बर्मामें बसे हुए थे। लेकिन अब तो वह विशुद्ध रूपमें केवल इरावती, सिताङ्ग और सालवीनके अस्वास्थ्यकर डेल्टा-प्रदेशोंमें ही पाये जाते हैं। ये लोग अन्य समस्त बर्मनोंसे मौलिक रूपसे भिन्न हैं। इनके सिवा चिन और काचिन जातियोंके लोग भी बर्मामें पाये जाते हैं।

बर्मनोंके बारेमें यह कहा जाता है कि 'वे ब्रिटिश साम्राज्य भरमें शायद सबसे अधिक आकर्षक लोग हैं।' वे निश्छल और स्पष्ट भाषी होते हैं। उनका स्वभाव भी बहुत ही कोमल और सौम्य होता है। उनके स्वभावकी एक सबसे उल्लेखनीय विशेषता यह है कि 'वे जिस किसीके सम्पर्कमें आते हैं, वे अपनेको वैसी ही स्थितिके अनुरूप बना लेते हैं। उनकी विनोद-प्रियता और मनोरंजनकी प्रवृत्तिके कारण ही उनके आलोचक यह कहा करते हैं कि बर्मनोंमें दायित्वकी भावना नहीं हैं। बर्मामें जीवन-यापन दुष्कर नहीं रहा है। वे खूब-खाते पीते और मौज उड़ाते हैं। लेकिन अब वे आधुनिक सभ्यताके सम्पर्कसे प्रभावित होकर अपने जीवनके मानको ऊंचा उठानेमें व्यस्त हैं। वे अब उद्योग-धन्धों तथा अन्य बद्धिजीवी लोगोंके व्यवसायोंमें दिलचस्पी लेने लगे हैं।

अधिकांश बर्मन किसान ही हैं, जो ग्रामोंमें रहते हैं। गांव चारों ओरसे बांसों अथवा कंटीली झाड़ियोंसे आवृत होते हैं। उसका एक द्वार होता है, जिसे रातको बन्द कर दिया जाता है। एक परिवारके पास १९ एकड़ तक भूमि होती है, एक जोड़ी बैल, अपना मकान और एक बाग होता है। सामान्यतया बर्मनका मकान लकड़ी या बांसका बना होता है। वह पांच फीट ऊंचे खम्भोंपर स्थिर किया जाता है। एक तरफसे वह खुला रहता है, अथवा बरामदा बना होता है। मकानके अन्दर कोई सामान (मेज, कुर्सी, पलंग आदि) नहीं होता। उसके नीचे एक हाथसे कपड़ा बुननेका कर्घा और एक छोटी-सी दूकान होती है, जिसपर परिवारकी स्त्रियां बैठती हैं और इस प्रकारसे पारिवारिक आयमें कुछ वृद्धि कर लेती हैं। आज कल तो बर्मन अपने मकान भी बढ़िया और पोख्ता बनाने लगे हैं। उनके घरोंमें मेज, कुर्सी, पलङ्ग, लालटेन आदि घर-गिरस्तीका सामान भी दिखलायी देने लगा है। गांवके बाहर एक बौद्धमठ होता है' जिसमें नाना प्रकारके वृक्ष बेल आदि लगी रहती है। यह बड़े साफ-सुथरे होते हैं। मठमें एक बौद्ध भिक्षु रहता है। वह बालक बालिकाओंको पढ़ाता है और गांव वालों को धार्मिक तथा सामाजिक मामलोंमें परामर्श भी देता है। बर्मन लोगोंका मुख्य भोजन चावल है। चावलके साथ मांस, मछली, शाक तरकारी और पत्तेदार शाक भी खाते हैं। रंगूनमें बौद्ध कन्या पाठशालाके (भूतपूर्व) "आचार्यमा मया सीनके अनुसार 'बर्माके लोगोंको पौष्टिक खाद्य मिलता है; यद्यपि वहां बहुत कम संख्यामें धनी लोग हैं, लेकिन भारत और चीन जैसी भयङ्कर गरीबी वहां नहीं।" कस्बों और नगरोंमें जीवन ग्रामोंसे भिन्नहै। मकान आदि भारतकी तरह ही हैं। बर्मामें बर्मनोंमें कोई जांत—पांत नहीं है, वे सब प्रवासियोंसे हिल-मिल कर रहते हैं।

बर्मनोंमें व्यक्तिवाद और प्रजातन्त्रकी भावना बड़ी प्रबल है। वहां बर्मनोंमें कोई पैत्रिक अथवा परम्परागत कुलीन तंत्र नहीं है। समाजमें विविध प्रकारकी श्रेणियां हैं, लेकिन कोई ऐसा प्रतिबन्ध नहीं है, जिससे कोई सुयोग्य व्यक्ति राज्यमें परमोच्च पदवी या पद पानेसे वंचित रहे।

बर्मन अपनी राष्ट्रीय पोशाक धारण करनेमें गौरवका अनुभव करते हैं। स्त्री—पुरुष दोनों ही लुंगी पहनते हैं। यह पांच गज लम्बा वस्त्र होता है, जिसे अपना कमरसे लपेट लेते हैं। यह नीचे पैरों तक लटकता है। यह माण्डलेके रेशमसे तैयार किये जाते हैं। रंग भी बहुत चटकीले भड़कीले होते हैं। पुरुष अपने शरीरपर छोटी-सी रंगीन जाकेट (बंडी) पहनते हैं और स्त्रियां भी इसी प्रकारका वस्त्र पहनती हैं। परन्तु वह साधारणतया श्वेत रंगका होता है। वे जूता और मोजे नहीं पहनते। लेकिन हरेक अपने पास छतरी जरुर रखता है। स्त्रियां अपने लम्बे केश रखती हैं। केशोंको गूथं कर उन्हें एक चमकीले रंगीन रेशमी फीतेसे बान्धती हैं। वे अपने केशोंमें नारियलका तेल लगाती हैं।

बर्मन लकड़ी या कोयला जला कर खाना पकाते हैं। परिवारमें पहले पुरुष भोजन करते हैं। बादमें स्त्रियां खाती हैं। वे फर्शपर ही चटाई बिछा कर सोते हैं। बर्मन लोग प्रातः उठते हैं और प्रभात कालीन शीत-समीरका आनन्द उठाते हैं। जलपान करनेके बाद तुरन्त अपने काममें लग जाते हैं और १० बजे तक काम करते हैं। १०

बजे वे भोजन करते हैं। इसके बाद फिर अपना काम शुरू कर देते हैं। शामको ९ बजे भोजन करते हैं। भोजनसे पूर्व वे स्नान अवश्य करते हैं।

पुरुष ही परिवारका मुखिया होता है। लेकिन स्त्रीको अपनी पश्चिमी बहनोंकी तरह ही स्वतन्त्रता प्राप्त है। कानून और बर्मन प्रथानुसार स्त्रीको अपने पतिकी सम्पत्ति, व्यवसाय तथा उत्तराधिकारमें समान अधिकार होता है। वह १८ वर्षकी आयुमें विवाह करती है और विवाहोपरान्त भी अपना नाम नहीं बदलती। विवाहके बाद वह जो कुछ अर्जन करती हैं, वह उसकी निजी सम्पत्ति मानी जाती है। देशके व्यापार-वाणिज्यपर भी स्त्रियोंका बड़ा प्रभाव है। स्त्रियां विवाहोपरान्त भी अपने ही पिताके यहां रहती हैं। वह अपने कारोबारके लिये पितृगृह या पति गृहका त्याग नहीं करती। कन्याओंको पति वरणकी काफी स्वतन्त्रता है। विधवा-विवाह अथवा तलाकपर भी कोई रोक नहीं है। बहु विवाह भी प्रचलित है, पर बहुत कम। बर्मामें बड़े परिवार कम ही मिलते हैं।

शिक्षाका व्यापक प्रसार

बर्माके सम्बन्धमें पूर्व-कालीन लेखकोंका यह मत है कि "बर्मामें ऐसे लोग बहुत ही कम हैं, जो लिखना-पढ़ना नहीं जानते हों, क्योंकि वे बौद्ध भिक्षुकोंके संरक्षणमें रह कर लिखना-पढ़ना सीख लेते थे।" यह वास्तवमें उल्लेखनीय है कि बर्मामें उस समय भीव्यापक प्रसार हो चुका था। जब कि यूरोपमें इस दिशामें कोई कदम भी नहीं उठाया गया था। शिक्षाका बौद्धमतसे घनिष्ठ और अपरिहार्य सम्बन्ध रहा है। देशमें ८९ प्रति शत बौद्ध हैं। बौद्धमतके अनुसार प्रत्येक बालक बाल्यकालसे ही बौद्ध संघमें प्रविष्ट हो जाता है। सिद्धार्थकी भांति प्रत्येक बालक भी बढ़िया वस्त्रालङ्कार धारण कर जुलूसमें ग्राम या कस्बेके चारो ओर परिक्रमा करता है और तब वह अपने उन वस्त्रोंको उतार कर दूसरे पीत वस्त्र धारण कर बौद्ध भिक्षुकोंका अनुचर बनकर मठमें प्रविष्ट हो जाता है। वह जब तक चाहे, तबतक मठमें रहता है। बौद्धोंका कोई सङ्गठित मिशन नहीं है; लेकिन भिक्षु परिभ्रमण करते रहते हैं। जिस किसी गांव में उन्हें दो-चार बालक पढ़ानेको मिल जाते हैं, वहीं वे अपना मठ बना लेते हैं।

जिस प्रकार भारतमें लार्ड मेकालेने सन् १८३९ में अपनी शिक्षा योजना प्रचारितकी, उसी प्रकार बर्मामें भी अङ्गरेजी माध्यम द्वारा शिक्षाको प्रोत्साहन दिया गया। बर्मामें ब्रिटिश सरकारकी छत्रछायामें ऐसे स्कूलोंकी स्थापनाकी गयी, जिसके द्वारा शासन-प्रबन्धके लिये कर्मचारियोंका एक वर्ग तैयार हो जाय। रंगूनमें १००० में ८२० व्यक्ति साक्षर हैं। इतनी साक्षारता एशियाके किसी भी अन्य नगरमें नहीं है।

राष्ट्रीय-जागरण

बर्मामें भौगोलिक एकताके साथ जातीय एकता(Racial Unit) भी है। इसीलिये हम यह देखते हैं कि बर्मामें राष्ट्रीयताकी भावना भी उग्र है। सन् १९३७ से पूर्व बर्मा भारत का ही एक प्रान्त था। लेकिन सन् १९३७ में उसे भारत से पृथक कर दिया गया और उसके लिये एक पृथक शासन-विधान ब्रिटिश पार्लमैण्ट द्वारा स्वीकार किया गया। यह विधान भी भारतके प्रान्तीय शासनके ढङ्गका था। भारतसे बर्माके पृथक्करणसे एक दशाब्दि पूर्व बर्मामें घोर राजनीतिक और आर्थिक अशान्ति पैदा हो गयी। सन् १९२९ में आर्थिक-सङ्कटके कारण चावलका भाव गिर गया। किसानोंने अपनी जमीनें बेच डालीं और फलतः देशमें गहरा असन्तोष व्याप्त हो गया। सन्१९३० में प्रथम बार भारतीय-बर्मनोंमें उपद्रव हो गया। थारावड़ी जिलेमें भयङ्कर विद्रोह खड़ा हो गया। यद्यपि इस विद्रोह के पीछे आर्थिक शक्तियां काम कर रही थीं, तथापि इसमें सन्देह नहीं कि यह राष्ट्रीय नवचेतन और विदेशी शासनसे मुक्ति पानेके लिए सार्वजनिक आकांक्षाका प्रदर्शन ही था। इस भयङ्कर विद्रोहमें लूट-मार खूब हुई और बर्मन लोग भारतीयोंके खिलाफ लड़ने लगे। इसके बाद ही चीनियोंके प्रति भी विद्रोह खड़ा हो गया। भारतीयों और चीनियोंके प्रति बर्मनोंमें इन विद्रोहोंका कारण यह था कि उच्च पदों एवं वाणिज्य-व्यवसायोंपर इन दोनोंने अपना एकाधिकार जमा रखा था और बर्मनोंको उनमें प्रवेश करनेमें अनेक बाधाएं थीं।

बर्मामें उग्र राष्ट्रीयताको जन्म दिया 'थाकिन आन्दोलन' ने। थाकिनका अर्थ है 'स्वामी'। यूरोपियनोंको इसी नामसे सम्बोधन किया जाता था। तरुण बर्मनोंने स्वदेशीका प्रचार किया। मातृ भाषाके प्रचार और उसीकी शिक्षा पर जोर दिया। विदेशी वस्तुओंका बहिष्कार किया गया। थाकिनोंने भारतके राष्ट्रवादी आन्दोलनकारियोंसे सम्पर्क रखनेके सिवाय अखिल बर्मा विद्यार्थी-संघ, अखिल बर्मा कृषक संघ, अखिल बर्मा मजदूर संघ और पुङ्गी लीग सहयोग कायम किया। थाकिन सोवियट सम जवादी व्यवस्थाके प्रशंसक थे और समाजव (Communism) के प्रति उनका सद्भाव था सन् १९३९ में जब यूरोपमें युद्ध आरम्भ हो गय तब कुछेक उग्रवादी बर्मनोंने हिटलरी व्यवस्था प्रशंसाकी; बर्मनोंका एक दल जापानके पक्ष था। उसे यह आशा थी कि जापान बर्मा स्वाधीन राष्ट्र बना देगा।

सन् १९३७ से १९४१ तकके अल्प समय बर्मामें तीन मन्त्रि-मण्डलोंका शासन हो चुक था। लेकिन कोई भी ऐसी पार्टी नहीं थी, ज बर्मामें स्थायी शासनकी नींव जमा सकती। डा बा माउकी पार्टीमें धारा सभाके कुल १३ सदस्योंमेंसे १४ ही सदस्य थे। सन् १९३९ इनकी मिनिष्ट्रीका अन्त हो गया। विद्यार्थ हड़ताल तथा मजदूरोंके विरोधके कारण इ मिनिष्ट्रीसे हाथ धोना पड़ा। सन् १९३९ में यू पू० ने अपनी मिनिष्ट्री बनायी और सितम्ब १९४० में यू० सा ने अपना एक दल खड़ा कर मन्त्रि मण्डल कायम किया। यू० सा० शासन-कालमें बर्मा पूर्णतः बर्मी नेतृत्वमें आ गय था। उसकी पार्टीने बर्मीकरणके लिए एक खा कार्यक्रम बनाया और देशमें शान्तिपूर्ण ढङ्ग पूर्ण स्वायत्त शासनकी स्थापनाको अपना लक्ष घोषित किया। इसी समय डा० बा० मा (भूतपूर्व प्रधान मन्त्री) ने धारा सभासे त्याग पत्र दे दिया और थाकिनके साथ मिलक 'स्वतन्त्र दल' (Freedom Bloc) की स्थापन की। माण्डलेकी एक सभामें उसने अपनेको डिक्टर घोषित किया और राजद्रोहके अपराधमें उ गिरफ्तार कर जेल भेज दिया गया।

बर्माके सभी राष्ट्रवादी दलोंके नेता ब्रिटि सरकारसे युद्धके बाद बर्माकी भावी स्थिति सम्बन्धमें स्पष्ट रूपसे वादा चाहते थे। नवम् १९४१ में बर्मा-मन्त्री मि० एमरीने यह घोष की कि ब्रिटिश सरकारका उद्देश्य बर्माको य सम्भव शीघ्र पूर्णतः औपनिवेशिक पद प्राप्त करने सहायता देना है। एक बर्मनको बर्मा-मं एमरीने अपनी कौंसिलका सलाहकार भी नियु किया। इसी समय बर्माके प्रधान मन्त्री सा० लन्दन गये। वह ब्रिटिश सरकारके मन्त्रि से मिलकर बर्माको शीघ्र ही औपनिवेशि स्वराज्य देनेकी स्पष्ट घोषणा प्राप्त करना चा थे। लेकिन इसमें उन्हें सफलता नहीं मिली

वह अमेरिका गये। उसी समय जब वह वापस आ रहे थे, प्रशान्तमें जापानने लड़ाई शुरू कर दी। यू० सा० को गिरफ्तार कर लन्दन ले गये। कहा जाता है कि यू० सा० का जापानके साथ सम्पर्क था।

इस प्रकार जब ७ दिसम्बर १९४१ को प्रशान्तमें युद्ध छिड़ गया, तब बर्मापर भी उसका प्रभाव पड़ा। फरवरी १९४२ में जापानी बर्मा में प्रविष्ट होने लगे, तो बर्माके लोग बड़े सङ्कट में पड़ गये। बर्मामें एक दल ऐसा था, जिसकी सहानुभूति जापानके साथ थी। उन्होंने जापान की फौजमें शामिल होकर ब्रिटिश सेनाके विरुद्ध लड़ाई की।

इस समय बर्माकी मुक्तिके लिए घोर युद्ध हो रहा है। अमेरिकन, ब्रिटिश, भारतीय और चीनी सेनाएं सम्मिलित रूपसे शत्रुको परास्त करनेमें व्यस्त हैं।

बर्माका भविष्य

अब प्रश्न यह है कि बर्माकी मुक्तिके बाद उसकी भावी स्थिति क्या होगी। क्या युद्धोपरान्त वह ब्रिटिश साम्राज्यके आधिपत्यमें रहेगा, अथवा उसे औपनिवेशिक स्वराज्य दिया जायगा या पूर्ण राष्ट्रीय स्वाधीनता।

यह वास्तवमें अत्यन्त चिन्तनीय है कि अभी-तक मित्रराष्ट्रोंने बर्माकी भावी स्थितिके सम्बन्ध में कोई घोषणा नहीं की है। अटलाण्टिक चार्टर की तीसरी धारा इस प्रकार है :—

"हम समस्त राष्ट्रोंके, अपनी सरकारकी प्रणालीको पसन्द करनेके अधिकारका आदर करते हैं, और हम यह देखनेके लिए लालायित हैं कि उन्हें पुनः प्रभुत्वके अधिकार (Sovereignty) तथा स्वशासन प्राप्त हों, जिनसे वे बलपूर्वक वञ्चित किये गये हैं।"

'बलपूर्वक वञ्चित किये गये' वाक्यांशकी व्याख्या करते समय चर्चिलने यह स्पष्ट शब्दोंमें कहा था कि इन शब्दोंसे मतलब उन देशोंसे है जिनपर धुरी राष्ट्रों—जर्मनी, इटली तथा जापान ने कब्जा कर लिया है। बर्मा, मलय, सुमात्रा, जावा, चीनके प्रदेश आदिपर जापानने कब्जा कर लिया है। और उससे मुक्ति पाकर फिर स्व शासनको प्राप्त करनेका उन्हें अधिकार हो जाता है। काहिरा सम्मेलनमें चीनके प्रदेशों-के सम्बन्धमें तो स्पष्ट घोषणा कर दी गयी, चूंकि मार्शल च्याङ्ग वहां मौजूद थे। लेकिन भारत, बर्मा आदि देशोंके बारेमें अभी तक मित्र-राष्ट्र मौन हैं ? उसका क्या यह अर्थ नहीं है कि मित्रराष्ट्र युद्धके बाद भी भारत और बर्मा आदि को विदेशी आधिपत्यमें रखना चाहते हैं ? यदि यह अभिप्राय नहीं है, तो स्पष्ट घोषणा करनेमें सरकारको क्या भय है ?

———

मेरे जीवनकी मनोरञ्जक घटनाएं

श्री गोपालराम गहमरी

(गताङ्कसे आगे)

जब साहब बैठ गये, तब पञ्जाबी महाशयने उनके कानमें कुछ कहा। अब उन्होंने गम्भीर होकर हमसे पूछा—"तुम्हारा नाम ?"

हमने मनमें समझ लिया कि मामला कुछ गहरा है, लेकिन निर्भय होकर कहा—"नामसे तो कुछ काम नहीं है साहब! हमने गहमरसे टिकट लिया तब तो किसीने नाम नहीं पूछा। अब टिकट भूल जानेपर दाम दे रहे हैं, तब नामका क्या काम है।"

साहबने घूरकर इस बार कहा—"भले आदमीकी तरह सीधा जवाब दो।"

"भले आदमीकी तरह बात करनेकी तो हमको सदासे अभ्यास है साहब, लेकिन समझनेकी बात इतनी ही है कि आप जैसे भले आदमी हैं, वैसे ही मैं भी हूँ। इतना जरूर है कि मैं हिन्दुस्तानी हूं, लेकिन आपकी नौकरी नहीं करता। तब मेरे साथ आपको भी भले आदमीकी तरह ही बात करना उचित था।"

इतने पर तो सब लोग आपसमें मुहतकी करने लगे। सरदार साहब, दरोगाजी, गार्ड साहब, टिकट कलेक्टर सबने समझ लिया कि अब तो हम साहबकी कोपाग्निमें पतङ्ग होकर भस्म होते ही हैं।

लेकिन, साहबने अपने तईं खूब संभाला। कहा—"हमको क्या उचित और क्या अनुचित-इसकी समझ है। लेकिन असामीको इस तरह गुस्ताखी मुनासिब नहीं है।"

अब तो हम आस्मानसे गिरे, कहा—"असामी, टिकट खो जानेसे असामी! साहब हमें यह मालूम नहीं था, न ऐसा कभी सुना है कि टिकट खो जाना पिनल कोडमें ऐसा सङ्गीन अपराध है।"

थोड़ी देर तक चुप रह कर साहबने बड़ी सञ्जीदगीसे कहा—"तुम अपना कसूर जितना हलका बता रहे हो, उतना ही नहीं है। तुमपर चोरी और खूनका कसूर है।"

इतना सुननेपर तो हमारी हंसी नहीं रुकी। बेतहाशा ठहाका मारकर हम कुछ कहना ही चाहते थे कि साहबका तमतमाया हुआ चेहरा देखकर सहम जाना पड़ा। उन्होंने गुस्सेमें भर कर कहा—"तुम क्या अब पागल बन जायगा ?

हमने कहा—"नहीं साहब ! मैं पागल तो नहीं हूं, लेकिन आपकी बातपर ही सच्चा और अटूट विश्वास न करना अगर पागलपन कहलाता है, तो आप मुझे पागल कह सकते हैं।"

अब तो साहबकी धीरता छूट गयी। कड़ककर बोले—"बस, अब खबरदारीसे बातका जवाब दो, नहीं हम हवालातमें बन्द कर देगा। समझा ?"

(३)

अब तो हवालातका नाम सुनते ही हमको कंपकंपी आ गयी। हमने बड़ी नरमीसे कहा—इतनी देर तक तो साहब हम आपकी बातें नहीं समझ सके थे। इसको आप नासमझी कहिये या वहम। यह बात सही है कि हम इस समय अपना टिकट नहीं दे सके, लेकिन इसके लिए हमपर चोरी और खूनका कसूर थोपा जाता है, इसकी वजह समझमें नहीं आती। हम जो कुछ कहते हैं, उसका सबूत और आपको तसल्ली हो जायगी, कि गहमरमें टिकट खरीदा है हमने। लेकिन कृपाकर इस घड़ी यही बतलाइये कि कब किसका क्या चुराया है और कहां किसका खून किया है, हमने। आपकी यह बातें अलिफ लैलाके हजार दास्तानकी याद दिलाती हैं।

साहब तो बहुत बिगड़े। अब करते क्या, उनकी धीरताका भी अन्त हो चुका था वह तानेसे बोले—"तुम है पक्का बदमैश ! हमको

कनफेस करानेमें टाइम लगेगा। लेकिन कुछ परवा नहीं। यह काम हमको बराबर करना होता है। बहुत बरस हम जिला पुलिसका काम कर चुका है।"

साहबकी यह बातें गुस्सेसे भरी थीं, लेकिन इससे भी हम डरे नहीं। हमारे मनमें भरोसा था कि अन्तमें सब सङ्कट कार्तिकके बादलकी तरह फटकर तिरत-बितर हो जायंगे।

अब हमने साहबसे कहा—सुनिये साहब! आप जब इस अवसरपर मुझे पकड़ लाये हैं, तब चाहे जितना अपमान करें, हमारे पास इस घड़ी कोई उपाय नहीं है! लेकिन जब आप चोर-खूनी और बदमाश कह रहे हैं, तब आप पहले इन बातोंका सबूत पा लें, तभी कहना उचित है। यहां और कुछ भी कहना हम नहीं चाहते। साहब फिर संभल कर बोले—"टुम कहते हो कि गहमरसे आटे हो।"

"जी हां, टिकट पास नहीं मिला तो क्या, मैंने जो अपना सामान बुक कराया है' उसकी रसीद देख लीजिये इसमें भी टिकटका नम्बर मौजूद है।" यह कहकर हमने जेबसे लगेज रसीद निकालकर साहबके सामने रखा।

साहबने अच्छी तरह उलट-पलट कर रसीद देखी, फिर मेरी ओर घूर कर कहा—"अब टुमको साबित करना होगा कि यह रसीद तुम्हारा है। यह भी हो सकता है कि टुमने अपनी जान बचानेके लिए साथके मुसाफिरका यह रसीद चुरा लिया हो।"

"तो आपके कहनेका मतलब यह कि जब हमने किसी दूसरेकी रसीद चुरा ली, तब वह अपना माल भी छोड़ कर चला गया? इसकी जांच तो इतने हीसे हो सकती है कि आप चलकर बक्स अपने सामने देखें। उसकी चाभी हमारे पास है। खोलनेसे पहले उसमेंकी चीजें हम बतलाते हैं। आप खोल कर मिला लेवें अगर दूसरेकी रसीद चुरा भी ली है तो भीतरका माल बिना कोई जादू जाने तो नहीं बतला सकता।"

अब तो साहब कुछ देर तक चुप रहे, फिर बोले—"वह सब भी हम देखेगा। लेकिन पहले हम तुम्हारा नाम मांगता है। अगर पहले भले-मानसकी तरह अपना नाम-ग्राम बतला देते, तो इतना बात नहीं होता, न हमको इतना गोस्सा आटा।"

इतनी देर तक हमसे साहबकी बातें होती रहीं। अब साहबसे हमने कहा—"मालूम ही नहीं था साहब कि ऐसा सङ्गीन अपराध हमपर लगा दिया गया है, नहीं तो नाम बतलानेमें क्या था। अब नाम-गांव सब लीजिये।"

हमने नाम-पता सब बतला दिया और कहा कि मैं बनारसमें रहता हूँ। मेरे मकानपर हरनन्दन अहीर रखवार है। यहीं मैंने अपने नौकर गरीबाको बुलाया है, वह फाटकपर आया होगा।

अब एक आदमी फाटकपर गरीबाकी खोजमें भेजा गया। हमने साहबसे कहा—"आपने खून और चोरीकी बात कही, तो क्या इस गाड़ीमें कहीं चोरी और खून भी हो गया है?"

साहबने फिर हमारी ओर उसी दृष्टिसे ताक कर कहा—"अगर ऐसा होटा, टो हमसे पहले टुमको मालूम होटा।"

"नहीं साहब हमको कहां मालूम हो सकता है। हम तो गाड़ीमें जब बैठे, तब नींद आ गयी। पासमें पिस्तौल होनेसे मुझे डर तो था नहीं। अगर दूसरे किसी डब्बेमें खून या चोरी हो गयी हो, तो नहीं कह सकते।"

अब तो साहब अकचकाकर बोले—"ऐं टुमारे पास पिस्टल है?"

"जी हां, मेरे पास पिस्तौल है। अपने पास हम दो हजार रुपया लिये हैं। आज कल जो घटनाएं हो रही हैं, उनके देखते बिना पिस्तौलके माल लेकर चलना बड़े खतरेका काम है, साहब।"

सा०—लाइसेन्स कहां है टुमारा?

अब हमने लाइसेन्स पेश करके कहा—"देखिये साहब, इसमें भी नाम है इसकी तो बात ही मैं भूल गया था।"

लाइसेन्स देखते ही साहबके ललाटपर सिकुड़न आ गयी। मनमें कुछ सोचने लगे। इसी अवसरपर फाटकसे लौट कर आदमीने कहा—"वहां गरीबा नामका कोई आदमी नहीं है साहब।"

अब साहब खुश होकर बोले—"देको जी! एक बाट टुमारा जूठा हुआ। इसी तरह और बयान बी टुमारा—"

अब हमने जोशमें आकर कहा—"इतने सबूतपर भी जब मैं आपके इजलासपर झूठा ही ठहरा, तब तो आपको अब विश्वास दिलानेके वास्ते हमारा कुछ भी उपाय करना फजूल है। पुलिसको भी काफी अधिकार है। वह चाहे जिस पर चोरी और खूनका अपराध लगाकर हैरान कर डाले। न जाने हमारे ऐसे कितने बेगुनाह पुलिस की चक्कीमें पीसे जाते होंगे।"

अब साहब फिर गर्म होकर बोले—"देको यू टुमारी गुस्टाकीसे हम टुमको अभी जाने नहीं देगा, जब टक हमको टुमारा आइडेंटिफिकेशन ठीक नहीं मिलेगा।"

हमने कहा—"आप अच्छी तरह आइडेण्टिफिट कर लीजिये साहब, लेकिन किसके खून और चोरीमें आप हमको लपेटते हैं, यह तो मुझे मालूम होना चाहिये।

इस बार गुस्सेमें भर कर साहबने कहा—"राजाराम सुनारसे टुमारा अखीर कब मुलाकात हुआ?"

"राजाराम सुनार कौन? कहांका राजाराम? मैं तो राजारामको जानता भी नहीं।"

सा०—टो टुम बछुका नहीं गया?

हम—बछुका! बछुका तो मैं एक बार छुटपनमें एक बारातमें गया था, कोई बीस बरस हुए।

सा०—कल शामको टुम बछुका नहीं गया?

हम—नहीं साहब, मुझे वहां जानेकी क्या जरूरत। तब साहबने बड़ी सहूलियतसे कहा—"बछुकाका राजाराम सुनार रुपयेवाला आदमी है। कल राटको उसका खून हुआ, उसके बक्स मेंसे बहुट माल चोरी गया।"

हम—अरे अब समझमें आ गया, तो उसका खून करके माल चुरानेवाला आप हमें समझ रहे हैं?

सा०—बाट ऐसा हुआ कि खून करके राजारामके मकानसे खूनीको बागटे हुए डेका गया है। पुलिसका सिपाही उसके पीछे लगा। चिल्लानेसे चौकीदार और कई आदमी बी दौड़े। लेकिन वह पकड़ा नहीं गया। वह खूब बढ़िया कपड़ा पहना रहा।

हम—बस, तो अच्छा कपड़ा हमारा है। इसीसे हम खूनी और चोर हैं?

हमारे तानेपर साहबने भवें तानकर कहा—"हमको टेलीग्राम मिला है कि खूनी इसी गाड़ीमें बेटिकट भभौरा स्टेशनमें सवार हुआ है। रेलका पोर्टर एक आदमीको दौड़कर इस गाड़ीमें सवार होटे देका है। इसीसे सब टिकट कलेक्टर लोगको कहा गया है कि जो आदमी विदाउट (बगैर) टिकट मिले, उसको पकड़ो। टुम बेटिकट मिला है। अब टुम अपनी क्या सफाई डेटा है, बोलो।"

साहबकी बात सुननेपर यह समझमें आ गया कि जिस आदमीपर दया करके मैंने अपना टिकट

दिया वही आदमी जरूर खूनी रहा और उसकी सब बातें गढ़ी हुई थीं। एक बार मनमें आया कि उसकी सब बातें आदिसे अन्त तक कहें, लेकिन फिर हम रुक गये।

साहबसे इतना ही कहा—"नहीं साहब ? आपसे हमने एक बात भी झूठी नहीं कही है। गहमर स्टेशनके बाबू लोग भी पहचानते हैं हमको' स्टेशनसे दो मिनिटके रास्तेपर मेरा मकान है। उन लोगोंसे भी जाहिर हो जायगा कि हम शाम को गहमरमें अपने ही घरपर थे। कलकी बात क्या, बीस बरससे कभी बक्सा नहीं गया।

साहब इतनी बातें सुनकर कुछ रुके। हमने फिर कहा—"फिर भी रेलवे कम्पनीको धोखा तो देता नहीं, टिकट खो जानेसे चार्ज देनेको तैयार हैं। आप ले लीजिये।"

यही कहकर मनीबेगसे वही पांच रुपयेवाला नोट निकाल कर दिया। साहबने नोटको उलटकर देखा। कहा—"इस नोटमें खून कैसे लगा है ?"

हम तो आस्मानसे गिरे, कहा—"खून कहां साहब !"

अब साहबने कुछ न कहकर नोट हमारे आगे किया। देखा तो सचमुच लोहू लगी उङ्गलीका दाग है। हमको अब चुप देखकर साहब बोले—"यही खून राजारामका मालूम होटा है। टुमारे सब नोटमें खून लगा है।"

हम—नहीं साहब, आप देख लीजिये, हमारे सब नोट साफ हैं।

सा०—टब इसमें खून कहांसे आ टपका ? अब हम समझ गये कि सब सच्ची बात कहे बिना निर्वाह नहीं होगा। तब कहा—"मैंने अपने साथके एक आदमीसे यह नोट पाया है साहब ! अब जान पड़ता है कि जो हमको नोट दे गया है, वही वह आदमी है, जिसको हमें समझ कर आप इतनी खोज-पूछ कर रहे हैं।

अब साहबने हमसे उसका रङ्ग-रूप पूछा हमने जो कुछ हुलिया बयान की, उसके बाद उन्होंने पूछा—"अच्छा वह रैपर बदनपर डाले रहा ?"

हम—जी नहीं।

सा०—वह बागेटमें छोड़ गया, सिपाही लोग उसको उठाकर रखा है। अच्छा टुम उसको देखा।

हम—आप इन्हीं कलेक्टर साहबसे पूछ लीजिये, पहले ही वह टिकट देकर चलता बना। उसके बाद यह साहब हमारे पास आये थे।

बिना पूछे ही टिकट कलेक्टरने कहा—"यह जिस आदमीको कह रहे हैं, वही आदमी पहले टिकट देकर चला गया। उसने हमको गहमरसे यहांका टिकट दिया, इसीसे उसको छोड़ दिया।"

"गहमरसे उसका टिकट मिला ?" कहकर साहबने मेरी ओर देखा। हमने झट कहा—"वही हमारा टिकट था साहब" इस बार साहब गर्ज कर बोले—"ओ आदमी, जरूर टुम उसका साठी है। रुपया पैडा होनेसे उसमेंसे हाफ लेटा है। अब हम समझ गया। हमको टुम डिसीव करके बागना चाहता है यू।"

"नहीं साहब हम भागना नहीं चाहते, न किसी चोर या खूनीके ही साथी या हिस्सेदार हैं। अब आपसे वह सब बातें हम कह देते हैं जो अब तक नहीं कही हैं। उसने हमसे जमानियां परगनेके ही एक गांवका रहनेवाला बतलाया। वह कहता रहा कि अपने गांवके एक भले घरकी सती युवतीका सत बचानेके लिए वहांके जमींदार के बदचाल पुत्रका सिर फोड़कर आया है। कन्या के बापने उसको मददके लिए गुहार की थी। जब वह आदमी डण्डेसे उस बदमाश जमीदार पुत्रकी मरम्मत करके भागा, तब उस बदमाशके साथी गुण्डोंने उसका पीछा किया। रास्तेमें एक झाड़ीका कांटा चुभ जानेसे उसकी उङ्गलीसे खून बहने लगा, वह उसकी परवाह न करके भागता आया। जब मैं स्टेशन पहुंचा, तब गाड़ी खुल चुकी थी। वह तार लांघकर दौड़ा और चलती गाड़ीपर चढ़ बैठा। उसकी यही बातें सुनने पर हमको दया आयी और जब वह स्टेशनसे बाहर कूदनेपर उतारू हो गया, तब उसे भले-मानसको बचानेके लिए अपना टिकट दिया। मैंने यह झूठ कहा था कि टिकट खो गया है। टिकट खोया नहीं, उसीको दे दिया।

सा०—तो टुम उस पाजीका बनाया हुआ स्टोरी सच्चा मानकर अपना टिकट डे डिया ?

हम—क्या करता साहब, उसकी बातपर विश्वास करनेमें कहीं कुछ भी रुकावट नहीं दिखायी दी। क्या कहूं साहब ! हमारी हिन्दू जाति ऐसी गिर गयी है कि हिन्दू ही हिन्दू महिलाकी मर्यादा बिगाड़नेको तैयार हो रहा है और हम लोग नित्य अपनी आंखों अपनी बहू-बेटियोंकी यह दुर्गति देखा करते हैं और बहुत हुआ तो कचहरीमें जाकर नालिश करते हैं। लेकिन जिसका खून गरम है, जिसमें कुछ तेज है, जो साहस और आदमियत रखता है, वह तो चुपचाप यह सब जुल्म देख नहीं सकता। आप लोग तो स्त्रियोंका सम्मान खूब समझते हैं। जो देश अपनी महिलाओंकी मर्य्यादा रखता है, वही इस जगतमें समृद्धिशाली और बलवान है। जिस देश या समाजमें स्त्रियोंका सम्मान और उनके मातृत्वकी मर्यादा नहीं, वह देश या समाज कभी उन्नत नहीं हो सकता। इसका इस समय हिन्दू समाज साक्षात उदाहरण है। जब हमारे सहयात्रीने बतलाया कि वह जमींदार पुत्र बड़ा बदचाल, बड़ा जबर्दस्त और बड़ा रुपयेवाला है, उसने तार वार भी दिया होगा। क्या जानें बेटिकट होनेसे कोई मुझे पकड़ लेवे, तो इस चलती गाड़ीसे कूद पड़ना ही अच्छा होगा। इसपर अपना टिकट देकर बचानेमें हमको कुछ हिचक नहीं हुई। मनमें समझ लिया था कि लगेजकी रसीदमें मेरा टिकट नम्बर मौजूद है, मुझे जरूर रिहाई मिल ही जायगी। लेकिन उसने यहांतक भलमनसाहतकी कि मेरा टिकट बेदामके लेना मंजूर नहीं किया। उसीने यह नोट मुझे दिया। मैंने बाकी दाम उसको लौटा दिया था।

हमारी बात सुन लेनेपर साहब कुछ देरतक विचार करते रहे। फिर बोले—"यह सब बाट हमको पहले बोला क्यों नहीं बाबू !"

हमने देखा कि साहबका क्रोध दूर हो गया है, कहा—"पहले तो साहब मैंने इसकी जरूरत नहीं समझी। आपने हमको असामी समझा तब उसीका खण्डन करता रहा। हमारे मनमें यह बात ही नहीं आयी कि वह आदमी इतना सङ्गीन अपराध करके आया है, जिसको मैंने दया कर अपना टिकट दिया है। लेकिन जब देख लिया कि उसने हमको बेतरह चकमा दिया है, तब आपसे सब कह देना उचित समझा।

अब साहब झला कर कहने लगे—"टुम बाबू बहुत खराब काम किया। उसको टो रेलसे कट कर मर जाना ही बेटर होटा। वह आदमी टुमारा टिकट लेकर कुछ थैंकफुल हुआ ?"

"हां साहब ! बहुत हुआ। आगे मेल-जोल बढ़ानेके वास्ते हमारा बनारसका पता-ठिकाना लिया। एक बार भेंट करनेको भी बोल गया।"

सा०—उसका नाम-पटा आप नहीं लिया ?

हम—नहीं साहब, हमने उससे कुछ नहीं पूछा। एक भले घरकी इज्जत बचानेके कारण अधिक परिचय लेनेकी बात ही मेरे मनमें नहीं आयी। लेकिन अब जान पड़ता है कि उसने सब बातें बनाकर ही कही थीं।

सा०—टुम सब काम खराब कर दिया बाबू! टुमारे कागजोंसे मेरी समझमें आ गया कि टुम सच्चा आदमी है, इस वास्टे हम टुमको चोड़ डेटा है। टुमारा ट्रङ्क और लगेजका मिलान यह सरदार साहब करेगा। यह भी एक खूनका मोकदमामें मौकासे यहां आ गया है। इलाहाबाद सी० आई० डी० का इन्स्पेक्टर हमारा साथी है।

यही कहकर साहब हमको दारोगा दलगञ्जन दूबे और सरदार साहबको सौंपकर चले गये। हम उनके साथ चले। साहबने चलती बेर उन लोगोंके कानमें क्या कहा सो हम नहीं जानते।

(४)

लगेजकी रसीद देकर जब हमने अपना ट्रङ्क लिया, पञ्जाबी सरदार साहबने हमारे कहे मुताबिक सब चीजें उसमें पाकर अपनी पूरी तसल्ली कर ली। इसके सिवाय हेड टिकट कलेक्टर पं० एस० डी० जोशी हमारे परिचित मिल गये। उनके कहनेपर पञ्जाबी सरदार साहबने अपनी पूरी तसल्ली जाहिर कर दी, लेकिन फिर भी बनारस हमारे मकान तक आये।

जब हम घर पहुंचे, गरीबाको बुलाकर उनके सामने ही डांटा कि मोगलसराय गाड़ीके टाइम पर क्यों नहीं गया। उसने गिड़गिड़ाकर अपनेको बेकसूर बतलाया और कहा टाइम पर मोगलसराय गया था, जब फाटकपर नहीं मिले तब लौट आया है।

अब दारोगा दूबेजीने भी उसकी बातें सुनीं, सरदार साहबने भी सब बातें समझ लीं। इस समय गरीबाने कहा—"अभी एक बाबू एक बन्द चिट्ठी आपको दे गये हैं।"

जासूस पञ्जाबी सरदार और दूबेजीके सामने ही गरीबाने वह चिट्ठी दी। चिट्ठी पेन्सिलसे लिखी थी। खोलकर पढ़ लेनेके पीछे हमने दूबेजी को दी। उन्होंने पढ़कर सरदार साहबको दिखलायी तो उन्होंने जोरसे पढ़कर सुनायी :—

"आपको तो इस चिट्ठीसे आश्चर्य होगा, लेकिन आप हीसे बनारसका पता लेकर आया हूं। आपसे गाड़ीमें जो कुछ मैंने बयान किया था वह सब बनावटी था, इसी वास्ते आपसे माफी मांगने आया। मैंने बहुतेरे सङ्गीन जुर्म किये हैं। अपने कुकर्म लिखूं तो बड़ा पोथा हो जाय। आपका चेहरा देखकर मैंने समझ लिया था कि आप दयालु सज्जन हैं, इसीसे मामला गढ़कर आपसे बयान कर दिया। अगर आपसे उतनी बातें नहीं बनाता तो आपका टिकट नहीं पा सकता था। खैर आपने टिकट देकर मेरा बड़ा उपकार किया। यह नेकी मैं आपकी नहीं भूलूंगा। लेकिन आप बेकसूर हैं। पुलिस वाले आपको पकड़कर बहुत झकझोरेंगे लेकिन जब बेगुनाह समझेंगे तब जरूर छोड़ देंगे और मुझे इतनेमें दूर निकल जानेका अवसर मिल जायगा। भगवान आपका भला करें।

अब हमारी समझमें आ गया कि कैसे विकट आदमीसे पाला पड़ गया था। सबेरे उसीका मुंह देखनेसे हमारी उस दिन बड़ी दुर्गति हुई और धक्के सहने पड़े। सरदार साहब और दारोगाजी भी असल बातें समझ गये।

हमने कहा—"देखिये साहब। ऐसे भयानक आदमीके साथ मैं अपने मित्रका दो हजार रुपया लेकर आया था। पिस्तौल साथमें था तो क्या, उसको पता लगता तो मेरा सब लूट लेता। मैं भक्कू बन जाता। आज तो हम सस्ते छूट गये।

सरदार साहबने वह चिट्ठी दोबारा पढ़ी और साहबको दिखलायेंगे कहकर ले ली। दारोगा दलगंजन दुबेने गरीबासे चिट्ठी लानेवाले की हुलिया बहुत घुमा फिराकर पूछी लेकिन उसके बयानसे कुछ काम नहीं बना। गरीबाने कहा--"वह सामने मिले तो पहचान जरूर लेंगे।

दुबेजीने अब कहा--"आपका नाम मैंने सुना था, जासूस बाबू और रामप्रसाद हकीमके साथ आपको कई बार देखा भी था लेकिन इस मौकेपर साहबके सामने आपको अपना परिचित बतलाना उचित नहीं समझा। लेकिन मेरे भीतर बराबर यह बात थी कि जब आपपर कोई सङ्गीन सङ्कट आनेका ढंग होगा तब मैं आपकी सफाई जरूर दूंगा।"

हमने कहा-अब तो आप नाहक बातें मत बनाइये दुबेजी। यहांकी पुलिसमें नौकरी करनेवालोंसे मुरब्बत तो क्या इन्साफ पानेकी आशा करना भी बालू पेरकर तेल निकालनेके समान है। मैं कभी किसी पुलिस अफसरसे ऐसी आशा भी नहीं रखता। भगवान ऐसा अवसर कभी न लावें यही मेरी बिनती रहती है। आपने तो ऐसी नजर बदल दी कि कभीकी कुछ जान पहचान भी नहीं। अब आप चिकनी चुपड़ी बातें करते हैं इसकी तो कुछ जरूरत नहीं है दूबे जी! मैं तो आपके अच्छे व्यवहारोंकी बखान जरूर सुना था। यह भी आशा करता था कि आपमें पुलिसके मतलबी अहलकारोंकी तरह तोता चश्मी नहीं होगी इसीसे ऐसे बरतावकी आपसे आशा नहीं करता था। लेकिन अब समझ गया कि यह मेरी गलती थी। आप इसके वास्ते कुछ सङ्कोच न करें मुझे इसका तनिक भी मलाल नहीं है महराज। हमसे बहुतेरे मित्र पुलिसमेनोंसे पाला पड़ चुका है यह बात माननेकी है कि पुलिस अहलकारोंमें भी सज्जन मिलते हैं जो अपवाद (मुस्तस्ना) कहे जायंगे। हमारे मित्र मुहम्मद सरवर * भूपाल स्टेटके इन्स्पेक्टर जेनरल और पुलिस सुपरिटेंडेंट ब्रामली साहब मित्रोंमें ऐसे ही मुस्तस्ना हैं।

जब दारोगाजी और पञ्जाबी सरदार साहब मेरा अभिवादन लेकर चलने लगे तब मैंने सरदार साहबसे नाम पता पूछा। उन्होंने अपना नाम सुजान सिंह जासूस कहा और बतलाया कि विन्ध्याचलमें एक खून होगया है उसीके मामले में आया था।

अब हम इस ग्रहणसे उग्रह पाकर नारियल बाजार पहुंचे और बाबू सरजूप्रसाद मुकुन्दलाल से एक हजारका जेवर लिया और बाबू राधाकृष्ण शिवदत्तरायसे भी एक हजारका लेकर गहमर लौट गये। वहां मित्रके घरमें सब गहने पसन्द आ गये। इस कारण कुछ फेर बदलकी जरूरत नहीं पड़ी।

---

* मुहम्मद सरवरका विशेष विवरण दूसरे संस्मरण में।

अमेरिकामें भारतीय वैज्ञानिकोंके कार्य

श्री सन्तोष कुमार

भारतीय वैज्ञानिकोंने औषध और रसा- सम्बन्धी अनुसन्धानों द्वारा मित्रराष्ट्रीय द्कार्यमें अमूल्य सहायता प्रदानकी है। भारत र अमेरिका दोनों देशोंमें भारतीय वैज्ञानिकों- अनेक महत्वपूर्ण अनुसन्धान कर सारे विश्वमें याति प्राप्त की है। अमेरिकाके समाचार ों और मासिक पत्रिकाओंने उनकी सफलता- ंकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

हालमें ही स्थापित अखिल भारतीय वैज्ञा- क और औद्योगिक अनुसन्धान बोर्डके डाय- टर प्रोफेसर सर शान्तिस्वरूप भटनागरने क प्रकारके ऐसे अभेद्य कनतरोंका निर्माण किया जिनमें तरल पदार्थोंको भरकर वायुयानों अत्यन्त सख्त जमीनपर गिराया जा सकता और उनको जरा भी नुकसान नहीं पहुं- ा। इन कनस्तरोंका आविष्कार हो जानेसे र्जन सैनिक चौकियों अथवा दुर्गम अग्रगामी निक अड्डोंकी मित्र सेनाओंको रसद पहुंचाना त्यन्त सरल हो गया है।

सर शान्तिस्वरूप बहु व्यवहृत उस स्टोवके निर्माता हैं, जो एक दियासलाईकी डिवियासे ा नहीं होता और जिसमें एक बार ईंधन ल देनेसे लगातार बारह घण्टे तक तेज आग कलती रहती है। विषाक्त गैसोंसे बचनेके ए उन्होंने कई प्रकारके वस्त्रों और अन्य स्तुओंका भी निर्माण किया है। उन्होंने ऐसे ती वस्त्रोंका भी आविष्कार किया है, जो ऊनसे धिक गर्म रहते हैं।

मुण्डा अञ्चलकी लड़ाईमें अमेरिकन सैनिकों रा जापानियोंके विरुद्ध व्यवहृत घातक प्रकाश- न गोलोंके आविष्कारक अमेरिका-प्रवासी रतीय वैज्ञानिक डा० आलमजीत डी० सिंह हैं। ० सिंह अमेरिकाके इलिनोयस विश्वविद्यालय अध्यापक हैं। मिशगिन, डेट्रोयटके भार- य रसायनशास्त्री श्री के० एन० काटजूके मान डा० सिंहने भी सामरिक स्थानों और स्त्रोंको शत्रुसे छिपानेकी कलामें महत्वपूर्ण तिकी है। श्री काटजूने अमेरिकन रसायन- ास्त्रियोंके सहयोगसे हरे और अन्य प्रकारके ोंका निर्माण किया है, जो चित्र उतारनेपर ास-पासकी वनस्पतिसे जरा भी पृथक नहीं ालूम हुआ।

अमेरिकाकी कृषिको महत्वपूर्ण सहायता पहुं- चानेवाले भारतीय रसायनिकोंमें लाश एंजेल्स- के डा० जगन्नाथ शर्मा भी एक हैं। उन्होंने हालमेंही एक प्रणालीका आविष्कार किया, जिसके अनुसार तरबूजोंको काफी लम्बे अर्से तक सुरक्षित रखा जा सकता है। अनेक वर्ष पूर्व उन्होंने नारङ्गियोंको कृत्रिम रङ्ग देनेकी प्रणाली- का आविष्कार किया था, जिससे फ्लोरिडाके नारङ्गी उत्पादकोंकी वार्षिक आयमें ४ करोड़ ९० लाख डालरोंकी वृद्धि हुई।

औषधके क्षेत्रमें बर्मापर आक्रमण करनेवाले मित्र सैनिक 'कालाजार' नामक भीषण ज्वरकी चिकित्साके लिए सर उपेन्द्रनाथ ब्रह्मचारीके कृतज्ञ हैं। भारतके अनेक वैज्ञानिक अमेरिका में अनुसन्धान करने गये हैं। उनमें डा० बी० के० कोकटनर रसायनिक युद्ध और डा० डी० सक- लतवाला धातु-विज्ञानके सम्बन्धमें अन्वेषण कर रहे हैं। इनके अतिरिक्त डा० शरतकुमार राय डा० मेलाप्रागदा सुब्बाराव, प्रोफेसर सुब्रह्मण्यम् चन्द्रशेखर आदि अनेक वैज्ञानिक अमेरिकामें इसी उद्देश्यसे मौजूद हैं। भारतमें विशिष्ट वैज्ञानिकोंका अनुपात बहुत अधिक बताया जाता है और अमेरिकामें अनुसन्धान करनेवाले वैज्ञानिक वास्तवमें बहुत उच्चकोटिके हैं।

न्यूयार्कमें एक मुलाकातके समय श्री गोविन्द बिहारीलालने हालमें ही कहा कि भारतने अमे- रिकाको अपने ९० सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक और संसार का एक सर्वश्रेष्ठ ज्योतिषी प्रदान किया है। अन्तर्राष्ट्रीय संवाद समिति और युक्तराष्ट्रके हर्स्ट- शृङ्खलाबद्ध समाचार-पत्रोंके विज्ञान-सम्पादककी हैसियतसे श्री गोविन्द बिहारी अमेरिकाकी वैज्ञानिक और औषधिजन्य प्रगतियोंकी सूचना देते रहते हैं। उनके लेखोंको लाखों व्यक्ति पढ़ते और सभी प्रकारकी विज्ञान-सम्बन्धी सभाओंकी वह रिपोर्ट देते तथा संसारके श्रेष्ठतम वैज्ञानिकों मेंसे अनेकको जानते हैं।

श्री गोविन्द बिहारी एक भारतीय हैं और युक्तराष्ट्रमें उन्होंने बहुत बड़ी ख्याति प्राप्त कर ली है। उनका जन्म १८९० में दिल्लीमें हुआ था और पञ्जाब विश्वविद्यालयसे वह ग्रेजुएट हुए। १९३७ में उत्कृष्ट पत्रकारिताके लिए उनको अमेरिकाका पुलिटजर पुरस्कार प्रदान किया गया। अमेरिकन-पत्र जगतके वह पूर्ण उदश्य और योग्य सदस्य हैं। वह विज्ञानपर भाषण करते और तीन पुस्तकोंके रचयिता हैं।

श्री गोविन्द बिहारीने कहा है कि रहस्योंके देश भारतने इतने महान वैज्ञानिकोंको पैदा किया है, यह वास्तवमें अत्यन्त उल्लेखनीय है। युक्तराष्ट्रमें सर्व प्रमुख भारतीय वैज्ञानिक शिकागो विश्वविद्यालय और येरकेज वेधशालाके प्रोफेसर सुब्रह्मण्यम् चन्द्रशेखर हैं। ज्योतिष-विज्ञानमें अपने अनुसन्धानोंके लिए वह सारे संसारमें विख्यात हैं। जब वह २० वर्षके ही थे, तभी उन्होंने सूर्यके सम्बन्धमें एक महान अनुसन्धान किया था।

अमेरिकाके वैज्ञानिक भारतीय वैज्ञानिकोंकी श्रेष्ठताको स्वीकार करने लगे हैं और उनकी कृतियोंका चतुर्दिक समादर हो रहा है। अमे- रिकाके दो महान भौतिक तत्ववेत्ता और नोबल पुरस्कार विजेता वैज्ञानिक डा० आर्थर काम्प- टन और डा० राबर्ट ए० मिलिकनने बहुत दिनों- तक भारतमें रहकर अनुसन्धान किया है और अमेरिकामें भारतीय वैज्ञानिकोंकी खूब प्रशंसा की है। इसके अतिरिक्त भारतके एक प्रमुख वैज्ञानिक सर सी० बी० रमणके, जो नोबल पुरस्कार विजेता भी हैं, महान आविष्कारोंसे अमेरिकाकी जनता पूर्ण परिचित है और सर्वत्र उनका आदर होता है।

यह भी सत्य है कि अमेरिकाके जीवन- सम्बन्धी सिद्धान्तोंको भारतमें तुरन्त ग्रहण कर लिया जाता है। भारत और अमेरिका अनेक अंशोंमें एक दूसरेसे बिलकुल मिलते-जुलते हैं। दोनों देशोंकी अदालती भाषा अङ्गरेजी है। भारत और अमेरिकाकी मैत्री वर्तमान समयमें सारे विश्वके लिए एक महत्वपूर्ण विषय है और वैज्ञानिक लेन-देनसे उभय देश एक दूसरेके अधिक निकट सम्पर्कमें आ सकते हैं। आधुनिक मशीनें, रसायनिक वस्तुएं और सभी प्रकारके वैज्ञानिक आविष्कार भारतकी विशाल और तेजीसे बढ़ती हुई आबादी के लिए अत्यधिक आवश्यक हैं। इन दोनों महान देशोंके बीच आयात-निर्यात जारी करने- के लिए उभय देशोंमें व्यापारियोंकी नितान्त आवश्यकता है।

श्री गोविन्द बिहारीलालका कथन है कि विज्ञान-सम्बन्धी पत्रकार-कला जनताकी गण- तन्त्री सेवाके लिए हो। इसीलिए वह हमेशा ऐसे ही लेख लिखते हैं, जो साधारण व्यक्तिपर

(शेष १२ वें पेजके ३ रे कालममें)

एकाङ्की नाटक—

टेढ़ी-मेढ़ी रेखाएं

श्री छेदीलाल गुप्त

पात्र—रमेश, मधुप, वैरागी और शैल।

समय—शाम।

स्थान—पतली-सी, गन्दी गलीके अन्तिम छोरपर दोमञ्जिला मकान। कई देशोंके, कई जातिके आदमी इस मकानमें कमरा किरायेपर लेकर रहते हैं। कोई किसी आफिसका चपरासी है, तो कोई कहीं नौकरी करने जाता है। रहनेवालोंमें स्त्री और पुरुष सभी नौकरी करते हैं। पढ़े-लिखोंका अभाव है। छोटे-से आंगनके सामनेवाला कमरा रमेशका है। कई साथियोंने मिलकर लिया है। पर इस समय अकेला रमेश ही कमरेमें बैठा है। कमरेकी स्थिति वैसी ही है, जैसी स्थिति रमेशकी, यानी अस्त-व्यस्त। न पानी पीनेके लिए कमरेमें एक ग्लास है और नहीं एक मिट्टीकी सुराही। एक कोनेमें एक मेज पड़ी है, जिसके अगल-बगल पुरानी, लोहेकी दो कुर्सियां भी पड़ी हैं। एकपर रमेश, दोनों पैर कलेजेसे चिपकाये बैठा है। उसके हाथमें ताशके तीन पत्ते हैं—बीबी, बादशाह और गुलाम!

दरवाजेके दोनों पल्ले खुलते हैं। कमरेमें शैल आती है, शैलकी जिन्दगीकी रेखाएं टेढ़ी-मेढ़ी हैं, पर सुलझानेकी चेष्टा करनेका अधिकार वह स्वयं रखती है, चूंकि वह पढ़ी-लिखी, संसारसे ज्यादा अपने-आपको समझनेकी क्षमता रखती है।

रमेश—आप?

शैल—जी हां, यह प्रश्न क्यों? फिर 'आप' का सम्बोधन ठीक नहीं, तुम कह कर ही काम चला सकते थे।

रमेश—तो मैं भाग्यवान हूँ!

(शैल दूसरी कुर्सीपर बैठ जाती है। पुनः उसके हाथसे ताशके तीनों पत्तोंको झपट लेती है।)

शैल—गुलामको तुम सर कर सकते हो?

रमेश—गुलाम भी कभी सर हुआ है?

शैल—क्यों नहीं, दहला फेंको और गुलाम सर कर लो।

रमेश—यही तो तुम नहीं समझती हो, मैं दहलेपर गुलाम सर करना नहीं चाहता। बादशाहपर सर करना चाहता हूँ, बीबीपर सर करना चाहता हूँ।

शैल—(हंसकर) असम्भव! पुरुष सदा इस युगमें नारीका गुलाम रहा है।

रमेश—इसपर अकेले तुम गर्व कर सकती हो, फिर भी नारी संज्ञाका नहीं, सौन्दर्यका गुलाम···

शैल—(बीचमें ही) यह भी गलत, अकेले तुम सौन्दर्यके गुलाम बन सकते हो, पर पुरुष तो वासनाका गुलाम है ही।

(दोनों हंसते हैं)

रमेश—जैसे मधुप······

शैल—(अकचका कर एकाएक) हां, मधुपका एक पत्र आया है। उसने मुझे लिखा है कि वह मुझसे प्रेम करता है। रातकी नींदमें मैं आती हूँ, शुभ्र चांदकी ज्योत्स्नामें मैं दिखती हूँ। किताबोंके पन्नोंपर मेरा ही दर्शन वह करता है और बाबूजीके साथ वह जब मन्दिरमें जाता है, तो उस पत्थरकी मूर्त्तिमें भी मुझे ही पाता है। भला उसको क्या हो गया है?

रमेश—(व्यंगसे मुस्कराकर) इस प्रश्नका उत्तर नहीं दूंगा। मैं असमर्थ हूँ।

शैल—मुझसे कुछ छिपाया जा रहा है?

रमेश—छिपानेके लिए बहुत कुछ छिपा ही है। बहुत कुछ छिपाना भी पड़ता है।

शैल—जैसे।

रमेश—जैसे, तुम्हारा यहां आना-जाना।

शैल—बिलकुल गलत, मैं नारी हूँ। पर नारीत्वहीन नहीं। वैसी नारी नहीं, जो अपमान सहकर आज तक सब कुछ सहती आयी है। समाजका भय दिखाकर जिसे चंगुलमें दबा लिया गया है। जिसकी महानताको केवल घरकी बहू और नानी, दादी तक सीमित कर दिया गया है।

रमेश—तो न तुम किसीकी बहू बनोगी और न नानी-दादी, तो बनोगी क्या, किसीकी नूरजहां, टी० बी० की रोगिणी और फिर चिताकी भस्म, क्यों?

शैल—(हंसकर) नहीं, नहीं······

(वैरागी और मधुप कमरेमें दाखिल होते हैं)

वैरागी—रमेश! यह कमरा छोड़ना होगा, पुलिसकी निगाह यहां भी गड़ गयी।

मधुप—पुलिसकी निगाहसे बचनेकी चेष्टामें मेरा ख्याल है, असफलता ही हाथ लगेगी।

रमेश—न कमरा छोड़ा जायगा और न पुलिसकी निगाहसे बचनेका प्रयत्न ही करना है···

वैरागी मधुप (एक साथ, बीचमें ही) तो क्या करना पड़ेगा?

रमेश—क्रान्तिका स्वागत स्वदेशी बमोंक वर्षासे नहीं किया जा सकता, गरमा-गरम स्पी देकर ही तुम और हम क्रान्ति नहीं कर सकते जेलोंमें बन्द होकर, राष्ट्रीय पताका लेकर केव क्रान्ति नहीं मच सकती। २६ जनवरीको तिरंगे नीचे खड़े होकर प्रतिज्ञा कर लेना ही क्रान्ति

(११ वें पेजका शेष)

प्रभाव डाल सकते है। उनका उद्देश्य मान जीवनको और अधिक उन्नत और सुरक्षित बना होता है। अज्ञानताके कारण लोगोंमें फैले हु भयको दूर करना वैज्ञानिक लेखोंका प्रधा उद्देश्य होना चाहिये और लोगोंको अपने जीव में पूर्ण विश्वास करनेकी शिक्षा देनी चाहिये इन लेखों द्वारा संसारमें होनेवाली महत्वपू घटनाओंसे भी जनताको अवगत कराते रह चाहिये।

श्रीलालने १९२५ में 'सेनफ्रान्सिसको एक्जा मिनर' के सम्पादकीय विभागमें योगदान देक अपना पत्रकार जीवन आरम्भ किया। उन्हों अनेक लेख लिखे और बराबर उनका आदर होत गया। उनका नाम, उनकी शैली और उनक विषय बिलकुल अपना था और धीरे-धीरे व सारे अमेरिकाके श्रेष्ठ वैज्ञानिक पत्रकार ह हो गये।

श्री गोविन्द बिहारी १९३२ में भारत वाप आ गये। यहां उन्होंने अनेक लेख लिखे औ भाषण दिये। उन्होंने कई बार यूरोप-यात्रा क और सभी जगह बड़े-बड़े वैज्ञानिकोंसे मुलाका की। युक्तराष्ट्र जानेके पूर्व जर्मनीमें महा वैज्ञानिक अल्वर्ट आइन्सटाइनसे उन्होंने मुला कात की। विश्वविख्यात अङ्गरेज ग्रन्थकार एच जी० वेल्ससे उन्होंने उस समय मुलाकात की जब वह अपनी 'शेप आव थिंग्स टु कम' नाम पुस्तक लिख रहे थे। वेल्सने भावी दुनिया सम्बन्धमें श्री गोविन्द बिहारीके साथ का देरतक बातचीत की। अमेरिकामें स्वीडेनके युव राजने उनसे पुरातत्व विज्ञानपर बात-चीत की है

श्री गोविन्दबिहारीलाल अबतक अविवाहि हैं और न्यूयार्कके विद्या और कला-केन्द्र ग्रीनवि मुहल्लेमें रहते हैं। वैज्ञानिक विषयोंके अतिरि वह गान, नृत्य और नाटकमें भी पूरी दिलचस् रखते हैं। उन्होंने अनेक वैज्ञानिक पुस्तकें लि हैं और अमेरिकाके वैज्ञानिक लेखकोंके राष्ट्री सङ्घके वह अध्यक्ष भी रह चुके हैं।

चा देना नहीं है। युग-युगसे तो यह सब करते आ रहे हैं, पर सफलता किसे मिली ।

(कमरेमें निस्तब्धता छा जाती है। आश्चर्य-चकितसे सभी रमेशको घूरने लगते हैं)

सबसे पहले हमें अपनी सामाजिकताको सुधार का इंजेक्शन देना होगा, उन रोटीके मुहताजोंको, जिन्हें आजादीकी लड़ाई लड़नी है, रोटीके काबिल बनाना पड़ेगा-उनमें यह शक्ति भर देनी पड़ेगी किवह मनुष्य हैं, कि वह अपनेको आजाद करें, तब वे राष्ट्रकी आजादीके महत्वको समझ सकेंगे।

(रमेश चुप होताहै। मधुप शैलकी कलाई पकड़ उसमें बंधी हुई घड़ीकी ओर दृष्टि गड़ाता है।)

मधुप—ओह, छ बज गये मैट्रोमें बड़ी सुन्दर पिक्चर आयी है, चलोगी शैल ?

(शैल रमेशकी ओर देखती है, और रमेश वैरागीकी ओर)

मधुप—(तीनोंको घूर कर) अकेली तुम नहीं, रमेश भी चल सकता है ।

रमेश—मधुप ! यह कटी-कटी बातें, व्यंग मेरे लिए ही क्यों ? आज लगातार कई दिनोंसे देख रहा हूं। उस दिन नूरजहां और जहांगीर-की आलोचना करने तुम बैठे थे। बे-परवाह होकर जो जीमें आया कह गये, और आज फिर तुमने वही छेड़ दी ?

मधुप—मैं देखता हूँ कि कार्यमें मैं बाधा स्वरूप करार दिया जा रहा हूँ। बेहतर है, मैं राहसे हट जाऊं।

वैरागी—टेढ़ी-मेढ़ी रेखाओंपर चलना कठिन है। यह तुमसे उसी दिन कहा था, जिस दिन तुम्हारे मनमें देशके प्रति प्रेमकी आग भड़क उठी थी।

मधुप—पर उस दिन मैंने इसका यह अर्थ लगाया था कि हम एक राहके राही होंगे, एक साथ कदम उठेगा। कोई किसीको बाधा पहुंचा कर नाजायज फायदा नहीं उठा सकता ।

रमेश—तुम्हारा मतलब है शैलसे है ? शैलको मैं श्रद्धाकी दृष्टिसे देखता हूँ, केवल इसलिए कि शैल उन बेबस नारी की रूढ़ियोंकी मजबूत रस्सी-को तोड़ कर टुकड़े-टुकड़े कर देने की क्षमता रखती है। प्रेमकी गृद्ध दृष्टि शैलपर मेरी नहीं, तुम्हारी गड़ी है।

वैरागी—और न मैंने आजतक किसीको प्रेम किया, चूंकि प्रेम समाज और राष्ट्रके नियमको तोड़ कर नहीं किया जाता। पत्नी संज्ञासे सम्बोधित नारी ही प्रेमका पार्ट अदा करती है। फुट-पाथपर चलनेवाली, कालेजकी सहपाठिनी और बरामदेपर बैठी तनका सौदा वालीसे प्रेम नहीं किया जाता, वासनाका खेल खेला जाता है, मधुप ?

रमेश—शैलसे तुम वासनाका खेल नहीं खेल सकते मधुप ! खेलनेकी चीज भी नहीं, श्रद्धाकी देवी है। नारीसे प्रेरित होनेवाला पुरुष वासना की कामना रख कर प्रेरणा नहीं पा सकता। श्रद्धाकी मनोकामनासे प्रेरित हो सकेगा। मधुप

—मधुप 'रमेश' कहकर उठ खड़ा होता है। रमेश भी तद्रूप उठ खड़ा होता है। रिवाल्वरकी आवाज कमरेमें गूंज जाती है। फटाकसे कमरेके दोनों दरवाजे भी खुल जाते हैं और कमरेमें तीन-चार पुलिसमैन व इन्सपेक्टर आ धमकते हैं।)

——

अपराध और अन्ध-विश्वास

ले०—श्री अम्बिकाचरण गोस्वामी

अपराधों एवं अपराधियोंकी प्रवृत्तियोंका मनोवैज्ञानिक ढङ्गसे विश्लेषण वास्तवमें बहुत ही मनोरञ्जक होता है। इससे अपराधियोंकी मनोवृत्ति और अपराधके मूल कारणोंका आसानीके साथ ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। अपराध भी एक सामाजिक रोग है और उसका उपचार भी समाज द्वारा सम्भव है। यदि कोई मनुष्य चोरी या व्यभिचार करता है, तो इसका मतलब यह नहीं कि उस मनुष्यकी प्रकृति या स्वभाव ही इसके लिए जिम्मेवार है, प्रत्युत समाजकी स्थिति और वातावरण भी इसके लिए उत्तरदायी हैं। अतः समाज-सुधारकों और समाजोन्नतिके सभी इच्छुकोंका यह कर्तव्य है कि वे अपराधोंसे घृणा अवश्य करें, लेकिन अपराधियोंके साथ सहानुभूति रखें। हम उनकी मनोवृत्ति और अपराधात्मक प्रवृत्तियोंका अध्ययन करें और उनके कारणोंकी छानबीन कर उनके निवारणका प्रयत्न करें, तभी हम समाजसे अपराधोंका बहिष्कार कर सकते हैं।

यहां हम मध्यप्रदेशके कुछ प्रमुख अपराधोंके सम्बन्धमें उल्लेख करनेका प्रयत्न करेंगे, जिससे पाठकोंको भलीभांति यह ज्ञान हो जायगा कि अपराधी किन परिस्थितियों और किन कारणोंसे प्रेरित होकर अपराधोंमें प्रवृत्त होते हैं।

सन् १९२३ में नागपुरमें एक उग्र धार्मिक कट्टर-पन्थी पुलिस कान्स्टेबल और उसके कहार-के बीच यह तय हो गया कि वे अपनी इष्ट-देवी कालीसे अमरत्व पानेके लिए अपनी बलि चढ़ा देंगे। उन्होंने भूलसे सेमीनरी हिल-पर ग्रोटो गिर्जेमें वर्जिन मेरीको ही काली समझकर उसके चरणोंमें अपनी बलि देनेका निश्चय किया। कान्स्टेबलने तो अपने शरीरमें छुरी भोंककर अपना बध कर लिया। लेकिन उसका साथी कहार इस काण्डसे संज्ञाहीन हो गया। कहार गिरफ्तार कर लिया गया और उसपर कान्स्टेबलकी हत्या करनेका दोषारोपण किया गया। लेकिन बादमें उसे अदालतने निर्दोष घोषित कर बरी कर दिया। कान्स्टेबल में वैराग्यकी भावना बढ़ती जा रही थी और वह अनेक बार यह कह चुका था कि आल्हा-ऊदलने शारदा देवीको अपने बलिदानोंसे प्रसन्नकर अमरत्व प्राप्त किया था और कोई कारण नहीं कि हम भी वैसा न करें। वह रावणकी भी बहुत प्रशंसा करता रहता था। उसने भी अपने दश सिरोंको शिवके अर्पण कर दिया था। अपनी गर्दनपर वार करनेसे पूर्व उसने गिर्जेके निकट एक कूएंपर स्नान किया और वहीं अपनी कमीज और धोती छोड़ दी।

सन् १९२४ में माण्डलामें एक पन्द्रह वर्षीय युवक, जो बहुत ही होनहार और आकर्षक व्यक्तित्वसे युक्त था, पागल हो गया। उसके सम्बन्धी तथा मित्र यह समझने लगे कि उसपर भूत-प्रेत अपना दुष्प्रभाव डाल रहे हैं! वे उसे असिस्टैण्ट सिविल सर्जनके पास इलाजके लिए ले गये।—उन्होंने और दूसरे लोगोंको भी उसे दिखलाया। उनमेंसे एक निरीह विक्षिप्त भी था, जिसके प्रति लोगोंमें बड़ी श्रद्धा थी और यह कहा जाता था कि उसे देवीसे वरदान प्राप्त था। उसने इन लोगोंको क्या परामर्श दिया; यह तो पता नहीं। परन्तु यह तो निश्चय ही है कि भूत-प्रेतकी बाधाकी बात उसने ही कही थी। इस भूत बाधा-हरणके लिए प्रयोग किया गया। पागलपन शुरू होनेके ११ वें दिनके बाद उस पागल युवकके हाथ जला दिये गये और उसी दिन उसे एक खम्भेसे मकानके आंगनमें बांध दिया गया और उसे खाना भी नहीं दिया गया। दिसम्बरकी अत्यन्त शीतल रात्रिमें वे

उसके हाथ-पैर बांध कर नग्नावस्थामें उस स्थानपर ले गये, जहां वह पागल साधु रमता था।

प्रातःकाल ही वहां उस युवकका शव दिखलायी दिया। डाक्टरोंका यह मत था कि अत्यन्त शीत लग जानेके कारण उसकी मृत्यु हो गयी। उस भयानक रात्रिको केवल यही दुःखान्त नाटक हुआ, सो बात नहीं। उस युवककी २२ वर्षीया बहनको भी पागलपन सवार हो गया, और उन्मत्त होकर वह भी समझने लगी कि उसपर कालीका असर है और वह कालीके चरणोंमें यदि अपनी नव वर्षीया कन्याकी बलि दे दे, तो वह सन्तुष्ट हो जायगी और उसके भाईका पागलपन भी ठीक हो जायगा। उसने अपनी बालिकाकी उङ्गलीको चाकूसे काट दिया और रक्तको रोटियोंपर छिड़क कर उन्हें अपने भाईके पास ले गयी। वहांसे लौटने पर एक तलवारसे अपनी बालिकाकी हत्या कर डाली। इसके लिए उसे आजीवन निर्वासन और उसके पिताको अपने पुत्रकी हत्याके लिए कालेपानीकी सजा मिली।

भण्डारा जिलेमें एक ३१ वर्षीय अध्यापकने अपनी मवेशीकी मृत्यु और अपने बच्चोंकी बीमारीका कारण एक व्यक्तिका जादू-टोना बताया। एक दिन रातको उसने देवीकी पोशाक धारण करके सारे ग्राममें चक्कर लगाया, जिससे ग्रामवासियोंके धन-जीवनकी उससे रक्षा हो सके। ५-६ दिनके उपरान्त उसने हरे रङ्गका लहंगा पहना और हरे रङ्गकी कमीज और टोपी पहनी, पीतरङ्गका एक फेंटा कमरमें बांध लिया। पांवमें घुंघरू बांध लिये और हाथमें त्रिशूल ले लिया। तब वह उस व्यक्तिके घर गया, जिसके प्रति उसे जादू-टोनाका सन्देह था। उससे जाकर कहा—"हे जादूगर, अब तो तुम अपने जादूको दिखलाओ। घरसे बाहर निकल आओ। मेरी देवीमें श्रद्धा रखो। तुमने ही तो मेरी मवेशी मार डाली हैं और मेरे बच्चोंको बीमार कर दिया है।" इसपर उस जादूगरके लड़केने आपत्ति की। अध्यापकने उसके त्रिशूल चुभो दिया, जिससे उसके मामूली चोट आ गयी। जब वह अपनी रक्षाके लिए भागा जा रहा था, तब उसने पीछेसे त्रिशूल उसकी गर्दनपर मारा, जिससे एक घण्टेमें ही उसकी मृत्यु हो गयी। अध्यापकको कालेपानीकी सजा दी गयी।

सन् १९३२ में एक कोहली स्त्रियोंको आकर्षित करनेके लिए मोहिनी मन्त्र और दो धीवर अपने मालगुजारका खात्मा कर देनेके लिए जादू सीखना चाहते थे। वे दो महारोंके पास गये, जिन्हें इस प्रकारकी कलामें बड़ा दक्ष समझा जाता था। इन महारोंने जङ्गलमें रातमें पूजा करनेका उपक्रम किया। इसके लिए आवश्यक सामग्री मंगायी गयी और वे तीनों ४० रुपये अपने साथ उन महारोंको दक्षिणा देनेके लिए लाये। जङ्गलमें एक स्थानपर छतरी खड़ी कर ली और उसके पास देवीका एक चित्र बनाया गया। एक महारने एक प्रकारके चूर्णको पांच भागोंमें विभाजित कर लिया और कोहली तथा दोनों धीवरोंको कहा गया कि वे पानीमें घोलकर इसे पी जायं, इससे भूत-प्रेतका उनपर असर नहीं होगा। वे पी गये और कुछ ही देरमें वे संज्ञाहीन हो गये। तब महारोंने उनसे ४० रुपये छीन लिये और उनके पास जो सोनेके आभूषण थे, वे भी सब ले लिये। किसी तरह कोहलीके प्राण बच गये। पर दोनों धीवर कालके ग्रास बन गये।

उपरोक्त उदाहरणोंसे यह स्पष्ट है कि हमारे देशमें बहुतेरे अपराध अंध-विश्वासोंके कारण ही होते हैं। यदि समाजमें वैज्ञानिक ज्ञान तत्वोंका प्रचार हो और जनताको शिक्षित बनाया जाय, तो इस प्रकारके अपराध दूर हो जायंगे।

पारिवारिक जीवनकी कलापूर्ण कहानी

रम्भा

श्री देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त'

दर्पणके सामने खड़ी हुई रम्भा अपनी काली-काली वेणी गूंथ रही थी। दर्पणके पास ही श्रृंगार-दानपर हंसते हुए दो गुलाबके फूल मानो यह प्रतीक्षा कर रहे थे कि कब रम्भाकी अलकोंमें वे लगाये जाते हैं?

रम्भाके हाथ वेणी गूंथ रहे थे; लेकिन उसकी आँखें इन हंसते हुए गुलाबके फूलोंको बराबर देख रही थीं, और इसीलिए शायद वह कुछ गुनगुना भी रही थी। लेकिन वह गुनगुनाहट इतनी धीमी और अस्फुट थी कि यदि उस कमरेमें कोई होता भी, तो शायद वह कुछ भी न सुन पाता।

खिड़कीमें से डूबते हुए सूर्यकी सान्ध्य किरणोंका क्षीण आलोक, कमरेमें शनैः-शनैः प्रवेश कर रहा था; लेकिन अपने-आपमें खोई सी-और फूली-सी रम्भाको इस सबका कोई भान नहीं था। वह तो अपनी ही किसी अव्यक्त और पु[illegible] प्रकम्पनसे ओत-प्रोत भाव-धारामें ही जैसे [illegible] जाना चाहती हो!

वेणी गूंथ चुकनेपर रम्भाने गुलाबके उ[illegible] फूलोंको उठानेके लिए हाथ बढ़ाया ही था [illegible] दर्पणमें उसे किसीकी परछाईं देख पड़ी। घूम[illegible] उसने देखा, तो भाभीको दरवाजेपर खड़ी पा[illegible]

एक दूसरेको देखते ही दोनोंके ओ[illegible] हलकी-सी मुस्कान दौड़ गयी। एक क्षणके [illegible] दोनों ही मौन रहीं।

'आओ न!' रम्भाने कहा—'वहीं खड़ी हो भाभी?'

'ऊंहूं! मैं क्या करूंगी आकर?' भा[illegible] वहीं खड़े-खड़े कहा।

'समझीं!' रम्भाने भाभीके पास पहुंचते [illegible] कहा—'भैया होते, तो बिना बुलाये जातीं!'

'मैं किसीके पास नहीं जाती बिना बुलाये[illegible]

'लेकिन मैं तो तुम्हें बुला रही हूँ, भाभ[illegible] रम्भाने कहा—'चलो, मेरी अलकोंमें वे गुला[illegible] फूल लगा दो।'

और तब भाभीको अपनी ननदका यह अ[illegible]ह स्वीकार करना ही पड़ा। गुलाबके फूल र[illegible] की अलकोंमें लगाते हुए भाभीने कहा—'र[illegible] बेटी! एक बात पूछती हूं, सच-सच बतलाना[illegible]

'बतलानेकी बात होगी, तो जरूर बत[illegible]ऊंगी।'

'भाभीसे कोई बात छिपायी नहीं जा[illegible] रम्भा!' रम्भाकी अलकोंमें फूल लगा चुकने [illegible] खिड़कीके पास जाकर बाहर देखते हुए भा[illegible] कहा।

'यह मैं जानती हूं, भाभी! फिर भी...

'लाज लगती है!' भाभीने कहा।'

रम्भा चुप हो रही।

'मैं जानती हूं रम्भा!' भाभीने फिर अपनी [illegible] आगे बढ़ायी—'उभरते हुए यौवनकी रूपरा[illegible] लेकर जब तरुण लड़कियां पहले-पहल अपने स[illegible] के घरसे मायके लौटती हैं, तो उन्हें अपनी [illegible] लियोंसे ससुरालके अपने नवीन अनुभव बतल[illegible] असीम संकोचका अनुभव होता है। भाभिय[illegible] भी वे अपनी बात बतलानेमें झिझकती हैं। ले[illegible] वे कहें या न कहें, उन्हें यह उत्सुकता भी रह[illegible] कि कोई उनसे ससुरालकी और साजनकी [illegible] पूछनेका आग्रह करे!'

'लेकिन मुझे यह उत्सुकता नहीं; भाभी[illegible]

रम्भाने अपने आंचलका एक कोर संभालते हुए कहा।

'न सही तुम्हें, लेकिन मुझे जो है।'

रहा करे तुम्हें, इससे क्या ?'

'तुम भूल रही हो रम्भा!' भाभीने कहा 'भाभी-का रिश्ता इस दुनियामें ऐसा नहीं, जो ननदकी सारी बातें न जान सके। फिर जानती हो, मेरा नाम अवला है। मैं जो बात जान लेनेका निश्चय कर लेती हूं, उसे जानकर ही रहती हूं।'

'जानती हूं, भाभी! तुम्हारा जैसा नाम है, वैसा ही काम है। लेकिन कभी-कभी भैयाके सामने तो तुम इस प्रकार अचल नहीं रह पातीं न ?'

'यह बात तुम भी समझ जाओगी रम्भा !' अचलाने कहा—'लेकिन एक बार ही ससुराल जाना, इन सब बातोंको समझनेके लिए पर्याप्त नहीं होता।'

'लेकिन एक भाभी यह सब समझानेके लिए पर्याप्त है।' और रम्भा ओठों ही ओठोंमें मुस्करा उठी।

'सो तो है ही।' अचलाने कहा—'अरे तुम बतलाओ या न बतलाओ; लेकिन बहुत-सी बातें तो मैं तुम्हें देखकर ही समझ लेती हूँ।'

'ओ हो! तब तो तुम ज्योतिषी भी हो भाभी! फिर मुझसे कोई बात पूछनेकी जरूरत ही क्या रह जाती है ?'

'यह तो मानव-स्वभावकी बात है रम्भा! क्या ज्योतिषी किसीसे कोई बात ही नहीं पूछते ? यदि ऐसा हो, तो फिर ज्योतिषीको इस दुनियामें कभी किसीसे कोई बात ही नहीं करनी चाहिये। उसे सदा मौन रहना चाहिये। लेकिन तुम्हारी भाभी इस प्रकार मौन नहीं रह सकती।'

'अच्छा, तो बतलाओ एकाध बात ?' रम्भा-ने पूछा।'

'तुम्हारे स्वरमें इतनी कोमलता और अनु-रोध है रम्भा, कि तुम्हारी बात तुम्हारे साजन फौरन मान जाते होंगे।'

'यह तुमने एक ही कही, भाभी! अरे, इसमें कौन-सी विशेषता है, यही मैं नहीं समझ सकी।' और रम्भा खिलखिला उठी।

'अच्छा, तो यह बतलाओ कि मेरे ननदोई कौशलकिशोरजीने भी तुम्हारी अलकोंमें गुलाबके फूल आंके थे या नहीं ? मैं कह सकती हूं—दावेके साथ कह सकती हूँ कि एकाध बार नहीं, अनेक बार उन्होंने आंके होंगे।'

रम्भाको सचमुच आश्चर्य हुआ, भाभीकी यह बात सुनकर। आखिर भाभीने यह जाना कैसे ? माना कि वह अपने साजनके पास इने-गिने, दस-बारह दिन ही रह सकी थी, लेकिन इस बीच अकसर ऐसा होता था कि जब कभी उनसे एकान्तमें भेंट हो जाती थी, वे चुपके-चुपके अपनी जेबसे गुलाबके दो-चार सुन्दर फूल निकाल कर या तो रम्भाको दे दिया करते, अथवा स्वयं उसकी अलकोंमें आंक दिया करते। ऐसा प्रतीत होता था कि रम्भाके साजन गुलाबके फूलोंके अनन्य प्रेमी हैं—शौकीन हैं। रम्भा यही सब एक क्षणके लिए सोचने लगी और चुपचाप भाभी की आंखोंमें आंखें डाल, जैसे उसके इस अनु-मानकी कायल हो उठी।

तभी भाभीने फिर कहा—'बोलो न रम्भा, अब चुप क्यों हो ?'

'मैं यही सोच रही हूं' रम्भाने सकपकाते हुए कहा—'कि तुम जो कुछ कह रही हो, वह कहां तक सच है।'

'अब तुम उड़नेकी कोशिश मत करो, रम्भा! अचला भाभीने कहा—'भाभी जो भी अनुमान लगायेगी, वह उसके अपने अनुभवोंके आधारपर ही होगा, और इसीलिए उसके झूठ होनेमें शायद ही कभी कोई गुञ्जायस निकल सके।'

रम्भा चुपचाप रही, जैसे उसने यह स्वीकार कर लिया कि भाभी जो कुछ कह रही हैं, वह अक्षरशः सत्य है।

'हां रम्भा!' अचला भाभीने कहा—'जो बात मुझे तुमसे पूछनी थी, वह तो मैंने पूछी ही नहीं। यह तो बतलाओ, कौशलकिशोर-जीको तुम्हें पाकर पूरा-पूरा सन्तोष हुआ या नहीं ?'

'तुम भी अजीबोगरीब बात पूछती हो भाभी!' रम्भाने कहा—'यह सब मैं क्या जानूं ?'

'पगली कहीं की! अरी, तुम न जानोगी यह सब, तो क्या दूसरे लोग जानेंगे ?

'अच्छा, तुम जब पहले-पहल इस घरमें आयी होगी, तब तुम यह जान सकी थी कि भैयाको पूरा-पूरा सन्तोष हुआ था या नहीं—तुम्हें पाकर ?'

'तुम्हारे भैयाकी बात जाने दो रम्भा!' अचलाने कहा—'वे ठहरे डाक्टर! डाक्टरोंकी रुचि और उनके हृदयका पता लगा सकना आसान नहीं होता। फिर भी इतना तो मैं समझ ही गयी थी कि मेरी रूप-राशिपर और मेरे व्यवहार पर उन्हें पूरा-पूरा सन्तोष था।'

'यही कठिनाई मेरे साथ भी है भाभी!' रम्भाने कहा—'जिस तरह डाक्टरके हृदयका पता लगा सकना आसान नहीं, उसी तरह किसी दार्शनिकके हृदयका पता लगा सकना भी उतना आसान नहीं।'

'समझी!' अचलाने कहा—'कौशलकिशोर जी एम० ए० करनेके बाद फिलासफीमें 'रिसर्च' कर रहे हैं न! लेकिन नारीकी तरुणाई बड़े-बड़े दार्शनिकों और मुनियों तकको सरस बना डालती है। महामुनि विश्वामित्र—जैसे कठोर तपस्वी भी मेनकाकी रूप-राशिके दर्शन कर मदन-बाणसे बिंध गये थे। और ईश्वरने तुम्हें जो रूपराशि दी है, वह तो किसी भी दार्शनिक को मोहित कर सकनेके लिए पर्याप्तसे कहीं बहुत अधिक है! फिर भी कौशल किशोरजी तो ऐसे रूक्ष भी नहीं कहे जा सकते।

'यह बात है भाभी!' रम्भाने चुटकी लेनी चाही—'तुम्हें उनकी सरसताका परिचय भी मिल चुका है कभी, यह मुझे आज मालूम हुआ। लेकिन अब कभी भूलकर भी न कहना यह सब, नहीं तो भैय्या यह सब कभी सहन न करेंगे।'

'भैय्या यह सब सहन करें या नहीं, लेकिन तुम्हें तो यह सुनते ही रश्क होने लगा रम्भा!' भाभीने भी चुटकीका उत्तर चुटकीसे ही देना चाहा।

'मुझे कोई रश्क नहीं होगा भाभी!' रम्भा ने कहा—'और किसीसे शायद हो भी सकता है, परन्तु तुमसे नहीं। तुमसे जो स्नेह मैंने बचपनसे पाया है, वह मांके स्नेहसे अधिक ही कहा जा सकता है—कम नहीं। फिर भला, तुमसे मैं क्या रश्क करूंगी भाभी! और तुमने जो कुछ कहा है, वह एकदम सत्य है। मैं तुम्हारा यही आशीर्वाद चाहती हूँ भाभी, कि तुम्हारी रम्भाकी रूप-राशि और उसका व्यवहार सदा ऐसा ही रहे कि 'उन्हें' पूरा-पूरा सन्तोष रहे।' और रम्भा अपने दोनों हाथ फैलाकर भाभीके गलेसे चिपक गयी।

अचलाने रम्भाकी पीठ सहलाते हुए कहा—'यह तुम क्या पागलपन कर रही हो रम्भा! भला, मेरा आशीर्वाद कब तुम्हारे साथ नहीं रहा, जो तुम आज ऐसा कह रही हो ? मैंने तो तुम्हें बचपनसे ही अपनी बेटी माना है रम्भा! लेकिन अब तुम वयस्क हुई, इसीलिए ननदके

रूपमें तुमसे कभी-कभी ठिठोली भी कर बैठती हूँ ।'

इसके बाद क्षणिक निस्तब्धता रही उस कमरेमें कि इसी बीच दीवाल-घड़ीने टन्-टन् कर छः बजनेकी सूचना दी ।

'अच्छा, रम्भा, अब मैं नीचे जाती हूँ। देखूं, महाराजने भोजन तैयार किया है या नहीं। तुम तो तैयार भी हो चुकीं, लेकिन मैं तो अभी तक यों ही फिर रही हूँ ।'

'हां भाभी, तुम भी तैयार हो जाओ जल्दी। और अम्मांसे मैं कहती हूँ तैयार होनेके लिए, नहीं तो प्रदर्शिनीमें चलनेको देर हो जायगी ।'

'अच्छी बात है !' कहकर अचला नीचे चली गयी ।

रम्भाने जाकर अपनी मांसे जल्द तैयार होनेका आग्रह किया और पुनः अपने कमरेमें आकर बैठ गयी ।

(२)

विवाहके बाद प्रथम बार ससुराल जाकर कल ही रम्भा मायके वापस आयी है। अचला भाभीसे आज जो उसकी बातें अभी हुई हैं, उनसे रम्भाको अगाध किन्तु अव्यक्त सुखका ही अनुभव हुआ है। फिर भी उसने भाभीसे अपना यह सुख छिपानेकी पूरी-पूरी कोशिश की है। जिस भाभीने रम्भाको बचपनसे ही माताका लाड़-दुलार दिया, आत्मीयताका स्पर्श कराया और सदा अपनी पुत्री-जैसा रक्खा, उस भाभीके सामने वह कैसे अपनी यह प्रसन्नता व्यक्त करती ? माना कि भाभीने बहुत-सी बातें उससे ठिठोली करके और प्रसङ्गानुसार उसे विवश करके पूछ ही लीं, किन्तु फिर भी मर्यादाकी एक लकीर, जो रम्भाने अपने-आप ही खींच रक्खी है, उसका अतिक्रमण वह करती कैसे ?

भाभीने अभी-अभी कहा है कि 'अब तुम वयस्क हुई', इसीलिए ननदके रूपमें तुमसे कभी-कभी ठिठोली भी कर बैठती हूँ ।' और रम्भा यह जानती है कि अवस्थाके साथ-साथ जहां कुछ नवीन मर्यादाएं अपना वृत्त बना लेती हैं, वहीं कुछ मर्यादाएं मिट भी जाती हैं। फिर भी वह अपनी अचला भाभीको एकाएक अभी वे सब बातें बतलानेमें झिझकती है, जिनकी उन्होंने उससे अपेक्षा कर रक्खी है ।

धीरे-धीरे जब यह झिझक दूर जायगी, तब वह स्वयं भाभीको अपनी सारी बातें बतलाया करेगी—हां, सारी बातें। वह अपने जीवनमें कमसे कम भाभीसे तो किसी तरहका दुराव नहीं रख सकती। अचला भाभीके रूपमें बचपनमें उसने स्नेहमयी माताका प्रतीक देखा, तरुणाईमें वह एक अभिन्न सहेलीका प्रतीक देख रही है और भाभी तो वह हैं ही। कितनी ही ऐसी घटनाएं रम्भाको याद हैं, जब अचला भाभीने उसके लिए न केवल माताकी फटकार सुनी, बल्कि कभी-कभी तो भैय्याकी लाल-लाल आंखोंकी क्रोधाग्निका भी स्पर्श किया है। ऐसी भाभीसे भला, क्या दुराव ?

इन्हीं विचार-धाराओंपर फिर रही थी रम्भा, कि नौकरानी नीलाने आकर खबर दी कि रसोई तैयार हो चुकी है।

रम्भाने जाकर माता और भाभीके साथ भोजन किया। फिर प्रदर्शनीमें जानेकी तैयारी होने लगी—

रम्भा तो बहुत पहलेसे ही—सन्ध्यासे ही प्रदर्शनीमें जानेके लिए तैयार हो चुकी थी। लेकिन अचला भाभीने अभीतक न तो अपनी साड़ी ही बदली थी और न वेणी-बन्धन ही किया था। सो भोजनके बाद वह सीधी अपने कमरेमें चली गयी। जाते समय उसने रम्भासे इतना भर कहा—'मैं भी तैयारी कर लूं, रम्भा बेटी !'

'हां-हां, जरूर तैयारी कर लो भाभी !' रम्भाने कहा—'भला, प्रदर्शिनी देखने चलें और बिना तैयारीके !'

और रम्भाकी इस बातका कोई उत्तर दिये बिना ही अचला चली गयी अपने कमरेमें—सिर्फ एक मन्द मुस्कानके रूपमें रम्भाकी बातका शायद मौन उत्तर देती हुई।

रम्भा चुपचाप सहनमें जाकर नीलाके पास खड़ी हो गयी। वह जान-बूझकर भाभीके कमरेमें नहीं गयी। वह जानती थी कि यदि भाभीके साथ वह भी कमरेमें चली जाती, तो फिर भाभी अपनी तैयारी करनेमें अप्रत्याशित विलम्ब लगा देतीं। तब तो उन्हें ठिठोली ही सूझती! और अभी-अभी भाभीकी ठिठोलीका रम्भा जो अनुभव कर चुकी है, उससे वह इस वक्त बचना ही चाहती है। यह बात नहीं कि भाभीकी ठिठोलीसे वह नफरत करती हो, अथवा किसी सुखका अनुभव न होता हो। नहीं, यह बात बिलकुल नहीं। लेकिन इस वक्त प्रदर्शनी जानेकी जल्दी जो है! इसीलिए उसने भाभीको अपनी तैयारी करनेका निर्विघ्न समय दे देना ही ठीक समझा।

'रूपा अच्छी है नीला ?' रम्भाने अपनी नौकरानीसे प्रश्न किया।

अचलाके बच्चेको नीला, आसमानमें धुंधल चमकता हुआ चांद दिखला रही थी। अचा नक यह प्रश्न सुनकर उसने जाना कि रम्भा बे उससे उसकी पुत्री रूपाका कुशल-मङ्गल पूछ र है। नन्हेंको उसने संभालकर गोदमें लेते हु कहा—'हां बिटिया ! तुम सबके आशीर्वाद रूपा मजेमें है।'

'आज वह आयी नहीं यहां ?'

'उसे अभी यह खबर ही नहीं मिली कि तु वापस आ गयी हो !'

'दोपहरमें तो कुछ खाना खाने गयी होग नीला ! तब तुमने कहा नहीं उससे ?'

'जब मैं खाना खाने गयी थी, तब रूपा घर नहीं थी बेटी !'

'कहां गयी थी ?'

'मिट्टीका तेल लेने ।'

'ओह ! यह बात है।' रम्भाने हंसकर कहा—'तुम ठीक कहती हो नीला ! मैंने सुना है, आजकल मिट्टीका तेल जिन दूकानोंपर मिलता है, वहां बहुत ही अधिक भीड़ एकत्र हो जाती है। घण्टों खड़े रहना पड़ता है वहां, तब कहीं तेल मिलता है।'

'हां, बेटी ! गरीबोंको मुसीबत ही है भला, अनाज महंगा हुआ, सो तो इसलिए कि फौजोंको खिलाया जाता है; लेकिन यह तेल और दूसरी सभी चीजें भी क्या फौजोंको ह पिलायी जाती हैं या दी जाती हैं, जो इनके भाव आसमानमें चढ़ते जाते हैं और फिर भी लोगोंको बराबर मिल नहीं पातीं ?'

'तुम क्या समझो इन बातोंको नीला !' रम्भाने कहा—'इतना भर समझ लो कि जबतक युद्ध चलता है, ये मुसीबतें इसी तरह बढ़ती जायंगी।'

'पता नहीं, यह सत्यानाशी लड़ाई कब खत्म होती है बेटी ? अब तो हम गरीब इससे परेशान हो चुके हैं।'

इसी बीच रम्भाकी माताने आकर इनका यह प्रसङ्ग बदल दिया। उन्होंने आते ही कहा 'नीला, अब तुम खाना खाने चली जाओ। औ हां, आज हम सब प्रदर्शनी देखने जा रहे हैं, स तुम फिरसे आ सको, तो अच्छा हो। तुम्हारे बिना यह नन्हें बहुत तङ्ग करेगा हम लोगोंको फिर तुमने भी तो अभी प्रदर्शनी न देखी होगी आज वहां आतिशबाजी भी होगी नीला !'

'और रूपाको भी ले आना नीला!' यह रम्भाका स्वर था—'वह भी हम सबके साथ प्रदर्शनी देख लेगी।'

'हां, उसे भी लेती आना नीला!' यह रम्भा की माताका स्वर था—'लेकिन जल्दी करना।' और नन्हेंको उठाते हुए वे फिर बोलीं—'अच्छा, जाओ।'

प्रदर्शनी देखनेका अवसर प्राप्त होनेकी खुशीसे भर उठी नीला। एक उल्लासके साथ वह जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाती हुई अपने घरकी तरफ चल पड़ी।

(३)

नन्हेंको लेकर रम्भाकी माता सहनसे जब जाने लगीं, तो रम्भा भी उन्हींके साथ चल पड़ी।

अपने कमरेमें पहुंच कर मांने कहा—'रम्भा, जरा भाभीसे कह आओ कि भैय्याके लिए महराजसे पूड़ियां बनाकर रख देनेकी बात वह कह दें। मैं तो भूल ही गयी।'

'अब तक तो महराज सारा भोजन बना चुका होगा मां!'

'इसीलिए तो अब मैं खुद उससे जाकर पूड़ियां बनानेकी बात नहीं कहना चाहती। वह जरा-जरा-सी बातमें झल्ला उठता है, रम्भा!'

'महराजको आखिर इतना सिर क्यों चढ़ा रक्खा है तुमने, मां?'

'इसीलिए कि उसके हाथका बना भोजन तुम्हारे भैय्याको रुचता है बेटी! और यह बात महराज अच्छी तरह समझने लगा है।'

'तो इसका यह मतलब नहीं कि तुम्हारी किसी बातपर वह झल्लाने लगे। और यदि ऐसी बात है, तो मैं स्वयं भैय्यासे उसकी यह शिकायत करूंगी।'

'भैय्या यदि शिकायत सुनें, तो वह किसीके सिर चढ़नेकी हिमाकत ही कैसे करे? लेकिन वे सुनना ही नहीं चाहते।'

'और भाभीकी बातोंपर नहीं झल्लाता वह?' रम्भाने पूछा।

'क्यों नहीं!' मांने कहा—'मैं या बहू उसकी समझमें जैसे कुछ हैं ही नहीं। जैसी मैं, वैसी बहू!'

'समझी!' रम्भाने कहा—'तो मां, तुम अपनी बला भाभीके सिर टाल रही हो!' और मुस्कराती हुई रम्भा अचला भाभीके कमरेकी तरफ बढ़ गयी।

अचलाके कमरेके दरवाजेपर पहुंचकर रम्भाने देखा कि भाभी अभी साड़ी बदल रही हैं। दबे पैरों अचलाके पास पहुंच, उनके कन्धेपर हौले-से एक धम् जमा दी और कहा—'भाभी!'

अचला एक क्षणके लिए जैसे चौंक पड़ी। घूमकर देखा, तो रम्भाको मुस्कराते पाया। और अचला कुछ कहे, कि इसके पहले ही रम्भा बोल उठी—'डर गयीं भाभी?'

'इस प्रकार डरनेकी अवस्था पार कर चुकी हूं, बिटिया!'

'तभी तो एक क्षणके लिए भयभीता हरिणीकी तरह चौंक पड़ी थीं न!' रम्भाने कहा।

'वह तो सिर्फ इसीलिए कि अभी साड़ी पूरी तरह नहीं पहन सकी थी।' अचलाने कहा—'नहीं तो ऐसे धम अब मुझे चौंका नहीं सकते।'

'अच्छा, एक बात कहने आयी हूं। मांने कहा है कि भैय्याके लिए पूड़ियां बनाकर रखी देनेकी बात महराजसे तुम कह दो भाभी। उन्हें खयाल नहीं रहा। और महराजकी आदत बात-बातमें झुंझला पड़नेकी होती जा रही है, इसीलिए वे उससे कहना नहीं चाहतीं।'

'इसकी तुम चिन्ता न करो। माताजीको भी चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं। मैं पहले ही महराजसे कह चुकी हूँ। पूड़ियां अबतक वह बना भी चुका होगा।'

'लेकिन भाभी, महराजको इस प्रकार झल्ला उठनेकी आदत जो पड़ रही है, यह ठीक बात नहीं। इसकी कोई दवा होनी चाहिए।'

'तुम्हारे भैय्या डाक्टर हैं न, इसलिए तुम समझती हो कि हर मामलेमें दवाकी जरूरत होती है। लेकिन दुनियामें बहुत-सी ऐसी बातें और शिकायतें होती हैं, जिनकी कोई दवा होती ही नहीं। यह उसकी आदत है रम्भा! और आदतका इलाज शायद ही कभी हो सकता हो। वह तो धीरे-धीरे कौशलके साथ ही दुरुस्त किया जायगा।'

'अच्छा, तो मैं जाकर मांसे यह कह दूं कि पूड़ियां बन चुकी हैं?'

'जरूर कह दो, बिटिया।'

रम्भा जब कमरेसे बाहर चली गयी, तो अचलाको लगा कि प्रथम बार ससुरालमें जाकर, दस-बारह दिन रहने पर ही इस रम्भामें कितना परिवर्त्तन हो गया है! जिस क्षणसे वह यहां वापस आयी है, उसका चेहरा एकदम सकपकाया-सा रहता है। जो रम्भा पहले इतनी मुखर थी कि अपने आप ही दुनिया-भरकी बातें किया करती थी, वही अब पूछने-पूछनेपर भी कोई बात नहीं बतलाना चाहती। जो कुछ कहती भी है, वह कितनी अटपटी-सी और अस्पष्ट-सी बात होती है।

अचलाने स्वीकार किया कि यह सङ्कोच शायद इसीलिए है कि उन दोनोंमें—अचला और रम्भामें—भाभी-ननदका रिश्ता उतना नहीं उभर पाया है, जैसा साधारणतः ननद-भाभीके बीच हुआ करता है। इसका एक कारण है, अचला जब पहले-पहल इस घरमें नव-विवाहिता वधूके रूपमें आयी थी, तब यह रम्भा निरी बच्ची ही थी। मुश्किलसे उस वक्त इसकी अवस्था पांच-छः वर्षकी रही होगी।

अचलाको वह दिन याद आया, जब सद्यः-संवारी-सी वह इसी कमरेके एक कोनेमें बैठी हुई अपने-आपमें जैसे सिकुड़ी-सिमटी जा रही थी, कि माताजीके साथ रम्भा एक लकदक साड़ी पहने इस कमरेमें आयी थी और चुपचुप उसकी ओर देख रही थी। तभी जाने क्यों, रम्भाकी उन ललचायी-सी आंखोंमें अचलाको आत्मीयता की एक झलक देख पड़ी थी और अनायास ही अपने दोनों हाथ बढ़ाकर उस रम्भाको अपनी गोदमें बैठा लिया था।

माताजीने यह देखते ही रम्भासे कहा था—'अब पहचाना तुमने अपनी भाभीको?'

रम्भाने जैसे आंखों ही आंखोंमें उत्तर दे दिया था और अपना सिर हिलाकर कह दिया था कि हां, पहचान लिया।

और इसके बाद तो रम्भा फिर भाभीके पीछे-पीछे ही दिन-रात फिरा करती। कब उसे खाना खानेकी जरूरत है, कब कपड़े पहननेकी चिन्ता करनी है, कब बाल संवारने हैं, कब स्नान करना है—आदि बातोंका भार अचलाने इस सावधानीसे अपने ऊपर ले रखा कि माता जी को भी कभी-कभी आश्चर्य करना पड़ता-'बहू, तुम्हें मैंने अपना लड़का सौंपा है। लेकिन तुम तो मेरी बच्चीको भी मुझसे छीन लेना चाहती हो।'

'तो आप मुझे कोई गैर समझ रही हैं, माता जी!' अचलाने एक बार कहा था—'मैं भी तो आपकी ही पुत्र-वधू हूं न!'

'दूधों-पूतों फलो मेरी रानी!' माताजीने अचलाके सिरपर हाथ फेरते हुए आशीर्वाद दिया था—'यह सब तो कहनेकी बातें हैं—मन बहलानेकी बातें हैं। रम्भा जो तुमसे इतना घुल-मिल गयीहै, यह मेरे लिए बहुत बड़े सन्तोषकी

बात है बहू ! मैं भला कब तक तुम सबका साथ दूंगी। ईश्वरको, तुम दोनोंका स्नेह आजीवन अक्षुण्ण रहे।'

भाभीका स्नेह और आत्मीयता पाकर रम्भा भी तो जैसे अपने-आपको परम सुखी और सन्तुष्ट अनुभव करने लगी थी। माताजी तो कभी-कभी उसे डाट-फटकार भी सुननी पड़ती; भैय्याका क्रोध भी कभी-कभी उसपर बरस पड़ता; लेकिन अचला भाभीसे तो उसने सदा स्नेह-ही-स्नेह पाया है। डाट-फटकारका तो वहां कभी नाम भी नहीं रहा और इस स्नेहका ही शायद यह परिणाम था कि जब तक रम्भा अनजान रही, तब तक कितने ही ऐसे अवसर आये, जब उसने न तो माताजीकी फटकारपर कोई काम किया, न भैय्याके क्रोधसे डर कर ही कभी अपना हठ त्यागा, परन्तु भाभीके स्नेह-सिक्त शब्दोंने उसपर जादू-सा असर किया।

यही सब देख-सुनकर माताजी निश्चिन्त थीं कि बहूके पास रात-दिन रहनेसे रम्भाका भविष्य उज्ज्वल रहेगा। और भैय्याको तो अपनी पत्नीके शील-संकोच और उसके सद्व्यवहारों पर पूरा-पूरा भरोसा था ही, अतः वे भी अपनी बहनकी ओरसे निश्चिन्त रहे।

और दुनियाने देखा कि सचमुच अचलाने अपनी छत्रछायामें रम्भाको जैसा सजाया-संवारा और जिस प्रकार एक आदर्श भारतीय कन्या के गुण उसमें कूट-कूटकर भरे, उस प्रकारकी झलक अन्य किसीके संसर्गसे शायद स्वप्नमें भी सम्भव न होती।

किशोरावस्थाको पार करते-करते हाई स्कूल में भी रम्भाने शिक्षा पायी, और मैट्रिक पास हो जानेपर भी किसीने आज तक यह नहीं जाना कि उसके परिचितोंकी परिधिमें कहीं कोई तरुण भूले-भटके भी प्रवेश पा सका हो।

बात असल यह थी कि स्कूलके बाद उसे अपना मन बहलानेके लिए जिस मनोरंजनकी जरूरत पड़ा करती, उसकी पूर्ति सहज ही अचला भाभी कर दिया करतीं। फिर अचलाकी सदाशयतासे प्रभावित होकर, रम्भाकी ऐसी कोई सहेली नहीं थीं, जो एक बार इस घरमें आकर बरबस अनेक बार न आने जाने लगी हो। इस प्रकार अपनी सहेलियों और भाभीके संसर्गमें रहकर रम्भामें जिस आदर्श भारतीय कन्याका स्वरूप दर्शनीय था, वह डाक्टर कृपाशङ्करके परिवारके लिए यथेष्ट गौरवकी बात थी।

इतनी सारी बातें थीं, इसीलिए रम्भा ससुरालसे लौट कर अपनी भाभीसे इतना संकोच कर रही थी कि खुलकर कोई बात ही नहीं कर पाती थी। लेकिन अचला थी कि उसने पहले ही दिन अपनी ननदका बहुत कुछ सङ्कोच दूर कर दिया था।

अचला जानती है कि भाभी और ननदका रिश्ता जिस संजीदगी और चुहलबाजीसे भरा हुआ रहना चाहिये, उसे भी तो आखिर इस रम्भाको समझाना होगा न ! अब तक उसने उस कर्त्तव्यका पालन किया है, जो एक माताको अपनी पुत्रीके साथ करना पड़ता है; लेकिन जिन्दगी भर यही सब कैसे चलाती रहे वह ?

अचला अब तक पूरी तैयारी कर चुकी थी, और इन्हीं विचारोंमें उलझी हुई एक पलङ्गपर बैठी थी कि रम्भाने आकर पूछा—'तैयार हो गयी भाभी ?'

'मैं तो कभीकी तैयार हो चुकी। लेकिन नीला जब आये तब न ?'

'आती ही होगी !' रम्भाने कहा—'चलो, बरामदेमें माताजीके ही पास बैठें हम।'

और बरामदेमें जाकर अचला अपनी ननद-रम्भा और माताजीके पास बैठकर नीलाकी राह देखने लगी। लेकिन यह हमें स्वयं ज्ञात नहीं कि नीला उस दिन कब लौटी, अथवा लौटी ही नहीं; और यह परिवार प्रदर्शनी देखने जा भी सका या नहीं।

———

हिन्दी-काव्यकी भावधारा

लेo—श्री लक्ष्मीनारायण डागा

आजका हिन्दी साहित्य वाह्यतः समष्टि मूलक जान पड़ता है, क्योंकि जहांपर वादोंकी चर्चा और आस्था प्रधान हो जाती है, वहांपर व्यक्ति और उसका निजी भावोच्छ्वास अपना स्वभाविक और स्वतन्त्र मार्ग छोड़ कर दूसरों द्वारा निर्धारित मार्गका अनुसरण करने लगता है। लोग कहते हैं कि आज हिन्दी साहित्यका इतिहास वादोंका इतिहास है-उन भावना धाराओंका एक सम्मिलित प्रवाह है-जो समूहों की विचार शृङ्खलाके कगारोंसे बहता है। किन्तु जैसा कि ऊपर कहा गया है, साहित्यका यह स्वरूप सम्भवतः वाह्य ही है। यदि उसके आन्तरिक रूपका निदर्शन किया जाय और आज के युगकी आत्माको पहचाना जाय, तो सम्भवतः वस्तुस्थिति बिलकुल इसके विपरीत ही मिलेगी। हम वादोंके विरोधी नहीं हैं। वाद साहित्यके प्रमुख चिन्तन धाराओंको जनता और साधारण साहित्य प्रेमियोंके समझनेके लिए एक आधार और मान-दण्ड (Standard) प्रस्तुत करते हैं और नये साहित्य-सेवियोंके लिए भी प्रयाण-पथी की पहिली मंजिलका काम देते हैं। किन्तु उच्च साहित्यकार, जिसमें प्रतिभाकी चिनगारी होती है और जिसकी कल्पना और चिन्तनाके पक्ष सबल होते हैं, वे युगकी पिटी हुई लकीरके घेरेमें अपनेको बांध नहीं पाते। आजका हिन्दी साहित्य, यदि हम उसे 'वादों' की भाषामें ही बांधना चाहें तो इतना कहा जा सकता है कि वह लोक-वादी है और लोकवादीकी प्रधान विशेषता यह होती है कि वह व्यक्तिवादी भी होता है।

गत पच्चीस वर्षोंका हिन्दी साहित्य सभी के देखनेमें केवल दो या तीन प्रमुख वादोंमें बंटा हुआ है ऐसी दशामें यह कहना कि यह व्यक्तिवादी है, अधिक लोगोंको युक्तिसंगत सम्भवतः न ऊंचे। किन्तु ऐसे लोगोंको प्रायः सभी स्वीकृत मूल्यों और मान्यताओंको यों ही माननेसे अच्छा होगा, वे स्वयं अपनी तर्क शक्तिसे विचार और छानबीन करें। हिन्दीने जबसे द्विवेदी—युगके डांड़ोंको पार किया, उसमें जो सबसे प्रमुख बलवती धारा आयी उसका नाम पड़ा 'छायावाद।' यहां छायावादके अङ्ग और उपाङ्गोंके विश्लेषण करनेका समय नहीं है, किन्तु इतना कहा जा सकता है कि यह धारा समष्टि-मूलक नहीं अर्थात् इसने प्रचलित या अप्रचलित किसी मान्यताको इस रूप रूपमें नहीं अपनाया, जिस रूपमें हम किसी 'वाद' की परिभाषा करते हैं, वरन् जैसा कि महादेवी वर्माने कहा है, कविकी आत्मा जब स्वयंकी अभिव्यक्तिके लिए व्याकुल हो उठी और उसने अपने वस्तु-परक (Objective) दृष्टिकोणको छोड़कर आत्म-परक(Subjective) दृष्टिकोणको अपनाया, तो उसका नाम छायावाद हुआ। यदि महत्तम विविधता और अनेक-रूपताको एक सूत्रमें बांधकर उसे किसी 'वाद' के नामसे पुकार

ा सकता है,तो यह व्यक्तिवादकी धारा छाया-ादके नामसे प्रख्यात हुई ।

प्रत्येक मनुष्यका हृदय अपनेमें एक संसार है । समें निरन्तर ही आशा, आकांक्षाके उत्थान-तन हुआ करते हैं । हृदयके जितने व्यापार होते , वे वाह्य जगतसे प्रभावित होते हैं और उनसे भावित होनेपर ही उनमें गतिशीलता आती । जब कवि न केवल अपने वाह्य जगतकी ही रणासे अपने काव्यका प्रणयन करता है, वरन् सके हृदयके कोनेमें दबी हुई तड़पन और भूख वेग को संभाल न सकनेके कारण उसकी वाणी वह उठती है, वहां उसका काव्य आत्मगत जाता है और जब कविका यह आत्मगत ाव्य उसके व्यक्तित्वकी चेतनासे अभिभूत रहता , तब वह व्यक्तिवादी काव्य कहा जाता है ।

हां हमारे सामने यह प्रश्न है कि छायावादके ामसे कहे जानेवाला काव्य कैसे व्यक्तिवादी । हम व्यक्तिवादीका इसी अर्थमें प्रयोग कर हैं कि जिसमें कविका व्यक्तित्व चेतन-शील । इस वर्गके कुछ प्रमुख कवियोंकी रचनाओं ौर कृतियोंपर यदि हम अलग-अलग विचार रें और उनकी मनोवृत्तियों और अन्तर्धाराओं ा सूक्ष्म विवेचन करें, तो हमें यह तथ्य स्पष्ट ो जायगा । यदि हम इस वर्गके चार प्रमुख वि प्रसाद, पन्त, महादेवी और निरालाको लें ौर उनके व्यक्तित्व और काव्य दोनोंके मूल त्वोंकी छान-बीन करें, तो हमें पहली पीढ़ीके ायावादी कवियोंके सम्बन्धमें एक निष्कर्षपर हुंचनेमें आसानी होगी । प्रसादको लीजिये ! सादके व्यक्तित्वकी सबसे प्रधान और सर्वोपरि ेशेषता है उनका सौन्दर्य-प्रेम । मैं उनको ौन्दर्यका कवि मानता हूँ और वे सौन्दर्यको सके विविध आकर्षणके चित्राङ्कनमें अपनी ष्टिको लौकिक परिधिमें ही नहीं बांध रखते, रन् रहस्यके उस सूचीभेद्य अन्धकारको पार र वहां जाना चाहते हैं, जहांकी राह मनुष्यने हीं देखी है :—

"इस पथका उद्देश्य नहीं है,
श्रान्त भवनमें टिक रहना ।
किन्तु पहुंचना उस सीमा तक
जिसके आगे राह नहीं ।"

× × ×

"ऐ लाज भरे सौन्दर्य बता दो
मौन बने रहते हो क्यों ?"

प्रसादके जीवनका दर्शन (Philosophy) सौन्दर्य और उससे उद्भूत आनन्द है, यही उनके काव्यका भी दर्शन है और उनके चिन्तनका मेरु दण्ड है । उनके लिए सारा संसार सौन्दर्यकी तूलिकासे संवारा गया है, जहां कहीं असुन्दरता है—वह जीवनका स्थायी अङ्ग नहीं, वरन् सौन्दर्यको और अधिक चमकानेके लिए एक चातुर्यपूर्ण विधान है । उनकी मनुहार 'जीवनकी छवराई'से हो रही है :—

तू हंस जीवनकी छवराई ।
हंस झिलमिल हो ले तारागन,
हंस खिलें कंजमें सकल सुमन,
हंस बिखरें, मधु-मकरन्दके कन,
सब कह दें वह राका आई !

प्रसादके व्यक्तित्वमें इसी प्रकार अतीतके प्रति गाढ़ा प्रेम जैसे उनकी सारी अनुभूतियोंको सींच गया है । अतीतका मोह उनके काव्य जीवन का एक संबल है । व्यक्तिगत जीवनमें भी और राष्ट्र-जीवनमें भी अतीतके मोहमें वे इस प्रकार डूबे हैं कि जहां भी दो पग चले,पीछे घूमकर अवश्य देख लेते हैं । वह उनकी प्रायः सभी रचनाओंमें अतीत कविके मनोभावोंके लिए एक आनन्द प्रद नीड़का काम करता है, वहीं वह विश्राम करते हुए इस आधुनिक युग और संसारपर दृष्टिपात करता है :—

जगतीकी मङ्गलमयी उषा बन
करुणा उस दिन आयी थी ।
जिसके नव गैरिक अञ्चलकी
प्राचीमें भरी ललाई थी ।

+ + +

युग युगकी नव मानवताको,
विस्तृत वसुधाकी विभुताको
कल्याण सङ्घकी जन्म-भूमि
आमंत्रित करती आई थी ।
स्मृति चिन्होंकी जर्जरतामें
निष्ठुर करकी बर्बरतामें,
भूलें हम वह सन्देश न जिसने
फेरी धर्म दुहाई थी ।

इसी प्रकार अपने व्यक्तिगत जीवनमें अतीतका अनुराग उनका साथ नहीं छोड़ता :—

आह रे, वह अधीर यौवन ।

इसी प्रसङ्गमें यदि प्रसादकी आशावादिताकी चर्चा कर दी जाय, तो अनुपयुक्त नहीं हो सकता । जिसके जीवनमें 'आनन्द' ही प्रधान लक्ष्य है, आशावादिता वहांपर स्वभावतः ही आ जाती है । कठिन और अन्धकारमय परिस्थितियोंमें भी कवि आशासे विमुख नहीं होता :—

उस दिन जब जीवनके पथमें,
फूलोंने पंखुरियां खोलीं,
आंखें करने लगीं ठिठोली
हृदयोंने न संभाली झोली
लुटने लगे विकल पागल मन ।
उस दिन जब जीवनके पथमें,
छिन्न पात्रमें था भर आता—
वह रस बरबस था न समाता,
स्वयं चकित-सा समझ न पाता,
कहां छिपा था ऐसा मधुबन ।

प्रसादजीके व्यक्तित्वकी ये विशेषताएं उनके काव्य एवं अन्य रचनाओंमें ऐसी उभड़ आयी हैं, वे कविके ही शब्दोंमें 'थी एक लकीर हृदयमें जो अलग रही लाखों में' के समान स्पष्ट हो जाती हैं कि ये प्रसादकी पंक्तियां हैं ।

पन्तजी आधुनिक युगके कवियोंमें और खास कर छायावादियोंमें एक विशिष्ट कवि हैं । यौवनके अल्हड़ दिनोंमें,जब हृदयमें वसन्तागमके अवसर पर नवकिंशुक धीरे-धीरे अपने विस्तृत संसारपर कभी कुछ तन्द्रिल और कभी कुछ उत्सुक नयनों से देखा करते हैं—उसी समयके कविने अपनी सुकुमार भावनाओंकी लड़ी पिरोकर भावुक काव्य-प्रेमी संसारको दिया । कहनेकी आवश्यकता नहीं, इस किशोर कविने नव-प्रस्फुटित फूलोंका जो अर्घ्यदान भारतीकी अर्चनामें रखा, उससे सारा मन्दिर एक मादक और उल्लास-पूर्ण सुगन्धसे पूर्ण हो गया । हिन्दी जगतके लिए यह एक प्रकारसे बिलकुल नयी-नयी भावानुभूति थी । किसी परम्परा भक्त काव्य-प्रेमीने नाक-भौं भी सिकोड़ी, यौवनकी स्वाभाविक अल्हड़पनमें उच्छृङ्खलताकी गन्ध भी पायी, किन्तु रसिक काव्य-प्रेमी अधिक दिनों तक उदासीन नहीं रहे । सभी एक साथ इस नवयुवक कविकी प्रशंसा और अभ्यर्थनाके लिए झुक पड़े ।

छायावादी पन्तके व्यक्तित्वमें प्रधान विशेषता है कोमलता, भाव-संकुलता, कल्पना-प्रियता और एक तन्द्रिल भावुकता । ये गुण उनकी रचनाओंमें भावना और शैली दोनों ही पक्षोंमें फूट पड़े हैं । खड़ी बोलीकी रचनाओंमें सबसे प्रथम कोमल कान्त पदावलीके उपयोगका श्रेय पन्तजीको ही दिया जायगा । उनके व्यक्तित्वकी ये विशेषतायें कविताके प्रयोग क्षेत्रमें इतनी सफल उतरीं—उनकी भाषामें उनकी भावनाएं और कल्पनाएं निखर कर इतनी

स्पष्ट और मोहक हो गयीं कि एक बहुत बड़ा नवोदित कवि समाज इनका अनुयायी हो चला और छायावाद, जो हिन्दी साहित्यमें इतनी लोकप्रिय धारा हो गयी, उसके लिए भी पन्त-जी ही हमारे धन्यवादके पात्र हैं। भावनाओं और कल्पनाओंका जिस प्रकार पन्तने स्वाभाविकताका निर्वाह करते हुए, मूर्त उपमानोंके साथ उपयोग किया है, वह भी हिन्दीके लिए एक नयी चीज है। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि पन्तजीने हिन्दीमें काव्यको अपने व्यक्तित्व के प्रयोगका साधन बनाया है। उसके द्वारा उन्होंने कविताका अपमान नहीं किया है, वरन् उसको और भी अधिक सुरुचिपूर्ण बनाया है। निम्नलिखित उदाहरणमें उनकी कविताकी प्रायः सभी विशेषताएं प्रचुरतासे मिल सकती हैं जो उन्होंने भावी पत्नीके सम्बन्धमें कहा है :—

प्रिये प्राणोंकी प्राण !
अरुण-अधरोंकी पल्लव प्रात,
मोतियों-सा हिलता हिम-हास,
इन्द्र धनुषी पटसे ढंक गात,
बाल-विद्युतका पावस मास।
हृदयमें खिल उठता तत्काल,
अधखिला अङ्गोंका मधुमास।
तुम्हारी छबिका कर अनुमान,
प्रिये प्राणों—की—प्राण।
खेल सस्मित-सखियोंके साथ,
सरल शैशव-सी तुम साकार।
लोल कोमल-लहरोंमें लीन,
लहर ही-सी लघु भार।
सहज करती होगी सुकुमारि !
मनो लहरोंसे बाल विहार;
सरितमें हंसिनी-सी कल तान,
प्रिये प्राणोंकी प्राण !
अरे वह प्रथम मिलन अज्ञात,
विकम्पित मृदु उर पुलकित गात,
सशंकित, ज्योत्स्ना सी चुपचाप,
जड़ित पद; नमित-पलक दृग-पात;
पास जब आन सकोगी प्राण !
मधुरतामें सी भरी अजान;
लाजकी छुई मुई-सी म्लान;
प्रिये प्राणोंकी प्राण !

निरालाके व्यक्तित्वमें जो एक अक्खड़पन, ऊर्जस्विता और एकान्त दृढ़ता है, वह उनके प्रत्येक शब्द-शब्दसे टपकती है। उन्होंने अपने इसी व्यक्तित्वके तीखेपनके ही कारण हिन्दीको अतुकान्त और छन्दहीन कविताकी देन दी। इतने व्यापक विरोधके सामने कोई दूसरा व्यक्ति निश्चय ही झुक गया होता, किन्तु इस कविने तो जैसे झुकना सीखा ही नहीं और आज एक ऐसा समय आ गया है, जब निरालाकी देन हिन्दी समाज आभारके साथ स्वीकार कर रहा है। व्यक्तित्वके इसी 'पुरुषत्व' के कारण हम निरालाकी प्रणय सम्बन्धी रचनाओंमें भी पन्तकी रचनाओंके विपरीत एक दूसरा स्वाद पाते हैं, जिसमें पुरुष अपने पुरुषत्वके धरातलसे और नारी अपने नारीत्वके धरातलसे प्रणयका आदान-प्रदान करती हैं। उसमें कोमलताके स्थानपर गुरुता, आत्म-समर्पणके स्थानपर अहंभाव, भावनाके स्थानपर विचार प्रधान है।

पाया आधार
भार गुरुता मिटानेको,
था जो तरङ्गोंमें बहता हुआ,
कल्पना में निरवलंब,
पर्यटक एक अटवीका अज्ञात,
पाया किरण प्रभात—
पथ उज्ज्वल सहर्ष गति।
केन्द्र दो आ मिले,
एक ही तत्त्व के।
सृष्टि के कारण वे,
कविता के काम—बीज।

उपर्युक्त उद्धरणसे हमें निरालाके जीवनके आदर्श और उनकी कविताको प्रेरणा देनेवाले विचारोंका पता लग सकता है। यदि निराला-में कुछ और अधिक व्यवस्था, सुरुचि और प्रखर कल्पना हुई होती, तो नये युगमें इनका स्थान बहुत ही ऊंचा होता, क्योंकि इनकी विचार-भूमि काफी उर्वरा है।

लोकवादके इस युगमें व्यक्तिवादके प्रस्फुरण-का सबको समान अवसर है। कवियोंमें ही नहीं, वरन् कवयित्रियोंको भी यह अवसर बिना भेद-भावके मिला है। मध्यकालीन युगकी मीराको उसके 'गिरिधर गोपाल' की पूजा करनेके मार्गमें कितनी बाधायें उपस्थित की गयी थीं, उसको प्रायः सभी साहित्य-प्रेमी जानते हैं। किन्तु हमारे साहित्यकी आधुनिक 'मीरा' को अपने 'अलबेले' प्रियके प्यार करनेमें उनके साथ साहित्य जगतकी सहानुभूति ही रही है। श्रीमती महादेवी वर्मा हिन्दीकी रहस्यवादी कवयित्रियों-में से हैं, जो अपनी भावना और भक्तिकी अञ्जलि अपने प्रियको चढ़ाया करती हैं। महादेवीजीकी रचनाओंमें भक्ति-भावना और कोमलता सम्मिलित उद्वेग होनेके कारण उनके गीत ने गिक कलापूर्ण हो गये हैं। उनकी कल्पना चूंकि इस जगतको पार कर सुदूर अनन्तके छूती हैं, अतएव उनमें एक विशेष सूक्ष्मता गयी है। साथ ही साथ इनकी कविता भावनाओंमें सर्वत्र ही पीड़ा और करुणा आभास है। पता नहीं, महादेवीजीके जी इतनी करुण अनुभूतियोंका भण्डार कहांसे कैसे सञ्चित हो गया। सम्भवतः उनके व्यक्ति पर सबसे अधिक प्रकाश पड़ता है उनके संस्म ग्रन्थ 'अतीतके चलचित्र' से। इसमें कवयि अपने जीवनके पृष्ठोंको खोलकर साहित्य जग समक्ष रखा है और उनसे ज्ञात होता है कितना संवेदनशील हृदय है उनका। महादे जीकी रचनाएं हिन्दीमें अकेली हैं और वह इ लिए कि उनका अनुकरण करना सहज नहीं उन अनुभूतियोंके लिए साधना और चिन्तना आवश्यकता है और वह बहुत कममें पायी जा हैं। उनकी रचनाएं निरी भावना-प्रधान कल्पना-प्रधान नहीं, वरन् एक विशेष अनुभू प्रधान हैं और सम्भवतः इसीलिए प्रायः स आधुनिक कवियोंमें सबसे अधिक आत्म (Subjective) और व्यक्तिवादी हैं। क यित्रीका परिचय उसके ही शब्दोंमें है।

"मैं नीर भरी दुखकी बदली।"
मैं क्षितिज भृकुटिपर घिर धूमिल,
चिन्ताका भार बनी अविरल।
विस्तृत नभका कोना-कोना,
मेरा न कभी अपना होना।
उमड़ी कल थी मिट आज चली,
इतना परिचय इतिहास यही।

इस प्रकारसे एक प्रमुख वाद या धारा कुछ प्रमुख कवियोंपर संक्षेपमें विचार करके देखा गया है कि उनमें 'वाद' प्रधान नहीं वरन् उनका व्यक्तित्व प्रधान है। आजके युग कवि किसी वादके पीछे अपने व्यक्तित्वका बलि दान नहीं कर सकता। ऐसा करके न तो अपनी साधनाके प्रति सच्चा हो सकता है न अपने प्रति। साहित्यकी श्री-वृद्धि तो इसी कि प्रत्येक साहित्यकार अपने व्यक्तित्वके ईमानदार और सच्चा हो। प्रसन्नता है कि ह आधुनिक साहित्यकार इस आधुनिक युगके और प्रचारोंके बीच भी अडिग रह कर सा और समाजको अपना सर्वश्रेष्ठ योग दे रहे हैं।

एशियायी राष्ट्रोंकी स्वाधीनताका प्रश्न

मि० हेनरी वालेस अमेरिकाके उपराष्ट्रपति हैं और इस समय वह चीनकी स्थितिका निरीक्षण करके स्वदेश वापस गये हैं। उन्होंने हाल हीमें 'प्रशान्तमें हमारा कर्त्तव्य' शीर्षक अङ्ग्रेजीमें एक पुस्तक लिखी है, जिसमें अमेरिकासे यह आग्रह किया गया है कि वह युद्धके बाद एशियाके राष्ट्रोंकी स्वाधीनताके लिए प्रयत्न करनेमें अग्रसर हो। इस लेखमें उनकी उपर्युक्त पुस्तकके आधारपर उनके विचार प्रस्तुत किये गये हैं। —सं० विश्वमित्र

अमेरिकाके उपराष्ट्रपति हेनरी वालेस

संयुक्त राज्य अमेरिकाके उपराष्ट्रपति हेनरी ० वालेसने हालमें ही "प्रशान्तमें हमारा त्त'व्य" (Our gole in the Pacific) नामक क पुस्तक लिखी है, जो गत १४ जूनको इन्स्टीयट आफ पैसीफिक रिलेशन्सकी अमेरिकन ौंसिल द्वारा प्रकाशित की गयी। इस पुस्तक- वालेस महोदयने एशिया और एशियायी राष्ट्रों ी स्वाधीनताके विषयमें अपने व्यक्तिगत विचार कट किये हैं। इन्हें हम अमेरिका अथवा अमेकन सरकारके विचार नहीं मान सकते। यह न्स्टीट्यूट एक अन्तर्राष्ट्रीय प्राइवेट संस्था है, जो न्तर्राष्ट्रीय मामलोंके अध्ययन और विश्लेषण ारा जनतामें ज्ञानका प्रसार करती है।

वालेसका यह विचार है कि प्रशान्तकी मूची जटिल स्थितिका नये तथ्योंके आलोकमें ध्ययन करनेकी आवश्यकता है, जैसे चीनका भ्युदय, रूस और अमेरिकाका नवीन सम्बन्ध, र्वमें साम्राज्यकी क्षीण आभा, और प्रशान्तके ामलोंमें आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्डका स्थान ादि। उन्होंने दो बड़े आर्थिक परिवर्तनोंकी ोर सङ्केत किया है—पूरबमें उद्योगवाद और ार्थिक विकासके लिए नया आन्दोलन, पश्चिममें शियासे मंगाये जानेवाले कृषिजन्य कच्चे मालकी ूर्तिके लिए चेष्टा।

इस पुस्तकमें हेनरी वालेसने स्पष्ट शब्दोंमें ह लिखा है कि—

"प्रशान्तके राष्ट्रोंपर इस युद्धका एक खतरनाक असर यह पड़ा है कि वे, इस बातको सोचे बिना कि उत्तम ढङ्गसे औद्योगीकरण कृषिआधारपर ही अवलम्बित है, औद्योगीकरणके बारेमें सोचने लग गये हैं।

यह खास तौरसे महत्वपूर्ण है कि औद्योगीकरण उत्पादनमें अधिक वृद्धिपर निर्भर है—केवल कृषकोंकी योग्यतामें ही वृद्धि अपेक्षित नहीं है, प्रत्युत भूमिकी उर्वरतामें भी वृद्धिकी जरुरत है। एशियामें कृषि उत्पादनमें वृद्धिके लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि कृषिभूमिपर जहां अधिक भार है, अथवा जिसका दुरुपयोग किया जा रहा है, या जिसका उपयोग उचित रूपमें नहीं हो रहा है, उसकी ठीक-ठीक व्यवस्थापर ध्यान दिया जाय।

"एशियायी देशोंको केवल राजनीतिक अथवा आर्थिक समानतापर ही ध्यान नहीं देना चाहिये, उन्हें कृषि-सम्बन्धी कार्य-कुशलतामें भी समान स्टैण्डर्डकी प्रतिष्ठा करनेका यत्न करना चाहिये। एशियाके अधिकांश देशोंमें रोग और पौष्टिक खाद्यकी कमीके कारण मनुष्य दुर्बलताके शिकार हैं। इनमेंसे अधिकांश देशोंमें कम-से-कम ८० प्रतिशत मनुष्य ऐसे मिलेंगे, जो लिख-पढ़ नहीं सकते। यदि उन्हें उचित मात्रामें भोजन और शिक्षा मिले, वे आधुनिक साधनोंके द्वारा बड़े फार्मोंमें सुचारु रूपसे कार्य कर सकेंगे, अथवा अधिक उत्पादन-सम्बन्धी व्यवसायोंमें खप सकेंगे। इस प्रकार उनके जीवन-मानमें आश्चर्यजनक परिवर्तन हो जायगा।

आज पूरबकी जातियां प्रगतिकी ओर अग्रसर हैं। हम इस प्रगतिका श्रीगणेश सन् १९११ से मान सकते हैं। जब चीनमें, सनयात सेनके आदर्शोंसे प्रेरित होकर क्रान्तिकारी आन्दोलन ने मञ्चू राजवंशका खात्मा करके लोकतन्त्र (Republic) की नींव डाली। यह एक एशियायी राष्ट्रके जीवन-इतिहासमें पहला ही अवसर था कि वह जनतन्त्रकी प्रतिष्ठाके लिए अग्रसर हुआ, जनतन्त्र प्रजा द्वारा, प्रजाके लिए प्रजाकी शासन।

इस युद्धके विनाश और अव्यवस्थाके ताण्डव के बीच यह प्रगति जारी है। भले और बुरेका ज्ञान सभी लोगोंको हो गया है। अब उन्हें श्रेष्ठ वस्तुओंसे वञ्चित नहीं रखा जा सकेगा। अब तो महान सङ्कटकी जोखिम उठाकर ही पीछे हटना सम्भव है और कुशलता तो इसीमें है कि कृषिकी सुदृढ़ नींवपर स्थिर आधुनिक औद्योगीकरणका विस्तार किया जाय।

अमेरिका अपनी प्राकृतिक शक्ति और भौगोलिक स्थितिके कारण, मनुष्योंके जीवन-मानको ऊंचा उठानेके अर्थमें शान्तिकी सुरक्षाके लिए बहुत कुछ कर सकता है। अमेरिकाकी लोकतन्त्र प्रणालीकी यह एक विशेषता है कि वह अपने प्रतिनिधियों द्वारा समूचे राष्ट्रकी जनताको नीति-निर्माणमें भाग लेनेकी सुविधा प्रदान करती है। इस प्रकार वह जनताके आदेशानुसार अपने नये दायित्वोंका पालन करनेमें समर्थ है। संसारका नेतृत्व ग्रहण करनेमें अमेरिकाको जो नैतिक लाभ होगा, वह इससे कम नहीं हो जायगा। दूसरोंको सुखी और सम्पन्न बनाकर ही हम सुखी और सम्पन्न हो सकते हैं।

उपनिवेशोंकी आजादीका सवाल केवल राजनीतिक स्वाधीनताका ही प्रश्न नहीं है, प्रत्युत आर्थिक सामञ्जस्यका भी प्रश्न है। क्योंकि स्थापित स्वार्थों (Vested interests) और आर्थिक लाभोंका उपनिवेशोंसे बहुत कुछ सम्बन्ध है, भविष्यमें हमारी विजय हमें इस तरहकी समस्या को हल करनेके लिए अच्छा सुयोग प्रदान करेगी। लेकिन ऐसा तभी सम्भव है, जब कि हम इसे अपना एक मार्ग-प्रदर्शक सिद्धान्त बना लें कि उपनिवेशों (Colonies) के पुनरुत्थानमें ऐसे आर्थिक उपायोंका आश्रय नहीं लिया जायगा, जिनका मुख्यतः उद्देश्य पुराने स्थापित स्वार्थोंकी पुनर्प्रतिष्ठा नहीं, प्रत्युत इन प्रदेशोंकी जनताके लिए उपयोगी सुदृढ़ आर्थिक व्यवस्थाका निर्माण होगा।

जापानके भविष्यके सम्बन्धमें वालेसने लिखा है—जापानकी स्थिति यूरोपके उन देशोंकी तरह है, जिनमें कच्चे मालकी कमी है। सैनिक दृष्टिसे शक्तिशाली बननेकी अपेक्षा उसे स्वाश्रयी खाद्य उत्पादन और उच्च कोटिकी जनोपयोगी वस्तुओंके निर्माणकी ओर, सस्तेपनकी ओर नहीं, ध्यान देना चाहिए। जापानको निशस्त्र रखा जायगा। लेकिन अमेरिकाको इस नीतिका पालन करना चाहिये कि जापानमें जो 'उदार' विचारके लोग राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक सुधार करना चाहें, उन्हें प्रोत्साहन दिया जाय।

वालेसका यह विश्वास है कि प्रशान्तमें शान्तिका यह तकाजा है कि अन्तर्राष्ट्रीय सहकारिताकी स्थापना की जाय। एक अन्तर्राष्ट्रीय सङ्गठन कायम किया जाय, जिसमें सभी महाद्वीपोंकी ओरसे प्रतिनिधित्व हो। इस अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाको निम्नलिखित समस्याओंको हल करना होगा :—

(१) एशियामें स्वतन्त्र राष्ट्रोंका सङ्गठन होना चाहिये और ऐसी प्रवृत्ति उत्पन्न की जाय कि जिसमें उनकी राष्ट्रीय स्वाधीनताके साथ राजनीतिक लोकतन्त्रकी प्रणालीका भी विकास किया जा सके।

(२) राजनीतिक आज़ादीका यह तात्पर्य कदापि नहीं होगा कि दूसरे नये राष्ट्रोंके लिए व्यवहारमें पूर्ण और तत्काल ही राजस्व एवं आर्थिक आजादी मिल जाये।

(३) इस प्रकार एशियामें ये नये स्वाधीन बड़े राष्ट्र भौगोलिक दृष्टिसे विशाल होंगे और वे काफी अर्सेतक सैनिक, नौ-सेना और हवाई शक्तिकी दृष्टिसे उन तीनों राष्ट्रोंकी अपेक्षा कमजोर रहेंगे, जिनका उदय इस लड़ाईके बाद होगा अर्थात् अमेरिका, ब्रिटेन और रूस।

(४) स्वाधीन एशियाको उद्योगवादी राष्ट्रों द्वारा पूंजी तथा मशीन और इञ्जीनियरोंके रूपमें सहायता देनेकी जरूरत होगी। लेकिन इस प्रकार की सहायतासे नये साम्राज्यवादकी नींव न डाली जाय। बड़े औद्योगिक राष्ट्रोंको एशियाके बाजारोंकी जरूरत तो होगी, लेकिन उन्हें आर्थिक बाजारोंको राजनीतिक साम्राज्योंके रूपमें बदलनेकी जरूरत न पड़ेगी!

अन्तमें वालेस महोदय लिखते हैं :—

हम जो कुछ चाहते हैं, वह तो यह है कि समृद्धिके साथ सुरक्षा भी हो। हम अपने लिए ही समृद्धि और ऐश्वर्यको सीमित नहीं रख सकते। हम अपने जीवनके उच्च स्टैण्डर्डको सुरक्षित नहीं रख सकते यदि दूसरे देशोंमें यह मान नीचा रहेगा।

जैसा कि मैं देखता हूँ, प्रशान्तमें जिस नीतिका अभिनन्दन और समर्थन अमेरिकनों द्वारा किया जायगा, उसकी यह विशेषता होगी कि वह आजादीके निर्माणमें उदार होगी।

वालेस महोदयने भारतके सम्बन्धमें यह कहा है कि संयुक्त राज्य अमेरिकाको भारतकी राजनीतिक स्वाधीनताके लिए प्रयत्न करना चाहिये इसके साथ नीदरलैण्ड इण्डीज और प्रशान्तकेदूसरे उपनिवेशोंकी आजादीके लिए भी और युद्धके बाद पराजित जापानको स्वाधीन एशियाकी श्रेणीमें स्थान मिले, इसके लिए भी प्रयत्न किया जाय।

मातृ-भूमिकी अनूठी कहानी

विश्वास

प्रोफे० रघुपतिसहाय 'फिराक' एम० ए०

मेरे कस्बेमें ही एक मैदानके उस पार एक परिवार रहता था, मियां-बीवी और उनके छः बच्चे इस प्रकार आठ प्राणी थे। उस भूमि-खंडपर जो अब तक ऊसर पड़ा हुआ था, वह बड़े परिश्रमसे काम करते थे। एक दिन सहसा पतिके काम करते समय कुल्हाड़ीसे गहरी चोट लगी और वह चल बसा। अकेली स्त्री बेचारी परिश्रम करनेके लिए रह गयी। किन्तु उसने हिम्मत न हारी, बल्कि अपने दोनों लड़कोंको पिताकी लाशके सामने खड़ा करके यह वचन लिया कि वे अपने छोटे भाई और बहनोंकी देख-भाल करेंगे और भरसक अपनी माताकी सहायता करेंगे। दोनोंने सबसे छोटे भाईके समर्थ होने तक वचनोंका पालन किया। उसके बाद वे अपने को वचन-विमुक्त समझने लगे। सबसे बड़ेने एक जमीन्दारकी विधवासे विवाह कर लिया।

घरपर जो चार भाई बच रहे, सारा कार-बार अब उन्हींके सिरपर आ पड़ा। अब तक वह बराबर बड़े भाइयोंकी देख-रेखमें रहे। उन्हें अपने काममें कोई उत्सुकता न थी, क्योंकि बचपनसे वह एक साथ रहनेके इतने आदी हो गये थे कि अब वह एक दूसरेके बिना कुछ कर ही न सकते थे। कोई अपनी राय तब तक देता ही न था, जब तक कि उसे पूरा विश्वास न हो जाता कि सबकी वही राय है। वह तब-तक कोई निश्चय नहीं कर पाते थे, जब तक कि वह एक दूसरे ओर देख न लेते। बिना किसी निश्चयके मूक निर्णय हो जाता और अपनी मांके जी वह कभी अलग नहीं हुए।

मां कुछ और चाहती थी। उसने उस ज़ि में दोनों बड़े पुत्रोंकी रजामंदी ले ली। जमीन अब खूब उपजाऊ हो चुकी थी; इस अब खेतीमें अधिक सहायताकी आवश्यकता। इसलिए माताने सबसे बड़े दोनों बेटोंसे कहा अपने हिस्सेका दाम वह ले लें। और उस जमीनको चारों भाइयोंमें आधा-आधा इस प्र र बांट दिया कि वह दोनों एक साथ रहें।

पुराने घरोंके अतिरिक्त अब नयोंकी जरूरत थी। दो लड़के नये घरोंमें जाकर और बाकी दो मांके पास। उन दोनोंमें से दूसरे मकानमें जा रहे थे, एकको ब्याह का जरूरी था। क्योंकि उन्हें घर और पशुओं देख-भाल करनेके लिए मददकी जरूरत थी इसलिए माताने खुद अपनी पुत्र-वधूको लिया।

लड़कोंको इसमें कोई आपत्ति न थी। लेकिन अब सवाल यह उठा कि किन दो पुत्रोंको होना चाहिये और उनमेंसे किसको विव करना चाहिये! सबसे बड़ा लड़का विवाह को तैयार था, लेकिन उसने भी कहा कि मैं श कभी नहीं करूंगा और फिर बाकी तीनोंने बारी-बारीसे शादी करनेसे इनकार कर दिया

अन्तमें सबने मांसे इस प्रकार समझौ किया कि वधू स्वयं अपना पति चुन ले। समय बाद एक दिन शामको माताने लड़की पूछा कि क्या तुम मेरी पुत्र-वधूके रूपमें आनेको तैयार हो। लड़की राजी मालूम हु लेकिन वह अब शादी किसके साथ करे, क्यों वह जिससे चाहती शादी कर सकती थी। लेकि उसने इस मामलेमें कुछ सोचा न था। उस अब सोचना जरूरी था। फैसला उसीकी इच्छा पर छोड़ दिया गया था। तब उसने विच किया कि सबसे बड़ेसे विवाह करे। लेकिन मालूम हुआ कि वह पहले ही शादी करनेसे इ कार कर चुका था। तब लड़कीने सबसे छोटे नाम लिया। लेकिन माताने सोचा कि बड़ी विचित्र बात होगी। बड़े बिन ब्याहे और सबसे छोटेका सबसे पहले ब्याह हो, कैसे हो सकता था।

'तब सबसे छोटेसे जो बड़ा था उससे।'

'सबसे बड़ेसे जो छोटा है, उससे क्यों नहीं ?'

'सबसे बड़े बेटेसे ही।' लड़कीने जवाब दिया। वह पहलेसे ही ऐसा चाहती थी और इसी कारण उसका नाम लेनेकी उसकी हिम्मत नहीं होती थी।

जिस समय सबसे बड़े लड़केने विवाहके लिए इनकार कर दिया था, तभी मांने यह तय कर लिया था कि इन दोनोंका विवाह हो, क्योंकि उस लड़के और उस लड़कीने एक दूसरेको ताक लिया था। दोनोंका ब्याह हो गया और वह सबसे बड़े भाईके साथ नये घरमें जा बसी। किस तरह उनकी जमीनका बंटवारा हुआ, यह कोई न जान सका। चारों भाई पहलेकी तरह मिलकर काम करते और अपना अनाज एक बार एक खलिहानमें और दूसरी बार दूसरेकी खलिहानमें इकट्ठा करते।

कुछ दिन बाद मांकी तन्दुरुस्ती बिगड़ने लगी। उसको अब आरामकी जरूरत थी और मदद की भी। इसलिए बेटोंने मुश्किलसे एक लड़कीको, जो वहां काम करने आया करती थी, उसके पास रख छोड़नेका फैसला किया। लड़कीकी रजामन्दी लेना अब जरूरी था और यह काम सबसे छोटे लड़केको सुपुर्द किया गया, क्योंकि वह उस लड़कीको अच्छी तरह जानता था। दूसरे दिन जब वह दोनों पत्तियां बटोर रहे थे, तब लड़केने लड़कीसे उस विषयमें पूछा। वह लड़का कुछ समयसे लड़कीसे गुप्त रूपसे प्रेम करता था। इसलिए उसने लड़कीसे ऐसे विचित्र ढङ्गसे बात की कि वह समझी, वह उससे विवाह करनेके लिए पूछ रहा है। लड़कीने स्वीकृति दे दी। अब लड़का बड़ा घबड़ाया। एकदम भाइयोंके पास पहुंचा और अपनी भूल कह दी। चारों बड़े परेशान हुए और किसीके मुंहसे कुछ न निकला। लेकिन सबसे छोटेसे बड़े भाईने ताड़ लिया कि असलमें वह उस लड़कीसे प्रेम करता है। और इसी कारण इतना घबड़ाया हुआ है। दूसरे क्षण ही उसे स्पष्ट हो गया कि उसको कुंवारा ही रहना है, क्योंकि अगर सबसे छोटेका ब्याह हो जाय, तो वह अपना ब्याह न कर सकेगा। उसको यह कुछ कठिन लगा, क्योंकि वह खुद उस लड़कीसे ब्याह करना चाहता था, किन्तु अब उसे वह लड़की पानेकी आशा न रही। इसलिए सबसे पहले वही बोला कि उन्हें कोई एतराज न होगा अगर वह लड़की किसी भी भाईकी स्त्रीके रूपमें वहां आकर रहना स्वीकार करे। हमेशा एक जो कहता, सब उसीका समर्थन करते इसलिए चारों भाई मांके पास पहुंचे। लेकिन जब घर पहुंचे, तो देखा कि मां बहुत बीमार है। अतः जबतक उसकी दशा न सुधरे, तबतक बात टली रहे। मांकी दशा न सुधरी, चारों भाइयोंने फिरसे बातपर विचार किया। सबसे छोटे लड़केने उस समय यह प्रस्ताव रखा कि जबतक मांकी हालत न सुधरे, तबतक किसी प्रकारका परिवर्तन न किया जाय। सबने उसकी बात मान ली, ताकि लड़कीको केवल मांकी सेवाके सिवा और कोई चिन्ता न करनी पड़े। यही निश्चय हुआ।

सोलह वर्ष बीत चले, किन्तु मां खाटपर ही पड़ी रही। निरन्तर सोलह वर्ष तक भावी पुत्रवधूके रूपमें वह कन्या माताकी सेवा करती रही और उसके मुंहसे कोई बात न फूटी। पूरे सोलह वर्ष तक चारों भाई शामको मांके समीप पहुंच प्रार्थना करते और इतवारको दोनों बड़े भाई भी वहां आ पहुंचते। वह अपनी कुछ शान्तिमयी घड़ियोंमें बहुधा अपने पुत्रोंसे उस बालिकाकी देख-रेखके लिए, जो निरन्तर उसकी सेवामें रत रहती, प्रार्थना किया करती। भाइयोंने माताका आशय समझ कर बचन दे दिया। माता प्रायः अपने रोगको धन्यवाद देती, क्योंकि उसे इस प्रकार अन्तमें मातृत्वके वास्तविक सुखको भोगनेका अवसर मिल गया था। वह सर्वदा अपने पुत्रोंको आशीर्वाद दिया करती और एक दिन आया कि आशीर्वाद मिलना बन्द हुआ।

जब मां मर गयी, तो पुत्र स्वयं उसको श्मशान ले जानेके लिए एकत्र हुए। वहां यह नियम था कि प्रत्येक स्त्री-पुरुष उस अन्तिम क्रियामें शामिल होते। इस बार नगरके सब स्त्री-पुरुष जो चल सकते थे, यहां तक कि बच्चे भी, साथ थे। सबसे आगे नेताके रूपमें पादरी, उसके पीछे लाश सहित छः भाई और तत्पश्चात् जनताकी भारी भीड़ थी। सब लोग शान्ति-गान गा रहे थे, जिसकी आवाज मीलों सुनायी पड़ रही थी।

लाशको चिर विश्रामके लिए रख दिया गया, उसके बाद सब भाइयोंने कब्रको पूरा कर लिया और फिर सारा जुलूस गिरिजाघरकी ओर लौट पड़ा, क्योंकि वहां सबसे छोटे भाईका विवाह-संस्कार होना था। भाई इसको उसी समय करना चाहते थे, क्योंकि वास्तवमें वह अन्तिम क्रिया और विवाह संस्कार एक दूसरेसे सम्बन्धित थे। गिरजेके पादरी मेरे पिता थे, जो इस समय रोग-ग्रस्त हैं, उन्होंने उस समय विश्वासके ऊपर ऐसा मधुर भाषण दिया कि मैंने, जो दैवयोगसे उस समय वहां उपस्थित था, गिरजेसे निकलकर विचार किया कि विश्वास वह चीज है, जो पर्वत-समुद्र और प्रकृतिके सारे उपादानोंमें सौन्दर्य रूप बनकर मिली हुई है। *

* नार्वेके अमर कलाकार बर्जूसनकी एक प्रसिद्ध कहानीका रूपान्तर।

अमरत्व

सुख खोजूं कौन, कहां अब ?—
जो था, वह तो दान दिया तुमको
इस तिमिर-लोकमें आनेके
पहले ही प्राण दिया तुमको
तुमने प्रकाशके चन्दनसे
पावन अभिषेक किया मेरा
मैंने भविष्यका स्निग्ध-तरल
ज्वालामय गान दिया तुमको

यह तिमिर-लोक में यहां तुम्हारे
फूल खिलाने आया हूं
जगके प्राणोंमें प्रतिबिम्बित हूं
क्योंकि तुम्हारी छाया हूं
आती जाती जो श्वास कालकी
वीणाका झंकार लिये
मैं तो अनादिसे ही उसमें
बन एक पुकार समाया हूं

मुझसे ही यह संसार पूर्ण
फिर भी मैं उससे न्यारा हूं
वह बह जानेवाली हिलोर
मैं स्थिर गंभीर किनारा हूं
इंगित न तुम्हारा भूला मैं
प्रति पल संसार मुझे भूला
तुम चमकाते, मैं चमक रहा
बन कर नभमें ध्रुव तारा हूं

सपने-सा कुछ आंखोंमें था
मैंने पहचाना, लहराया
छाया छोड़ी फिर मुस्काकर
निज आदि रूपको अपनाया
अब तुम स्वर बन कर उमड़ रहे
मैं उसे ग्रहण कर लेता हूं
प्रिय ! क्योंकि आज अपने प्रसून
हूं तुममें विकसाने आया !

केदारनाथ मिश्र 'प्रभात'

हिटलरी विजयका अमोघ अस्त्र---नारी

लेखक—पं० उमेशचन्द्र चौधरी

घटना सन् १९१३ की है। पेरिसमें तेल और साबुनके दूकानदारोंकी एक सभा लगी हुई है। व्याख्यानदाता भाषण दे रहे हैं "हम लोगों का व्यापार चौपट हो रहा है, सरकार कुछ भी ध्यान नहीं देती।"

एकाएक एक बालिका, जो अभी मुश्किलसे पन्द्रहकी होगी, उठ खड़ी होती है। "तो सरकारको ही क्यों न बदल दिया जाय।" दूकानदार हंस पड़े। "सरकारको बदल दिया जाय, कैसा मनोहर स्वप्न है? यदि हम लोग सरकार बदलनेके आन्दोलनमें लग जायें, तो हमारी दूकान कौन चलायेगा?"

उत्तेजित बालिकाके चेहरेपर घृणाके भाव उग आये। वह आवेशपूर्ण स्वरमें बोली, "काश मैं मर्द होती,अफसोस! फ्रान्समें स्त्रियोंको राजनीतिक क्षेत्रमें कोई स्थान नहीं।"

"तो क्यों नहीं अपने लिए एक स्थान बना लेती," दूकानदारोंने व्यङ्ग किया। "बनाऊंगी, मैं फ्रान्सपर शासन करूंगी" कहती हुई बालिका सभासे चल पड़ी। इस बालिका हेलेनने जो फ्रान्सके एक जहाजीकी लड़की थी, अपने बाल-स्वप्नको सत्य कर दिखाया। उसने केवल फ्रान्सपर ही शासन नहीं किया, प्रत्युत फ्रान्सपर शासन करनेवालेपर भी शासन किया।

विधाताने हेलेनको सुन्दरी नहीं बनाया था। परन्तु इसके बदलेमें उसे प्रखर प्रतिभा प्रदान की थी। बड़े-बड़े व्यक्ति उसकी सूझपर दङ्ग रह जाते थे। इस प्रतिभाशालिनी हेलेनका प्रथम प्रेम-पात्र कानूनका एक गरीब विद्यार्थी पाल "रेनौ" बना। दोनों एक दूसरेको प्यार करते थे और सम्भव था कि वे वैवाहिक सूत्रमें बंधे जाते, यदि हेलेनकी कामना मार्गमें बाधक न होती। घमण्डी हेलेनने इस गरीब विद्यार्थीसे अपनी कामना-पूर्तिकी कोई आशा न देख इस प्यारको ठुकरा दिया और शीघ्र ही उसने लखपति नवाब काउण्ट-डी-पोर्टेको पति वरण किया। आर्थिक मामलोंमें हेलेन, काउण्टेस-डी-पोर्टेने अपनी प्रखर प्रतिभाका परिचय दिया। बैरोनकी सम्पत्ति दिन दुगुनी-रात चौगुनी बढ़ने लगी। परन्तु यह वैवाहिक जीवन दो ही वर्षोंमें समाप्त हो गया। बैरोन हेलेनके शासनसे तङ्ग आ गया। उसे दैनिक जीवनकी साधारण स्वतन्त्रता भी प्राप्त न थी। अतः हेलेनके वार्षिक खर्चके लिए एक उत्तम रकम तय कर उसने इस उच्चाभिलाषिनी गर्विता नारीसे छुटकारा पा लिया। इस सम्बन्ध-विच्छेदसे दोनों प्रसन्न थे। तलाक पत्र पर हस्ताक्षर करते समय दोनोंकी आंखोंसे आंसू के कतरे भी नहीं निकले। अब स्वतन्त्र काउण्टेस-डी-पोर्टेने अपनी महत्वाकांक्षाकी पूर्तिके लिए पेरिसमें एक सैलूनकी स्थापना की।

हर हिटलर

कौन कह सकता है कि अब हेलेनको उस गरीब विद्यार्थी पाल रेनौका कुछ भी स्मरण था जिसने उसे कभी प्यार किया था? पालने वकालत पास की। फ्रेञ्च बारके नेताकी छबीली कन्यासे ब्याह किया। अपने पेशेमें आशातीत उन्नति की और अब उनके जीवनका सबसे बड़ा ध्येय फ्रेञ्च बारका नेता बनना था।

सन् १९१६ की घटना है। काउण्टेस-डी-पोर्टेका सैलून चल निकला था। पालकी पत्नी उस सैलूनकी दैनिक अभ्यागता थी। वह काउण्टेसकी सच्ची साथिनी थी। यहां तक कि इस धुनमें उसने पतिकी अवहेलना करना शुरू कर दिया। रेनौने भी काउण्टेस-डी-पोर्टेके सैलूनके बारेमें सुना था, लेकिन वह कभी वहां गया न था। उसने अपनी पत्नीकी इस मित्रताका घोर विरोध किया। उसको यह सह्य नहीं था कि उसकी पत्नी उस औरतकी सङ्गिनी रहे, जो उस समय पेरिसमें काफी बदनाम हो रही थी। उसने इस मित्रताको येन केन प्रकारेण तोड़ देना चाहा। अपना प्रयत्न निष्फल होते देखकर पाल क्रोधातुर हो उठा और एक दिन काउण्टेसको फटकार बतानेके लिए उसके सैलूनकी ओर चल ही तो पड़ा। वह क्रोध और घृणासे जलते हुए सैलून पहुंचा। उसके होंठ फड़क रहे थे। पर यह क्या? काउण्टेसके सम्मुख आते ही वह स्तम्भित हो गया और आश्चर्य मिश्रित स्वरमें बोल उठा, 'हेलेन तुम्हीं हो?' 'पाल' वह दोनों हाथोंको फैला आगे बढ़ी, "आखिर हम लोग मिल ही गये" और एक क्षणमें दोनों एक दूसरेके बाहुपाशमें थे। यह कैसा नाटकीय मिलन था। फ्रान्सके दुर्भाग्यका यह कैसा दयनीय दिवस था।

एक बार हेलेनने फिर अपनी प्रतिभाका परिचय दिया। पालकी सम्पत्ति ऐन्द्रजालिक रूपमें बढ़ने लगी। उसने एक लगाया और दो पाया। शीघ्र ही उसकी गिनती पेरिसके धनकुबेरोंमें होने लगी। अब हेलेनकी बाल-प्रतिज्ञाकी पूर्तिका अवसर आया। प्रतिभाशाली पाल उसकी मुट्ठीमें था और थी पत्रकारोंको घूस देनेके लिए उसके पास अतुल सम्पत्ति। "पाल रेनौ फ्रान्सका प्रधान-मन्त्री होगा और हेलेन होगी फ्रान्सकी बेताजकी रानी।" वह तन-मन-धनसे अपनी इस इच्छाकी पूर्तिमें लग गयी। पालने आजतक किसी भी राजनीतिक दलबन्दीमें भाग नहीं लिया था। अपनी प्रेमिकाके बढ़ावे पर वह रिपब्लिकन डेमोक्रेट-एलायन्सका सदस्य बना। इसके बाद ही काउण्टेस-डी-पोर्टेका सैलून फ्रान्सके सभी राजनीतिक गुट्टोंका अड्डा बन गया। हेलेनकी प्रसन्नताका ठिकाना न रहा, जब उसने देखा कि उसकी योजना आशासे अधिक सफलता प्राप्त कर रही है।

समय बदल चुका था। जर्मनीमें नाजी पार्टी सर्वेसर्वा बन चुकी थी। देश अपनी खोयी हुई शक्तिको पुनः प्राप्त कर रहा था। हिटलर दिग्विजयका स्वप्न देख रहा था। वह न्यूमेनबर्ग की योजनाको कार्यान्वित करनेमें प्रयत्नशील था कि उसका ध्यान काउण्टेस-डी-पोर्टेकी सैलूनकी ओर आकर्षित हुआ। काउण्टेसको नाजी फन्देमें फंसानेके लिए अधिकृत फ्रान्सका वर्तमान नाजी प्रधान अबेज नियत हुआ। हिटलरकी मनोकामना सफल हुई। एक ही हफ्तेके अन्दर काउण्टेसका सैलून नाजी पांचवीं कतारका प्रधान केन्द्र बन गया, अपनी इस सफलताकी खुशीमें अबेजने वान-रीबन-ट्रापको पत्र लिखा :—

"पेरिसमें अपने कामके लिए मैंने एक आदर्श नारी पा ली है। तैंतालिस वर्षकी उम्रकी यह औरत काउण्टेस-डी-पोर्टेके नामसे मशहूर है। इसकी योग्यता, धूर्तता, योजना-शक्ति एवं उच्चाभिलाषा अद्वितीय है। वह पाल रेनौकी प्रेमिका है, जो उसकी सहायतासे एक दिन उच्च पदपर आसीन होगा। वह घमण्डी और अहङ्कारिणी है। रेनौ उसका गुलाम है, और बच्चेकी तरह उसकी आज्ञाका पालन करता है। वह एक धनी नारी है। अतः उसे वशमें करनेके लिए हमें पैसेकी आवश्यकता नहीं है। सिर्फ चापलूसीसे ही काम चल जायगा। उसका सैलून फ्रान्सके राजनीतिज्ञोंका केन्द्रस्थल है। मैं अपना सारा ध्यान उसीपर केन्द्रित किये हुए हूं। आप जब पेरिस आयें, कृपया उससे अवश्य मिलें।"

रीवनट्राप पेरिस आया। उससे मिला और अबेजका वचन अक्षरशः सत्य पाया। अबसे हेलेन काउण्टेस-डी-पोर्टेका नाम नाजी पांचवी कतारकी प्रथम श्रेणीके विश्वासपात्र एजेण्टोंमें था। शीघ्र ही नाजी पांचवी कतारकी सायेमें "कमिटी फ्रान्स अलमेन" की स्थापना हुई, जिसका प्रथम उद्देश्य था, फ्रान्स और जर्मनीमें मैत्री भाव स्थापित करना। परन्तु इसके सच्चे उद्देश्य गुप्त थे। काउण्टेस-डी-पोर्टे इसकी प्रमुख सदस्या थी और उसीके जिम्मे इसके प्रचारका कार्य था।

फ्रान्स मन्त्रि-मण्डलके प्रधानके पदपर दलेदियर आसीन था। वह जर्मनीका शत्रु और ब्रिटेनका सच्चा पक्षपाती था। उसके विरुद्ध काउण्टेसका षड्यन्त्र जारी था। वह उसके राजनीतिक प्रतिद्वन्द्वियोंकी संख्यामें वृद्धि कर रही थी। जर्मनीका मैदान साफ हो रहा था। शीघ्र ही कमिटी फ्रान्स अलमेनमें दो और प्रभावशाली सदस्य जा मिले। उनके नाम थे बदौइन और जेनरल वेगां। दोनोंने काउण्टेसके बढ़ते हुए प्रभावको पहचाना। किसी भी कीमतपर अपनी स्वार्थ-सिद्धिके लिए दोनोंने स्वेच्छासे अपने को हेलेनका गुलाम बना दिया। दोनोंका विश्वास था, "फ्रान्सका पतन हो रहा है, उसका पतन अवश्यम्भावी है, उसके पुनरुत्थानके लिए उसका पतन आवश्यक भी है।"

जर्मनीने फ्रान्सपर हमला किया। उसका अग्रगमन जारी था और जारी था काउण्टेस और उसके दलोंका देशके प्रति विश्वासघात। नाजी विजयके चिन्ह दिन-ब-दिन अधिक स्पष्ट होते जा रहे थे। युद्ध नाजुक परिस्थितिपर पहुंच रहा था कि दलेदियर मन्त्रि-मण्डलका पतन हुआ। काउण्टेसका स्वप्न सत्य हुआ। पाल रेनौ फ्रान्सका प्रधान-मन्त्री बना और हेलेन, काउण्टेस-डी-पोर्टे बनी साम्राज्यके पीछे सबसे बड़ी शक्ति।

प्रधान-मन्त्री उस देशघातिका नारीकी मुट्ठीमें था। वह बच्चेकी तरह हर मामलेमें उसकी सलाह लिया करता था और वह सलाह पाता था, बचे-खुचे आत्मबलको भी खो देनेवाला "फ्रान्स विजयकी आशा नहीं कर सकता; ब्रिटेन उसके लिए कुछ नहीं करेगा। ब्रिटेन शक्तिशाली जर्मनके विरुद्ध कुछ कर भी नहीं सकता।" पाल रेनौ जर्मनीका पक्षपाती नहीं था। वह सच्चा देशभक्त था। उसे अपनी शक्तिपर भरोसा था। विजय और आशाका दृढ़ विश्वास लेकर ही वह फ्रान्सके प्रधान-मन्त्रीके पदपर आसीन हुआ था। पालने अपने मन्त्रिमण्डलमें मोशियो पाल वेस्की और मोशियो लेजरको सम्मिलित किया। ये दोनों सज्जन ब्रिटिश पक्षपाती थे और अन्तिम विजय तक युद्ध जारी रखना उन लोगोंका ध्येय था। हेलेन को यह कब सह्य हो सकता था। उन्हें मन्त्रिमण्डलसे हटना पड़ा। स्वयं हेलेनने उन्हें हटाया और मन्त्रि-मण्डलमें युद्ध मन्त्री जैसे उत्तरदायित्व पदपर आसीन हुआ हेलेनका पिट्ठू बदौइन, जिसका कथन था, "फ्रान्सके पुनरुत्थानके पूर्व उसका पतन आवश्यक है।" नियतिका यह कैसा विकट परिहास था।

युद्ध विकट स्थितिपर पहुंच चुका था। फ्रांस की आशाका केन्द्र उसकी सुदृढ़ किला-बन्दी मैजिनो दुर्गपंक्ति टूट रही थी। बड़े-बड़े देशभक्त राजनीतिज्ञ किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो रहे थे कि एकाएक एक युवक कर्नल सम्मुख आया। वह था वर्तमान आजाद फ्रेञ्च सेनाका प्रधान जेनरल डी-गौले।

इस युवक कर्नलने सेनापति गैमोलिनकी किलेबन्दी-योजनाका घोर विरोध किया और यान्त्रिक युद्ध योजनाका जोरोंसे समर्थन करते हुए उसे मन्त्रि-मण्डलके सम्मुख रखा। पालने उसकी योजनाको पसन्द किया। वह उससे सहमत था। लेकिन अपने स्वभावानुसार उसने ये सारी बातें जब हेलेनको सुनायीं, तो उसने उसे यह कहते हुए हंसीमें टाल दिया, "यह नातजुर्बेकार छोकड़ा युद्ध-रहस्य क्या जाने, उसने अभी पुराने सेनापतिका विरोध करनेका साहस कैसे किया?" मैजिनो दुर्गपंक्ति भङ्ग हो गयी और साथ ही भङ्ग हो गयी फ्रेंच जनताकी आशा! पेरिसमें भगदड़ मच गयी। जर्मनीकी पांचवीं कतारने फ्रेंच जनताको आतङ्कित करनेमें पूरा जोर लगाया। पाल रेनौ घबरा गया। उसने डी गौल द्वारा चर्चिलको सन्देशा भेजा। "फ्रान्स अन्तिम दम तक लड़ेगा।" परिस्थिति ने पालकी आंखें खोल दीं। उसने ब्रिटानीमें अन्तिम मोर्चा लेनेकी डी गौलकी योजना स्वीकार कर ली। वह डी गौलको प्रधान सेनापतिके पदपर नियुक्त करनेको था कि हेलेनने अन्तिम कुठाराघात किया। डी गौलके बदले प्रधान सेनापतिके पदपर नियत हुआ हेलेनका तीसरा पिट्ठू वेगां, जो बदौइनके कथनका प्रतिपादक था। यह नियतिका अन्तिम खतरनाक खेल था। वैगांने जर्मनीको रोकनेके लिए कुछ भी नहीं किया, और नाजी सेना बढ़ती गयी। फ्रेञ्च सरकार पेरिससे हटकर विशी चली गयी।

अपने देशकी दुर्दशा देखकर देश भक्त वीर डीगौलेका खून खौल उठा। वह पागलकी भांति रेनौके सम्मुख पहुंचा और आवेशपूर्ण कातर स्वरमें चिल्ला उठा :—"मैं कहता हूं यह सम्भव है, यह हो सकता, ब्रिटिश हमारा साथ देगा, ब्रिटेन अभी भी समुद्रकी रानी है, हमारा अपना बेड़ा सुदृढ़ है, हम अभी भी जर्मनोंको हरा सकते हैं। आप केवल आज्ञा दें"। रेनौ सहमत होनेपर था कि इसकी खबर हेलेनको पहुंची। वह तत्काल मिलन गृहकी ओर झपटी। उसकी आंखें क्रोधसे जल रही थीं। "यह क्या है" वह चिल्ला उठी "मैं कहती हूँ, यह वाहियात है, निराशापूर्ण है, आत्मघातक है, यह कभी नहीं हो सकता, कभी नहीं, कभी नहीं, कभी नहीं। पाल क्या तुम पागल हो गये हो?" रेनौ निराशा भरे स्वरमें बोला, डी गौले! सब कुछ हो चुका, अब कुछ नहीं हो सकता। उसी दिन रेनौंने अपने पदसे त्याग पत्र दे दिया। साहसहीन पेतांने सरकारका सङ्गठन किया। जर्मनीके साथ विराम-सन्धि हुई, वह सन्धि जो फ्रांसकी हारसे भी अधिक घातक सिद्ध हुई।

हेलेनने नाजियोंके लिये अन्तिम पांसा फेंका। वह सफल रही। उसकी मनोकामना पूर्ण हुई। फ्रांसका घोर पतन हुआ। वह समस्त सामरिक साधनोंके रहते गुलाम बना एक नारीकी काली करतूतसे।

हेलेन अपनी जन्मभूमिके प्रति विश्वासघात का उपहार भोगनेके लिए जीवित न रही। फ्रांस के पतनके दूसरे ही दिन फ्रेंच जनताकी आहों ने मोटर दुर्घटनाका रूप धारण कर उसे यमलोक पठा दिया।

फ्रांस और जर्मनीका सामन्त, गत महायुद्धके प्रहसनका अजेय नायक बेलजियम देखते ही देखते जर्मनीके सम्मुख लोट गया। क्यों? कैसे?

बर्लिनके एक सुसज्जित ड्राइङ्ग रूममें एक संभ्रान्त पुरुष और एक अनुपम सुन्दरी युवतीमें वार्तालाप हो रहा है। उनके चेहरेके चढ़ाव उतारसे विदित होता है कि वे एक अत्यन्त ही रहस्यपूर्ण समस्याको सुलझानेमें संलग्न हैं। सच-मुचमें समस्या रहस्यपूर्ण और गहन है। बेलजि-यममें नाजी पांचवीं कतार काम कर रही है। लेकिन जर्मन विरोधी युवक सम्राट ल्यूपोल्ड अभी तक उसके हत्थे नहीं चढ़ा है और चढ़नेकी कोई आशा भी नहीं दिखाई पड़ रही है, क्यों-कि दिन प्रतिदिन वह और भी अधिक जर्मन विरोधी बनता जा रहा है। इसी ल्यूपोल्डको नाजी फन्देमें फंसाना है। इस कामके लिए इसी सम्भ्रान्त कुलोत्पन्न अलौकिक रूपवती चतुर बैरोनेसको उपयुक्त समझा गया है। वह नाजी पांचवीं कतारके प्रधान और हिटलरके दाहिने हाथ वान रीवन ट्राप द्वारा आमन्त्रित की गयी है और उसके सम्मुख यह समस्या रखी जा रही है।

यूरोपमें युद्धके बादल घिर रहे हैं। जर्मन-आकाशमें यह बादल घना होता जा रहा है। युवक सम्राट ल्यूपोल्ड अपनी सीमा-की ओर बढ़ते हुए इस बादलको सशंक दृष्टि से देख रहा है। वह सावधान है और किसी क्षण इसका सामना करनेके लिए तैयार है, चाहे इसमें उसका सर्वनाश ही क्यों न हो जाय। वह जर्मनीका सामना करनेके लिए किलेबन्दीकी योजना तैयार कर रहा है। उसे पूर्ण विश्वास है कि फ्रांस और इङ्गलैण्ड उसकी सहायताके लिए हमेशा तैयार रहें। ऐसी नाजुक परिस्थितिमें बेलजियमके दुर्भाग्यसे एक भयङ्कर दुर्घटना घटित हुई। ल्यूपोल्डकी प्रियतमा पत्नी एक मोटर दुर्घटनाकी शिकार हो गयी। इस आकस्मिक विपत्तिने ल्यूपोल्डके मानसिक संतुलनको ही नष्ट कर दिया। वह देशकी ओर बढ़ती हुई विपत्तिको भूल गया और शोकातुर हो राजप्रा-सादमें जा बैठा। कभी-कभी तो वह इस तरह शोक-निमग्न हो जाता था कि दीन दुनियांका उसे कोई ख्याल ही नहीं रहता था। उसकी यह अवस्था दुख राजमाता चिन्तातुर हो उठी और अपने पुत्रको उसके उत्तर दायित्वकी याद दिलानेके लिए सख्त प्रयत्न करने लगी। आखिर दिल-बहलावके लिए स्वीजरलैण्डकी यात्रा तय हुई।

इसे संयोग कहिये या एक सुव्यवस्थित योज-ना कि जिस दिन ल्यूपोल्डका दल स्वीजरलैण्ड पहुंचा, उसी रोज जर्मनीकी वह अद्वितीय सुन्दरी बैरोनेस भी वहां जा पहुंची और उसी शामको लोगोंने आश्चर्य-चकित हो महीनोंसे उदास मुर्झाये राजाको प्रसन्नमुख उस जर्मन सुन्दरी के साथ नाचते देखा। मांको इससे बढ़ कर और चाहिये ही क्या? उसने अपने पुत्रकी प्रवृत्ति को बदल देने वाली इस जर्मन युवतीको हृदयासन पर बैठा लिया।

शारदीय शिकार समाप्त हो गया। ल्यूपोल्ड अपनी इस नवीन प्रेमिकाके साथ ब्रुसेल्स वापस आया। राजमाताने उसे सिर आंखोंपर चढ़ा लिया। राज प्रसादके समीप ही बैरोनेसको एक सुसज्जित आवास मिला। लोगोंमें काना फूसी चली। लेकिन राजमाता कुछ सुननेके लिये तैयार नहीं थी। उसका बैरोनेसपर अटल विश्वास था। वह कभी भी यह विश्वास करनेके लिए तैयार नहीं थी कि उसके पुत्रकी यह नवीन प्रेमि का नाजी एजेण्ट है।

बैरोनेसका जादू काम करता रहा और सम्राट उसमें फंसता गया। एक दिन उस छलना-मयी नारीने ल्यूपोल्डको जर्मनी परिभ्रमणके लिये आमंत्रित किया। ल्यूपोल्ड नहीं चाहता था कि उसकी प्रजा उसके कार्योंसे सशंकित हो उठे और उसकी इस नई-मैत्रीमें बाधा उपस्थित हो जाय। अतः उसने अपनी यह यात्रा गुप्त रूपसे ही करना निश्चित किया। वह अविदित रूपसे जर्मनी गया और वहां उसके स्वागतमें द्रव्य पानीकी तरह बहाया गया।

युद्धका बादल फूट पड़ा। मानव रुधिरकी वर्षासे यूरोपीय भूमि सिक्त होने लगी। युद्ध-बादल भयङ्कर गड़गड़ाहटके साथ चतुर्दिक गगन मण्डलको आच्छादित करते हुए शनैः-शनैः पश्चिमी यूरोपकी ओर अग्रसर होने लगे। ल्यूपोल्ड उद्विग्न हो उठा, लेकिन इस जर्मन युवतीके साथ उसकी मैत्रीमें लेशमात्रकी भी कमी न हुई। प्रतिदिन त्रिमूर्ति (राजमाता, बैरोनेस और ल्यूपोल्ड) की गुप्त समिति बैठ थी, लेकिन कोई भी योजना तय न हो पाती थी सम्राट अपने देशकी रक्षाके लिए कभी किलेबन्द की योजना बनाता तो कभी अन्य राष्ट्रोंसे सह यक सन्धिकी प्रस्तावकी बातें उठाता। लेकि हर बार बैरोनेस उसे वाहियात कह कर उ देती। वह जोर देती कि जर्मनी कभी बेलजि पर हमला कर ही नहीं सकता। उसका तो फ्रान्स और ब्रिटेन है। वह बेलजियम तटस्थताका आदर करेगा। इसतरह वह ल्यूपो को झूठे भुलावेमें फंसाये रही। जब कि जर्म धीरे-धीरे अपना रास्ता साफ करता रहा बेलजियमकी जनता अपने सम्राटकी यह अक ण्यता देखकर हताश हो रही थी, लेकिन सम्रा को इस जादूगरनीके चंगुलसे छड़ाना असम्भव-प्रतीत हो रहा था।

आखिर वही हुआ जो होना था। जर्मनी तटस्थता तोड़ दी। एक रात उसकी विशा फौज बेलजियमकी सीमामें घुस पड़ी। ल्यूपोल् एक सच्चे वीरकी तरह अपनी सेनाके साथ युद्ध भूमिकी ओर झपटा। ब्रिटिश सेना भी उसव सहायताके लिए दौड़ पड़ी। परन्तु काफी देर हो चुकी थी। फ्रान्स पीछे हट रहा था। उसक अन्त निकट था। इधर युद्ध-भूमिमें भी पर्दे अन्दर काम हो रहा था। ल्यूपोल्डकी कान जा रहे थे। "जर्मनीकी अजेय सेनासे लड़ आत्मघातके बराबर है। कोई भी राष्ट्र उसक सामना कर अपनेको सर्वनाशसे नहीं बचा सक नारवे और डेनमार्क समाप्त हो गये। हाले कालके गालमें समा गया। फ्रान्स मृतप्राय रहा है। ब्रिटेनकी सहायताका भरोसा क्या वह दगाबाज है। उसकी साम्राज्य-लिप्सा ने धूर्तताने ही तो दुनियापर यह गजब ढाया है विष काम करता गया। ल्यूपोल्ड अपने चा ओर दुनियाको टूट कर चूर-चूर होनेकी आवा सुन रहा था। अन्तमें वह निराश, भग्न हृ कायरकी नाईं अपनी मददके लिए आयी मित्र सेना तथा अपने देशको भाग्यके भरो छोड़ अपने महलोंमें जा छिपा। बेलजियम गुल बना और उसका राजा अपने ही महलोंमें कैद महान कैसर विलियमके प्रचण्ड आघातों वीरतापूर्वक सहन करनेवाला देश एक नारी आघातोंको सहन न कर सका। देखते ही देखते वह यूरोपके राजनीतिक नकशेसे मिट गया।

अकाल क्यों पड़ते हैं ?

लें०—श्री अवनीन्द्र कुमार विद्यालङ्कार

बङ्गालके भीषण अकालकी स्मृति अभी ताजी है। १९४३ में बङ्गालके अन्दर अकाल क्यों पड़ा, इसकी जांचके लिए भारत सरकारने एक कमीशन बिठाया है। भारतमें अकाल पड़ना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं समझी जाती है। यह भारतकी प्रकृतिके अन्दर ही पाया जाता है। आये साल किसी-न-किसी प्रान्त या जिलेमें दुष्कालकी छाया दिखायी दे जाती है। अतः इसके कारणोंकी मीमांसा आवश्यक है।

दुर्भिक्षकी ओर भारतके अर्थशास्त्रियों और राजनीतिज्ञोंका ध्यान आरम्भसे रहा है। यदि इस देशके शासक भी इस ओर गौर करते और इसका प्रतिकार करनेका यत्न करते तो हिसार, बङ्गाल, बीजापुर और उड़ीसाको अकालका मुंह न देखना पड़ता। यह बात नहीं कि इस सङ्कट-की ओर सरकारका ध्यान नहीं खींचा गया, या उसको इस विषयमें चेतावनी नहीं दी गयी। हम देखते हैं कि १८९६ ई०में १२ वीं कलकत्ता कांग्रेसके अध्यक्षने अपने भाषणमें इस विभीषिकाकी चेतावनी सरकारको दी थी। आपने बताया था कि ब्रिटिश भारतकी २२ करोड़की आबादीके लिए प्रति व्यक्ति प्रति दिन १½ पौ० के हिसाबसे ५-८० कोटि टन नाज चाहिये, पर वस्तुतः होता है, ५-५१ कोटि टन और प्रतिदिन २९ लाख टनकी कमी रहती है। इसका अर्थ है कि एक कोटि लोगोंके लिए पर्याप्त भोजन नहीं है। सर जेम्स केयर्डका कहना था कि भारतके पास दस दिनके लायकसे भी अन्न ज्यादा नहीं है। उस समयके आंकड़ोंको देखनेसे यह भी मालूम होता है कि अन्न-धान्योंकी खेतीमें वृद्धि नहीं हो रही है :—

	कोटि एकड़ोंमें १८८०-८१	कोटि एकड़ोंमें १८९४-९५	प्रतिशत वृद्धि
कुल अन्न धान्य	१६-६२	१८-६२	१२
कुल व्यापारिक फसलें	२.१५	३.९०	८१

इससे स्पष्ट है कि अन्न—धान्योंकी खेती पन्द्रह वर्षोंमें केवल १२ प्रतिशत बढ़ी और व्यापारिक धान्यकी खेती ८१ प्रतिशत बढ़ गयी। पहलेसे तकरीबन दुगुनी हो गयी। वह अवस्था १९ वीं सदीके अन्त कालमें थी। पर सरकारका ध्यान इधर नहीं गया।

१८९९ में अकाल

१८७४, १८७६ और १८९६ में भारतके अन्दर अकाल पड़े। १८९९ में पुनः अकाल पड़ा। लाखों आदमी काल-कवलित हुए। फसल खराब होनेसे भारतीय भूखसे मरने लगते हैं। हिसारमें हमने अपनी आंखों कुछ साल पहले लोगोंको मरते देखा। गरीबी, कर्ज और विपद्‌जनक अवस्था ऐसी बातें नहीं हैं, जो दूर न हो सकती हों। पर कहा जाता है कि अकाल आबादीके बढ़नेसे आते हैं। आजसे ५० साल पहले भी यही बात कही जाती थी। मि० एमरी आज फिर इसी बातको दोहरा रहे हैं। यद्यपि सचाई यह है कि भारतके सेन्सर कमिश्नर मि० बेनेजका कहना था कि भारतमें आबादीकी वृद्धि इतनी तेजीसे नहीं होती, जितनी कि जर्मनी और इङ्गलैण्डमें होती है। भारतका किसान खर्चीला नहीं है। वह दुनिया भरके किसानोंमें सबसे अधिक मितव्ययी है। यदि वह २५ या ३७ प्रतिशत सूद पर कर्ज लेता है, तो लाचारीमें; क्योंकि उसके पास खानेको कुछ नहीं होता। वह अपव्ययी और व्यसनी नहीं है।

भारतीय किसानकी दयनीय अवस्थाका कारण यह है कि जमीनका बन्दोबस्त ऐसा है कि उसके पास खराब फसलके सालोंके लिए कुछ बचता नहीं है। इङ्गलैण्डकी वाष्प और मैशीनरीकी प्रतियोगितामें यहांके कुटी व्यवसायोंका अन्त हो गया। सूत कातने और कपड़ा बुननेका गृह-उद्योग भी नहीं रहा। फलतः गांवका हरेक आदमी अपनी जीविकाके लिए जमीनपर निर्भर हो गया। जमीन बन्दोबस्त इस कारण इतना उदार होना चाहिये कि किसानके पास कुछ बचा रहे। यह न होनेसे वह अकालका शिकार होता है। १८९९ के अकालके बारेमें लार्ड कर्जनने कहा था कि इससे भयङ्कर अकाल भारतमें पहले कभी नहीं पड़ा। गुजरात समृद्ध प्रान्त समझा जाता है। मगर १८९९ में वायसरायने अपने वक्तव्यमें कहा कि लोगोंकी कमजोरी और प्रतिरोधकी अक्षमता देख कर स्थानीय गवर्नमेंट भी चकित हो गयी। भारतीय किसानकी गरीबी आजकी नहीं, वर्षोंसे चली आ रही है। जनवरी १८८३ में स्पेक्टेटर, लन्दनने लिखा था :—सरकारी और स्वतन्त्र रूपसे मिली रिपोर्टोंसे मालूम होता है कि भारतकी वास्तविक कठिनाई किसानोंकी आर्थिक अवस्था है और यह अत्यन्त निराशाजनक अवस्थामें सामने आ रही है यह अधिक अनुभवी अफसरोंमें उत्तेजनात्मक है और वास्तविक भयकी कंपकंपी भी उत्पन्न करनेवाली है। किसानोंका कर्ज भी जमीन बन्दोबस्तकी कड़ाईकी वजहसे है। दक्खिनके रैयतोंकी कर्जकी बात १८७५ के पहलेसे सरकारको मालूम थी। मगर उसको दूर करनेकी कोशिश नहीं की गयी। जब रैयतने कानून अपने हाथमें लिया और साहूकार मारवाड़ीकी नाक काट ली, तब सरकारकी आंखें खुलीं और उसने इसपर विचार करनेके लिए एक कमीशन बिठाया। कमीशनने जमीन बन्दोबस्तकी कड़ाईकी बात कही, पर इधर ध्यान नहीं गया। डा० पोलेनने लिखा था :—अभीतक ऐसी कोई बात नहीं की गयी, कि लगान इस सीमा तक लिया जाय, जिससे किसानको अपनी जरूरत पूरी करनेके लिए अस्थायी तौरपर भी साहूकारके पास न जाना पड़े।

मानसून

वर्षा न होनेसे फसल नहीं होती और फिर अकाल पड़ता है। भारत जैसे विशाल देशके किसी भी भागमें वर्षाका ठीक समय पर न होना अनिवार्य है। पर इसी कारण अकाल भी पड़े, यह जरूरी न होना चाहिये। आयलैंण्ड और मिश्रमें भी खेती मानसूनपर निर्भर है। पर वहां अकाल नहीं पड़ते। १८९९ में जब भारतमें भयङ्करतम अकाल पड़ा था, मिश्रमें भी मानसून नहीं आया और नील नदीका पानी शताब्दी भरमें निम्नतम सतहपर पहुंच गया। पर मिश्रमें अकाल नहीं पड़ा। क्या वर्षा न होनेपर भारत वही नहीं कर सकता, जो कि आयलैंण्ड और मिश्र करते हैं। लार्ड कर्जनने हिसाब लगाकर बताया था कि भारतीय साम्राज्यकी खेतीकी पैदावार ४०० करोड़ रुपया है, अर्थात प्रति व्यक्ति २० रुपया वार्षिक आमदनी पड़ती है। इसमेंसे उसको १ रुपया ८ आना लगान देना पड़ता है और १ रुपया ८ आना अन्य अप्रत्यक्ष करोंमें देने पड़ते हैं। बाकी उसके पास १७ रुपया बच जाते हैं। इसमें वह कोई व्यसन कर सकेगा यह कल्पना भी नहीं की जा सकती।

अदालतें

किसानकी गरीबीका एक ही कारण नहीं है। साहूकारोंने जहां उसके कर्जेको बढ़ा कर उसकी गरीबीको बढ़ाया है, वहां अदालतोंने भी उसकी बढ़ती गरीबीको और बढ़ानेमें मदद दी है। मद्रास महाजन सभाको जवाब देते हुए लार्ड कर्जनने कहा था कि अदालतोंके साथ बारंबार समागम होनेसे किसान कर्जदार हो गया है। मि० रायनबीने वायसरायकी कौन्सिल के बजटपर बोलते हुए कहा था :—अदालतोंकी प्रकृति हमारी गरीबीका कारण है। जायदादके मुकदमे, सर नारायण चन्द्रावरकरके शब्दोंमें ६० प्रतिशतसे अधिक ५० रु० से कमके होते हैं। मगर अदालतें आज भी इसी रूप में मौजूद हैं और ग्राम पंचायतोंको यह काम नहीं दिया गया है।

बागोंका ह्रास

बागोंकी कमीसे भी किसानोंकी गरीबी बढ़ी है। किसानको यह भय बना रहता है कि यदि उसने अपनी जमीनमें कोई तरक्कीकी, उसका उत्पादन बढ़ाया, तो लगान बढ़ा दिया जायगा। फलतः किसान अपनी जमीनकी ओरसे हतोत्साह हो जाता है। सर्वे सेटलमेण्टके अफसरोंकी रिपोर्टोंसे यही बात सिद्ध होती है। कुछ सालोंके अन्तर से बन्दोबस्त होनेका किसानोंपर स्नायविक असर पड़ता है। बम्बई प्रान्तके कल्याण ताल्लुके की रिपोर्टमें सर्वे अफसरने लिखा था कि बागवानी घर नहीं है। एकने यह लिखा कि अच्छी जमीनमें जहां नमी मौजूद है और दूसरी फसल हो सकती है, वहां भी उस सीमा तक नहींकी जाती जितनी कि करनी चाहिए। किसानोंने आलस्यवश दूसरी फसल करना नहीं छोड़ दिया था, बल्कि सर्वेका समय निकट था और दूसरी फसलको देख कर सर्वे वाले लगान बढ़ा देते, इस भयसे उन्होंने दूसरी फसल नहीं बोयी थी। पचास साल पहले रैयतके मनमें जो भय था, वह आज भी मौजूद है कि जमीनमें सुधार करनेका अर्थ लगान-वृद्धि है।

अकालका असर

बङ्गालके १९४३ के अकालको दूर करनेमें क्या खर्च हुआ, इस विषयके आंकड़े अभी प्रकाशित नहीं हुए हैं। बङ्गाल सरकारके बजटमें हुई धारा और भारत सरकार द्वारा बङ्गाल सरकारको दी गयी सहायताके अङ्क भी पूरे चित्र पेश नहीं करते। पर १८९९ के भीषण अकालपर हुआ व्यय हमें मालूम है। उसपर २९ कोटि रु० खर्च हुआ था। इसमें १७ कोटि प्राय था। इसमें किसानोंका मरे पशुओंकी जा पशु लेनेमें हुआ खर्च शामिल नहीं है।

पर्याप्त अनाज

अकाल कमीशनका कहना था कि ग्यारह सालके पीछे इस देशमें अकाल पड़ यहांकी सरकारका यह भी विश्वास है कि का होना अनिवार्य है, इसको रोका नहीं सकता। बङ्गालके भीषण अकालमें देख कि फसल अच्छी हुई थी, अनाज पर्याप्त लोगोंके पास इस अनाजको खरीदनेके लि नहीं थे। इससे पहलेके अकालोंमें भी यही भय देखनेमें आया। १८९९-१९०० में भी स्थिति देखनेमें आयी थी। धन-धान्य मौ मगर अकाल पीड़ितोंके पास उसको ख लिए पैसे नहीं थे। अनुभवने यह भी बता भयङ्कर सूखा पड़नेसे भी अकाल नहीं पड़ा का न होना, सूखा पड़ना अकाल न इसके कारण फसलका न होना अकाल न बल्कि मौसमकी खराबीसे मानवका निर्वाहसे वंचित हो जाना अकाल है। दैवी नहीं है। यदि उपाय किया जा अकालको रोका जा सकता है।

राष्ट्रकी बलि

[श्रीमती शिवरानी प्रेमचन्द]

प्रभा जबसे ससुराल आयी, उसी दिनसे मनोहरलाल गुप्तने जैसे उसे बहिष्कार करनेकी ठान ली। घरमें ससुर थे, मनोहरलालके बाप। एक रोज प्रभा बोली—अगर खिच-खिच न बंद होगी, तो मुझे मेरे घर भेज दीजिए न।

मनोहर—उसी घरकी सीख तो है, बिल्कुल गंवारू।

प्रभा—पहले ही सोच लेना था।

मनोहर—बापका सारा दोष है, जिसने तुम-सी औरत मेरे गले मढ़ दी।

प्रभा—इसमें कोई रहस्य है, या मेरा अभाग्य है, या तुम्हारा।

मनोहर—भाग्य-अभाग्य मैं नहीं जानता।

प्रभा—तुम न जानो, मैं तो जानती हूं।

इन दोनोंकी बात खतम भी न हुई थी कि बाहरसे किसीने आवाज दी—मनोहर बाबू!

मनोहर बाहर चला गया।

प्रभा मन मारे बैठी हुई थी कि चार महीने आये हुए. न विदा करते हैं, न स्नेहसे रखते हैं। मेरे वे दिन कहां चले गये, जब मां प्यार करती थी, भाभी प्यार करती थी, भाई तो जानसे भी बढ़ कर चाहता था। छलछलाई आंखोंसे आकाशकी तरफ देख कर बोली—भैया जेल न गये होते तो मेरी यह दुर्गति क्यों होती। यह मन-ही-मन सोच रही थी कि उसकी भावज इन्दु हंसनेका प्रयास करती हुई-सी बोली, कहिए बीबी जी, कैसे रहीं?

प्रभाने आंख उठा कर देखा तो भावज खड़ी थी। सीनेसे उसे चिपटाकर बहुत देर तक रोती रही।

भावज—अरे तुम तो बिल्कुल सूख गयी। क्या हुआ तुम्हें? तुम्हारे भैया जबसे जेल चले गये, मैं उतनी दुबली नहीं हूँ, जितनी तुम।

प्रभा—भाभी, तुम जीती हो उत्साह लेकर, मैं तो मोहके मारे मरी जा रही हूँ। तुम भैयाके छोड़े हुए कामोंमें दिन रात लगी रहती हो। तुम्हें वे दिन याद होंगे भाभी, भैयाजी मुझे कैसी शिक्षा देते थे। इस घरमें मुझे और जङ्गलीकी उपाधि मिली है।

इन्दु—आखिर यह कब तक चलेगा? भैयाकी चिट्ठी जेलसे आयी है। लालाजीको उन्हें पहलेसे ही ज्ञान था; इसलिए उन्हें चिन्ता है।

प्रभा—शायद तभी आपको मेरी याद है। मैं तो हमेशा आपकी याद करती रहती

इन्दु—मेरी याद करती हो, तो अखबार देख लिया करो, मैं तो हमेशा उसमें रहती

इन्दु-यहां अखबार पढ़ना अपराध है, यहां न राजनीतिसे मतलब है, न समाज यहां तो सरकारी पिट्ठुओंकी भरमार है कोई न कोई उपाधि बराबर मिला करती

इन्दु—मुझे भी इसका पता आते दरवाजेपर लग गया। ऐसा मालूम हो मैं कोई गैर होऊं। मुझे आंखसे इशारा

कि मैं अन्दर चली जाऊं ।यह लालाजीकी से बड़ी भूल है। तुम्हारी शादी नहीं होनी हिए थी। उन्होंने रुपयेका मुंह देखा। जीवनमें या तो बिलकुल न कुछ-सी चीज है। अगर मैं ज न आयी होती तो मुझे शायद ही इतना मा होता। कई बार बुलानेके लिए आदमी भे- गया,मगर बिदाईसे साफ इन्कार किया गया! हारे दादा साहब बीमार थे। लेकिन यहांसे कोई दमी नहीं गया। बेचारे बीमारीकी हालतमें त रोते थे। जब अच्छे हुए तो मैंने उनसे कई र कहा, आप खुद जाकर देख आयें।

प्रभा—वे ही दादा साहब हैं, जो मांके न रहने मुझे थपकियां देकर सुलाते थे। वही आज मुझे नेको तरसते हैं, मैं उन्हें देखनेको तरसती हूं। भी दादाकी ही वजह खुद नहीं गयी। नहीं तो बयत हुई थी कि खुद चली जाऊं। मेरा कोई क्या लेगा। यह तो तबियत मिलनेका सौदा -शादी ब्याह। फिर दादा ही पुराने ख्याल आदमी ठहरे। उन्हें जाने कैसा लगता!

प्रभा—मैं तो घरके ही पचड़े सुनाने बैठी। तो रोजका रोना है! हां, यह बताओ, आज- हो क्या रहा है? नाहक मैंने पचड़ा छेड़ कर पको भी दुखी किया। एक बात यह है भाभी र तुमसे न कहूं तो किससे कहूं। मेरा और ा ही कौन है।

इन्दु—दुनियाका क्या हाल पूछती हो, हारे भाई जिस जमीनके लिए गिरफ्तार हुए याद है न, वह जमीन जिसमें मजदूरोंके कान बनने वाले थे। लालाजीके पिता भी समें १ लाखका प्लाट लिये हुए हैं। इससे हम ग उनके दिलके और कांटा हो गये हैं। जिस रोधके कारण वे जेल गये, उसी विरोधको उठाये हुई हूं।

प्रभा—क्या वह जमीन मजदूरोंको मिल जायगी?

इन्दु—जमीन कहीं बैठे-बैठे मिलती है। नता भी कोई चीज है।

प्रभा—जनता तैयार है। रुपये वाले गोलियां लवायेंगे, गिरफ्तारियां होंगी, मार-काट चेगी। उस दिन बारह-चौदह आदमियों को गोलियां लगी ही थीं। दो तो अस्पतालमें जाकर मर गये। बाकी घायल वहीं पड़े हैं। कितने ही जेल गये। खैर, परमात्मा जेलके न्दियोंको तो सकुशल घर वापस लाये।

इन्दु आकाशकी तरफ देखती हुई बोली अब कदम बढ़ाया है, तो पीछे नहीं हटूंगी। लोगोंको मन्दिर बनवानेके लिए, मस्जिद बनवाने के लिए, गिरजा बनवानेके लिए जगहें मिलती हैं, लेकिन ये गरीब जैसे पशु-पक्षी हों। उनके लिए जैसे रहनेकी जगह ही न चाहिए।

प्रभा—यहां धनिकोंका राज है। वे जैसा चाहते हैं, वैसा करते हैं।

इन्दु—अरे बीबी, आदमी बन कर रहनेका हक तो सभीको है। मंदिरोंमें भगवान बास करते हैं, ऐसा लोगोंका ख्याल है। मैं तो कहती हूं कि अगर भगवान अपने लिए मंदिर-मस्जिद चाहता है और गरीबोंको रहनेका ठिकाना भी नहीं देना चाहता, तो वह मेरे ख्यालमें मोटा और निकम्मा है। ऐसे भगवानसे बिना भगवान की ही दुनिया भली है।

प्रभा—भाभी ईश्वरका दोष इसमें नहीं है। वह कब कहने आता है कि तुम मेरे लिए मन्दिर- मस्जिद बनाओ। समाजकी व्यवस्था बिगड़ गयी है। इसी विषयपर रोजाना भाई साहब और दादा जीसे विवाद होता था।

इन्दु—विवादसे तो विवाद पैदा होता है, बीबी जी। जबसे तुम्हारे भाई साहब जेल गये, तबसे तो दादा साहब बहुत उदास रहते हैं। अब वे किसी भी प्रकारको रुकावट मेरे काममें नहीं डालते।

प्रभाको जैसे भूली हुई बात याद आ गयी हो, बोली,—अरे, लल्लूको कहां छोड़ आयी?

इन्दु—उसे घरपर छोड़ आयी बीबी। घड़ीकी ओर देखती हुई बोली-मीटिङ्गका समय हो गया है बीबी!

प्रभा—आप इतनी देर करके क्यों आयी?

इन्दु—क्या करुं समय ही न मिलता था। सोचा, चलूं तुम्हें देख ही आऊं।

इन दोनोंमें बात हो ही रही थी कि मनोहर आ ही गया।

इन्दु—तुम्हारे लालाकी तबियत भी खराब है, इन दिनों!

मनोहरकी ओर इशारा करके प्रभा बोली- पूछिये न! :वे तो बाहर ही रहते हैं।

इन्दु—लालाजी, मैं आपके पिताजीसे मिल- ना चाहती हूं।

मनोहर—डाक्टरोंका आदेश है कि कोई उनसे नहीं मिल सकता।

इन्दु—मैं कोई गैर नहीं हूं! मैं तो उनकी बेटी हूं।

मनोहर—नहीं, हरगिज नहीं—यह कह कर वह बाहर चला गया।

इन्दु प्रभासे बोली-देखा, कैसा कतराते हैं।

प्रभा—आप देखिये, मैं क्या देखूं? आपने तो इन्हींके साथ मुझे कर दिया है। आप एक घंटेमें घबरा गयी। यहां तो जिन्दगी भरका सवाल है।

इन्दु और प्रभा बड़ी देर गले मिलकर रोती रहीं। प्रभा रोती हुई बोली—अब कब दर्शन देनेकी कृपा करोगी।

इन्दु—जल्दी ही तुम्हें बुलानेकी कोशिश करूंगी। मुझे नहीं मालूम था कि ये बिल्कुल हत्यारे हैं।

प्रभा—फिर मैं किस दिन रास्ता देखूं।

इन्दु—कहती तो हूँ, चार ही छः रोजमें।

* * *

इन्दु जब घर पहुंची, तो सारी गाथा उसने ससुरको सुनायी। बोली—बीबी तो पहचानी नहीं जाती और उनको आप जल्दी बुलवाइये।

ससुर—ठीक कहती हो, शादी कर दी है। वे शायद पहलेकी दुश्मनीके कारण ऐसा व्यवहार कर रहे हैं। मुझे नहीं मालूम था कि ऐसा नीच है। फिर अगर दिलका कमीना है, नीच है, तो मुझसे बदला लेता। मेरी लड़कीने कौन अपराध किया है।

सुनकर इन्दु बोली—खैर, उन्हें जिस किसी भी तरह जल्दी बुलाइए। वादा कराके मुझे आने दिया है। भलमनसाहत तभी तक दिखानी चाहिये, जबतक इन्सान भलमन्सीसे पेश आये। जब इन्सान उससे गिर जाता है, तो वह लाइ- लाज हो जाता है। इसी शहरमें रह रहे हैं, पर देखना मुहाल नहीं।

ससुर—तुमने उस जमीनके बारेमें नहीं चर्चा की। वे रुपये लेकर जमीन दे देते, तो मैं तुम्हें दे देता। तुम जो चाहती, उसका उपयोग करती।

इन्दु—जमीन-वमीनके झगड़ेसे कोई मतलब नहीं। बीबीको बिदा करवाइये।

इन दोनोंमें बात हो ही रही थी कि दो स्वयंसेवक आकर बोले—चलिये, मीटिङ्गका समय हो गया है। आपकी इन्तजारी है।

इन्दु—चलो, चलो! मैं तो भूल गयी थी। (ससुरसे) आप जरा मोटर तो निकलवा दीजिये।

* * *

जनताकी भीड़ अमीनुद्दौला पार्कमें इन्दुकी

प्रतीक्षा कर रही थी। इन्दु भीड़को चीरती हुई मञ्चपर पहुंची।

खड़ी होकर वह बोली—"मैं कोई नयी बात कहने नहीं आयी हूं। मैं वही कहने आयी हूँ, जो मेरा पति आप लोगोंसे कह गया है। उस जमीनमें गरीबोंके ही मकान होने चाहिये। जहां कुत्ते के लिए भी अलग मकान बनवाये जाते हैं, वहां हमारे मजदूर भाई कुत्तोंसे भी बदतर समझे जायं। जहां बड़े-बड़े बङ्गले बनते हैं, बड़ी-बड़ी कोठियां बनती हैं, वहां गरीबोंके लिए इञ्च भर भी जगह नहीं। बात यह है कि गरीब मरना जानता है, कहना नहीं। उसीका नतीजा तो आज वह भोग रहा है। मगर नहीं, कोठी और बङ्गले वालोंको सोचना चाहिये कि उन्हें भी मकान चाहिये, उन्हें भी रोशनी चाहिये, हवा चाहिये। अब वह समय नहीं रह गया है। आज उसे वे भले गरीबोंको न दें, कल अवश्य उसे उन्हें देना पड़ेगा। जो किसीका अधिकार छीन कर सुखी होना चाहता है, वह समाजका सबसे बड़ा शत्रु है। अगर वे नहीं मानते तो चाहिये कि गरीब लोग हड़ताल कर दें, उन अमीरोंकी कोई जरूरत नहीं है।

जनताने चारों ओरसे हर्षध्वनि की।

भाषण समाप्त भी न हो पाया था कि पुलिस के सिपाही गिरफ्तारीका वारण्ट लेकर पहुंचे।

इन्दु—भाइयो, मैं तो चली। जब तक तुम्हारे वादे पूरे न किये जायं, तबतक पूरी हड़ताल कर दो।

जनता उसकी मोटरके सामने दौड़ी।

इन्दु—इन्स्पेक्टर साहब, घर होती चलूं। सामान भी ले लूं।

इन्दु घरकी ओर चली। जनता भी पीछे-पीछे चली।

इन्दु—तुम्हारा काम यह नहीं है। जाओ और सारे शहरमें पूरी हड़ताल करो। तुम अपना काम आगे बढ़ाओ।

इन्दु घर पहुंची तो अपने ससुरके पास गयी। घरमें प्रभा भी आ गयी थी।

प्रभा इन्दुको देखकर खुश होती हुई बोली—आपके आनेके पीछे ही मैं भी चली आयी। मेरी तबियत वहां नहीं लगी। मैंने आपके लिए पकौड़ियां भी बनायी हैं, चलिये, खाइये।

इन्दु चेहरेपर मुस्कराहट लाती हुई बोली—आपने मेरे लिए ही बनाया है कि औरोंके लिए भी? मेरे साथ कई मेहमान भी आये हैं।

प्रभा—क्या भाई साहब वगैरह तो नहीं आये, मैंकेसे?

इन्दु—हां भाई साहब ही कहना चाहिये बिदा कराने आये हैं।

प्रभा चकित होकर बोली—साफ-साफ बतलाइये!

इन्दु—पुलिस आयी है। मेरे नाम वारण्ट है।

प्रभाकी आंखोंमें आंसू आ गये। बोली,-क्या गजब हुआ भाभी।

इन्दु—गजब क्या हुआ? यह कहती हुई जल्दी-जल्दी सामान समेटने लगी।

प्रभा—चलिए, कुछ खा लीजिये भाभी।

इन्दु—हां, खाती हूँ। जल्दी-जल्दी सामान भी तो ठीक करने हैं। नहीं वहींसे चली जाती। यह तो उनकी शराफत है कि यहां तक आये।

प्रकाशचन्द्रजी गोदमें बच्चा और आँखोंमें आंसू लिए आये और प्रभासे बोले—देख प्रभा, तुम आज ही आयी, और तुम्हारी भाभी आज ही चलीं।

दरवाजेपर नौकर आकर बोला—पुलिस वाले कह रहे हैं कि जल्दी करें।

प्रभा खानेके लिए बार-बार आग्रह करती है। प्रभाके आग्रहके कारण इन्दु थालीपर बैठ गयी। दो-तीन लुकमा किसी तरह गलेके नीचे उतारती हुई बोली—बीबी जल्दी है।

प्रभा रोती हुई बोली—जाने अब किस दिन तुम मेरे हाथका खाओगी।

इन्दुने दो-तीन कौर और किसी तरह गलेके नीचे उतारे।

इन्दु जाने लगी, तो प्रभा पकड़ कर खूब रोयी। छोटे बच्चेको प्रभा अपनी गोदमें लेना चाहती थी, पर वह आता ही न था। बड़ा खुश होता हुआ मांसे बोला—अम्मा, चलो, जल्दी चलें, मोटल खड़ी है।

प्रभा बोली—देखो भाभी, यह कैसा खुश है। मेरी गोदमें नहीं आ रहा है।

इन्दु—किसका बेटा है?

दरवाजेपर जाने लगी तो डेवढ़ीके पास खड़े प्रकाशचन्द्रजीके पैरोंपर सिर रखती हुई बोली—आशीर्वाद दीजिए।

प्रकाशचन्द्रजी गोदमें ललितको लेते हुए बोले—आज इस लल्लूको दादाकी गोद भी नहीं अच्छी लग रही है। कहीं मां छूट जायगी तो वह क्या करेगा?

पुलिस—जल्दी कीजिये, बहुत देर हो रही है।

प्रकाशचन्द्र कांपते हुए हाथोंसे बहूकी पीठ पर हाथ फेरते हुए बोले—मेरे सामने अंधेरा-ही अंधेरा है, बेटी?

बहू—आप मिलने आइयेगा न। आपका आशीर्वाद है। आपके ही बलपर तो हम लोग...

प्रभा खड़ी रोती रही।

बरसातके दिन, बूंदें पड़ रही हैं, जैसे अभागे मुल्कके दुःखपर मेह भी आंसू गिरा रहे हों। मोटर इसीमें सनसनाती हुई जेलकी ओर जा रही थी।

* * *

इन्दुके जानेके बाद मुन्शीजी प्रभासे बोले—बेटी, रो मत! हमारे घरसे ये लोग प्रकाशके साथमें आये। मैं तो कहता हूँ कि आज ये लोग प्लाट बेच देते तो मैं उसे खरीद कर गरीबोंको दे देता, फिर ईश्वरके हाथमें है।

प्रभा उद्दण्डताके साथ बोली—दादा, दुनियामें ईश्वर नहीं है।

प्रकाशचन्द्र—नहीं बेटी, ईश्वर है। दुनिया ही पापी है। मैं भी उन्हीं पापियोंमें हूं। मैंने भी इसी तरह रुपये जमा किये हैं। यह बुद्धि आज आयी। जब आंखके सामने दिखलाई पड़ रहा है कि बहू जेल गयी, बेटा जेल गया, तब मेरे भी समझ आयी। एक दिन य[ह] सब चीज यहीं छूट जायगी, मैं अपने साथ थो[ड़े] ही लेता जाऊंगा। मेरे पापोंका प्रायश्चित्त य[े] लोग करेंगे। मैंने पाप किये, ये लोग प्रायश्चि[त्त] करने जेल गये हैं। मेरे दिमागमें तब आता, [तो] मैं खुद अपना प्रायश्चित कर चुका होता, [तो] वह क्यों मेरा फूल-सा बच्चा आज मुझसे जबर[दस्ती] छीन लिया जाता।

इन दोनोंमें बड़ी देर तक बातें होती रहीं। किसीने मुंहमें दाना तक नहीं डाला। कब [सो] गये दोनों, किसीको खबर नहीं। स्वप्नमें [भी] वही उजड़ा संसार दोनों देखते रहे।

* * *

सुबह खाना-पीना नहीं हुआ था कि वे जे[ल] गये। वहां जेलकी मेट्रनको काफी रुपये दे आये। कह आये कि इन्दुको कोई तकलीफ न हो[ने] पाये। इन्दुसे बोले—बेटी, किसी तरहकी क[ोई] चिन्ता न करना। लल्लूको गोदमें लेकर उ[न्हें] बड़ा सुख हो रहा था। लल्लूसे बोले—[तुम] चलो न मेरे साथ बेटा, तुम तो कैदी नहीं हो।

लल्लू—तुम भी यहीं क्यों नहीं रहते ?

प्रकाशचन्द्र—मुझे कोई रखेगा भी ।

लल्लू—तुम नहीं रहोगे तो मैं तो नहीं जाऊंगा । मैं अम्माके पास रहूँगा ।

मेट्रनसे बोले—देखना, इस बच्चे और बहूको कोई तकलीफ न होने पाये ।

मेट्रन—नहीं सेठ साहब, आप मुझे घरका ही आदमी समझो ।

मेट्रन घड़ीकी ओर नजर करके बोली,—समय हो गया ।

मुंशीजीने सजल आंखोंसे बहूको देखा । बच्चे को चूमकर बोले,-ईश्वर तुम सब लोगोंको सुखी रखे ।

आज फिर मीटिङ्ग है । आज प्रकाशचन्द्र मंचपर खड़े हैं, बोलनेके लिए । कलकी वही सारी बातें प्रकाशचन्द्र ने भी दुहरायी—तुम लोग हड़ताल जारी रखो । आज यह बुड्ढा भी अपना प्रायश्चित्त करने आया है । भाइयो, हमी तुम्हारे प्यारे हैं । हमलोग बड़ी-बड़ी कोठियां, बड़े-बड़े बङ्गले अपने लिए बनवाते हैं, जिसके पीछे तुम बे-पनाह, बेमौत मर रहे हो । तुम्हारे बगैर हमारा एक दिन भी नहीं चल सकता, लेकिन तुम्हें मरते देख कर हमें जरा भी पीड़ा नहीं होती । बल्कि यों कहना चाहिए कि धर्मके नामपर हम पाप कर रहे हैं । फिर भी तुम लोगोंसे कह रहा हूँ, तुम लोग अपना हक हरगिज न छोड़ना ।

पांच मिनट भी प्रकाशचन्द्र बोलने न पाये थे कि पुलिसने आकर उन्हें भी पकड़ लिया । उन्होंने भी जनताको समझाया कि मेरे पीछे आने के बजाय अपने काममें लगो । मेरा बेटा और मेरी बहू तुम्हें काफी समझा चुकी हैं । हमारे परिवारके साथ तुम्हारी सबसे बड़ी ड्यूटी है कि हम जो काम छोड़े जा रहे हैं, उसे पूरा करके ही छोड़ना ।

उधर प्रकाशचन्द्र मोटरसे रवाना हुए कि भीड़को चीरती हुई प्रभा भी आकर मंचपर खड़ी हो गयी । वह भी बोली,-मेरा बाप अभी पकड़ा गया, उन्हींकी लड़की मैं हूं । मेरी भाभी, मेरा भाई, सभी जेलमें हैं । अभी तक मैं किसी तरह मन मसोसे बैठी थी । पिताजी से डरती थी; पर जब वे खुद जेल चले गये, तो अब मुझे किसीका न खतरा रहा, न किसीका भय । यहां तक कि मुझे मरनेका भी गम नहीं है, और वह प्लाट तुमको मिलना चाहिए । जब तक मिल न जाय पूरी हड़ताल किये रहना ।

भाषण समाप्त भी न होने पाया था कि एक सनसनाती हुई गोली आकर प्रभाके सीनेमें घुस गयी । जनता मारने वालेके पीछे-पीछे दौड़ी । लेकिन वह मोटरपर था, भाग निकला । प्रभाका पति मनोहर था वह । तड़पती हुई लाशको उठा कर भीड़ म्युनिसिपैलिटीकी ओर चली । वहांसे प्रभाके ससुर प्लाट खरीदने वाले तमाम साथियों के साथ रोते हुए प्रभाकी अर्थीपर फूल फेंक रहे थे । जनताको सम्बोधित करते हुए बोले-तुम्हारी जमीन तुम्हें देता हूं । वह देवी मेरे कुलका नाम उज्ज्वल कर गयी । मेरा बना-बनाया घर जरूर एक क्षणमें चौपट हो गया । वह निकम्मा लड़का, जिसने तुम्हारी प्रभाको मारा है, उसका मैं बाप हूं । आज मैं अपने घरकी सारी सम्पत्ति राष्ट्रकी बलि चढ़ा रहा हूँ । तुम सबोंको धन्यवाद देता हूँ, और प्रकाशचन्द्रको धन्यवाद देता हूं, जिसकी कोखमें ऐसी कन्या पैदा हुई । उसने मेरे भी पापका प्रायश्चित्त कर डाला ।

प्रेमचन्द पर एक दृष्टि

ले०—श्री शिवशेखर द्विवेदी

प्रेमचन्दके सम्बन्धमें आज भी बहुतोंके मनमें यह प्रश्न उठता है कि हिन्दीके कथा-साहित्यमें उनका आविर्भाव निश्चय ही आकस्मिक था । एक तरहसे उनका आविर्भाव बेशक आकस्मिक था और ये अपने क्षेत्रमें असाधारण भी थे । उन्होंने अपने जीवनमें कर्मरत रहकर अपनी कठोर-तम साधनाकी सिद्धिका मधुर फल हिन्दी वालोंको दिया है । इसलिए उनके समयके लोग आज भी उनकी प्रतिभाके कायल हैं । लेकिन इस अचरजका एक कारण दूसरा भी है । इस बातसे इन्कार करनेका सचमुच कोई उपाय नहीं है कि उनकी कहानियोंमें जीवनका हर एक पहलू जैसा-का-तैसा—स्वाभाविक सहज ही स्पष्ट हो उठा है । उसमें चिन्ताकी विशेषता है, कल्पना की नहीं और यह ढर्रा हिन्दीके बिलकुल अनुकूल है । हिन्दीमें सत्य खोजका तकाजा है । लेकिन इस तकाजेमें हमारी आत्मा जितना खिल उठती है, मन उतना ही संकुचित हो जाता है । हमारे चिर संस्कारोंको धक्का यहीं पर लगता है । धक्का लगते ही आत्म-प्रसादकी हानि होती है । यद्यपि सच्चे रसिकोंमें ऐसे धक्केसे कोई बेचैनी नहीं होती—वे साग्रह और बेखटके इसका उपयोग करते हैं और वास्तवके करीब बिना छलाङ्ग भरे ही पहुंच जाते हैं । परन्तु जिनके हृदयमें शास्त्र-संस्कार प्रबल होकर जड़ जमाये बैठे हैं, वे प्रेमचन्दकी कहानियां पढ़ कर जितना ही अभिभूत होते हैं, उतना ही उनके प्राण नवीनताके लिए छटपटाते हैं । हिन्दीमें उनके जमाने तक जैसे भावकी साधना और जैसे आदर्शकी चर्चा थी, उनके उदयसे मानों उसीका अचानक विरोध हो गया । इस गदरकी क्या जरूरत थी ? जीवनके सत्यको लेकर इधर-उधर गर्दन घुमाना उसे रसोच्छ्वसित करनेकी ऐसी छीछालेदर क्यों ? प्रेमचन्दकी प्रतिभाकी यह मौलिकता इस समय भी सन्देहका कारण है । हमारे जीवन की जीर्ण बुनियादके पेंदेमें, घनीभूत अन्धकार में जो प्रेत-मूर्त्तियां प्यासकी सूखी जबान एक बूंद जलके लिए लपलपा रहे थे, प्रेमचन्दने उन्हीं-की दर्द भरी आवाज हमारे कानों तक पहुंचायी है । यही हमारी मांग थी और मांगकी चीज देखते ही हम लोगोंमें लूट मच गयी । देवकीनन्दनके बाद हम लोग प्रेमचन्दको कितना ज्यादा समझ सके । लेकिन देवकीनन्दनके बाद प्रेमचन्दका आकस्मिक उदय बेशक एक अप्रत्याशित फल है । इस बेमेल—वैषम्यकी कोई कीमत है या नहीं, साहित्यकी भाव-धाराके क्रम-विकास में प्रेमचन्दका अभ्युदय स्वाभाविक है या नहीं; यहां इसीकी मीमांसा जरूरी जान पड़ती है ।

देवकीनन्दनका शासन तिलस्मी साहित्यके अव्यवस्थित समयमें आरम्भ हुआ था । उनके समकालीन इसी दिशामें मनोयोग पूर्वक कुछ कर-धर रहे थे । उस समयकी यही विशेषता है । अर्थात् कल्पना और व्यक्तिगत भाव-दृष्टिका विशेष मायिक फैलाव ही इस साहित्यमें है । यथार्थतः देवकीनन्दनमें इसके अलावा और कोई बात हमें नहीं मिलती । उनके पात्रोंके अति साधारण जीवन-यात्रापर भी असाधारण भाग्य-चक्र ही चलता नजर आता है । इसीलिए भाव-की बनावटमें घटनाओंका चक्र-व्यूह अति अस्वाभाविक किन्तु बेहद दिलचस्प हो उठा है ।

उन्होंने घटना, चरित और परिस्थितिको कल्पनोपयोगी बनाकर अपनी निजी साहित्यिक रस-पिपासाका प्रदर्शन काफी अच्छे ढङ्गसे किया है। यही उनकी रचनाका अपनापन है। इससे भिन्न दिशामें गमन करनेसे उनकी व्यापार बुद्धिपर ही उल्कापात हो जाता और तब उनका सम्पूर्ण उत्साह चौपट हो जाता। सच तो यह है कि परिभाषाके अनुसार उनके उपन्यास-उपन्यास नहीं, एक तरहके प्रेम-काव्य हैं। भाषा-भाव और कल्पनाका ऐश्वर्य पाठकको स्वप्नाकुल कर देता है। ऐसे उपन्यासोंके पाठमें मनपर बड़ी: मुस्तैदीसे काबू रखना पड़ता है। अन्यथा रचनाकी सौन्दर्य - सृष्टिके आवेग और अस्वाभाविक कल्पना मोहसे मोह कर मनको बेहाथ कर देती है। कैसी विचित्र और सराहनीय सफलता है। देवकीनन्दनकी इस भाव-कल्पनाने ही पाठकों पर जादू किया। हिन्दी भाषाके भावी महत्वकी सूझमें उस समय जो राजनीतिक दांव-पेंच चालू हो गये, वे सब केवल उन्हींकी रचनासे एक तरह ठप्प हो गये—हिन्दी पाठकोंकी संख्या बेहद बढ़ गयी।

लेकिन इस नव-सृष्टिकी प्रौढ़ और पुरानी होनेके पहले ही, अर्थात् उसी युगमें दूसरे उपन्यास लेखकों पर कहींकी आमदनीसे अथवा भीतरके ही मौलिक तत्वोंकी सजावटसे कोई हृदयको छूनेवाली विशेषता नहीं पैदा हुई। हां उल्टा-सीधा बङ्गला से बहुत कुछ सम्बन्ध यत्र-तत्र हो चला था। असलमें इस जमाने तक खसूसियत लानेवाली विदेशी भाषासे हिन्दीवालोंका कोई परिचय-सम्बन्ध दृढ़ नहीं हो पाया था, काव्य, नाटक-उपन्यास और कहानियोंमें कोई जिन्दादिली, कोई अनूठापन न था। ठीक इसी समय कथा-साहित्यमें प्रेमचन्दका उदय हुआ। यहां उनके ढेरके ढेर उपन्यासोंको छोड़ कर यदि हम उनकी प्रतिभाकी सबसे सुन्दर और मौलिक सृष्टि कहानियोंकी याद ताजी कर लें, तो हमारा काम चल जायगा। देवकीनन्दनकी भावुकता सत्यको एक किनारे छोड़कर इसकी खोजमें अहापोह कर रही थी, प्रेमचन्दकी भाव-कल्पनाने उसी सत्यको अपूर्व महिमासे मण्डित किया। जो चरित देवकीनन्दनकी व्यक्तिगत कल्पनाका रङ्ग छूकर अति

उपन्यास-सम्राट स्वर्गीय प्रेमचन्दजी

असाधारण और अति अपरिचित बन गये थे, प्रेमचन्दको पाकर पुनः अपने अति स्वाभाविक असलियतसे हमारे चिर-परिचितके रूपमें हमारे बीच बिचरने लगे। यही नहीं, बल्कि तुच्छ और क्षुद्र हो अति अपूर्व हो उठे। सत्यके भीतरसे लोकोत्तर-चमत्कार अचरजकी सृष्टि करने लगा। उनकी कल्पनाकी मूल प्रवृत्ति वास्तवके अति-परिचित पर्देको हटाकर पदार्थके भीतरसे सौन्दर्यको व्यक्त करना था। यही उनकी कल्पनाका मनोरम रूप है। और इसे ही असल मान लेनेके लिए पाठकोंके मनमें स्फूर्त्ति पैदा हुई। यद्यपि इस महानन्दके मूलका अपूर्व रस कहां निन्दित है, इसकी कोई व्याख्या लेखकने अपनी रचना[illegible] कभी कहीं नहीं की। तब इतना अन्दाज आसा[illegible]से लग जाता है कि उन[illegible] कहानी लिखनेकी प्रेरणा [illegible] इस रस-सृष्टिकी जड़ है लेखन-कलाकी मूल प्रेरणा [illegible] यही है। किन्तु उनके काम[illegible] फैलानेवाले लोगोंमें भ्रम पैदा करके भावराशिकी इस विषमताकी जानकारीको दुरू[illegible] कर दिया है। इसीलिए कहानी और उपन्यासोंमें उनकी आत्मको खोज लेनेके लिए कु[illegible] गम्भीर मुद्राकी जरूरत है।

पृथ्वीकी धूलको सोना बनाना, मानवके साधारण सुख-दुःख, आशा-आकांक्षाको विश्व-सृष्टिके इस महान रहस्यको उसीके भीतर समाहित करके प्रत्यक्ष करना, को[illegible] सहज काम नहीं है। इस दुर्दि[illegible]में जब यह नग्न सत्य ही समाजके सर चढ़कर अनवरत चीत्कार कर रहा है, लोगोंक[illegible] कल्पनाके साथ आज भी उसका ठीक-ठीक मोल नहीं हुआ है। अतएव, ऐसे प्रभाव को कभी भी आकस्मिक नहीं माना जा सकता।

प्रेमचन्दकी चिन्ताने हमा[illegible] ऊपर धीरे-धीरे असर किय[illegible] है। देवकीनन्दनकी सायंका[illegible]लीन रङ्गीन सौर-शोभाके बी[illegible]से प्रेमचन्दकी शुभ्रज्योत्स्ना[illegible] शुभ्र-किरणें अशान्तच्छ[illegible] हृदय-गह्वरमें नाच उठी हैं, यही उनका स[illegible] अनोखापन है। लेकिन इसमें कोई आवेग, को[illegible] उत्तेजना नहीं है। जिस सामाजिक और पारिवारिक विधि-व्यवस्थामें पड़कर हिन्दी जनता[illegible] आत्म-त्यागका महत्व और स्वार्थ-योगका [illegible] प्रबल हो उठा है, वही अति सीधी, सरल सार्वजनिक भाषामें प्रेमचन्दजीकी देन है।

कल्पनाकी दुनियामें उड़ते-फिरते अन्यान्य लेखकोंकी तरह प्रेमचन्दका कथानक अकारण कहीं भी काव्य-भारसे बोझिल नहीं हुआ। उनकी यह अपूर्व सादगी ही पाठकको अपनी तरफ खींचती है। हां, कल्पनाकी इस गरीबीका परिचय लेखकके उपन्यासोंमें खटकता है, जब उनमें हमें कहानीका ढांचा ही विशेष पल्लवित मिलता है। यदि वे कहानी लिखकर ही कथानकको विराम दे देते, तो और भी अधिक सन्तोष और तृप्ति समाजके भाग्यमें सञ्चित होती। किन्तु इससे क्या? सम्भव है, कथानककी चिन्तासे बचनेके लिए ही लेखकको ऐसा असन्तोष करना पड़ा हो। अथवा, पाठकोंकी लाचारी और प्रकाशकोंके चालू सलका ने उन्हें बाध्य किया हो। क्योंकि प्रकाशकोंमें व्यवसाय-बृद्धिका रस तो है, पर मीठा नहीं। वे अपनी लाचारी हाथ लगे लेखकोंपर ही छोड़कर निश्चिन्त होना चाहते हैं, उनकी इस गैर-जिम्मेदारी और बे-ईमानदारीने प्रत्येक लेखकको घोर परिश्रम करनेसे बचे रहनेकी सलाह दी है। यदि लेखक अपनी जिम्मेदारीपर तुल गया, तो उसे अपनी आयुके दिन, जो कर्म-भोगके लिए अलक्ष्य शक्तिसे उसे मिले हैं, समाप्तिके पहले ही उसे समाप्त हो जाना पड़ेगा। अतएव इस तरहकी किसी भी कमजोरीके लिए लेखकको जिम्मेदार मानकर उसकी जांचकी चेष्टा किसी भी आलोचकके पक्षमें न्याय-सङ्गत साबित नहीं होती।

साहित्यकी बहती धारामें लेखकका स्वागत, स्वागतकी जिम्मेदारीकी अदायगीकी आशा, तबतक निश्चय ही नहीं की जा सकती, जबतक इसे श्रम करनेके लिए अभाव-हीन स्थितिमें पहुंचानेका स्वाभाविक विधान न हो। इसीलिए प्रेमचन्दके अस्त होनेके बाद उनकी जगह पर अधिकार करनेका साहस किसी भी तरफसे नहीं नजर आता। लेखकोंकी इस मनोवृत्तिका प्रभाव धीरे-धीरे प्रकाशकोंकी व्यापार-दृष्टिपर निश्चय ही पड़ेगा।

संक्षेपमें प्रेमचन्दकी रचनाओंका महत्व और उनकी मौलिकताके सर्वमान्य आदरका यही परिचय है।

जीवन-पथपर

बन्धनोंमें, हारमें, रोना यहांपर भूल होगी!

१

आज पथमें, एक क्षण भी, सोच कर रुकना न होगा,
शून्यताको देख राही! बीचमें थकना न होगा,
हो अंधेरी रात चाहे, क्रूर-गर्जन हो प्रलयका
घेर ले तुझको बवंडर, नृत्य हो चाहे अनयका,
वज्र बरसे आज नभसे, हों प्रकम्पित दश-दिशाएं,
ज्वार सागरमें उठे औ' मृत्यु क्षण क्षण पास आये,
एक क्षण भी चेतना खोना यहांपर भूल होगी!
बन्धनोंमें, हारमें, रोना यहांपर भूल होगी!

२

जागरण-ही जागरणका बस यहांपर नाम होगा,
धैर्य-का ही पाठ पढ़नेका यहांपर काम होगा,
एक क्षण तड़पन न होगी देख कर विद्युत् गगनमें
एक क्षण धड़कन न होगी सोच जीवन आज मनमें,
बन पड़ेंगे आज साथी, वायुके झोंके भयङ्कर,
ले चलेंगे पार तुझको व्योममें जो शून्य फर फर
खोल आखें देखना कोना यहांपर भूल होगी!
बन्धनोंमें, हारमें, रोना यहांपर भूल होगी।

३

आज मेरे प्राण सुनलो मौन रह कर दुख न सहना,
न्यायपर, अधिकारपर, तुम आज बढ़ कर शीघ्र लड़ना,
छोड़ दें यदि साथ, साथी, बीच जीवनकी डगरपर,
भीख लेना मत दयाकी, आज दृढ़ताके कहो स्वर,
आज जीवित जब जगत्‌में फिर मरणका गीत क्यों हो,
पास होवे यदि सफलता फिर रुदन- संगीत क्यों हो;
आज भयसे एक पल सोना यहांपर भूल होगी!
बन्धनोंमें, हारमें, रोना यहांपर भूल होगी!

—श्री महेन्द्र माचवे

पाकिस्तानकी मांग और भारतीयकरण

लेo—श्री रामप्रताप गोंडल एमo एo, साहित्यरत्न

अखिल भारतीय कांग्रेसके सामने मुस्लिम लीग, जो अपने आपको समस्त भारतीय मुसलमानोंकी प्रतिनिधि संस्था मानती है, बहुत अर्से से अपनी मांगें रखती आ रही है। मुस्लिम लीगकी ओरसे ये मांगें हिन्दू-मुस्लिम समझौते के आधार-स्वरूप पेश होती हैं। राष्ट्रीय दृष्टिकोणको सामने रखकर इनके औचित्य-अनौचित्य की ओर उसका ध्यान कभी नहीं गया। भारत के हिन्दुओं और मुसलमानोंकी आर्थिक, सामाजिक, और राजनीतिक स्थितिकी ओरसे उदासीन रहकर केवल इने-गिने कुछ सम्पन्न मुसलमानोंकी प्रभुता स्थापित करनेके लिए उसका यह प्रयत्न मालूम होता है। जिन विचारशील व्यक्तियोंको मुस्लिम लीगकी पिछली चौदह शर्तों के अध्ययनका अवसर मिला है, वे उनकी इस मनोवृत्तिको अच्छी तरह जानते हैं। पाकिस्तान की वर्तमान मांग भी, जिसमें वे अपने लिए भारतको विभाजित कर पाकिस्तान और हिन्दुस्तानमें बदल देना चाहते हैं, उसी श्रेणीमें आती है।

भारतीय राजनीतिमें केन्द्रीय सरकारको दुर्बल कर प्रान्तीय सरकारोंको जोरदार बनानेका जो प्रयत्न सरकार द्वारा चल रहा है, वह हिन्दुस्तानमें कुछ कम फूटके बीज नहीं बो रहा है। युद्ध-कालमें ही खाद्य पदार्थों वगैरहकी व्यवस्था करनेमें केन्द्रीय सरकारको प्रान्तीय सरकारोंका पग-पगपर सामना करना पड़ा और यह भारतमें ब्रिटिश शासनके विद्यमान होनेपर भी। ब्रिटिश राजनीतिज्ञ अपनी इस कठिनाईको जानते हुए भी इस नीतिका समर्थन केवल इस आधारपर कर रहे हैं कि अगर भारतमें वे प्रान्तीयताकी भावनाको राष्ट्रीयताकी भावनासे बलवती रख सके, तो उन्हें एक लम्बे कालके लिए, कुछ छोटी-मोटी शासन-सम्बन्धी मुसीबतोंको झेलते हुए भी अपनी राजनीतिक और आर्थिक सत्ता कायम रखनेका अवसर मिलता रहेगा।

भारतमें प्रान्तीयताकी भावना वैसे भी कम नहीं है, परन्तु अब ब्रिटिश शासकोंकी इस राजनीतिक चालने एक और पाकिस्तानको जन्म देते हुए दूसरी ओर देशके कुछ प्रमुख राजनीतिज्ञोंको भी उधर झुका दिया है।

मुस्लिम लीगकी पाकिस्तानकी मांगको स्वीकार करनेवालोंमें प्रमुख माननीय श्री राजगोपालाचार्य हैं। आजसे दो-तीन वर्ष पूर्व जब राजाजी इस प्रस्तावको लेकर सामने आये थे, तो हमने यह समझा था कि यह केवल एक राजनीतिक चाल है, जिससे वह ब्रिटिश सरकार तथा लीगको देखना चाहते हैं कि वे कितने पानीमें हैं। महात्मा गान्धी भी उधर कुछ झुक गये थे। इसमें सन्देह नहीं कि महात्मा गान्धी तथा उनसे एकमत रखनेवाले कांग्रेसके कुछ गांधीवादी नेता सदैवसे ही लीगकी मांगोंके सामने झुकते आये हैं, जिसका परिणाम यह हुआ कि लीगकी मांगें दिन-ब-दिन बढ़ती गयी हैं और अब जिस रूपमें उसकी ओरसे मांगें रखी गयी हैं, उनके अनिष्टकारी परिणामसे कोई भारतीय विद्वान अनभिज्ञ नहीं।

परन्तु अब प्रश्न यह उठता है कि मुस्लिम-लीगकी पाकिस्तानकी मांगको ठुकरा कर हमें हानि ही क्या हो सकती है?

कुछ विद्वानोंका मत है कि पाकिस्तानकी मांग अस्वीकृत करनेपर मुसलमान स्वाधीनता प्राप्तिमें हिन्दुओंका साथ नहीं देंगे। कुछ राजनीतिज्ञ अब भी यह विश्वास रखते हैं कि हिन्दू-मुस्लिम समझौता हो जानेपर ब्रिटिश सरकार भारतकी शासन-डोर भारतीयोंके हाथोंमें सौंप देगी, जैसा कि वह समय-समयपर कहती आ रही है।

ब्रिटिश सरकारकी राजनीतिक चालोंको देखते हुए यह केवल हमारा भ्रम है। हिन्दू-मुस्लिम समझौता भर हो जानेसे हमें कुछ मिलेगा नहीं, ऐसा मेरा विश्वास है। सम्भव है इसमें कुछ राजनीतिज्ञ अपनी दुर्बलताको छिपाना चाहते हों। इस देशमें ऐसे लोगोंकी कमी नहीं, जो अपनी कमजोरी-वश यह समझते हैं कि जो कुछ भी अधिकार हमें मिल सकते हैं, वे केवल अपने प्रभुओंके सामने पल्ला पसारकर उनसे प्रार्थना कर, घुटने टेककर या भीख मांगकर। इसके अतिरिक्त उन्हें कोई उपाय भी दिखायी नहीं देता। वे उनका सहयोग देना ही अधिक हितकर समझते हैं और इसलिए उनकी हां-में-हां मिलानेमें ही स्वराज्य-प्राप्तिकी कुञ्जी समझते हैं। वे अपनी इस नीतिसे भारतका भला नहीं कर पाते, तो कम-से-कम अच्छी-अच्छी नौकरियां और पद पाकर अपनी स्वार्थ-सिद्धि तो कर लेते हैं। इन लोगोंकी ओरसे हमें हमेशा सतर्क रहना चाहिये।

हिन्दू-मुस्लिम समझौता हो जानेपर अगर हमें ब्रिटिशकी ओरसे केवल आवेदन-आधारपर स्वाधीनता या औपनिवेशिक स्वा[…] नहीं मिल सकता तो मुस्लिम-लीगकी पा[…]स्तानकी मांग ठुकराकर और कुछ मुसलमा[…] विरोध कर हमारी ऐसी विशेष हानि ही[…] हो सकती है?

संसारकी राजनीति जिस ओर बढ़ र[…] और जिसमें शान्ति स्थापित करनेके लिए[…]चीन और शक्तिशाली भारतका जन्म हो[…] चाहिये, उसके लिए भारतकी केन्द्रीय सर[…] दुर्बल बनकर यह कार्य सम्पन्न नहीं कर सक[…] प्रान्तीय सरकारोंके हाथमें मामूली शक्ति[…] जानेपर अगर वे भारतीयताके विपरीत जा स[…] हैं, तो फिर पाकिस्तानको जन्म देकर […] केन्द्रीय सरकार प्रभुत्व-हीन ही रह जाये[…] क्योंकि अगर प्रान्तोंको केन्द्रसे सम्बन्ध-वि[…]का अधिकार मिल सकता है, तो पाकिस्ता[…] अवश्य ही, सबसे पहले। इस दृष्टिसे पाकिस्[…] की मांग सर्वथा भारतीयता और विश्व शा[…] के विपरीत जाती है और इसका स्वी[…] करना या इसका प्रलोभन भर मुस्लिम ली[…] दे देना भारतकी उर्वरा भूमिमें विष-बीज डा[…] है।

मुस्लिम लीग समस्त मुसलमानोंकी प्र[…]निधि संस्था है। यह इतना ही सत्य है कि हिन्दू महासभा समस्त हिन्दुओं[…] प्रतिनिधि संस्था है। जिस प्रकार अधि[…] हिन्दू हिन्दू-महासभाके साथ नहीं हैं, […] प्रकार अधिकांश मुसलमान मुस्लिम ली[…] साथ भी नहीं हैं। मुसलमानोंका गांवोंमें […] वाला एक ऐसा वर्ग है जो राजनीतिसे उ[…] ही उदासीन है, जितना उनके साथ रहने[…] हिन्दूवर्ग। उनकी समस्याएं हिन्दुओंकी [समस्]याओंसे किसी प्रकार भी भिन्न नहीं[…] वे हिन्दुओंके साथ रहकर ही अपनी आ[र्थिक] स्थिति सुधारना चाहते हैं। शहरी मुसल[…] में ऐसे बहुत हैं जो, मुस्लिम-लीगको […] योग नहीं देते। जिन्नाको जो पञ्जाब—मु[…] प्रधान प्रान्तमें—मुंहकी खानी पड़ी है […] जिस प्रकार यूनियनिस्टपार्टीके सदस्योंने मु[…] लीगकी सहायतासे अपना नाम कटवा […] है उससे यह भली प्रकार प्रकट होता है

मुस्लिम लीग मुसलमानोंकी एकमात्र प्रतिनिधि संस्था नहीं और न उसकी नीतिसे अधिकांश मुसलमान सहमत ही हैं। राष्ट्रीय विचारोंके पढ़े-लिखे मुसलमान सदैव मुस्लिम लीगका विरोध करते आये हैं और अब मुस्लिम मजलिस, जो राष्ट्रीयताकी ओर अधिक झुकी हुई है, खुल्लम-खुल्ला मुस्लिम लीगका विरोध कर रही है, और पाकिस्तानकी मांगको असङ्गत और अराष्ट्रीय बतलाती है। अतः अब मुस्लिम लीगसे झुककर समझौता करनेका प्रश्न ही नहीं उठता।

कांग्रेस शायद इस भ्रममें भी है कि भारतकी स्वाधीनता अति निकट भविष्यका प्रश्न है। भारतीय जनताकी अशिक्षा, निपट निर्धनता, जातीय वैमनस्य, अपनी उन्नतिकी ओरसे उदासीनता, अन्ध-विश्वास, धर्मान्धता वगैरह उसकी स्वतन्त्रता-प्राप्तिके मार्गमें जबर्दस्त बाधक हैं और जबतक एक विशेष भाग (अधिकांश ही कहिये) इनसे मुक्ति नहीं प्राप्त कर लेता, तब तक अपने ध्येयको हम प्राप्त नहीं कर सकते। राष्ट्रीय भावनाएं सामाजिक उन्नतिके साथ साथ चलेंगी और सामाजिक उन्नति हमारे साथ १०-२० वर्षका प्रश्न नहीं और इसीलिए स्वाधीनता प्राप्ति भी [...]०-९ वर्षोंकी बात नहीं। हम यहांपर बाह्य कारणोंकी बात नहीं कर रहे हैं, जिनके कारण भारत किसी भी समय, यूरोपके छोटे-छोटे देशोंकी तरह विश्व-शान्तिमें महत्वपूर्ण बनकर अथवा बड़ी-बड़ी शक्तियोंमें समझौते-स्वरूप अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकता है। वह समय इसी युद्ध-कालमें अथवा उसके बाद भी आ सकता है।

कांग्रेसको केवल एक राजनीतिक संस्था मानकर अगर हम इसे अपनी समग्र राष्ट्रीय-भावनाओंकी प्रतीक मानें, तो हमें कांग्रेसको सर्वशक्तिमान राष्ट्रीय संस्था बनाना होगा और उसके लिए उपाय भी सोचने होंगे।

मुस्लिम लीगका कांग्रेसपर यह आक्षेप है कि वह हिन्दू-संस्था है। निःसन्देह कांग्रेसमें हिन्दू अधिक हैं। वैसे देशकी जन-संख्यामें भी तो तीन चौथाईसे अधिक हिन्दू है। हिन्दू अधिक पढ़े-लिखे हैं, उनमें धार्मिक-भावना भी उतनी कट्टर नहीं, राष्ट्रीयताकी भावना उनमें अधिक है, देशके स्वातन्त्र्य-संग्राममें त्याग भी वे ही अधिक करते आ रहे हैं। संक्षेपमें अगर कांग्रेसमें हिन्दू अधिक हैं, तो कांग्रेस-नेताओंको राष्ट्रीयता दृष्टिकोणको सम्मुख रखते हुए भी हिन्दू-हितोंको मुसलमानोंकी अनुचित मांगके सामने कदापि बलिदान नहीं करना चाहिये। कांग्रेस एक राजनीतिक संस्था होते हुए अपनी जड़ें काट कर जीवित नहीं रह सकती। परन्तु इसका यह अर्थ भी नहीं कि राष्ट्र-द्रोही हिन्दुओंकी मांगोंको भी वह इसी प्रकार देखने लगे, जैसे वह मुसलमानोंकी मांगोंको देखती आ रही है और हिन्दुओंसे किसी प्रकारका पक्षपात पूर्ण व्यवहार करे। इन सबके होते हुए भी कांग्रेसके सामने मुस्लिम-समस्या अपने पूर्ण रूपमें विद्यमान है। निःसन्देह यह भी नितान्त आवश्यक है कि मुसलमान अधिकसे अधिक संख्यामें, हिन्दुओं तथा अन्य अल्प-संख्यक जातियोंकी तरह, कांग्रेसमें आयें।

एक विशुद्ध राजनीतिक संस्थाके नाते जो रूप हम कांग्रेसको देना चाहते हैं, उसमें यह सम्भव नहीं हो सकेगा कि वह अपने अधीन रखकर ऐसी संस्थायें चलाये, जो राष्ट्रीयताका प्रचार भारतमें करें और विशेष कर मुसलमानोंमें। कांग्रेस ऐसी अनेक समाज-सुधारक संस्थाओंको जन्म दे सकती है, जो समाज-निर्माणका काम हाथमें लें। कांग्रेसके उद्देश्यानुसार अ० भा० चर्खा-सङ्घ, हरिजन सेवक-सङ्घ, विद्यापीठ, कमला अस्पताल, कस्तूर बा मेमोरियल फण्ड वगैरह संस्थायें समाजसुधारका काम करती हैं और करेंगी। परन्तु आगेसे आवश्यकता इस बात की है कि अधिकाधिक ऐसी संस्थाओंको जन्म दिया जाय और इनका काम कांग्रेससे अलग रहकर चले। समाज-निर्माण करनेवाली संस्थाओंके प्रवर्तक भले ही कांग्रेस कार्यकर्ता हों, परन्तु उनके सञ्चालक राष्ट्र-प्रेमी कार्यकर्ता होते हुए भी कांग्रेसके अधिकारी-वर्गमें से न हों, जिससे कि सरकारकी क्रूर दृष्टिके प्रभावसे ये संस्थायें बची रहें।

यह देखनेमें आया है कि शिक्षाके प्रसारके साथ धार्मिक भावनाएं लोगोंमें दुर्बल पड़ती जाती हैं। हिन्दुओंमें वैसे ही धार्मिक स्वतन्त्रता अधिक होते हुए शिक्षित स्त्री-पुरुषोंमें धर्मान्धता बहुत ही कम होती जाती है और धर्म (मजहब) उनके जीवनसे एक प्रकारसे अलग होता जाता है। इसी प्रकार मुसलमानोंमें शिक्षाका अधिक प्रसार करना—और वह भी हिन्दुओं वगैरहके साथ-साथ राष्ट्रीयताको प्रधानता देनेवाले स्कूलोंमें परमावश्यक है। उदाहरणार्थ यह आवश्यक है कि आर्यसमाज द्वारा सञ्चालित स्कूलों व कालेजोंमें संध्या-हवन तथा अन्य धार्मिक प्रथाओंको बन्द कर मुसलमान विद्यार्थियोंके लिए मार्ग खोल देना चाहिये और उन्हें शिक्षा भी उर्दू व सरल हिन्दीके द्वारा देनी चाहिये। इतना ही नहीं, उन्हें अन्य कई सुविधाएं जैसे छात्रवृत्ति वगैरह देकर प्रोत्साहित करना चाहिये, जिससे कि वे ऐसे शिक्षा-केन्द्रोंसे लाभ उठावें। धीरे-धीरे उनके पहनावे वगैरहमें, सबके लिए एक वर्दी वगैरह रख कर भी अन्तर कर देना चाहिये। विद्यार्थियोंके अन्दर राष्ट्रीयताके भाव भरकर जहांतक सम्भव हो, उनके अन्दर संकुचित धार्मिक भावनाओंका उदय होना रोक देना चाहिये। इस प्रकार हम हिन्दुओं-मुसलमानोंके बढ़ते हुए अन्तरको कम कर सकते हैं।

मुसलमानोंको पूर्ण स्वतन्त्रता दे दी जाये कि वे हिन्दुओंके मन्दिरोंमें, उनके स्कूलों और कालेजों वगैरहमें जा सकें, उनके कल-कारखानोंमें भर्ती हो सकें, जहां उनके भारतीयकरणकी नीति हमेशा जारी रहे। उनके साथ सद्व्यवहार तथा हमदर्दीका बर्ताव हो। उन्हें ऐसे जलसों, वाद-विवादों, साहित्यिक गोष्ठियों, कवि-सम्मेलनों, और खेलोंमें बुलाया जा सके, साथ ही उनके इसी प्रकारके अवसरोंपर हिन्दू भी पूरी तरह भाग लें। अन्तर घटानेसे ही घट सकता है। स्कूलों और कालेजोंके अतिरिक्त छोटी-छोटी उपयोगी पुस्तकें उर्दूमें छपवाकर उनके अन्दर राष्ट्रीय भावनाओंका प्रचार करना आवश्यक है। उनके जीवनको उन्नत करनेवाले आर्थिक सामाजिक और स्वास्थ्य सम्बन्धी विषय उनमें रहने चाहिये। अगर लगातार राष्ट्रीय और सामाजिक भावनाओंसे ओत-प्रोत पत्र-पत्रिकायें तथा पुस्तकें, जो उर्दू लिपिमें हों और राष्ट्रीय विचार के हिन्दुओं तथा मुसलमानों द्वारा सम्पादित हों, उन तक पहुंचती रहें, तो अवश्य ही धीरे-धीरे हम अपने उद्देश्यमें सफल हो सकते हैं। उर्दू द्वारा अपना सन्देश उन तक पहुंचाना ही एक ऐसा माध्यम है, जो काममें लाया जा सकता है। ये पुस्तकें तथा पत्र हमें मुसलमान पाठकों तक बिना मूल्य आरम्भमें पहुंचाने होंगे।

प्रचारके लिए फिल्मों और सिनेमाकी भी सहायता ली जा सकती है। हिन्दुओंके हाथमें लगभग सारा फिल्म-व्यवसाय है; और कोई कारण नहीं कि उनका पूरा उपयोग इस समस्या को हल करनेमें नहीं किया जा सकता। कांग्रेस ही हिन्दू पूंजीपतियों और मिल-मालिकोंसे

बन्ध्या

श्रीमती उषादेवी मित्रा

शिशुको हृदयपर समेटे पथ अतिक्रम करती जाती मलिना। हृदयमें आशङ्कित वेदना, पैरोंमें श्रान्तिकी निस्पन्दता, नेत्रोंमें अनिद्राकी श्रान्ति, पेटमें क्षुधाकी ज्वाला। उसके ऊपर नीचे आस-पास सृष्टिनाशका एक उद्दण्ड रूप, और हृदयपर चिपका हुआ बच्चा, सृष्टि रक्षाकी प्राणान्त चेष्टा चलती उन सबोंको चीरती, मथित करती हुई मलिना। वर्षाकी बूंदें झर कर मिट-मिट जातीं! अन्धकार जमकर स्तब्ध रहता, पवन साक्षीके रूपमें साथ देता।

नगरके प्रान्तमें उच्च अट्टालिका, अन्तःपुरसे सङ्गीतका स्वर बढ़कर बाहर आता और वर्षाकी बूंदोंको आलिङ्गन करता पथपर रमा रहता। मलिनाका जी आशा आश्वाससे पूर्ण हो उठता, भाई-भावजका गृह यह, बच्चेके लिये जरा-सी जगह एक टुकड़ा गरम कपड़ा, चम्मच भर दूध, हां, इसकी कमी न होगी यहां।

द्वारके प्रति वह दृष्टि उठाती, किन्तु यह क्या? यह मेघ-नील अक्षर कैसे?—"बन्ध्या को स्थान नहीं।" "सवेरे उठकर अपना मुंह न दिखलाया करो मलिना, भोजन न मिलेगा मुझे।" भाभीका स्वर जैसे दूरसे बढ़कर आता 'बन्ध्या-बन्ध्या'—विरामहीन ध्वनि एक हृदय को मथित करती।

वर्षाकी बूंदें झर कर रोतीं। अन्धकार निस्पन्द-सा होता, पवन साथीके रूपमें साथ देता! चल पड़ती मलिना दूसरी ओर।

अन्धकारमें मलिना पथका उद्देश्य न पाती, आंखोंके सामने अंधेरी छा जाती, पहुंच जाती मलिना लौह द्वारके सामने। प्रहरी पूछता—"कौन?" आशङ्कासे जी उसका भर उठता और जब द्वारपर वह धक्का देनेको जाती तब यह कैसा चमत्कार। कोयलेसे लिखे अक्षर—"है बन्ध्याका मुंह देखना पाप।" आंखें रगड़ कर मलिना फिर देखती। कहां, यह तो कुछ भी नहीं है। वह तो मनका भ्रम था और पुनः द्वारपर धक्का देना चाहती तब अतीतका चित्रपट मानों उसी द्वारपर अङ्कित होने लगता—अवगुंठिता वधू और गर्जना रत सास—'दूर हट जा बहू, सवेरे से बांझका मुंह देखना, राम-राम। वंशमें दिया जलानेको कोई न रहा; फिरसे शादी करूंगी अपने मथुरा की, लुप्त हो जाता वह चित्र। सामने आता दूसरा, मौर बांधे पति मथुरा। द्वारपर स्त्रियोंका मङ्गलाचार। अश्रु कलङ्कित मुख मलिना कहती—"मुझे किस अपराधसे त्याग रहे हो?"

"वंशकी रक्षाके लिये दूसरा विवाह करना पड़ रहा है। हटो मुझे बाहर जाने दो।"

द्वार रोककर खड़ी हो जाती वधू—"नहीं—नहीं।"

और तब पुरवासिनियोंके साथ गृहिणी होती उपस्थित। सदा विनीता वधू हो उठती अविनीता—"मेरे पतिको मुझसे छीननेका अधिकार दुनियाको नहीं है। मैं क्यों हटूं?"

बदलता वह चित्रपट। रातकी अंधेरीमें एक विभीषिका, धक्का देकर गृहिणी वधूको द्वारके बाहर देतीं, कहतीं—"यदि भाईके घर भी नहीं जाती,तो जा जहां तेरा जी चाहे।" द्वार रुद्ध हो जाता। धक्का देती हुई वधू विनय करती—"मां, दरवाजा खोल दो।" किन्तु द्वार न खुलता।

बदलता वह दृश्य। रातकी निस्तब्धतामें पथ अतिक्रम करती असहाया वधू। तीर नर्मदाका, स्वच्छ नील जल, 'जगह दे नर्मदा।' वधू जलमें डूब जाती। जलपर एक क्षुद्र नौका, नौकारोही—वह भद्र व्यक्ति सिहर उठता। साथ ही साथ वह जलमें कूद पड़ता।

आता और एक चित्र। सुउच्च अट्टालि भीत, त्रस्त वधू, सुपरिच्छद धारी युवक। चीत्कार करती वधू—"मुझे छोड़ दो।"

अट्टहास करता युवक—"नहीं, क नहीं।" प्रतिध्वनि करती रात भी उसीका देती। वधू भागनेका प्रयास करती। द्वार ललकारता—"खबरदार।"

गर्भवती वधू। शरीरमें एक अपूर्व का श्रान्ति, वही विशाल अट्टालिका और व नारी।

अपूर्व यह चित्रपट। सन्तानवती वधू, वर्ण-सा शिशु। मुग्ध, विस्मित, पुलकित मा बन्ध्या नहीं सन्तानवती माता पुकारती—" पुष्पा।" अजस्र चुम्बन देती उस मुखपर।

भयावह यह चित्र। प्रहाररत वह युव ज्ञानहीना प्राय वधू। रुद्यमान पुष्पा। "जा यहां अब तुम्हारी जगह नहीं है।"

भोरकी रजत दीपसी बेला, निरुद्देश या उस रत वधू, हृदयपर कन्या पुष्पा।

मुंह फेर लेती मलिना उन दृश्य पटों सोचती वह—किन्तु आजकी वधू तो बन्ध्या सन्तानवती है। फिर उसके लिये जगहकी क्यों होगी संसारमें? तब जोरसे धक्का देने ल मलिना उस रुद्धद्वार पर।

खुलता द्वार। मथुरा आकर सामने हो जाता, पीछे सास।

"कौन हो?"

"मैं मलिना, सन्तानवती मलिना।"

पल भर अवाक-विस्मयसे देखता उसे घृणा-विरागसे नेत्रोंकी दृष्टि कठोरतम हो कहता—"दूर हो वेश्या। सन्तान वती? वे का स्थान गृहस्थ घरमें नहीं हुआ करता।"

हताश-विस्मिता-सी मलिना कहती--'ब को नहीं है स्थान और न है सन्तानवतीको, मैं जाऊं कहां?

"वेश्यालयमें।" द्वाररुद्ध हो जाता।

वर्षाकी बूंदें झरकर तड़फतीं, अन्धकार कर शान्त होता, पवन बढ़कर लुटा क सो चलती जब मलिना। भोर प्रकाशमें विश्व अपूर्व मूर्ति धारण करता। भोरका उजेला लपेटे करती जाती मलिना उद्देश्यहीन यात्रा।

"बाबा।" पुकारती धीरे।

अर्द्धवयसी व्यक्ति नामावली संभाले, पहन कर उस पुकारको सुनकर रुकते—" लक्ष्मी माई?"

इस दृष्टिसे आवश्यक समझौता कर सकती है। और; अराष्ट्रीय पूंजीपतियोंसे असहयोग कर उन्हें धक्का पहुंचा सकती है, सरकारी प्रतिबन्धोंके होते हुए भी प्रचुर प्रचार समाज-निर्माणकी दृष्टि से किया जा सकता है।

मुस्लिम समस्याको सुलझानेके साथ-साथ हिन्दू समस्याको भी, जो कट्टर सनातन धर्म तथा वर्ण-व्यवस्थामें, कट्टर आर्यसमाजमें तथा अराष्ट्रीय पूंजीपतियों और मिल-मालिकों द्वारा उपस्थित की जा रही हैं, कांग्रेस साथ-साथ हल करती जाय,तो अगर महात्मा गांधी और श्री राजगोपालाचार्यके जीवन-कालमें यह स्वाधीनता न मिल सकी, तो जब भी मिलेगी, अपने शिव रूपमें मिलेगी, जिसे प्राप्त कर समस्त भारतीय अपना अहोभाग्य समझेंगे।

(नोट—लेखकके विचारोंसे हम सहमत हैं; यह आवश्यक नहीं। —सम्पादक।)

"बाबा, वेश्यालय किस ओर है ?"

व्यक्ति तब तीक्ष्ण दृष्टिसे मलिनाको देखता। पूछता—"वहां किसीसे मिलना है ?"

"नहीं।"

"और कभी गयी थीं वहां ?"

"नहीं।"

"वहां कोई तुम्हारा अपना रहता है ?"

"नहीं।"

परम आश्चर्यसे व्यक्ति तब पूछता—"वहां क्या काम है ?"

"जरूरत है ?"

"क्या जरूरत है ?"

"आश्रय की।"

"वेश्यालयमें आश्रय ?"

"मेरी जगह और कहीं नहीं है न बाबा।" मलिनाके नेत्रोंसे आंसूकी धारा बह चलती।

व्यक्ति परम स्नेहसे नामावली द्वारा उसके आंसू पोछता—"बात तुम्हारी क्या है। वह मुझे जाननेकी जरूरत नहीं है, संसारमें आश्रय नहीं ? उठ। भूल, लक्ष्मी, भूल। पिताके घर कभी सन्तानको जगह की कमी न होगी, चलो।"

"आप देवता हैं, परन्तु बाबा, इस लड़कीकी शादी मैं कैसे दूंगी ? इसके पिताका परिचय तब दुनियां मांगेगी—"

बस करो बेटी, इसकी शादी ? किन्तु मांका परिचय ही तो यथेष्ट है। दुनियांमें ऐसे भी हैं जो कि माताके परिचयसे ही सम्मानके साथ लड़कीकी शादी करते हैं। चलो।"

श्यामकृष्ण स्नान किये बिना ही पीछे लौटे। परिष्कार परिच्छन्न एक गृहके आंगनमें प्रवेश कर पुकारा—"कहां गयी गृहिणी, देखो कौन आयी है।"

गौर वर्णा, स्थूलाङ्गी नारी कमरेसे निकल आयी—"आओ बेटी।" फिर पतिकी ओर लौटकर ! हास्य मुखसे पूछा—"कौन है ?"

"मेरी और तुम्हारी बेटी मलिना। क्या इससे भी ज्यादा परिचय चाहिये गृहिणी ?"

"बस बस, बहुत है। खड़ी क्यों हो ? आओ बेटी। घर तुम्हारा है। स्नान करो, हां, उस अरगनी पर साड़ियां होंगी, ले लो। लाओ, बच्ची मुझे दो।"

उस सन्ध्यामें श्यामकृष्णकी बैठकमें मान्य सम्भ्रान्त व्यक्ति उत्कण्ठासे ही नहीं, वरन् उष्णतासे तर्क वितर्क कर रहे थे—"किन्तु भ्रष्टा मलिनाको घरमें जगह देनेका परिणाम क्या हो सकता है, इसे भी सोचा है आपने ?"—कहा एकने।

श्याम कृष्ण गोदमें पड़ी हुई पुष्पाको प्यार करते-करते बोला—"हां, मैं मानता हूं माता मलिनाकी उचित जगह उसके इस बूढ़े बापके घर नहीं, पतिके गृहमें ही होनी चाहिये थी परन्तु राधा बाबू, जो संसार एक नारीकी रक्षा नहीं कर सकता, उसकी मांग, उसके अभावोंको दूर नहीं कर सकता, उसी संसारको उसकी समालोचना करनेका, उसे त्याग व निन्दा करनेका कोई अधिकार भी है क्या ?"

"आप असीम दुःसाहसका काम कर रहे हैं।"

वृद्ध शान्त हंसा—"नहीं तो भाई, केवल मनुष्यका जो कर्तव्य है उसे ही पूरा कर रहा हूं।"

"फिर आपने यह भी सोचा है, इस भ्रष्टाकी लड़कीके विवाहके विषयमें ? कौन भद्र व्यक्ति इससे शादी करेगा ?"

"किन्तु दुनियामें वास्तविक मनुष्यत्वका अभाव तो आज तक नहीं हुआ है जगमोहन। परिचय ? पुष्पाकी माताका निष्पाप मुखका परिचय ही इसके लिये यथेष्ट है।"

फिर श्याम कृष्णने पुकारा—"बेटी मलिना, यह चायका प्याला ठण्डा हो गया है। दूसरा दे जाना, और हां, देखो तो, तुम्हारे घर कितने महाशय उपस्थित हैं। इन्हें भी तो जलपान करा दो।"

अरुणोदय

कौन वह प्राची-क्षितिजपर हंस रहा छविमान ?

वह अरुण आलोक कैसा
वह विस्मय लोक कैसा
छा रहा जो मृदु दृगोंमें नवल स्वप्न-समान ?
कौन वह प्राची-क्षितिजपर हंस रहा छविमान ?

रूप वह किसका निराला
ले करोंमें कनक—प्याला
कर रहा है जो कि स्वर्णाभा-सुधाका दान ?
कौन वह प्राची-क्षितिजपर हंस रहा छविमान ?

स्पर्शसे किसके विमोहन
हंस रही बन रेणु कंचन
कुसुम-कलियां खिल रहीं सौरभ-विकल अम्लान ?
कौन वह प्राची-क्षितिजपर हंस रहा छविमान ?

कौन वह मुसका रहा है
क्षितिजसे उठ आ रहा है
गा रहा किसका विहग- दल मधुर-मङ्गल गान ?
कौन वह प्राची क्षितिजपर हंस रहा छविमान ?

— जितेन्द्र कुमार

बमवर्षक वायुयानकी आंखें

श्री भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव

शत्रु प्रदेशमें जाकर बम बरसानेके पहले वायुयान सञ्चालकके लिये यह ठीक-ठीक जानना आवश्यक होता है कि उसे किन-किन स्थानों-पर अपने बम गिराने हैं। इस जानकारीको हासिल करनेके लिये प्रत्येक वायुसेनाके अन्तर्गत सहस्रोंकी संख्यामें ऐसे वायुयान काम करते हैं जो फोटो उतारनेके नूतनतम साधनोंसे पूर्णतया सुस-ज्जित होते हैं। वायुसेनाकी ये मानों आंखें हैं।

फोटोको तख्तेपर चिपका कर शत्रु प्रदेशका नक्शा तैयार किया जा रहा है।

फोटो उतारने वाले वायुयान हल्के किन्तु तीव्रगतिसे उड़ने वाले होते हैं। साधारणतः इन वायुयानोंपर तोप या मशीनगन फिट नहीं की जातीं। इन्हें तो शत्रु द्वारा अपने पर आक्रमण हो जानेपर सकुशल भाग सकनेके लिये अपनी तेज रफ्तार और पैंतरेबाजी पर भरोसा करना पड़ता है। इसी कारण फोटो उतारने वाले वायुयानोंके सञ्चालकका चुनाव काफी छानबीन करनेके उपरान्त किया जाता है। फोटो लेनेवाले वायुयानके सञ्चालकको एक निपुण पायलट होने के अतिरिक्त धैर्यवान और साहसी होना चाहिये ताकि उसपर आक्रमण होने पर पायलट घबरा कर अपने होश-हवास न खो बैठे। फोटो-वायुयानका सञ्चालक शत्रुके प्राङ्गणमें अकेले ही अपनी जान हथेलीमें लेकर जाता है। फोटो लेकर जबतक वह अपने देशमें पुनः लौट नहीं आता वह अपना निर्देशक स्वयं बना रहता है। अपने ही निर्णयपर उसे भरोसा करना पड़ता है। बम-वर्षक वायुयान गुट बांधकर शत्रु प्रदेशपर आक्र-मण करते हैं, वे एक दूसरेकी सहायता और परा-मर्शकी आशा रखते हैं—परस्पर वे एक दूसरेको हिम्मत बंधाते हैं। फोटो वायुयानके पायलटको तो हर बातमें स्वयं ही सोचना पड़ता है। अब और आगे बढ़ें या लौट चलें, ऐसे प्रश्नोंका फैसला उन्हें स्वयं करना पड़ता है।

शत्रु, लड़ाकू वायुयान या बमवर्षकोंकी उतनी परवाह नहीं करता जितनी फोटो वायुयानोंका। क्योंकि ये ही वायुयान जासूसका काम करते हैं। इनके उतारे हुए फोटोसे पता चलता है कि अमुक नगरमें कौन-कौन-सी फैक्टरियां शस्त्रास्त्र तैयार कर रही हैं, किस स्थानपर युद्ध सामग्री है इत्यादि। इसी कारण आकाशपर फोटो वायु-यानके प्रकट होते ही बीसियों लड़ाकू वायुयान उसे खदेड़नेके लिये आकाशमें पहुंच जाते हैं। किन्तु फोटो वायुयानका पायलट शत्रु विमानोंसे युद्ध करके व्यर्थमें खतरा मोल नहीं लेता, बल्कि पैंतरे बदल कर अपने केमरे द्वारा निर्दिष्ट स्थान का फोटो लेकर अपने अड्डे पर वापस आता है।
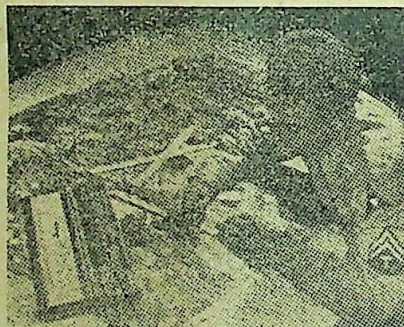
शत्रु प्रदेशका नक्शा बनानेमें संलग्न

वह जानता है कि उसके द्वारा लिये गये चित्र उसके पक्षके लिये कितना महत्व रखते हैं। इन्हीं कारणोंसे फोटो वायुयानके सञ्चालनका भार ऐसे व्यक्तिके हाथमें दिया जाता है जो अपने उत्तर-दायित्वको भलीभांति समझनेवाला हो।

बिना किसी रक्षात्मक साधनके शत्रु प्रदेशमें अकेले प्रवेश कर जाना निस्सन्देह कम साहसकी बात नहीं है। देखा गया है कि अनेक व्यक्ति दूसरोंके साथ रहकर ऊंचे दर्जेका साहस दिखा सकते हैं किन्तु एकदम अकेले शत्रु प्रदेशमें ६ मील ऊंचे आकाशपर जब कि दाहिने बायें, आगे पीछे, शत्रुके लड़ाकू वायुयान आक्रमण करते रहते हों तब ऐसी परिस्थितिमें बिरला ही कोई अपना धैर्य बनाये रख सकता है और जब उन्हें इस बातका पता रहता है कि कैसी भी विकट परिस्थिति क्यों न हो उन्हें कहींसे सहाय[ता] नहीं मिल सकती।

कभी-कभी फोटो वायुयानके पायलटको [आ]काशमें इतनी अधिक ऊंचाई पर उड़ना पड़ता [है] कि अतिशय ठण्डके कारण केमरेके धातुके केसको सिकुड़नेसे रोकनेके लिये उसे विद्यु[त] द्वारा गर्मी पहुंचानी पड़ती है। दिनके समय आठ मीलकी ऊंचाई पर उड़ते हुए फोटो वायुया[न] धरतीकी चीजोंकी फोटो दूरबीन युक्त केमरे[की] मददसे इतनी स्पष्ट उतार लेते हैं कि फोटो[में] रेलकी पटरीके स्लीपर भी आप आसानीसे [गिन] सकते हैं। वायुयानकी रफ्तार लगभग ४[००] मील प्रति घण्टा रहती है। रातके अंधेरेमें वायुयान ४ मीलकी ऊंचाई परसे रोशनी क[रने] वाले बम नीचे गिराकर धरतीकी चीजोंका [चित्र] उतार लेते हैं जो बिलकुल स्पष्ट दीखती है। अ[भी] हाल तक धरतीके निकट आकर तेज उड़ते [हुए] वायुयानोंको फोटो लेनेमें कठिनाई होती थी [क्योंकि] वायुयानकी रफ्तार तेज होनेके कारण [चित्र] ठीक नहीं उतरता था। किन्तु अब ऐसे के[मरे] बन गये हैं जिनके शटर एक सेकण्डके हजा[रवें] अंशमें खुलकर अपने आप बन्द हो जाते हैं। [इस] कठिनाईको दूर करनेके लिये युद्ध-कलाके वि[शे]षज्ञोंने एक और तरकीब ढूंढ़ निकाली है। के[मरे] में ही फोटो उतारनेवाले लेन्सके ठीक सामने [एक] दर्पण तिरछा करके इस प्रकार लगा दिया जा[ता] है कि नीचेकी वस्तुओंका प्रतिबिम्ब उसमें [साफ] दिखलायी पड़ने लगता है। अब तेजीसे उ[ड़ता] हुआ केमरा बजाय धरतीकी चीजोंकी फोटो [लेने] के उसके प्रतिबिम्बकी फोटो उतारता है। धर[ती] की चीजें अधिक तेजीके साथ भागती हुई दि[खायी]
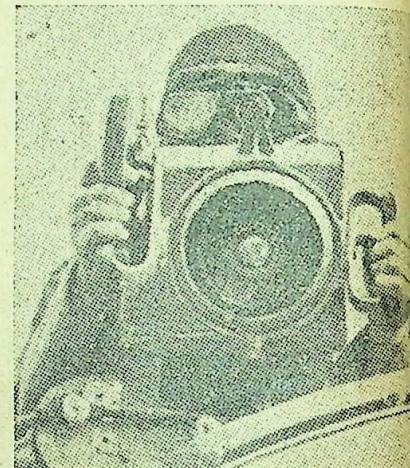
वायुयानके कौकपिटमेंसे पायलट फोटो ले रहा

ायी पड़ती है। किन्तु दर्पणमें उनका प्रतिबिम्ब तनी तेजीके साथ नहीं भागता। अतः चित्र ी धुंधला नहीं होने पाता।

शत्रुके शक्तिशाली लड़ाकू वायुयानोंके डरसे ोटो वायुयान प्रायः ६ सात मील ऊंचे आकाश ें उड़नेको वाध्य होता हैं। अतः ऊर्ध्वाकाशकी तिशय ठण्डसे बचनेके लिये पायलटको ऐसे वस्त्र पहनने पड़ते हैं जो विद्युत शक्तिकी सहायतासे ार्म रखे जा सकें। साथ ही उन्हें 'आक्सीजन' ंससे सुसज्जित टोप भी पहनना पड़ता है क्योंकि

देखनेपर फोटोके अन्दरकी चीजकी ऊंचाई या गहराईका ठीक-ठीक अन्दाज लग जाता है और शत्रुके छद्मवेशका सहज ही में भण्डाफोड़ भी हो जाता है।

किन्तु वायुयान द्वारा लिये गये फोटोका निरीक्षण करके उन्हें ठीक-ठीक पहचानना भी सहज काम नहीं है। इस कामके लिये विशेष रूपसे शिक्षा देकर विशेपज्ञ तैयार किये जाते हैं तभी वे केमरेकी आंखोंका रहस्य समझ पाते हैं। सेना विभाग ग्रेजुएट नवयुवकोंको अधिकांश

कल्पना कीजिये, फोटों वायुयानने एक जापानी युद्ध-पोतके कई फोटो लिये हैं। उनकी जांच करके विशेपज्ञ फौरन बता सकेगा कि जापानी युद्ध-पोत किस ओर और किस रफ्तारसे जा रहा है। इस आशयकी रिपोर्टें मिलते ही बमवर्षक वायुयान उस जापानी युद्ध पोतपर गोला बरसानेके लिये रवाना हो जाते हैं ऐसा होना असम्भव नहीं कि जिस क्षण युद्ध-पोतका चित्र लिया गया हो उसके एक घण्टेके भीतर-भीतर बमवर्षक वायुयान बम बरसाने मौकेपर न आ पहुंचे हों।

ब्रिटिश चैनलके यूरोपीय तटके ९ मीलके इलाकेका मानचित्र। यह नक्शा सेकन्ड फ्रण्टकी तैयारीके लिये सेनाके नक्शा विभागके फोटोग्राफोंकी सहायतासे तैयार किया गया था। नदीके मुहानेपर विन्दुओं द्वारा जलसुरङ्गोंका विछा हुआ जाल दिखलाया गया है। वड़ी और छोटी तोपें मानचित्रमें स्पष्ट दिखलायी गयी है। नदी या पुल, तथा अन्य सामरिक महत्वकी चीजें मानचित्रमें मौजूद हैं।

ंचे आकाशपर हवा इतनी कम होती है कि नसे श्वास लेनेकी क्रिया ठीक रूपसे पूरी नहीं ी जा सकती।

टोह लगानेवाले फोटो वायुयान शत्रु प्रदेशकी भी चीजोंका फोटो लेते हैं। शत्रुके छिपे ए मोर्चेकी थाह लगानेके लिये फोटो लेनेमें एक ी साथ दो केमरे दो विभिन्न कोणोंसे काममें ाये जाते हैं। इस प्रकार प्रत्येक वस्तुके दो चत्र भिन्न-भिन्न पहलूसे उतरते हैं। इन दोनों ोटोंको विशेप ढङ्गके लेन्समें से एक ही साथ

इस महत्वपूर्ण कार्यके लिये भर्ती करता है। वायु-सेना विभागमें एक टुकड़ी इन विशेपज्ञोंकी भी होती है। इन विशेपज्ञोंको फुर्तीके साथ काम करना होता है। फोटो वायुयानके अड्डे पर आते ही विशेपज्ञ केमरेको अलग करके उसे डार्क-रूम में ले जाता है। २० मिनटके बाद धुली हुई फिल्म उसके हाथमें होती है और उसकी जांच करके वह अपनी रिपोर्ट बमवर्षक वायुयानोंके कमाण्डरके पास पहुंचा देता है ताकि वह उसीके अनुसार अपना कार्यक्रम स्थिर कर सकें।

विशेपज्ञ अपनी अत्यावश्यक रिपोर्ट कमाण्डरके पास भेजनेके बाद फिल्मको बिद्युत धौंकनीसे सुखाकर फोटोके कागजपर छापता है और उनकी प्रतियां नक्शा बनाने वालेके पास भेज देता है। जहां घण्टे-घण्टे भर पर शत्रु प्रदेश के नक्शेमें तफसील भरी जाती है। इन्हीं नक्शों की सहायतासे सेनाका प्रोग्राम बनता है। मान लीजिये द्वितीय मोर्चेको खोलनेके लिये फ्रान्स के समुद्र तटपर उतरनेके लिये सेनाएं जहाजपर चढ़ कर जा रही हैं। कैल्टेनके पास समुद्र तटके

चप्पे-चप्पेका फोटो मौजूद हैं। अन्तिम क्षण तक शत्रु अपनी मोर्चेबन्दीमें जो कुछ रद्दोबदल करता है उसका फोटो भी तत्काल छापकर कैप्टेनके पास रास्तेमें वायुयान द्वारा पहुंचा दिया जाता है, ताकि उसकी जानकारी अप-टू-डेट रहे।

फोटो-वायुयानोंके महत्वका अन्दाज आप अकेले इस बातसे लगा सकते हैं कि सेना-विभाग के अधिकारियोंका कहना है कि शत्रु प्रदेशके बारेमें हमारी जानकारी ८९ प्रतिशत इन वायुयानों द्वारा लिये गये फोटोग्राफोंके द्वारा प्राप्त होती है। इन्फ्रारेड रश्मि वाले केमरे कुहरेको भेदकर भी फोटो उतार लेते हैं—हमारी आंख जिन चीजोंको नहीं देख पातीं उन्हें केमरेकी आंखें कुहरेका पर्दा उठाकर देख लेती हैं और फिल्म पर उन्हें अङ्कित कर लेती हैं। रङ्गीन कांचके पर्दे केमरेके लेन्सके सामने लगाकर फोटो लेनेसे साफ पता चल जाता है कि नीचे पत्तियां और झाड़ियां प्राकृतिक हैं या बनावटी।

बम बरसानेके लिये बमवर्षक वायुयानको शत्रु प्रदेशमें भेजनेके पूर्व उस इलाकेका फोटो पहले मंगवाया जाता है। फोटोकी जांच करनेके उपरान्त कमाण्डर यह निश्चय कर पाता है कि उसके बमवर्षक वायुयान किस रफ्तारसे शत्रुके उस इलाके में उड़ेंगे, उन्हें कितनी ऊंचाईपर रहना चाहिये तथा किस श्रेणीके बम उन्हें गिराना चाहिये।

बमवर्षकोंके आक्रमणके उपरान्त भी फोटो-वायुयान पुनः उस इलाकेमें फोटो उतारनेके लिये जाते हैं ताकि वे इस बातका पता लगा सकें कि निशानेकी किन-किन चीजोंपर बम सही गिरा और कौन-सी चीजों पर बमका निशाना झूठा बैठा। इस फोटोसे ही निर्णय किया जा सकता है कि शत्रुको कितनी क्षति पहुंची तथा उस इलाके पर दूसरी बार आक्रमण करनेकी आवश्यकता है या नहीं।

फोटो-वायुयान लड़ाकू विमानोंकी भांति शक्तिशाली इञ्जिनोंसे सुसज्जित रहते हैं। औसत दूरीके लिये स्पिट फायर श्रेणीके ये हुआ करते हैं, किन्तु अधिक दूरी तक जानेवाले फोटो वायुयान प्रायः 'मास्कीटो' जातिके होते हैं। 'मास्कीटो' फोटो वायुयान लन्दनसे उड़कर रूस की सीमा तक गये हैं और वहांसे फोटो लेकर दिन भरमें वापस लन्दन आ गये हैं। दूर तक उड़ने वाले फोटो-वायुयानोंके अन्दर एक छोटी-सी अंधेरी कोठरी बनी रहती है। आकाशमें वायुयान उड़ता रहता है, किन्तु फिल्म इसी अंधेरी कोठरीमें मसाले द्वारा अपने आप धुल जाती है। रास्तेमें ही इस धुली हुई फिल जांच लेन्स द्वारा चालकका साथी कर लेता यदि फिल्मसे किसी आवश्यक बातका पता तो रेडियो द्वारा सांकेतिक भाषामें तुरन्त क्वार्टरको उसकी सूचना भेज दी जाती है।

गत महायुद्धमें भी फोटोकी सहायता मात्रामें ली गयी थी। १९१८ में प्रतिमास लाख फोटोकी प्रतियां सेनाके कमाण्डरके भेजी जाती थीं। किन्तु इस युद्धमें तो फो उपयोगिता बहुत ही अधिक बढ़ गयी है। सेना, स्थल सेना, वायु सेनाके अतिरिक्त थिक योजनाओं, मन्त्रिमण्डल वैज्ञानिक टेक्निकल विशेषज्ञ आदिको भी इन फोटो की आवश्यकता पड़ती है। एप्रिल और १९४० में इङ्गलैण्डके फोटो वायुयानों १२७३९० छोटे फोटोग्राफ, ३२९४० एनला १००० चलचित्र लिये गये। पिछले चार वर्ष भीतर तो फोटो-विभागने और भी उन्नति की फोटो विभागमें ऐसी मशीनें मौजूद हैं जो आप प्रति घण्टे १००० फोटो छाप लेती हैं। हिसाबसे प्रति दिन २० हजार फोटो छापी सकती हैं। तीव्रगति वाले केमरे प्रति सेक २००० फोटोग्राफ ले सकते हैं।

राष्ट्र निर्माण के लिये मत गणना

श्री-परिपूर्णानन्द वर्मा

युद्धके बाद अपने देशके पुनर्निर्माणके लिये हरेक स्वतन्त्र देश युद्धोत्तर पुनर्निर्माण योजना (Post war reconstruction) बना रहा है। ऐसी योजनाओंके बनानेकी जरुरत मालूम हुई—यही इस बातका प्रमाण हैं कि वर्त्तमान समाज अपनी मौजूदा प्रगतिसे असन्तुष्ट है और उसका यह विश्वास हो रहा है कि संसारका कल्याण वर्त्तमान दशामें रहनेसे न हो सकेगा। जिस प्रकार उसके मानसिक-परिवर्त्तनकी आवश्यकता है, उसी प्रकार आर्थिक तथा समाजिक की।

गुलाम देश भारत भी ऐसे ही पुनर्निर्माण की योजनापर विचार कर रहा है तथा इसके लिये बम्बईमें "राष्ट्रीय योजना समिति" (National Planning Committe) भी बनी। अभी हालमें एक पन्द्रह-वर्षीय योजना भी तय्यारकी गयी है तथा आज वह योजना बड़े विचारकी वस्तु रही है। किन्तु, इस योजनाके निर्माताओंने खर्चका जो तखमीना किया था तथा इङ्गलैण्डके ऊपर भारतका जो स्टर्लिंग मुद्रामें पावना है, उसके आधारपर जो दीवाल खड़ीकी थी वह ब्रिटिश हाउस आव कामन्सके एक फैसलेसे गिर पड़ी। इङ्गलंण्डमें हमारा लगभग १००० मिलियन पौंड पड़ा हुआ है और हर सप्ताह इसमें लाखों—करोड़ों रुपयेकी वृद्धि होती जा रही है। पर, यह तय हो गया कि इस बातमें पूरा शुबहा है कि हमको अपना रुपया अपनी इच्छाके अनुसार खर्च करनेका मौका भी मिलेगा या नहीं। जब रुपयेका सहारा जाता रहा तो योजना भी क्या करेगी।

स्वतन्त्र देश केवल योजना ही नहीं बना रहे हैं पर वे जनतासे, विचारवान् लोगोंसे पूछ कर सबका मत-ग्रहण कर उसे लोकप्रिय करनेकी भी चेष्टा कर रहे हैं।

'फार्चुन' का प्रयत्न

जर्सी सिटी-अमेरिकासे "फार्चुन" नामका एक बहुत ही सुन्दर मासिक पत्र प्रकाशित हो है। उसने सार्वजनिक विचार जाननेके लिये बड़ी अच्छी प्रणाली निकाली है। फरबरी में उसने यह मत गणना करायी थी कि "सं राज्य अमेरिका,—अमेरिका मात्रका ने युद्धके बाद तथा अवधि, दोनों समयमें, कि हाथमें रहे। उत्तरोंकी लाखों संख्यासे यह मत निकला कि "व्यवसायी समाजके हाथमें

इस उत्तरसे यह स्पष्ट ज्ञात हो गया जनता औद्योगिक तथा उद्योगियोंके भवि सहारे ही अपने भाग्य निर्माणकी कल्पना रही है। व्यवसायी जगतपर यह इतनी जिम्मेदारी है जो केवल अमेरिकाके लिये नहीं, समूचे सभ्य जगतके लिये लागू होती इसी व्यवसायी जगतसे "फार्चुन" पत्रने मत लिया कि युद्धोत्तर निर्माण योजनामें क्या करना उचित समझते हैं, क्या अनुवि इस कार्यके लिये प्रश्नावली तैयारकी गयी

उनमेंसे जो उत्तर भारतके राष्ट्रीय निर्माणके कार्यके लिये उदाहरणार्थ मनन करने योग्य हैं, उनको प्रकाशित करना सर्वथा उचित होगा। सब प्राप्त उत्तरोंका फी सैकड़ा निकाल लिया गया है।

व्यवसायमें बाधक

७१.१ प्रतिशत राय हैं कि वर्त्तमान व्यवसायकी उन्नतिमें सबसे अधिक बाधक "अतिरिक्त मुनाफा कर" है। २२.९ की सम्मतिमें निजी आय कर हट जाना चाहिये। ११.७ फी सदी का कहना है कि उपयोगी-मालपर कतई टैक्स नहीं लगना चाहिये। इस प्रश्नके जवाबमें कि वर्त्तमान व्यवसायको युद्धके बादकी शान्तिमय परिस्थितिमें परिवर्त्तित करनेके लिये नीचे लिखी चीजोंमें से कौन कितनी जरुरी है, कुल १०३.९ प्रतिशत् उत्तरोंमेंसे ४७.० प्रतिशत्का कथन था कि युद्ध-कालीन सरकारी ठेकोंके शीघ्र निपटारेके लिये एक व्यापक नीति ग्रहणकी जाये। ३१.८ की रायमें ऐसी योजनाकी सूचना दे देनी चाहिये जिसके द्वारा चीजों और मूल्यपर जो युद्ध-कालीन कण्ट्रोल यानी नियंत्रण लगा हुआ है, वह तुरत उठ जाये। ८.२ यह जानना चाहते हैं कि युद्ध-कार्यमें लगे हुए उद्योग-धन्धे सार्वजनिक उत्पादनके लिये कब खाली हो जायंगे। ६.९ अपनी सरकारसे यह अनुरोध करते हैं कि लड़ाईमें बचे हुए मालकी खपतके लिये योजना प्रकाशित कर दे। जिस तरह अतिरिक्त व्यापारिक करको भारतीय व्यवसायी व्यापारकी उन्नतिमें बाधक समझते हैं उसी प्रकार अमेरिकन व्यवसायी भी। "कन्ट्रोल" के राज्यसे दोनों ही समान रूपसे घबड़ाये हुए हैं। युद्ध-उद्योगको शान्ति- उद्योग बनानेके लिये क्या जरुरी है—इसके उत्तरमें सबसे अधिक यानी ३८.८ प्रतिशत् सम्मति थी कि लड़ाई खत्म होते ही एक निश्चित तारीखसे 'कन्ट्रोल' उठ जाये। लड़ाई के जमानेमें व्यवसायमें बहुत अधिक रुपया फंसा है। युद्धके बाद शान्तिके परिवर्त्तन-शील कालमें इस जिम्मेदारीके भी निपटारेकी जरुरत होगी। इस सम्बन्धमें ६२.६ प्रतिशत् उत्पादकोंकी राय है कि हर कम्पनीको स्वयं ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये कि युद्धके बाद धक्का न लगे। पर, ८.३ प्रतिशत्की रायमें 'धक्का' लगना अनिवार्य है। १६.९ का कहना है कि सभी व्यवसायी एक साथ मिलकर ऐसी आपत्तिसे बचनेका उपाय सोचें और ६,४ सरकारी विधानके कायल हैं। पर ६.२ प्रतिशत् उत्पादक ऐसे भी हैं जिनकी समझमें ही नहीं आता कि उन्हें क्या करना चाहिये। बेकारी दूर करनेके सम्बन्धमें ६६.२ प्रतिशत् व्यवसाइयोंका कथन है कि यह सरकार का नहीं, कम्पनियोंका काम है कि इस बात पर ध्यान रखे कि युद्धका "आर्डर" खत्म होने पर बेकारीका रोग न पैदा हो जाये। २९.४ प्रतिशत् सरकारी हस्तक्षेप चाहते हैं। अब इन सब उत्तरोंको मिलाकर देखिये तो एक बात साफ मालूम होती है—कोई भी देश हो, जहां पर आत्म विश्वास होगा, यही बात मालूम होगी—कि व्यवसायकी दृढ़ता तथा उसके ठोसपनके लिये, व्यवसाइयोंकी सम्मतिमें सरकारी हस्तक्षेपकी कमसे कम आवश्यकता है, हरेक पूंजीवादी सभ्यतामें, जहां राष्ट्रकी नकेल व्यवसाइयों के हाथमें होती है, सरकारी हस्तक्षेप कभी स्वीकार नहीं किया जाता।

विदेशी—व्यापार

युद्धके बाद, संयुक्त राज्यका विदेशी व्यापार बढ़नेसे प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूपसे देशके व्यवसायको लाभ होगा या हानि- इस महत्वपूर्ण प्रश्नके उत्तरमें उत्पादक व्यवसाय वालोंकी सम्मतिमें ३६.१ प्रतिशत् प्रत्यक्ष रूपसे लाभकी आशा करते हैं। २९प्रतिशत्की रायमें अप्रत्यक्ष रूपसे ही लाभ हो सकता है। ३६.६ प्रतिशत व्यापारियोंका कहना है कि कोई भी लाभ न होगा-अर्थात् देशके व्यापारको देश तक सीमित रखनेसे ही लाभकी सम्भावना है। यह बड़ा रोचक प्रश्न है और इस पर विचार करना न केवल आवश्यक है बल्कि आर्थिक स्थितिके एक महत्वपूर्ण पहलू को सुलझा सकता है। ऐसा ही जरुरी प्रश्न यह है कि क्या संसारमें शान्ति स्थापित रखनेके लिये एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठनकी रचनाके बाद अमेरिकाका विदेशी-व्यापार अधिक पनपेगा अथवा उसके अभावमें। उपर्लिखित सङ्गठन होनेकी दशामें, ३०.९ प्रतिशत्की रायमें व्यापार को लाभ होगा, ४९.९ प्रतिशत् इसे सन्देहजनक समझते हैं और १९.२ प्रतिशत् कोई निश्चय नहीं कर पाये हैं। ६७.७ प्रतिशत् लोग उन लोगोंमेंसे है जो ऐसा सङ्गठन न होनेकी दशामें व्यापारके लाभकी आशा करते हैं तथा केवल १६.७ प्रतिशत्को सङ्गठनके अभावमें लाभकी कोई सम्भावना नहीं दीख पड़ती। इस विषयमें और भी छानबीन करनेसे यह पता चला कि ७८.६ प्रतिशत् व्यापारी 'अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति सङ्गठन'के हिमायती हैं। कमसे कम इस बातसे इतना पता जरुर चलता है कि अमेरिकाको दुनियांके झमेलेसे अलग रखने वालोंकी संख्या दिन-ब-दिन बहुत कम होती जा रही है और भावी राष्ट्र-निर्माणमें यह देश विदेशी राजनीतिमें भाग अवश्य लेगा। लेकिन इस महादेशके व्यवसायियोंको अपने पड़ोसमें ही व्यवसायिक सफलता की विशेष आशा है। क्योंकि एक प्रश्नके उत्तरसे यह ज्ञात होता है कि युद्धके बाद संयुक्त राज्य अमेरिका दक्षिण अमेरिकाके साथ व्यापार में ६० प्रतिशत् वृद्धिकी आशा करता है, ३३.७ प्रतिशत् एशियामें, ३३.० प्रतिशत् रूसमें, २३.६ प्रतिशत् यूरोपमें, १०.९ प्रतिशत् ब्रिटिश उपनिवेशोंमें, ८.६ प्रतिशत् मध्यपूर्वमें, ६.९ प्रतिशत् अफ्रिकामें—यानी कुल मिलाकर १७६.७ प्रतिशत् वृद्धिकी आशाकी जाती है। इन आंकड़ोंसे यह स्पष्ट जानकारी हो जाती है कि किस देशमें वह कितने प्रभावकी आशा रखता है। इस उत्तर का बड़ा राजनैतिक महत्व भी है।

नया या पुराना

"युद्धके बाद क्या आप पुराने ढर्रेपर व्यापार चलायेंगे या नये-या आंशिक नये!

पुराना ढर्रा—७७.२ प्रतिशत्
कोई नयी योजना—३०.१" प्रतिशत्
एकदम 'नया रूप—०.७" प्रतिशत्
रह नहीं सकते—४.८." प्रतिशत्

कितना बड़ा बहुमत पुराने ढर्रेके पक्षमें—तथा दकियानूसी प्रवृत्तिका परिचायक है—यह इस उत्तरसे स्पष्ट है। क्या आप चीजोंकी बिक्री का पुराना तरीका ही रखेंगे—इसके उत्तरमें ८८-७ प्रतिशत् पुराने तरीके के पक्षपाती हैं तथा ९.० प्रतिशत् ही परिवर्त्तन चाहते हैं। यह भी पुरानी मनोवृत्तिका द्योतक है। "किस रोजगारमें रुची लेनेकी सलाह दी जायेगी"—भी एक रोचक प्रश्न है। प्रश्नकर्त्ता यह जानना चाहता हैं कि लड़ाईके बाद अगर एक युवक किसी व्यवसायीसे पूछे कि मुझे किस व्यवसायमें लगना चाहिये तो वह उसको क्या सलाह देगा। सबसे अधिक सलाह रसायनिक उद्योगके पक्षमें है-यानी ५०.६ प्रतिशत्। विदेशी-व्यापार तथा सौदागरीके पक्षमें क्रमशः ११.९ तथा १८.३ प्रतिशत् हैं। इसके अलावा भिन्न व्यवसायोंके लिये साधारण प्रतिशत् हैं। रसायनिक व्यवसायके प्रति ध्यान जानेका कारण इस दिशामें जर्मनीकी अद्भुत प्रगति भी कही जा सकती है। उसने दुनियाकी

हम युद्धमें क्यों उतरे ?

ले० श्री विण्डेल विल्की

आजके इस महायुद्धने संसारके मनुष्योंके विचारोंमें, कार्योंमें और उनके रहनेके तरीकोंमें एक क्रान्ति उत्पन्न कर दी है। इसने हमारे मस्तिष्कमें उत्साह और भयका संचार किया है। उत्साह इसलिये कि इसके स्वरूपको देख कर हमें अपनी छिपी हुई उस असीम शक्तिका प्रमाण मिला है जो हमारे वर्तमान वातावरणको क्षण-भरमें बदल सकती है और साथ ही साथ लोगों में यह दृढ़ विश्वास जम गया है कि वे अपनी स्वतन्त्रताके लिये सचाईके साथ सङ्घर्ष करके उस अर्जित-स्वतन्त्रताके द्वारा एक दिन सब कुछ करनेके लिये योग्य और समर्थ हो सकेंगे। दूसरी तरफ भय इसलिये है कि आज तक चन्द नेताओंको छोड़ कर मित्रराष्ट्रोंकी जनता सामूहिक रूपसे इस नतीजे पर नहीं पहुंच सकी है कि आखिर 'हम क्यों लड़ रहे हैं, इस युद्धका मन्शा क्या है !

आखें खोल दी है कि रसायनिक विकासपर समूचा वैभव निर्भर करता है।

इसी सिलसिलेमें एक प्रश्नका और भी उल्लेख कर दूं। व्यवसायियोंसे पूछा गया कि "कौन व्यक्ति राष्ट्रपति होकर उनके हितोंकी अधिक रक्षा कर सकता है और उसका उत्तर निम्नलिखित था:—

- डिवे—५६.९ प्रतिशत्
- विल्की—२९.० "
- रुजवेल्ट—८.२ "
- मैकआर्थर—५.९ "

निश्चयतः समूचा अमेरिकन व्यवसायी समाज नहीं तो उसका बहुमत रुजवेल्टके विरुद्ध है—रुजवेल्टमें जो थोड़ी बहुत साम्यवादी भावना है, उसे वह स्वीकार नहीं करता—उसे पसन्द नहीं करता !

अस्तु, उपर्लिखित प्रश्नोत्तर बड़े महत्वपूर्ण हैं और हमारे देशके व्यवसाय तथा व्यवसायियों और उनकी योजनासे बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध रखते हैं। इन प्रश्नोंका अध्ययन कर इनसे समुचित निष्कर्ष निकालना चाहिये। खेद है कि हमारे देशमें ऐसी मत—गणनाके लिये न तो कोई साधन है—न हमने इसकी ओर ध्यान ही दिया है।

मानवीय-सभ्यताके विकासके हथियारोंका स्थान कितना महत्वपूर्ण क्यों न रहा हो, परन्तु विचारोंके प्रभावने उससे कहीं अधिक कार्य किया है। तलवारकी विजयको स्थायित्व सदा विचार-विजयसे ही मिलता आया है। इतिहास इस बातका साक्षी है कि केवल नर-रक्त-बहाने की खुशीको प्राप्त करनेके लिये दुनियांमें युद्ध नहीं हुए हैं। उनके पीछे हमेशा कोई न कोई उद्देश्य या आदर्श रहा है। यह ठीक है कि अतीतमें लड़े गये युद्धोंका उद्देश्य कोई विशेष उत्साहवर्धक न रहा हो और यह भी हो सकता है कि वे उद्देश्य प्रायः स्वार्थ और खुदगर्जीसे रंगे हुए हों परन्तु यह कहनेमें कोई शंका नहीं कि उद्देश्यके बिना जीता हुआ युद्ध विजयका सूचक नहीं है।

किसी उद्देश्यको लेकर लड़े गये युद्धोंमें सर्वश्रेष्ठ उदाहरण 'अमेरिकाकी स्वाधीनताका युद्ध' है। अमेरिकामें यह क्रान्ति इसलिये नहीं हुई थी कि हम अङ्गरेजोंसे नफरत करते थे इसलिये हम उनके खूनके प्यासे थे। नहीं ! युद्ध का मूल कारण था—स्वाधीनताके प्रति हमारा प्रेम। हम स्वतन्त्रताके उपासक थे। हमें उसे प्राप्त करना था। मेरे विचारसे इस कथनमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि यार्क शहरमें प्राप्त की गयी विजय संसारमें शस्त्रों-अस्त्रों द्वारा प्राप्त की गयी विजयोंमें सबसे श्रेष्ठ विजय थी। इसलिये नहीं कि हमारी सेना बहुत बड़ी और अजेय थी वरन् इसलिये कि हम एक स्पष्ट, उच्च और महान् उद्देश्यको लेकर लड़े थे।

दुर्भाग्यवश यही बात गत महायुद्धके बारेमें नहीं कही जा सकती। यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि गत युद्ध एक विजय-विहीन रक्त-पात था। यह सच है कि लड़ाईके बीचमें हम बराबर यही सोचते रहे और कहते रहे कि हम एक ऊंचे मकसदको लेकर लड़ रहे हैं। हमारे सेना-नायक उडरो-विल्सनने उस आदर्शको बड़े सुन्दर शब्दोंमें संसारके सामने उद्घोषित किया—हम दुनियांमें लोकतन्त्रकी रक्षाके लिये लड़ रहे हैं—दुनियां इसके लिये सुरक्षित बन सके। केवल नारों द्वारा नहीं, इसके लिये उन्होंने (Fourteen Points) 'चौदह बातें' नामक एक सिद्धान्तकी घोषणा भी की जिसके आधारपर एक स[...] पूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय सङ्घ (League of Natio[...] की स्थापनाकी बात भी थी। निश्चय ही एक महान् उद्देश्य था परन्तु सन्धिके समय उस उद्देश्यको कार्यान्वित करनेका अवसर आ[...] तो उसमें अनेकों दोष और खामियां नजर आ[...] उस समय हमें यह मालूम पड़ा कि जहांतक [...] उद्देश्यका सम्बन्ध है हम और हमारे मि[...] एकमत नहीं हैं। यहां तक कि हमारे कुछ [...] देश अपनी पुरानी परम्परागत पुरानी कूटनी[...] पूर्ण शक्तिकी रक्षाके लिये अलगसे गुप्त स[...] करनेकी ओर अधिक झुके बजाय इसके [...] श्री विल्सन द्वारा प्रस्तावित संसारके उस [...] निर्माणका द्वार मिलकर खोलते ! एक और [...] थी। हमने स्वयं अपनेको उस महान् आद[...] लिये सचाईके साथ समर्पित नहीं किया [...] जिससे हम अपने उस मकसदकी सच्चा[...] विश्वास दुनियांके दिलमें जमा सकते। नत[...] यह हुआ कि जिस ख्याली मकसदको [...] लड़ाई लड़ी गयी थी वे सबके सब धूलमें मि[...] दिखलायी देने लगे, और जब उन उद्देश्य[...] ठुकरा दिया गया जिनके लिये युद्धमें कूदा [...] था तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि यदि आ[...] दुनियां उस युद्धको महा भयङ्कर और विन[...] कारी निरर्थक रक्तपातकी संज्ञा दे। लाखों [...] दमी तलवारके घाट उतार दिये गये, ले[...] क्या उनके बलिदानकी राखके ऊपर हम [...] ऐसी इमारत खड़ी कर सके, जो नये ख्य[...] नये आदर्श और नये उद्देश्योंसे प्रभा[...] हो ?

मेरे ख्यालसे ये सारी बातें हमें एक [...] नतीजेपर ले जाती है—अगर लड़ाईके दरम्[...] हम किसी स्थिर परिणाम पर नहीं पहुंचते [...] सन्धि-कालमें तो उसकी बहुत कम उम्मीद [...] जा सकती है। यह ठीक है कि सुलहकी मे[...] और कालान्तरमें बहुत-सी बातोंपर विस्तार[...] तरीकेके साथ न्यायपूर्ण ढङ्गसे काम किया [...] सकता है जो कि युद्धके दौरानमें अति कठिन [...] उदाहरणार्थ हम और हमारे मित्रराष्ट्र बर्मा [...] जीतनेके बाद, बर्मामें हम क्या करना चाह[...] इस विषयकी कोई विस्तृत योजना या मसवि[...] तैयार करनेके लिये जापानियोंसे लड़ना [...] नहीं कर सकते, और न पोलैण्डका भविष्य [...] करनेके लिये हम हिटलर परसे अपने दबाव [...] कम कर सकते हैं। इसलिये आज युद्ध-काल[...]

हमें जिस वस्तुको जीत कर प्राप्त करना है—वह है हमारे सिद्धान्त और उद्देश्य।

हमें यह अवश्य मालूम होना चाहिये कि हमारे भावी नव-निर्माणकी रूप-रेखा कैसी होगी। मैं अमेरिकाकी स्वाधीनता-युद्धका उदाहरण फिर सामने रखता हूँ। हम जब रात-दिन उस युद्धमें लगे थे, 'संयुक्त राष्ट्र अमेरिका' के संव-शासनका कोई पूरा-पूरा ढांचा हमारे सामने न था और न इससे पहिले वहां 'विधान' शब्दका नाम किसीने सुना था। सङ्घ-विधान, जन-शासन, सरकारकी तीन शाखाएं आदि नवीन सुधार भविष्यके गर्भमें छिपे थे। युद्ध-कालके बीच उनपर विचार करनेवाले अगर कुछ लोग थे भी तो वे चन्द बड़े-बड़े राजनीति-विचारक थे जो स्वयं इस विषयमें पूरी तौरसे भिज्ञ न थे। परन्तु बावजूद इसके भावी-सुधार और सच्चा सङ्घ-शासनकी योजनाके आधार भूत सिद्धान्त, जिसके परिणाम स्वरूप आजका संयुक्त राष्ट्र अमेरिका (U.S.A.) हमारे सामने है, हमारी स्वतन्त्रताकी घोषणामें (Declaration of Independence) शामिल थे। इन सिद्धान्तों की चर्चा उन दिनोंके भाषणमें, गानोंमें, खाते-पीते हर समय अमेरिकाके कोने-कोनेमें हुआ करती थी। उस समय जनमत कमसे कम युद्धके कारण और अपने उद्देश्यकी प्राप्तिमें एक था।

यदि युद्ध-कालमें ही हम सब एकमत न हो गये होते तो मेशाचूसेट्स और बरजीनियाका तो निश्चय ही सुलहके समय उसकी शर्तोंके बारेमें अवश्य मतभेद हो गया होता। उस समय अमेरिकाको सन्धिमें ठीक वही मिला, न कम न ज्यादा, जो कुछ हमने युद्धके बीच पा लिया था। उपर्युक्त-प्रान्तोंकी जनता हबशियोंकी स्वतन्त्रता या दासताके नियमोंके विषयमें एकमत न हो सकी। परिणाम यह हुआ कि अमेरिकाके दक्षिणी भागमें दासता और गुलामीसे आबद्ध काले आदमियों (Negro-Population) के लिये एक नये प्रकारकी आर्थिक और सामाजिक योजनासे काम लिया गया जो उत्तरी अमेरिका की योजनासे सर्वथा भिन्न थी। इसका नतीजा यह हुआ कि शीघ्र ही हमें उससे कहीं अधिक भयानक एक दूसरा रक्त-प्रवाह फिरसे देखना पड़ा।

क्या हम इस सीधे-सादे पाठसे कोई शिक्षा ग्रहण नहीं कर सकते। हमारा आज क्या कर्त्तव्य है? हमें यह सीखना है। हमें हमेशा यह ध्यान में रखना चाहिये कि आज लड़ाईके बीच हम जितनी सैद्धान्तिक विजय प्राप्त कर लेंगे, आगामी सन्धिमें हमें ठीक उतनी ही प्राप्त होगी, न उससे कम और न ज्यादा।

सर्व प्रथम हमें यह तय करना है कि हमारी विजयका लक्ष्य या उद्देश्य क्या है? और इस विषयमें मित्रराष्ट्रोंका एक मत होना अति आवश्यक है। इस समय यह जरूरी नहीं है कि सिद्धान्तों और उद्देश्योंके छोटे-मोटे पहलुओंपर हम सभी एकमत हों, लेकिन यदि गत महासमर के दुखदायी इतिहासको हम फिर नहीं दुहराना चाहते तो हमें कमसे कम मूल भूत-सिद्धान्तोंकी एकता और उद्देश्योंकी समतापर तो पहुंचना ही चाहिये। साथ ही यह सैद्धान्तिक एकता केवल चन्द चुने हुए नेताओंके दिमाग तक ही सीमित न रहे वरन् मेरे विचारसे मूल सिद्धान्तों और उद्देश्योंकी एकता पर मित्रराष्ट्रोंकी समस्त जनताको पहुंचना चाहिये। हमें यह विश्वास हो जाना चाहिये कि तत्वतः हम सभी एक ही उद्देश्य और आदर्शके लिये लड़ रहे हैं।

इस कथनका क्या आशय है? इसका क्या मतलब है कि हममेंसे हर एकको चाहे वह प्रशांत सागरके उस पारका अधिवासी हो चाहे अटलान्टिक महासागरके इस पारका, अपने विचारोंको स्वतन्त्रतापूर्वक साफ-साफ एक दूसरेके सामने रखना चाहिये और आपसमें निःसङ्कोच भावसे परस्पर विचार-विनिमय चलता रहना चाहिये। जबतक अङ्गरेज हमारे सोचनेके तौर-तरीकोंको नहीं जान लेते और जानकर उन्हें हृदयङ्गम करने की चेष्टा नहीं करते, और जब तक हम लोग उनके भावोंसे पूरी तौरसे परिचित नहीं हो जाते हैं, अर्थात् यह नहीं जान लेते कि इङ्गलैण्ड तथा उससे सम्बन्धित देशोंमें क्या विचार-धारा बह रही है, तबतक हमारे एकमत होनेकी कोई आशा नहीं की जा सकती। हमें यह अवश्य मालूम होना चाहिये कि आखिर इस लड़ाईमें रूस और चीनका लक्ष्य क्या है, साथ ही साथ हमें अपना मन्शा भी उनके सामने खोलकर रख देना चाहिये।

यह एक भयंकर भूल है—एक प्रकारकी आत्म-हत्या है कि जनता अपने नेताओंकी गुमराह-नीतिको देखते हुए भी अपनी जबानको इसलिये बन्द रखे कि वर्तमान संकट कालमें उनकी नीतिको किसी प्रकारकी ठेस पहुंचाना वांछनीय नहीं है।

हमें यह बतलाया गया है कि आम जनता, विशेष कर वे लोग जो सैनिक मामलोंमें दखल नहीं रखते, अथवा जिनका सरकारकी मशीनसे कोई सम्बन्ध नहीं, उन्हें युद्ध-संचालन, सेना, उद्योग धन्धे, अर्थ व्यवस्था एवं राजनैतिक मामलोंमें बिलकुल मौन धारण कर लेना चाहिये। और हमें अपने नेताओंको एवं इस विषयके अनुभवियोंको इस समस्याको हल करनेके लिये स्वच्छन्द और निर्विरोध छोड़ देना चाहिये। मेरा विश्वास है कि ऐसी नीतिसे एक मजबूत दीवार खड़ी हो जायगी जो सत्यको बाहर ढकेलकर गलत-बयानी और भ्रान्तिपूर्ण-दायित्वको प्रश्रय देगी। पिछली बार मैं अपनी यात्रासे लौटकर आया तो मैंने अमेरिकन जनतासे यह साफ-साफ कह दिया था कि कुछ बातोंमें हम ठीक काम नहीं कर रहे हैं। लड़ाई जीतनेके लिये हम धन और जन का जितना व्यय कर रहे हैं वह आवश्यकतासे कहीं अधिक है। यह बात ठोस-सत्यके आधार पर कही गई है। और यह असलियत बिना किसी काट-छांटके हमारे सामने रखी जानी चाहिये। क्योंकि यदि हम अपनी भूलको स्वीकार कर उसे सुधार नहीं लेते तो बहुत सम्भव है कि युद्धके खत्म होनेके पहिले ही हम अपने बहुतसे साथियोंकी मित्रताको खो बैठे और इस प्रकार हमारी-सुलहका सुनहला स्वप्न हमेशा स्वप्न ही बना रह जाये।

यह दृढ़ सत्य है कि युद्धमें विजय पानेके लिये इस युद्धको लोक-युद्धका रूप देना पड़ेगा। हमें यह विश्वास हो जाना चाहिये कि यह हमारी अपनी लड़ाई है। सैनिक-सुरक्षाका ध्यान रखते हुए, युद्धके समुचित संचालनके लिये यह हितकर है कि हम इसके बारेमें अधिकसे अधिक जानकारी रखें। गलत तरीकेपर समाचारों और तथ्योंकी अनुचित रूपसे की गयी कांट-छांट से हमारा मंशा पूरा नहीं होगा।

इस युद्धका आज तकका रिकार्ड ऐसा नहीं रहा है कि जिसमें हमारे हृदयमें राजनैतिक, सैनिक, एवं सामुद्रिक नेताओंके कार्योंके प्रति कोई ऐसा अडिग महान् विश्वास जम जाये जिसके कारण हम यह समझ लें कि उनसे कभी भूल होही नहीं सकती। सैन्य-कला-शास्त्री और हमारे अन्य नेताओंके ऊपर प्रजाकी सबसे बड़ी शक्ति लोक-मतका चाबुक बराबर पड़ते रहना चाहिये। लेकिन लोक-मतका विकास ईमानदारी और स्वतन्त्र वादविवादके आधारपर होना चाहिये।

उत्तरी अफ्रिकामें, रोमेलकी महान् विजयके समय, हमारी लगातार हारके खिलाफ जनता द्वारा की गयी कठोरआलोचना ही वहांके सैनिक नेतृत्वको बदल सकी। जब मैं मिश्रमें था हमारे नये सेनापतिने रोमेलकी प्रगतिको रोक दिया था। और मेरे विचारसे यही वह नेतृत्व था जिसने रोमेलको अफ्रिकासे खदेड़कर बाहर किया। मेरे ख्यालसे अफ्रिका विजयके यशका बहुत कुछ श्रेय अङ्गरेजी जनताको देना चाहिये।

अमेरिकाके निवासी इस विचारकी ओर झुकतेसे मालूम पड़ते हैं कि लोक-मत नामकी कोई ऐसी शक्ति या उस शक्तिका प्रदर्शन उन राष्ट्रोंमें नहीं है जहां निरंकुश सरकार प्रतिष्ठित है। सच तो यह है कि ऐसे सभी देशोंमें लोक-मत क्या है, जनता क्या सोच रही है यह सब जानने के लिये सरकारके पास पर्याप्त साधन हैं। स्वयं स्टेलिनकी अपनी गेलूप-पोल (Gallup Pol) नामक प्रणाली है जिससे वे जनमतकी थाह हमेशा लेते रहते हैं। ऐसा कहा जाता है कि स्वयं नैपोलियन जब अपनी शक्तिके चरम-शिखरपर पहुंच चुका था तब भी उसे सदा यह ध्यान रहता था कि उसके बारेमें पेरिसके लोग क्या सोच रहे हैं।

जिन जिन देशोंको देखनेका सौभाग्य मुझे मिला वहीं मैंने 'जन-मत' का प्रभावपूर्ण तरीकेसे किसी न किसी रूपमें युद्ध-काल और उसके बादके नये नये विचारोंपर असर पड़ते देखा है। बगदादके चाय-घरोंके वाद-विवादमें मुझे इसकी झलक मिली है। रूसमें मिलोंकी बड़ी-बड़ी सभाओं और बातचीतोंसे यह भावना प्रकट होती है कि वे लोग बड़ी स्वतन्त्रता और साफगोईके साथ इन विषयोंपर विचार-विनमय करते हैं। चीनकी बात लीजिये, यद्यपि वहांके समाचार पत्रोंकों हमारे पत्रों जैसी स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं है फिर भी वे बड़ी निर्भीकता और स्पष्टताके साथ लोक-मतका नेतृत्व करते हैं। चीनमें जिस किसीसे मैंने बातचीतकी, चाहे वह साम्यवादी दलका नेता हो' चाहे वह एक साधारण मिल-मजदूर हो, चाहे एक शिक्षक या सिपाही हो, उसे बड़ी स्पष्टताके साथ अपने विचार प्रकट करते हुए पाया। यहां तक कि कुछ विचार तो निश्चित रूपसे सरकार द्वारा निर्धारित-नीतिके प्रतिकूल थे।

प्रत्येक देशमें युद्ध-मोर्चेके पीछे जनताके मस्तिष्क और हृदयमें मुझे चिन्ता और सन्देह दिखलायी पड़े। वे सभी किसी समान उद्देश्य को खोज रहे थे। यह उनके उन सवालोंसे साफ जाहिर होता था, जो उन्होंने मुझसे ब्रिटेन, अमेरिका और रूसके बारेमें किये थे। सारी दुनिया मुझे एक प्रकारकी उत्सुकता, भूख और ऊंची कल्पनाओंसे भरी हुई नजर आयी। और वे सभी इस युद्धमें किसी भी प्रकारका त्याग और बलिदान करनेको इच्छुक हैं, अगर उन्हें थोड़ी भी यह आशा हो कि उनका बलिदान व्यर्थ नहीं जायगा।

१९१७ के युद्ध-कालमें भी यूरोपकी ऐसी ही मनोदशा थी। हमेशा, रक्तपात और युद्ध-विभीषिकाका ऐसा ही अनिवार्य परिणाम होता है। १९१७ में लेनिनने दुनियाके सामने कुछ प्रश्न रखे थे। उसके कुछ ही समय बाद श्री बिल्सन ने अपने तरीकेकी कुछ बातें संसारके समक्ष रखीं। उन दोनों ही प्रश्नोंके पीछे निहित विचार और भावनाको उचित स्थान नहीं दिया गया। सुलह और सन्धियों पर वे केवल ऊपरसे थोपे गये। अस्तु प्रश्नोंके उन दोनों पक्षोंमेंसे एक भी पक्ष युद्धसे मुक्ति न दिला सका और न शक्ति और अधिकारके लिये किये गये एक खर्चीले समरके सिवाय वे कोई दूसरा मार्ग बता सके। इस महासमरका अन्त इसी कारण एक प्रकारकी युद्ध विराम-सन्धिमें हुआ, वास्तविक स्थायी शान्तिमें नहीं।

मेरा ऐसा विश्वास नहीं है कि इस युद्धका अन्त भी वैसा ही होगा। आज तो युद्धकालमें भी मित्रराष्ट्रोंके अन्दर रहनेवाले व्यक्तियोंके मस्तिष्कमें समान उद्देश्य निहित हैं, परन्तु हमें अपने इन उद्देश्योंको शब्दबद्ध करके ठोस बनाना होगा।

जनताका यह कर्त्तव्य है कि युद्धकालमें ही अपने इन उद्देश्योंकी स्पष्ट व्याख्या करे। मैंने जान-बूझ कर विभिन्न देशोंमें इन उद्देश्योंके बारेमें वाद-विवादको प्रोत्साहित किया, क्योंकि मुझे इस बातकी शंका बराबर बनी रहती है कि कहीं लोगोंके किसी निश्चय और सिद्धान्तपर पहुंचनेसे पहिले ही यह जङ्ग खत्म न हो जाय। गत महासमरमें मैं एक सिपाही था। युद्ध समाप्ति पर हमने अपनी आंखोंसे अपने उस सुनहले स्वप्नको टूटते, अपने आदर्श नारोंको उपहासास्पद बनते देखा है और यह सब इसीलिये हुआ कि युद्धमें व्यस्त जातियां युद्धकी समाप्ति तक किसी समान उद्देश्यकी रूप-रेखा न बना सकी थीं। अब आज हमारा यह निश्चय होना चाहिये कि वही भूल फिर न दुहरायी जायगी।

लाखों व्यक्ति इस युद्धमें स्वाहा हो चुके और न मालूम युद्ध खत्म होने तक कितने मौतके घाट पहुंच चुकेंगे। ऐसी अवस्थामें अगर कनेडियन, रूसी, चीनी, अमेरिकन और मित्रराष्ट्र सैन्य-सहयोगके समयमें यदि एक उद्देश्यके लिये पारस्परिक सहयोग और भावसे चलनेके किसी एक सिद्धान्त और पर नहीं पहुंचते तो यह कहनेमें कोई संकोच हो सकता कि हमने ऐसे सुन्दर अवसरको निकल जाने दिया और हमारा धन और काफी बर्बाद हुआ।

हमारे नेताओंने कईबार व्यक्तिगत रूपसे मिलकर भी हमारे कुछ उद्देश्योंको और कुछ आकांक्षाओंको प्रकट किया है। ऐसे ही विचारोंका नमूना श्री चाङ्ग काई शेकका सन्देश है जो उन्होंने पश्चिमी जगतके रखा था, जिसका सारांश यह है:—

"चीनकी यह आकांक्षा नहीं है कि एशियामें पश्चिमी-साम्राज्यके स्थानपर पूर्वी-साम्राज्य स्थापित करे और न विश्वकी विधिसे तटस्थ रह कर वह संसारसे अपना ही तोड़ना चाहता है। हमारा यह दृढ़ वि है कि आज संकीर्ण विचार-सीमा द्वारा तटस्थ सन्धियों और प्रादेशिक दलबन्दि हमें आगे बढ़ना है, जिसके परिणाम स्वरूप का रूपरङ्ग ही बदला दिखायी देगा और दशामें ही हम प्रभावोत्पादक विश्व एक ओर आसानीसे कदम उठा सकेंगे। ज दुनियामें संकीर्ण प्रादेशिकता और साम्राज्य स्थानपर, पूर्ण स्वतन्त्र राष्ट्रोंकी भी अ दुनिया नहीं बसती और परस्पर सच्चा सहयोग प्रतिष्ठित नहीं होता तबतक और हमारी स्थायी सुरक्षा सम्भव नहीं है।

इस सन्देशमें स्टेलिनके वक्तव्यको जोड़ दीजिये जो उन्होंने ६ नवम्बर १९४ अक्टूबर-क्रान्तिकी २९ वीं वर्ष गांठके अव दिया था। यह एक लाजवाब संक्षिप्त है।

'जाति और धर्मके आधार पर कायम गयी सीमाओंका उच्छेदन, राष्ट्रोंकी सम और उनकी सीमाओंकी रक्षा, दासताकी में आबद्ध जातियोंकी स्वतन्त्रता और

आत्म-शासनका अधिकार, जिन राष्ट्रोंकी इस युद्धमें क्षति हुई है उन्हें आर्थिक सहायता देकर भौतिक उन्नतिकी ओर ले जाना, लोकतन्त्रकी पुनर्स्थापना एवं हिटलरके प्रभुत्व और गुटबन्दी-का उन्मूलन है।'

मि० रूजवेल्टने 'चार प्रकारकी स्वतन्त्रता' की घोषणा की है। मि० चर्चिल और मि० रूजवेल्टने मिलकर संसारके सन्मुख 'अटलाण्टिक-चार्टर' नामक अपने मन्तव्योंका मसविदा रखा है।

मो० स्टेलिनके वक्तव्य और अटलाण्टिक चार्टरमें मेरे विचारसे एक बड़ा भारी दोष है। पश्चिमी जगतके छोटे-छोटे देशोंके पुरानी सीमाओं, उनके अलग-अलग राजनैतिक, आर्थिक, एवं सैनिक स्वरूपोंकी यथाविधि रक्षा करते हुए, उन दोनों घोषणाओंमें पश्चिमी-यूरोपके पुनर्निर्माण की भविष्यवाणी की गयी है। यही वह प्राचीन रूढ़िवादी ढर्रा है जिसके खिलाफ आज हिटलर यूरोपके लाखों व्यक्तियोंको अपनी नव-प्रस्तावित दुनियाकी ओर आकर्षित कर सका है। इस नयी दुनियामें हिटलरके अत्याचारोंके बावजूद भी उन्हें एक ऐसे सार्वभौमिक व्यापक राष्ट्र-निर्माण की आशा दिखलायी दी जिसके अन्दर वर्तमान संसारकी आर्थिक योजना भली प्रकार काममें लायी जा सकेगी। कटु और कठोर अनुभवोंसे वे आज यह महसूस करने लगे हैं कि व्यापार और व्यवसायके सीमित क्षेत्रोंकी दीवालोंने, जो कि असंख्य व्यक्तिगत राष्ट्रों द्वारा अपनी शक्ति और स्वत्वके ढकोसलेको दिखानेके लिये खड़ी की गयी हैं, गरीबी और निर्धनताको बुलाकर युद्धको अनिवार्य कर दिया है।

पश्चिमी यूरोपके भिन्न-भिन्न देशोंकी राजनैतिक स्वाधीनताका जहांतक सम्बन्ध है उनकी पूर्ववत् सीमाएं निर्धारित होनी चाहिये, लेकिन जहां उनकी आर्थिक और सैनिक सीमाओंके पुनर्निर्माणका प्रश्न है वहां मुझे—'नहीं' कहना है, अगर हम वास्तवमें पश्चिमी यूरोपसे, उसके और संसारकी शान्ति तथा आर्थिक सुरक्षाकी दृष्टिसे, उसकी मजबूती और स्थायित्वकी आशा करते हैं।

फिर भी चांगका वक्तव्य, मि० स्टेलिनकी घोषणा, अटलाण्टिक-चार्टर, चार प्रकारकी स्वतन्त्रता आदि सभी एकमहान् प्रगतिके चिन्ह हैं और इन बातोंसे सारी दुनियाके दिलमें एक नयी और ऊंची आशाका सञ्चार हुआ है।

सारी दुनियाकी आंखें आज उत्सुकता पूर्वक इन नेताओंकी ओर लगी हैं। वह यह देखना चाहती है कि जिन सिद्धान्तों और उद्देश्योंकी घोषणा उनके द्वारा की गयी है क्या वास्तवमें उनका वैसा ही मंशा है!

मेरे यात्रापर रवाना होनेसे पूर्व मि० चर्चिल ने अटलाण्टिक चार्टरके बारेमें दो वक्तव्य दिये थे:—(१) इसके बनानेवालोंके मस्तिष्कमें सर्व प्रथम यूरोपके उन देशोंके ही स्वत्वका, आत्म-शासनका, एवं वहांके राष्ट्रीय जीवनके पुनर्निर्माण का प्रश्न था जो कि आज नाजीवादके जूएके नीचे दबे हुए हैं और (२) इस चार्टरके अन्तर्गत आये हुए सिद्धान्तोंका प्रभाव भारत, बर्मा या ब्रिटिश साम्राज्यके किसी अन्य भागसे सम्बन्ध रखनेवाली उन घोषणाओंपर नहीं पड़ता जो इन देशोंके क्रमिक वैधानिक विकासके बारेमें समय-समय पर की गयी हैं। जिन-जिन देशोंमें मैं गया वहांके लगभग हर एक प्रधान मंत्रीने एवं वैदेशिक मंत्रीने और वहांकी जनताने मेरे सामने यह प्रश्न रखा कि क्या इसका यह मानी है कि अटलाण्टिक चार्टर केवल पश्चिमी यूरोपपर ही लागू होगा। मैंने उनसे साफ-साफ कह दिया कि मैं स्वयं उसकी असलियतसे अनभिज्ञ हूं। अगर मि० चर्चिलने यह कहा भी है कि इस योजनाको तैयार करनेवालोंके दिमागमें प्रधानतया पश्चिमी यूरोपके देशोंका ही ध्यान था तो भी इससे यह अर्थ तो नहीं निकलता कि दूसरे देश लाजिमी तौरसे उसके प्रभाव क्षेत्रसे अलग हैं।

मेरे आलोचकोंने और मेरी बातकी जांच करनेवालोंने बड़ी बेसब्रीके साथ उस जवाबको सुना अनसुना कर दिया। उन्होंने मेरे जवाबको केवल एक कानूनी दलील मात्र ही समझा। यही एक कारण था कि मि० चर्चिलके दुनियाको चिन्तित करने वाले नीचे लिखे रिमार्कको सुनकर मैं अधिक परेशान हुआ था। 'ब्रिटिश सरकारको छिन्न-भिन्न करनेवाली सभाका सभापतित्व करनेके लिये मैं सम्राटका प्रधान मंत्री नहीं बना हूं।' (I did not become His Majesty's first minister in order to preside over the liquidation of the British Empire) लेकिन इसके बाद अनेकों अङ्गरेजोंसे जो आज अमेरिकामें रह रहे हैं, बातचीत करके, अङ्गरेजी-पत्रोंके विचारोंको पढ़ कर, पत्र-व्यवहार द्वारा वहांके अधिकांश लोगोंके विचारोंकी जानकारी हासिल करके और यह जानकर कि अङ्गरेजी जनताके विचार इस विषयमें अमेरिकामें रहनेवाले लोगों से भी आगे हैं, मुझे अति प्रसन्नता हुई। जहां तक मेरा ख्याल है अङ्गरेजोंको अपने साम्राज्यके खत्म हो जानेका और साम्राज्यके कोने-कोनेमें सभी तरह समानता और स्वाधीनताके सिद्धान्तोंके फैल जानेका कोई दुख नहीं होगा।

न तो नेताओंके वक्तव्य और न केवल लोकमत ही, वह चाहे कितना ही शक्तिशाली क्यों न हो, कोई कार्य कर सकता है, जब तक कि हम युद्ध कालमें ही अपने आदर्श और उद्देश्योंकी रूप-रेखाओंका एक साफ खाका तैयार नहीं कर लेते और उस खाकेको असलियतका रङ्ग देनेकी कोशिश नहीं करते।

जब मित्रराष्ट्रों द्वारा एकताके मसविदेकी घोषणा की गयी थी, उस समय लाखोंकी संख्यामें स्त्री-पुरुषोंने,—दक्षिणी अमेरिकामें, अफ्रीकामें, रूसमें, चीनमें, शायद इटली और जर्मनीके भीतर तक,—यह समझा था कि इन राष्ट्रों द्वारा तय किये गये इस मसविदेपर हस्ताक्षर करने वाले राष्ट्रोंको मानव जातिकी मुक्ति और स्वाधीनताके लिये समान सङ्घर्षमें सहयोगी

की हैसियतसे शामिल होनेका यह कैसा सुन्दर दृश्य हमारे सामने उपस्थित है। उन्होंने सोचा था कि मित्रराष्ट्र युद्धके दरम्यानमें ही एक साथ बैठकर सेना, अर्थशास्त्र और संसारके भावी निर्माणकी किसी योजनापर बातचीत करेंगे। क्योंकि उन्हें विश्वास था कि ऐसा करनेसे लड़ाई जल्दी खत्म की जा सकती है और वे यह भी समझते थे कि इस समय मिल-जुल कर मैत्रीभाव से काम करनेकी उनकी क्षमता ही भविष्यमें एक साथ रह सकनेकी और सहयोगके साथ काम कर सकनेकी योग्यताका सबसे सुन्दर प्रमाण है!

आज मसविदेपर हस्ताक्षर हुए एक वर्षसे अधिक हो गया है। आज 'मित्रराष्ट्र' मैत्रीभाव-पूर्ण सङ्गठनका एक प्रतीक है। लेकिन हमें इस सचाईको सामने रखना चाहिये कि यदि आज लाखों आशावादी लोगोंको निराश नहीं करना है, और जिस दुनियांके हम स्वप्न देखते हैं वह आंशिक रूपमें भी हमारे सामने खड़ी की जाये, तो कल नहीं, आज ही मित्रराष्ट्र निश्चय ही एक ऐसी विचार—समितिके रूपमें हमारे सामने आयेंगे जो केवल युद्ध विजयके उपाय ही नहीं सोचेगी, वरन मानवके भावी हित और रक्षाकी एक निश्चित योजना भी तैयार कर सकेगी।

जब तक युद्ध चल रहा है हमें सहयोगके साथ मिल-जुलकर काम करनेकी प्रणाली और साधनोंका विकास करना चाहिये जिससे कि युद्धके बाद भी हम जिन्दा और कायम रह सकें। राष्ट्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय सरकारकी स्थापनाके सफल विधान और धाराएं क्रमिक-विकासका परिणाम होती हैं। उनका निर्माण एक देशमें नहीं होता। और न राष्ट्रीय पुनर्जागरण, स्वार्थ संघात चारित्रिक पतन एवं सामाजिक व आर्थिक विशृङ्खलाके बीच,युद्धके बाद जिनका घटना अनिवार्य हैं, उनको अमलमें लाया जा सकता है, आजकी हमारी समस्याओंके हल करनेवाले दैनिक प्रयत्न और साधन रूपी हड़-चट्टानके नीचे ही विधान और धाराओंको ऐसा ढाला जा सकता है कि भविष्यमें वे आसानी और निर्विघ्नताके साथ काममें लायी जा सकें।

युद्धोपरान्त आर्थिक-सङ्घर्ष एवं अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति-संरक्षणके विकासके लिए किसी भी ऐसी मशीनको खड़े करनेकी सारी बातें उस समय तक व्यर्थ और बकवाद मात्र है, जब तक कि एकता और सङ्गठनकी अनिवार्य आवश्यकता स्वरूप उस मशीनके भिन्न-भिन्न अङ्ग, आज शत्रुको पराजित करनेवाली हलचल और दौड़-धूपके अन्दर इकट्ठे नहीं किये जाते। उन हलचलों और तैयारियों ने ही तो आज हमें एक समान उद्देश्यके लिये एकताके एक ही सूत्रमें बांध दिया है। अस्तु किसी भी सैद्धान्तिक निश्चयपर हम आज जितनी आसानीसे पहुंच सकते हैं,कल नहीं। युद्ध के बाद उद्योग और व्यवसायके क्षेत्रमें होनेवाली कल्पनातीत उन्नति और विकासके आधारपर सबको काममें लगा सकनेकी बातें केवल स्वप्न-मात्र सिद्ध होंगी, अगर हम आज युद्धकी विभीषिकाओंके बीच पारस्परिक सम्मान, सहयोग एवं समझौतेके साथ काम करना सीख नहीं लेते। क्या हम कभी भी चीन तथा सुदुरपूर्वमें, जैसा कि हमारे नेताओंने समय समयपर कहा है, एक व्यापक एवं विशाल व्यवसाय-सम्बन्ध कायम कर सकते हैं यदि आज हम चीनमें एक संयुक्त-सैन्य शक्ति खड़ी करनेमें समर्थ नहीं होते? क्या भावी अर्थ जगतकी परिधिके अन्दर अपने आश्चर्यजनक बेशकीमती मालके साथ रूसके शामिल होनेकी आशा कर सकते हैं,जब तक कि हम उसके राजनैतिक नेताओंके साथ एक स्थानमें बैठकर रण-कौशल और सैन्य सञ्चालनके विषयमें मिलकर काम करना नहीं सीख देते।

आज आवश्कता इस बातकी है कि मित्रराष्ट्र एक ऐसी विचार-कौंसिल कायम [करें] जसके सदस्य केवल चुने हुए उन चन्द रा[ष्ट्रोंके] ही न हों जो अपने ही इच्छानुसार आज [छोटे] देशोंको केवल आशा और सहायता दे [रहे हैं] वरन उनका चुनाव सभी देशोंमें से हो [और] सब मिलकर ही किसी बातको तय करें। एक ऐसी महान् युद्ध-कौंसिलका निर्माण [होना] चाहिये जिसके प्रतिनिधि युद्ध-संकटमें [पड़ने] वाले सभी राष्ट्रोंके हों। शायद हम चीन[से] एक बहुत बड़ा सबक ले सकते हैं जो अपने भयङ्कर अभावके साथ भी इतने लम्बे अर्से[से] इतनी वीरता पूर्वक लड़ रहा है। अथवा रू[स] से जो पिछले चन्द वर्षोंमें रण-कौशलमें [अ]द्वितीय निपुणता प्राप्त कर चुके हैं।

हमें एक ऐसी कौंसिलकी स्थापना [करनी] चाहिये जो मित्र-राष्ट्रोंकी आर्थिक-श[क्ति] एकत्रित करके भावी आर्थिक-सहयोग आ[धार] पर सम्मिलित रूपसे युद्धमें आवश्यक ची[जें] बनानेकी स्कीम रखें।

और मित्र राष्ट्रोंकी हैसियतसे सबसे म[हत्व]पूर्ण बात उन सिद्धान्तोंको लेख वद्ध कर[ना] जो भविष्यमें विजित-देशोंको शनैः शनैः स्व[तन्त्र] करनेके लिये किये गये हमारे सभी का[मोंपर] नियन्त्रण रखें। साथ ही साथ एक ऐसी सं[गठित] मशीनरीके खड़े करनेकी आवश्यकता है [जो] हमारी विजयी-सेनाओं द्वारा आगे रखे ग[ये] एक कदमपर पैदा होने वाली हमारी समस्या[ओं] को हल कर सकें। अन्यथा हम अपनेको मसलहतसे दूसरी मसलहतकी ओर बढ़ते पायेंगे। और इसके बाद केवल उन छोटे देशोंमें ही नहींजिन्हें हम धीरे धीरे स्वतन्त्र क[रना] चाहते हैं वरन् स्वयं मित्र-राष्ट्रोंके अन्दर, भ[ी] असन्तोषके अंकुर उगते हुए दिखलाई देंगे यह[ी] असंतोष है जिसने युग युगसे सद्भावना और [ह]... वाले व्यक्तियोंकी आशाको चूर चूर किया [है।]

अनुवादक—प्रो० रंजन

आत्म-हीनताकी ग्रन्थि

प्रो० लालजी राम शुक्ल एम० ए० बी० टी

मनुष्यके मनमें अनेक ग्रन्थियां रहती हैं, उनमेंसे आत्म हीनताकी ग्रन्थि एक बड़ी जटिल ग्रन्थि है। यह ग्रन्थि हमारे अज्ञात मनमें रहनेके कारण हमें ज्ञात नहीं होती, और दूसरी ग्रन्थियां के समान प्रयल करनेपर भी नहीं जानी जाती। इस ग्रन्थिसे सामाजिक जीवनमें इतनी महत्वकी प्रतिक्रियायें होती हैं कि इसका स्वरूप भली प्रकारसे जान लेना आवश्यक है। मनुष्य जीवनके महत्वके कार्योंमें इसी ग्रन्थिकी प्रतिक्रियाके स्वरूप प्रवृत्त होता है। कितने ही लोगोंके विक्षिप्त जैसे व्यवहारोंका कारण यही ग्रन्थि है और कितनोंकी लौकिक ख्याति का कारण भी यही ग्रन्थि होती है। अनेक मनुष्यके विवेक शून्य कार्य इसी ग्रन्थिके कारण होते हैं, अनेक प्रकारकी बहानाबाजी भी मनुष्य इसीके कारण करता है।

आत्म हीनताकी ग्रन्थि मनुष्यके अपनेमें किसी विशेष प्रकारकी कमीकी अनुभूतिका परिणाम है। इस प्रकारकी अनुभूति किसी विशेष समयपर होती है और वह अपना संस्कार मनुष्यके मनपर छोड़ जाती है। यह संस्कार मनुष्यके मनमें सदा रहता है। अपनी कमीकी अनुभूति किसी भी व्यक्तिको प्रिय नहीं होती। अतएव उसका मन सदा उस अनुभूतिको भूलनेकी चेष्टा करता रहता है। जब इस प्रकारकी अनुभूति मनमें आना चाहती है तो उसे मनुष्यकी चेतना बरबस दबा देती है। आधुनिक मनोविज्ञानका यह निश्चित सिद्धान्त है कि हमारे जीवनका कोई भी अनुभव व्यर्थ नहीं जाता है। वह अपना संस्कार हमारे मनपर अवश्य छोड़ जाता है। ये संस्कार कभी कभी हमें पुराने अनुभवको स्मरण कराते है, पर अधिक संस्कार हमारे मनमें स्थिर रहनेपर भी पुराने अनुभव स्मृति पटलपर नहीं लाते। पुराने अनुभवके संस्कार ही स्मृति के कारण हैं, पर सभी अनुभवोंको स्मरण करने की न तो आवश्यकता होती है और न उसके स्मरण होनेसे जीवनका कोई लाभ होता है। अप्रिय अनुभवके संस्कार उन संस्कारोंमें है जो कि मनमें दृढ़ रहनेपर भी पुराने अनुभवको स्मरण करनेमें समर्थ नहीं होते। इसका प्रधान कारण हमारे चैतन्य मनकी उन अनुभवोंको जान बूझकर विस्मरण करनेकी चेष्टा है।

आधुनिक मनोविज्ञानने दूसरी यह बात दर्शायी है कि हमारे मनका कोई भी संस्कार निश्चेष्ट नहीं होता। जो संस्कार जितना प्रबल होता है, वह चाहे स्मृति पटलपर आये अथवा नहीं उतनी ही शक्तिके साथ मनके परदेके भीतरसे कुछ न कुछ विशेष प्रकारकी चेष्टायें करता रहता है। अतएव मनुष्यका जीवन उन्हीं अनुभवोंका परिणाम नहीं है जो उसकी स्मृतिमें आते हैं अथवा आ सकते हैं। मनुष्यके व्यक्तित्व के बननेके क्रममें स्मरण हो सकने वाले और न स्मरण हो सकने वाले सभी प्रकारके अनुभवों का कार्य होता है। फ्रांसके प्रसिद्ध तत्ववेत्ता वर्गसनका जीवन विकासका सिद्धान्त मनोविज्ञानके उपर्युक्त सिद्धान्तका समर्थक है। हमारे जीवनका प्रत्येक अनुभव अपना संस्कार हमारे मनपर ही नहीं छोड़ जाता, वरन् वह संस्कार स्वयं जड़ पदार्थ नहीं है; वह सदा सक्रिय रहता है। अतएव हमारे जाने अनजाने हमारे पुराने अनुभवोंके संस्कार हमारे नवीन जीवनके निर्माणमें कार्य करते रहते हैं।

मनुष्यके अप्रिय अनुभव उसकी स्मृतिमें नहीं आते पर वे परदेके भीतरसे उसके चेतन मनके कार्योंको प्रभावित करते रहते हैं। जो अनुभव जितना अप्रिय होता है और जिसकी स्मृति जितनी शक्तिके साथ दबायी जाती है वह उतना ही अधिक मनुष्यके जीवनको प्रभावित करता है। अप्रिय अनुभवकी स्मृति दबानेपर उस अनुभवके संस्कार नष्ट न होकर और भी प्रबल हो जाते हैं। इसके प्रतिकूल जिस अप्रिय अनुभवके संस्कारोंको मानस स्मृति पटलपर आने दिया जाता है उनकी शक्ति क्षीण हो जाती है। फ्राइड महाशयकी मानसिक चिकित्साकी एक विशेष विधि अप्रिय विस्मृत अनुभवोंके संस्कारोंको रोगीको स्मरण कराना अथवा चेतनाके समक्ष लाना मात्र था। इस प्रकार अप्रिय अनुभवके स्मरण होनेपर कितने ही रोगी उन रोगोंसे मुक्त हो जाते हैं, जो उन अनुभवोंकी स्मृति लुप्त हो जानेसे उत्पन्न होते हैं। इस क्रियाको मनोविश्लेषण विज्ञानमें रेचक क्रिया कहा जाता है।

अपनी आप सम्बन्धी कमीका अनुभव एक अप्रिय अनुभव है। इसे भी मनुष्य सदा भुलाना चाहता है। पर जिस व्यक्तिके मनमें जितने संवेग के साथ यह अनुभव होता है, उसके अदृश्य मनमें वह अनुभव उतनी ही प्रबलताके साथ संस्कारों के रूपमें वर्तमान रहता है। वह उस व्यक्तिको विशेष प्रकारके कार्योंमें प्रवृत्त करता है। इस प्रकारके अनुभवोंकी प्रतिक्रियापर विचार करनेके पूर्व उनके कारणोंको जान लेना आवश्यक है।

आत्म-हीनताकी ग्रन्थिके बननेके निम्नलिखित कारण हैं:—

(१) किसी प्रकारकी शारीरिक कमी—जैसे साधारण मनुष्योंकी अपेक्षा नाटा अथवा विकृत दिखना, लड़केका लड़की जैसा देखनेमें लगना।

(२) किसी प्रकारकी सामाजिक स्थितिमें कमी, तथाकथित नीची जातिमें पैदा होना, क्वांरेमें पैदा होना, जन्मका पता न होना।

(३) धनकी कमी—गरीबीकी अनुभूति।

(४) लिंग सम्बन्धी कमी—स्त्री होना।

(५) बलकी कमी—यह अवस्थाकी कमीके कारण उत्पन्न होती है।

इनमेंसे किसी प्रकारकी कमीकी अनुभूति आत्म-हीनताकी ग्रन्थि मनमें उत्पन्न करती है। इन सभी प्रकारकी कमियोंमें शारीरिक कमी प्रधान है; उससे दूसरी महत्वकी कमी लिंग सम्बन्धी है। अतएव स्त्रियोंकी आत्म-हीनताकी ग्रन्थिका रहना स्वाभाविक है। मनुष्योंमें अभाव का अनुभव मात्र आत्म-हीनताकी ग्रन्थि उत्पन्न नहीं करता। ग्रन्थि उसी अवस्थामें उत्पन्न होती है, जब कि कमीका अनुभव मनुष्यको दुखी करता है। उदाहरणार्थ सभी स्त्रियोंमें आत्म-हीनताकी भावनाकी ग्रन्थिका होना कुछ आवश्यक नहीं, यद्यपि सभी स्त्रियां अपने आपको पुरुषोंकी अपेक्षा सभी प्रकारसे न्यून पाती हैं। इस प्रकारकी ग्रन्थि प्रायः पढ़ी-लिखी स्त्रियोंके मनमें रहती है। वे अपनी यौन सम्बन्धी कमीका ध्यान ही नहीं करती, उस अनुभवसे दुखी होती है। अतएव वे अपनी कमीको भूलनेकी चेष्टा करती हैं। ऐसी अवस्थामें ही आत्म-हीनताकी भावनाकी ग्रन्थि मनमें बनती है। इसी तरह सभी काले लोगोंके मनमें आत्म-हीनताकी ग्रन्थि नहीं होती, श्यामवर्ण ब्राह्मण अथवा खत्री बालकके मनमें इस प्रकारकी ग्रन्थि होती है, क्योंकि इस जातिका बालक अपने आपको अपने ही वर्गके

दूसरे बालकोंसे भिन्न पाता है और इस विषमता को देखकर दुखी होता है। निम्न जातिके प्रतिभाशाली बालकमें आत्म-हीनताकी ग्रन्थि होती है, साधारण बालकोंके मनमें वह ग्रन्थि नहीं होती। जारज सन्तानके मनमें आत्म-हीनताकी भावना की ग्रन्थि होती है, क्योंकि उसे समाजमें साधारण बालकों जैसा स्थान नहीं मिलता और यह समझकर उसे दुःख भी होता है।

इस तरह हम देखते हैं कि दुःखका अनुभव ही आत्म-हीनताकी भावना-ग्रन्थिकी उत्पत्तिका कारण है। यह दुःख मनुष्यको उतना ही अधिक होता है, जितनी कि उसकी आशाएं बढ़ी रहती हैं। अर्थात् निराशा ही दुखके अनुभवका मूल कारण है। भारतवर्षके लोगोंमें धनकी कमी होने पर आत्म-हीनताकी ग्रन्थि उत्पन्न नहीं होती; क्योंकि उनकी विचारधारा ही ऐसी है कि वे इस प्रकारकी कमीको स्वाभाविक मान लेते हैं।

आत्म-हीनताकी ग्रन्थि मनुष्यके उन आचरणोंका कारण बनती है, जिससे कि वह मनुष्य दूसरोंसे निराला माना जाता है। जिस व्यक्ति में आत्म-हीनताकी ग्रन्थि रहती है, वह सदा अपने आपको दूसरोंकी अपेक्षा ऊंचा और सुयोग्य सिद्ध करनेकी चेष्टा करता रहता है। इस प्रकार की क्रियाको मनोविश्लेषण विज्ञानमें अति पूर्ति की प्रतिक्रिया कहा गया है।

मान लीजिये कोई मनुष्य नाटा है, तो स्वभावतः ही उसकी आवाज दूसरे लोगोंसे ऊंची होगी। काला मनुष्य विद्याध्ययनमें कुशल होता है, कुरूपवान सदाचारी होता है। क्वांरीका पुत्र वीर, दार्शनिक अथवा सन्त हो जाता है। लड़कीके जैसा चेहरावाला लड़का वीर और योद्धा हो जाता है। सभी लोगोंमें ऐसा नहीं होता; किन्तु आत्म-हीनताकी भावना ग्रन्थिवाले लोगोंमें यह होता है।

आत्म-हीनताकी भावना-ग्रन्थिका शिकार पुरुष कभी कभी दुराचारी भी होता है। जिस बालक को बालकपनमें अधिक ताड़ना मिलती है, वह बड़े होनेपर अत्याचारी बन जाता है। जब वह ताड़ना पाता था तो वह अपनी असहाय अवस्थासे दुखी होता था। वह ताड़नाको अत्याचारके रूपमें मानकर भी उसे सहता था। इस प्रकार उसके मनमें अपने ही प्रति आत्महीनताकी ग्रन्थि उपस्थित हो गयी। इसके प्रतिकार स्वरूप वह स्वयं दूसरोंपर अत्याचार करता है। मानो वह अपने आपको दूसरोंकी अपेक्षा अधिक बली सिद्ध करनेकी चेष्टा करता है।

प्रसिद्ध अङ्गरेजी उपन्यासकार डिकिन्स जब लब्ध प्रतिष्ठ हुआ तो अपने कोटमें सोनेके बटन लगाने लगा। ऐसा दूसरे और किसी लब्ध प्रतिष्ठ विद्वानने नहीं किया है। इसका कारण जब हम खोजते हैं तो उसकी गरीबीके जीवनकी अनुभूतियां पाते हैं, जिनसे कि उसके मनमें अपने प्रति हीनताकी ग्रन्थि उत्पन्न हो गयी थी। अपनी किसी प्रकारकी कमीकी अनुभूति उसके लक्षणोंमें प्रकाशित होती है। गरीब स्थितिमें पला बालक बड़े होनेपर अपने धनका प्रदर्शन करता फिरता है। वास्तवमें उसके मनमें अपनी गरीबीके संस्कार उस समय भी वर्तमान रहते हैं जब वह इस प्रकार अपने धनका प्रदर्शन करता है। इसी तरह डरपोक मनुष्य बड़ी बड़ी बहादुरी की बातें कहता है और ऐसे आयोजन करता है जिनसे उसकी बहादुरी सिद्ध हो सके। जिस व्यक्तिको अपनी विद्वत्ताके सम्बन्धमें आत्महीनता की ग्रन्थि रहती है वह अपने आपको दूसरोंके समक्ष पण्डित सिद्ध करनेके लिये अनेक उपाय रचता है।

मनुष्यकी साधारण प्रतिभाके प्रकाशन और आत्म हीनता ग्रन्थि द्वारा प्रेरित प्रतिभाके प्रकाशनमें अन्तर रहता है। पिछले प्रकारके प्रकाशनमें अत्यधिक प्रयत्न होता है। अतएव प्रायः यह प्रकाशन समाजका कल्याण न कर या तो व्यर्थ हो जाता है अथवा अकल्याण करता है। आत्म-हीनतासे किये गये कार्य अन्तमें मनुष्यको प्रतिष्ठित न बनाकर हास्यास्पद बना देते हैं। इससे उसे सुखके बदले दुःख ही होता है। ऐसे कार्य समाजके लाभकी बुद्धिसे प्रेरित नहीं होते। उनका मुख्य लक्ष्य दूसरोंसे अपने आपको ऊंचा बनवाना होता है। अर्थात् वे अभिमानसे प्रेरित होते हैं, अतएव इनका अन्तिम परिणाम दुःख होना स्वाभाविक है।

आत्म हीनताकी ग्रन्थि अपने सामर्थ्यके प्रति क्रोध प्रकट करनेसे उत्पन्न होती है। जब मनुष्य अपने आपको किसी परिस्थितिमें असहाय देखता है तब या तो वह इस असहाय अवस्थाको स्वाभाविक मान लेता है अथवा उसे अस्वाभाविक मानकर उसके प्रति अपना क्रोध प्रकट करता है। जब इस क्रोधसे परिस्थितिमें कोई परिवर्तन नहीं होता तो उस क्रोधकी प्रतिक्रिया स्वयं क्रोध करनेवाले पर होती है। अर्थात् मनुष्य अपने आपको कोसता और दुःखी बनाता है। इस प्रकारके दुःखकी अनुभूति बड़ी प्र[...] होती है। जब जब इसकी स्मृति आती है मनु[ष्य] दुःखी हो जाता है। इसे भूलनेकी चेष्टासे [...] आत्म-हीनताकी भावना-ग्रन्थि उत्पन्न होती है। आत्म-हीनताकी ग्रन्थिकी प्रतिक्रियाके फलस्व[रूप] मनुष्य बड़े बड़े काम करनेके मनसूबे करता है। जिस प्रकारकी हीनतासे यह गांठ मनमें उ[त्पन्न] होती है उसके ठीक विपरीत व्यवहारोंमें मनु[ष्य] प्रवृत्त होता है। मानों वह चेतन मनसे सदा [...] प्रयत्न करता रहता है कि कहीं उसे उ[स] हीनता उसे याद न आ जाय।

जैसे मनुष्य अपने बुढ़ापेके आगमनको भु[लाने] को खिजाब लगाता है, शरीरकी गन्दगी [...] कुरूपताको भुलानेके लिये सुन्दर सुन्दर कपड़े प[ह]नता है उसी तरह वह अपनी अनेक प्रका[रकी] कमीको भुलानेके लिये अनेक प्रकारके उ[पाय] रचता है। कितने ही मनुष्योंको अपने पु[राने] कामोंसे भी आत्म-ग्लानि होती है। इस ग्ल[ानि] को भुलानेके लिये मनुष्य बहुधा समाज-सुधा[रके] कामोंमें लग जाता है। अपने मनमें रहनेवा[ली] गन्दगी अथवा कमीकी कल्पना वह अपनेसे बा[हर] करता है अर्थात् वह दूसरे लोगोंपर उसे [...] आरोपित करता है, पीछे उसे हटानेकी चे[ष्टा] करता है। जो मनुष्य दूसरोंको सदाचारी ब[नने] का उपदेश अत्यधिक देता है वह वास्तवमें अ[पने] व्यभिचारी स्वभावको भूलनेकी चेष्टा करता है। इसी तरह जो कमी मनुष्यमें रहती है उसी[को] दूसरेमें खोजकर उसकी निन्दा करके मनु[ष्य] अपने विवेकको उस सम्बन्धमें आत्म-निरीक्ष[ण से] रोकता है। मनुष्य जितनी तरकीबें अपने आ[प] को धोखा देनेमें काममें लाता है उतनी तरकी[बें] दूसरोंको धोखा देनेके काममें नहीं लाता। [...] मनुष्यमें जितनी अधिक चरित्रकी कमी होती [है] वह उतना ही अधिक बर्हिमुखी होता है। [...] अपने आपको सुधारनेकी सबसे अधिक आव[श्य]कता है वही दूसरोंको सुधारनेके लिये चिन्[तित] रहता है। यह अपनी कमीको भूलनेकी चेष्टा [...] है। आत्म-हीनताकी ग्रन्थिके निवारणका स[र्वो]त्तम उपाय सन्तोष और मैत्री भावनाका अ[भ्यास] है। सब परिस्थितियां कल्याणकारी हैं [...] सब मनुष्य मेरे मित्र हैं, न मैं उनका शत्रु हूं [और] न वे मेरे शत्रु हैं इस प्रकारकी दृढ़ भावना [...] से दूसरोंको तथा अपने आपको धोखा दे[ने ...]

(शेष ९० वें पृष्ठपर)
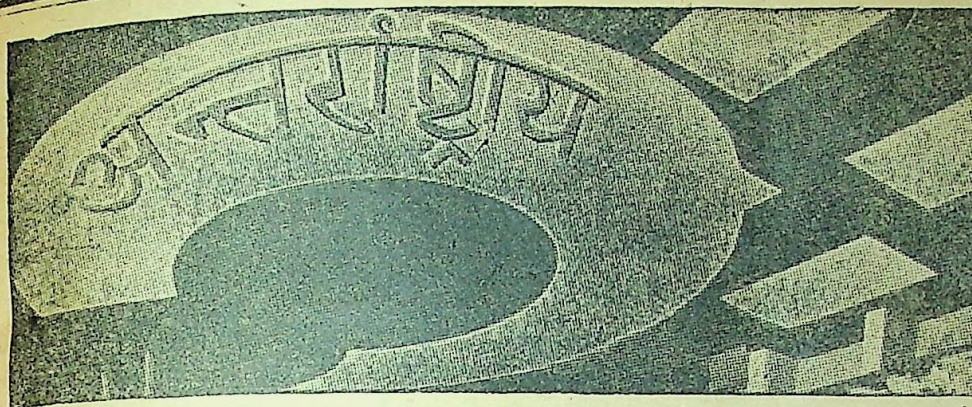
जापान क्या करेगा—

जेनरल तोजोके नेतृत्वमें जापानने जो आश्चर्यजनक सफलता और विजय प्राप्तकी इसे देख कर संसार चकित हो गया। कुछ समयके लिये प्रबल पराक्रमी हिटलर और उसकी विजयों को भी लोग भूल गये और सबकी जबानपर बल्के तोजो और जापानकी अद्‌भुत सफलताओंकी ही चर्चा रहती थी। पार्लहारबर, सिङ्गापुर, मलाया बर्मा और प्रशान्तके बहुसंख्य द्वीप चुटकी बजाते जापानके हस्तगत हो गये। भारतपर उस समय जापानकी प्रचण्ड शक्तिका कैसा आतङ्क छा गया था यह तो सभी जानते हैं। सबको इस बातका विश्वास सा हो चला था कि शीघ्र ही भारतपर जापानका आधिपत्य होने वाला है। इस प्रबल तूफानी वेगको भला कौन रोक सकता है। लेकिन कालचक्र सब दिन एक समान नहीं चलता। जापानका आक्रमण रथ बर्मा तक जिस तेजी और तीव्रताके साथ बढ़ा था उसी तेजी और भयङ्करताके साथ वह भारतकी ओर आगे नहीं बढ़ सका। उसकी प्रगतिको भारतकी सीमापर अवरोधका सामना करना पड़ा। केवल इधर ही नहीं अन्य मोर्चोंमें भी धीरे धीरे उसकी रफ्तार घटने लगी और कुछ दिनके बाद यह स्थिति आयी कि कालके समान-द्रुत वेगसे बढ़ने वाले जापानी धीरे' धीरे' पीछे हटने लगे। इस तरह देखा जाता है कि पार्ल-हारबरपर श्रीगणेश करनेके बाद प्रथम आठ या दस महीनोंके भीतर तोजोके जापानने जो चमत्कार कर दिखाया था उसकी चमक १९४३में कुछ मन्द पड़ी और १९४४ में तो उसकी पालिशके बिलकुल उतरनेकी नौबत आ पहुची है। सभी मोर्चोंमें क्रमशः धीरे धीरे जापानी सूर्य-पुत्रोंको पीछे ही हटना पड़ रहा है, अवश्य ही पश्चात्पद होनेकी गति बहुत मन्द है। लेकिन यह सच है कि पहले दस महीनोंकी आकस्मिक सफलता अब धीरे धीरे असफलताओं में परिणत हो रही है। ऐसी स्थितिमें जापानियोंके भीतर जेनरल तोजो और उनकी सरकार में अधिक कुछ कर दिखानेकी क्षमतामें अविश्वास का भाव पैदा होना स्वाभाविक ही था। अप्रस्तुत मित्र राष्ट्रोंकी असावधानी और दुर्बलतासे जहां तक लाभ :उठाया जा सकता था, अथवा जितना लाभ उठा सकने की क्षमता तोजो सरकारमें थी वह अपनी पराकाष्ठाको पहुंच गयी है, यह समझ कर पूर्वीय विश्वको अपने मातहत देखनेको चंचल और उत्सुक जापानियोंमें यदि तोजो सरकारके विरुद्ध असन्तोष यहां तक बढ़ा कि अन्तमें उसे इस्तीफा देनेको बाध्य होना पड़ा तो कोई आश्चर्य नहीं है। इसी असन्तोषके फलस्वरूप गत १८ जुलाईको जेनरल तोजो और उनके मन्त्रिमण्डलने अपना त्यागपत्र जापान सम्राटकी सेवामें उपस्थित कर दिया और २० जुलाईको जेनरल कुनाइकी कोइसोने नवीन मन्त्रि मण्डल बनाया। इसके पहले ही जेनरल तोजोने सेनाके प्रधान पदसे भी इस्तीफा दे दिया था और अब :देखा जाता है कि नबीन सङ्गठित मंत्रि-मण्डलमें उन्हें कोई स्थान भी नहीं दिया गया।

तोजो मन्त्रिमण्डलके त्यागपत्रकी घोषणाके साथ साथ जापानी सम्बाद समितिने यह भी संसारको बताया कि 'मन्त्रि मण्डलको अधिक मजबूत बनानेके उद्देश्यसे ही ऐसा निर्णय किया गया है। वर्त्तमान मन्त्रिमण्डल जिस उद्देश्य और लक्ष्यको पूरा नहीं कर सका उसे पूर्ण करने के लिये तमाम प्राप्त साधनोंसे लाभ उठाना ही इस परिवर्तनका उद्देश्य है। इस युद्धको सम्पूर्ण रूपेण चलाते रहना ही पूरे मन्त्रिमण्डलके त्यागपत्र देनेका कारण है।" इससे यह बिलकुल स्पष्ट है कि अपने अभीष्ट लक्ष्य तक पहुंचनेमें तोजो मन्त्रिमण्डलको असमर्थ देख कर ही नवीन मन्त्रिमण्डलके सङ्गठनका निर्माण किया गया है। तोजो के त्यागपत्र देनेपर टोकियो रेडियोने जो ब्राडकास्ट किया था वह भी युद्धको और अधिक उग्र एवं भयङ्कर रूपमें चलानेका ही संकेत करता है। "१० करोड़ जापानी आज शत्रुका खास जापानी भूमिपर सामना करनेकी राह देख रहे हैं। शत्रुको तभी सम्पूर्ण रूपसे चूर्ण विचूर्ण किया जा सकता है। तोजो सरकारने जो कुछ कर दिखाया है उसके लिये जापानी उसके कृतज्ञ हैं किन्तु नया मन्त्रिमण्डल उससे भी अधिक शक्तिशाली और तगड़ा होगा और ब्रिटिश और अमेरिकनोंका अस्तित्व मिटा देनेको प्रत्येक जापानी आज पहलेसे भी कहीं अधिक कृतसंकल्प है।" यह है मनोभाव जिससे प्रेरित हो कर तोजोकी जगह नये प्रधान मन्त्री जेनरल कुनाइकी कोइसोने ग्रहण की है। अतएव इस परिवर्तनसे मित्रराष्ट्रोंके खुश होनेका कोई कारण नहीं है। यह परिवर्तन जापानमें गृहविरोधका सूचक नहीं है, बल्कि युद्ध चक्रको अधिकाधिक भयङ्कर बनानेका संकेत है।

भगवानका संकेत—

जापानी मन्त्रिमण्डलके बदलनेके साथ-साथ संसारने उससे भी अधिक सनसनीखेज और लोमहर्षक घटना देखी। यह घटना जर्मनीके सर्वेसर्वा हिटलरका बध करनेका असफल प्रयास है। जर्मन संवाद समितिका कहना है कि २० जुलाईको भयङ्कर विस्फोटक बम द्वारा हिटलरकी हत्या करनेकी कोशिश की गयी थी। यद्यपि हिटलर बाल-बाल बच गये, किन्तु उनके कई साथी सख्त घायल हो गये। हिटलरने अपना कार्य, जिसके लिये वे उक्त स्थान पर एकत्र हुए थे, जारी रखा और पूर्व आयोजित कार्यक्रमके अनुसार उन्होंने मुसोलिनीसे लम्बा बार्तालाप किया। घटनाका हाल पाते ही फौरन मार्शल गोयरिंग उनसे मिलने आये। यह पहला ही अवसर नहीं है, जब जर्मनोंके देवतुल्य हिटलरकी हत्या करनेकी कुचेष्टा की गयी हो। इसके पहले भी दो बार ऐसे ही असफल प्रयत्न हो चुके हैं और पिछला प्रयत्न ८ नवम्बर १९३९ को हुआ था, जब म्यूनिक स्थित बीयर सेलारसे हिटलरके चले जानेके पांच मिनट बाद निर्धारित समयपर फटनेवाला बम फूटा था। जनवरी १९३९ में भी एक सुप्रसिद्ध राष्ट्रवादी जर्मन लेखक निशियाशको हिटलर एवं अन्य उच्च नाजी अधिकारियोंकी हत्या करनेका षड्यन्त्र करनेके अभियोगमें सजा दी गयी थी।

आलोच्य घटनाके पीछे जर्मनीके कुछ असन्तुष्ट सेनापतियोंका हाथ समझा जाता है। इन सेनापतियोंमें रुन्स्टेड, ब्राशिश, कीटल और बोक हैं। यह भी कहा जाता है कि इन चारों सेनापतियोंने अपने अन्य सहायकोंको लेकर जर्मनीमें एक नयी गुप्त सरकार संघटित की है। यद्यपि बादमें आये समाचारोंसे इनमेंसे पहलेके तीन सेनापतियोंके षड्यन्त्रमें लिप्त रहनेके समाचारकी पुष्टि नहीं होती। इस दलने जर्मन सरकारके बर्लिन स्थित सदर मुकामपर कब्ज़ा करनेका भी प्रयास किया था, लेकिन गोयबलने उनकी इस चेष्टाको विफल कर दिया। इन सब घटनाओं एवं यत्र-तत्र गृह-युद्धके समाचारोंसे यह संकेत मिलता है कि हिटलरके विद्रोहियोंने अपने षड्यन्त्रकी सफलताकी आशा पर एक बहुत बड़ा कुचक्र रच डाला था और नाजी सरकारके स्थानपर सैनिक सरकार बनाकर युद्ध बन्द कर देनेकी पूरी योजना बना ली थी। इस जगह यह उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा कि इस घटनाके समय मि० चर्चिल नारमण्डीमें उपस्थित थे और यदि षड्यन्त्र सफल हो गया होता, तो अवश्य ही उस समय उनकी वहां पर उपस्थिति महत्वपूर्ण रंग लाती और आज विश्व नाटक शायद दूसरी ही स्याहीसे लिखा जाता होता। किन्तु 'मन चेते नहिं होत कछु, हरि चेते सब होत।'

घटनाके बाद ही जर्मन जनताको यह विश्वास करानेके लिये कि उनका नेता पूर्ण सुरक्षित है, हिटलरने इस तरह ब्राडकास्ट किया मेरा जीवन लेनेका यह तीसरा प्रयत्न है। मैं इसलिये आज बोल रहा हूं कि तुम मेरी आवाज सुनो और यह जान लो कि मैं अन्तरहत और चंगा हूँ। मैं इस घटनाको यह समझता हूं कि भगवानने जो कार्य मुझपर सौंपा है, उसे मैं जैसे अवतक करता आ रहा हूं, वैसे ही करता हुआ अपने जीवन-पथपर अग्रसर होता चला जाऊं। इस घटनासे इस बातकी पुष्टि होती है। जब जर्मन सेना भयङ्कर सङ्घर्षमें लिप्त है, इटाली और जर्मनीमें एक छोटा-सा दल खड़ा हो गया है, जो यह समझता है कि १९१८ की तरह इस बार भी वह पीठपर छूरेका वार कर सकता है। किन्तु इस बार इन लोगोंने बड़ी कुत्सित भूल की है। इन षड्यन्त्रकारियोंका गरोह बहुत ही नगण्य है और जर्मन सेना एवं जर्मन राष्ट्रकी भावनाका लेश भी इनमें नहीं है। अपने इसी ब्राडकास्टमें हिटलरने यह भी बताया कि षड्यन्त्रकारियोंको, जहां जो मिले, गिरफ्तार कर मौतके घाट उतार देनेका हुक्म उन्होंने जारी कर दिया है। बादके समाचारोंसे यह मालूम होता है कि विद्रोह फौरन दबा दिया गया और पकड़े गये बागी सरदारों और उनके सहायकोंको यथास्थान पहुंचा दिया गया अथवा पहुंचाया जा रहा है।

अभी हाल-ही-में ब्राडकास्ट करते हुए जर्मन प्रचार मन्त्री गोयबलने कहा है कि 'फुहररकी रक्षा स्वयं दैवने की थी और इस तरह उनको अपना काम जारी रखने योग्य बना रखा। भाग्य शैतानसे अधिक प्रबल है और वह अपना काम कर रहा है। वह इस बातका संकेत कर रहा है कि यह काम पूरा होना ही चाहिये, हो सकता है और होकर रहेगा। हत्याका वर्णन करते हुए गोयबलने बताया कि फुहरर भगवानके हाथोंमें सुरक्षित हैं। सम्मेलन-स्थानमें, जहां घटना घटी थी, उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति विस्फोटके वेगसे खिड़कीके बाहर उड़ कर जा गिरा और उसकी वर्दी टूक-टूक हो गयी। कमरेमें केवल एक स्थल ऐसा था, जो बिलकुल अछूता रह गया और वह स्थल था, जहां फुहरर खड़े थे।" यदि यह सत्य है तो यही कहना पड़ेगा कि निस्सन्देह इस बार हिटलरकी रक्षामें भगवानका ही हाथ था।

आत्म-हीनताकी ग्रन्थि

(शेषांश)

आवश्यकता नहीं रहती। मनुष्य तभी तक दुःखी होता है जब तक कि वह कुछ बातोंको वांछनीय और कुछको अवांछनीय मानता है। यदि मनुष्य अपनी आदत ऐसी बनाये कि वह सभी बातोंको वांछनीय समझे, क्योंकि मनुष्यके जीवन-विकासमें सभीका स्थान है, तो उसे दुःखी होनेका कोई कारण न रह जाय। मनुष्य अपनी कमीको दूसरोंसे इसलिये छिपानेकी चेष्टा करता है कि वे उसकी कमीपर हंसेंगे। अथवा उसकी कमीको जानकर किसी विशेष प्रकारका लाभ उठायेंगे। इसी मनोवृत्तिके कारण वह अपने आपको धोखा देता है। यदि कोई मनुष्य सभी प्राणियोंको अपना मित्र समझे तो उसे अपनी कमीको छिपानेकी आवश्यकता ही न हो। इसी तरह अपनी पुरानी घटनाओंको अपने स्थानपर ठीक समझे तो उनकी स्मृति भी उसे दुःखदायी न हो। ऐसी स्थितिमें उसके मनमें कोई आत्म-हीनता की ग्रन्थि न रहे।

आत्म-हीनताकी ग्रन्थि अपने प्रति अमैत्री भावनाके परिणाम स्वरूप होती है। जैसे दू के प्रति मैत्री भावना हमारे मनोविकारों मनसे निकाल देती है, इसी तरह अपने मैत्री भावना हमारी दुःखदायी मनोवृत्तियों शांत कर देती है। अपने आपको कोसना भारी भूल है। आत्म प्रसादसे ही मनुष्य जीवन विकसित होता है, उसके बाहुओंमें आती है और उसकी प्रतिमा अपना चमत् दिखाती है। पर आत्म प्रसाद मैत्रीभावना अभ्याससे आता है। अपने आपको कोसनेसे नहीं

दूसरोंके प्रति मैत्री भावनाका अभ्यास और अपने प्रति मैत्री भावनाका अभ्यास दूसरेसे घनिष्ट सम्बन्ध रखते हैं। वे एक पर आश्रित हैं। जो मनुष्य जितना ही अ दूसरोंका मित्र होता है वह अपना भी उतना ही अधिक होता है। अर्थात् जितनी के साथ हम दूसरोंके कल्याणकी इच्छा लाते हैं, उतनी ही प्रबलताके साथ हमारे अपने कल्याणके विचार उठते हैं। इसी दूसरोंके अकल्याणके विचार आत्म कल्या बिचारोंमें परिणत हो जाते हैं। चाहे हम अथवा न चाहें अभद्र कल्पनाएं हमारे म घेरे रहती हैं और मनसे उन्हें हटाने पर नहीं हटती। यह दूसरोंके प्रति अमैत्री भाव अभ्यासका परिणाम है।

अपनी ग्रन्थियोंको नष्ट करनेके लिये म को अपने प्रति मैत्री भावनाका अभ्यास दूसरों प्रति मैत्री भावनाके अभ्याससे पृथक नहीं क पड़ता। हमारा दूसरोंके प्रति मैत्री भावना अभ्यास स्वतः आत्म मैत्रीके विचार मनमें आता है, जिस तरह दूसरोंके प्रति अमैत्री अभ्यास स्वभावतः आत्म अमैत्रीके विचार म उत्पन्न करता है। एक प्रकारका कार्य जब मनमें होता है तो दूसरे प्रकारके कार्यकी तैया अचेतन मनमें हो जाती है। ये अचेतन म विचार ही पीछे चेतनामें आ जाते हैं।

अज्ञान ही सब प्रकारकी मानसिक ग्रन्थि का कारण है। यह अज्ञान स्वयंको शरीरसे मित माननेमें है। प्रेम इस अज्ञानका विना है अतएव वह आत्म-हीनता की ग्रन्थि भी विनाशक है। मनुष्यकी आत्मा प्रेमसे पवित्र होती है, यही उसमें आत्मप्रसाद उ करता है। वास्तवमें सच्चे आत्म-ज्ञानका प चायक विश्व-प्रेम ही है।

श्री गजपुटानन्द

(१)
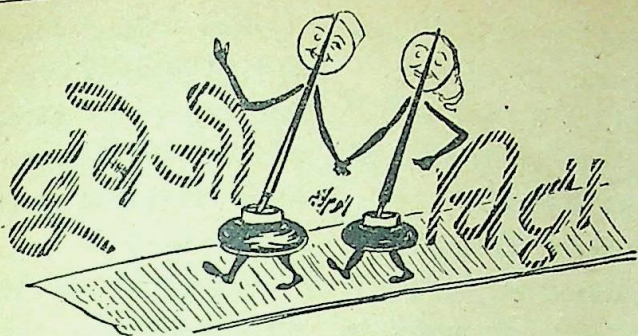
संध्याका समय था। अपने कृष्ण—चौंकिगा नहीं, यह प्रगतिशीलताका युग है, इस कारण 'अपने राम' 'अपने कृष्ण' हो गये हैं, यानी जो अन्तर राम तथा कृष्णमें था, वही अन्तर अब अपने राम तथा अपने कृष्णमें भी हो गया है। हां, तो अपने कृष्ण पार्ककी ओर चले जा रहे थे—इसी समय एक महाशय मिल गये। यह भी पार्ककी ओर ही जा रहे थे। वृद्ध आदमी ९९ वर्षके लगभग आयु, धीरे-धीरे चले जा रहे थे। अपने कृष्ण जब उनके बराबर पहुंचे तो प्रणाम-नमस्कारका आदान-प्रदान हुआ। उन्होंने पूछा—"किधर सवारी चली?" अपने कृष्णने उत्तर दिया—"सवारी अभी कहां जायगी, अभी तो अप्रैलका महीना है। सवारी निकलती है क्वारमें।

"अरे साहब, मैं रामचन्द्रकी सवारीको नहीं पूछता।"

"तो वेद भगवानकी सवारीको पूछते हो? उसका भी समय निकल गया।"

"अरे साहब, मैं आपकी सवारीको पूछता हूं।"

"मेरी सवारी निकलनेमें तो अभी कुछ देर है, हां, आपकी सवारी अलबत्ता जल्दी ही निकलनेवाली है।"

"मेरी सवारी! मेरी सवारी कैसी?"

"जाने दीजिये ऐसी बातोंका जिक्र करनेसे क्या फायदा—खामखाह चिन्ता उत्पन्न होती है।"

"मेरा मतलब यह है कि आप किधर चले।"

"तो इसी प्रकार स्पष्ट बात किया कीजिये। सवारी और पैदलीकी बात मत किया कीजिये। हां तो अब सुनिये-मैं पार्ककी ओर जा रहा हूं।"

"ओ हो, तब तो मेरा आपका साथ है। मैं भी उसी ओर जा रहा हूँ।"

अपने कृष्णने सोचा कि 'बुरे फंसे। यह व्यक्ति तो दिमागके लिए वैसा ही है जैसे कि शहदके लिए मक्खियां। परन्तु क्या करते मजबूरी थी।

"और कहिये, क्या खबर है?"

यहांपर अपने कृष्ण दांव खा गये। यदि पहले अपने कृष्ण यही प्रश्न उनसे कर बैठते, तो खबरें सुनानेका काम उनके सिर हो जाता।

"खबरें सब वही हैं, जो आप समाचार-पत्रोंमें पढ़ते हैं।" अपने कृष्णने पिण्ड छुड़ानेके अभिप्राय से कहा।

"इधर दो दिनसे मैंने कोई पत्र नहीं पढ़ा। ऐसा कुछ संयोग आ गया कि पढ़ ही न पाया।"

"तो आज अवश्य पढ़ लीजियेगा। बहुत दिनोंके पश्चात आज आप पढ़ेंगे, तो बड़ा आनन्द आयेगा।"

"अजी वह एक ही बात है—आपसे सुननेसे कुछ आपकी राय भी मालूम हो जायगी।"

"आपका पत्र पढ़नेका आनन्द नष्ट हो जायगा, क्योंकि यह कायदा है कि जो बात पहलेसे ही मालूम हो जाय, उसके पढ़नेमें आनन्द नहीं आता।"

"अजी आप भी क्या बात करते हैं। ऐसा कैसे हो सकता है।"

"ऐसे हो सकता है कि मान लीजिये मुझे यह बात मालूम हो गयी कि आपका शरीर नहीं रहा। इसके पश्चात् यदि मैं समाचार-पत्र में पढ़ूं कि शुक्लजीका देहान्त हो गया, तो मुझे आनन्द आयगा?"

शुक्लजी मेरी ओर घूर कर बोले—"यदि पहलेसे न मालूम हो, तो मेरी मृत्युका समाचार पढ़कर आपको आनन्द मिले?"

अब अपने कृष्ण समझे कि क्या कहना चाहिये था और क्या कह गये। जल्दीसे बात बदलनेके लिए बोले—"आनन्द नहीं—शोक! शोक!"

"यानी यदि आपको पहलेसे ही ज्ञात हो, तो मेरी मृत्युका समाचार पढ़कर आपको तनिक भी शोक न हो।"

अपने कृष्णने सोचा कि यह तो बुरा घोटाला हो गया। दुधारी तलवारका सामना पड़ गया। परन्तु अपने कृष्णका मस्तिष्क ऐसे अवसरोंपर 'थर्ड स्पीड' पर चलता है। अतः एक क्षण पश्चात् ही कहा—"शोक तो जिस समय सुना उसी समय हो लिया, उसी समय रो-पीट चुके। अतः पढ़नेका कोई प्रभाव नहीं हुआ।"

शुक्लजी बोले—"हूँ।"

अपने कृष्णने माथेका पसीना पोंछा और सोचा कि एक बातका उदाहरण देनेमें इतने धक्के खाने पड़े—आज भगवान ही कुशल करें।

परन्तु इसके पश्चात् शुक्लजीने खबरें नहीं पूछीं, गम्भीर हो गये। तरकीब काम तो दे गयी, परन्तु थोड़ी छीछालेदरके पश्चात्।

खैर साहब, हम दोनों धीरे-धीरे पार्कके निकट पहुंच गये। पार्क देखकर शुक्लजीकी गम्भीरता भङ्ग हुई। उन्होंने प्रसन्नमुख होकर कहा—"यह पार्क आजकल जीवन है।"

"जी हां! काफी हरी-हरी घास है। पानीका भी प्रबन्ध है।"

"घासपर ही बैठेंगे।"

"बैठिये, चाहिये लोटिये; चाहे कुछ कीजिये।"

हम दोनों एक ओर एकान्तमें घासपर जा बैठे।

कुछ देर मौन रहकर शुक्लजी बोले—"बड़ा बुरा समय आ गया है।"

"कुछ पूछिये नहीं। अपना कल्याण तो इसे बुरा समझनेमें ही है। ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या।"

"जी हां जगत तो मिथ्या है ही, परन्तु मैं समयकी बात कह रहा हूं।"

"जी हां समयकी बात भी करना चाहिये। इस आयुमें समयको बुरा समझना तो अच्छा ही है।"

"बुरा समझना ही क्यों अच्छा है।"

"इसलिए कि बुरा समझकर यदि इसे छोड़ेंगे तो कष्ट न होगा—अच्छा समझके छोड़ते समय कष्ट होगा।"

"छोड़नेकी बात मैं नहीं कहता।"

"आप न कहें, परन्तु छोड़ना तो पड़ेगा ही। अपने बसकी बात थोड़े ही है कि न छोड़ें।"

शुक्लजी पुनः गम्भीर हो गये। कुछ क्षण पश्चात सहसा बोले—"जरा इस जोड़ेको तो देखिये।"

अपने कृष्णने उनके जूतोंकी ओर देखकर कहा "क्या कोई खास बात है इनमें?"

"अरे साहब आप भी कहां पहुंच गये। वह दम्पतिका जोड़ा-वह जा रहा है।"

उस ओर देखकर हमने कहा—"क्या बात है इसमें ?"

"कैसी बेशर्मीसे हंसते हुए चले जा रहे हैं। स्त्रीको देखिये—बाहें और बगलें खुली हुई हैं।"

"आजकल कपड़ा बड़ा मंहगा है और मिलता भी नहीं।"

"अरे भई, यह फैशन है, कपड़ेकी कमीके कारण नहीं है।"

"फैशनके पीछे भी कोई-न-कोई कारण होता है। गर्म देशोंमें रहनेके कारण यूरोपियनोंने पतलून कटवा कर आधी कर लीऔर नाम 'शार्ट्स' रख दिया। वह गर्मियोंका फैशन हो गया। मेजपर काम करनेवालोंकी आस्तीनें कुहनीके पाससे घिस कर जल्दी फट जाती थीं, अतः किसी मितव्ययी बड़े आदमीने कुहनीके पाससे आस्तीनें कटवा कर 'हाफ स्लीव' करा ली-बस यही फैशन हो गया। आजकल गर्मियोंमें यहां यूरोपियन महिलाएं मोजे नहीं पहनतीं, यह फैशन है। कारण स्पष्ट है, अर्थात् गर्मी।"

"और हम लोग उनकी नकल करते हैं, आवश्यकतावश नहीं—फैशन वश !"

"हमारे यहां तो इसीलिए धोतीका रिवाज है।"

"परन्तु अङ्गरेजी फैशनके दीवाने हिन्दुस्तानी धोती न पहनेंगे—शार्ट्स ही पहनेंगे।"

"शार्ट्समें कपड़ा कम लगता है।"

"अजी कपड़ेकी चिन्ता किसे है, फैशनकी पूर्ति होनी चाहिये।"

"खैर अपनेसे क्या, अपनी तो निभ गयी।"

"परन्तु लड़कोंके दिमाग आसमानपर हैं।"

"जी हां जैसे ज्योतिषियोंके दिमाग आसमानपर रहते हैं। शुक्र और शनिश्चरकी ही बात सोचा करते हैं।"

"वह बात दूसरी है, मेरा मतलब और है। जैसे हमारे चिरञ्जीव विवाह ही नहीं करते।"

"कहीं उसे यह भ्रम तो नहीं हो गया कि आप अपना विवाह करने वाले हैं ?"

"मेरा विवाह ! मैं आपका मतलब नहीं समझा।"

"महाराज शान्तनुके साथ भी तो यही गड़बड़ हुई थी। भीष्मको जब पता लगा कि उसके पिता राजा शान्तनु सत्यवतीसे विवाह करनेवाले हैं, तो उसने स्वयं विवाह न करनेकी प्रतिज्ञा कर ली।"

"तोबा ! कितनी कष्टकल्पना करते हैं आप ! शान्तनु और भीष्मको घसीट लाये। अरे साहब, मेरा मतलब कुछ और है।"

"आपका मतलब और हो जायगा, तो मेरी कल्पना भी बदल जायगी। हां क्या मतलब है ?"

"हमारे चिरंजीव कहते हैं कि लड़कीसे भेंट और वार्त्तालाप करके विवाह करेंगे और दहेज भी न लेंगे।"

"यदि पहली शर्त न होती' तो दूसरी शर्त तो बड़ी प्यारी है।"

"भला कौन भला आदमी अपनी लड़कीसे भेंट करा देगा।"

"जी हां भेंट भी न करायेगा और दहेज दिये बिना भी नहीं मानेगा।"

"पुरानी प्रथा तो यही है—इसे कौन छोड़ देगा।"

"अजी सो न कहिये, छोड़नेको तो सांप भी पुरानी केंचुल छोड़ देता है।"

"हम लोग सांप नहीं हैं, मनुष्य हैं। भला आप ही बताइये कि पुरानी बातें कौन छोड़ देगा।"

"पुराना चोला तो छोड़ना ही पड़ेगा।"

"ओहो। चोला और चोलीकी बात मत कीजिये—पुराने रस्मोरिवाजकी बात कहिये।"

"जब पुरानी सब चीजें छोड़ी जाती हैं तो रस्मोरवाज भी छूट जायेंगे।"

"तो क्या प्रत्येक पुरानी चीज़ छोड़ने ही योग्य है ?"

"ऐसी बात तो नहीं है, पुराने चावल, पुराने रस, पुरानी मदिरा, पुराने हरिन, इत्यादि कदापि छोड़ने योग्य नहीं हैं।"

"आज भांग अधिक हो गयी क्या ? बहुत बहक रहे हो। मैं क्या कहता हूं, आप क्या समझते हैं।"

"हम जो समझते हैं, ठीक समझते हैं। समझने वालेकी मौत है, इससे नासमझ बने रहना ही अच्छा है। सबसे भले हैं मूढ़, जिन्हें न ब्यापै जगत गति।"

"अच्छा अब यह बताइये कि ऐसी दशामें मैं क्या करूं ?"

"किस दशामें।"

"यही जो मैंने अपने चिरंजीवकी दशा बतायी।"

"दहेज वाली बात तो अलबत्ता आपके [illegible] पड़ती है। और लड़की देखनेकी बात स[illegible] विरुद्ध पड़ती है। इस प्रकार दोनोंके वि[illegible] एक बात पड़ती है। आप कुछ ऐसी [illegible] सोचिये कि एक ही के माथे जाय।"

"सो कैसे ?"

"लड़की वालेसे कहिये कि लड़की भी [illegible] और दहेज भी दे।"

"परन्तु दहेज लेनेके लिए चिरंजीव जो [illegible] नहीं है।"

"चिरंजीवको दहेज देखने तो दीजि[illegible] न लें तो कहियेगा।"

"परन्तु जब विवाहकी नौबत ही न [illegible] तो देखेगा क्या ?"

"चिरंजीवसे तो यही कहते रहिये [illegible] रस्मके तौरपर ले तो लिया जायगा, परन्[illegible] वापस कर दिया जायगा।"

"ऐसा कहनेसे मान जायगा ?"

"जी इस समय भी मान जायगा औ[illegible] समय भी मान जायगा।"

"उस समय कैसे मान जायगा।"

"जब उसे रुपये, अंगूठी, घड़ी, फाउण्[illegible] सोनेके बटन, इत्यादि मिलेंगे और फि[illegible] वापस करनेके समय उससे मांगे जायेंगे, त[illegible] कहेगा कि वापस करना तो ससुर सा[illegible] 'इन्सल्ट' होगी, इसलिए रख लेना ही ठी[illegible] क्यों आपका क्या ख्याल है ?"

"बात तो आप कुछ पतेकी ही कह र[illegible]"

"अपने कृष्ण वे पतेकी तो कहते ही [illegible]"

"यह अपने कृष्णका क्या मतलब।"

"पहले एक मतलब, जिसपर विचार [illegible] है, समझ लीजिये, तब दूसरेकी समझनेकी [illegible] कीजिये"

"हां ! तो आपकी यह बात कुछ [illegible] आयी। और लड़की देखनेकी बाबत क्या [illegible] जाय ? मान लीजिये लड़की वाला [illegible] दिखानेपर राजी न हुआ तो !"

"उसकी युक्तियां बहुत हैं !"

"कौन कौन जी ?"

"जब लड़की बीमार हो' तो डाक्टर [illegible] देख आ सकता है। बिसाती बनकर उस[illegible] ल्लेमें सौदा बेचने जा सकता है।"

"तोबा ! आप भी कहांकी बात करते [illegible] कोई कृष्णकी 'मनिहारी लीला,' 'मालिन [illegible] इत्यादि तो नहीं है।"

"अपने कृष्ण तो ऐसी ही बात सोचते हैं।"

"जी हां ! कृष्ण तो ऐसी बातें सोचेंगे ही।"

"इसमें कोई हर्ज नहीं है। प्रगतिशीलता का समय है। और कृष्ण भगवान वह सब पहले ही करके बता चुके हैं, जो इस प्रगतिशीलताके युगमें होना चाहिए।"

"कृष्ण भगवान तो चोरी भी करते थे।"

"जी ! उन्होंने प्रगतिशीलता दिखायी। यदि अपने कामकी चीज खरीदनेके लिए पैसे पास न हों और न मांगनेसे मिलें, तो चुरा लेना चाहिए—ऐसा करनेसे कोई पाप नहीं लगेगा।"

"खैर हमें ऐसा आदर्श नहीं चाहिए। यदि लड़की वाला राजीसे दिखाये तो ठीक है।"

"राजीसे तो कदाचित ही दिखाये।"

"यही तो कठिनता है।"

"आपको दिखा देगा।"

"इसमें तो कोई हर्ज नहीं है।"

"बेशक ! आपको दिखानेमें कोई हर्ज नहीं लेकिन जिसके साथ लड़की को जीवन बिताना उसे दिखानेमें इतना हर्ज है कि उसे आप न दिखायें तो बड़ी कृपा।"

"लड़केकी माता भी देख सकती है।"

"उसे तो आप कदापि न दिखाइयेगा।"

"क्यों ?"

"सास-बहूकी बहुत कम पटती है।"

"वह नौबत तो विवाहके बाद आयेगी। पहले तो वह यथोचित ही करेगी।"

"यदि कहीं वह नौबत देखनेसे ही आरम्भ हो गयी, तो जरा कठिनता पड़ेगी, बस इतनी बात है।"

"अजी नहीं। ऐसा कभी नहीं होता।"

"नहीं होता, तो दिखा लीजिये।"

"परन्तु लड़का मान जाय, तब। क्या समय आ गया है। हमारे समयमें ये बातें कहीं स्वप्नमें भी नहीं थीं। मां-बापने जिसका हाथ पकड़ा दिया, उसीके साथ हो लिये—चाहे अच्छी हो या बुरी जन्म भर निबाह देते थे।"

"आजकलके युवक निबाहनेका झगड़ा जरा कम ही पालते हैं। वह तो चाहते हैं कि प्रेम-प्रीतिका जीवन व्यतीत हो।"

"सो होता नहीं है, चाहे जितना देख-सुन कर विवाह करें। जरा-जरा सी बातपर झगड़े होते हैं, जरा-जरा सी बातपर सम्बन्ध-विच्छेदकी नौबत आ जाती है।"

"निबाहनेका प्रश्न जो नहीं है, इसलिए खैर, देखा जायगा। मैं भी जिद पकड़े हूं, देखो क्या होता है।"

इसके पश्चात अपने कृष्ण उठ कर चल दिये। इतनी ही देरमें तबियत ऊब गयी। यह महाशय अभी लड़की दिखाने और दहेज लेने न लेनेके ही फेरमें पड़े हैं। परन्तु उनकी बातोंसे यह मालूम हुआ कि उनको लड़की देखने-दिखानेकी इतनी चिन्ता नहीं है, जितनी दहेज लेनेकी ! दहेज मिलना आवश्यक है और कोई बात हो या न हो, उन्हें कोई विशेष आपत्ति नहीं है। दोनों अपनी-अपनी घातमें ! लड़का इस बातमें है कि किसी तरह भावी पत्नीका मुख देखनेको मिल जाय, यदि वार्त्तालाप हो जाय तो फिर कहना ही क्या है। पुराने आदमी प्राचीनताकी दुहाई-से अपना मतलब सिद्ध करना चाहते हैं और नवयुवक अर्वाचीनताकी। परन्तु यदि अपना मतलब सिद्ध होता हो, तो पुराने आदमी नवीनताको सहन कर लेंगे, यह कह कर कि "सयाना लड़का है उसकी बात भी माननी चाहिए।" और सयाना लड़का यह कहेगा—"पिताजी नहीं मानते, क्या किया जाय ! उनकी आज्ञाके विरुद्ध चलना भी उचित नहीं है।"

जब दोनों ही भलमंसीकी बात करते हैं तो तीसरा क्यों झख मारे ?

बस दो बर ! हो सत्य तुम्हारी वाणी

नभमें तारे जब तक गंगामें पानी
तू अमर और कवि तेरी अमर कहानी

जब जगमें यवनोंकी तलवारें
न अन्धकार ले फिरीं विपदकी रातें
संस्कृति रोती, खिल पड़ी पराजय अपनी,
नव आश-दीप ले पहुंची तेरी वाणी

दानवने की जब बन्द सबोंकी वाणी
मिट्टीमें मिल गया युगोंका पानी
'स्वान्तः सुखाय' जगती हिताय बन आई
वह 'राम राम' मानव—मानसकी वाणी।

युग बदला, फिर इतिहास कभी का बीता
वह महल - खण्डहर - काशी घट है रीता
सपने बीते—कितने गुजरे जगती में
घर घर में रटता 'राम राम' की वाणी।

सावन जब बरसता दूर देश, गांवोंमें
असहाय, दीन भारतकी प्रिय गलियों में
दुख भूल, बाल—बनिता, भूखे भिखमंगे
सुनते हैं खुश हो तुलसी—'राम कहानी।'

गाऊं स्मृति में गान कहां वह वाणी ?
रसों के बदले आंखों में है पानी।
क्या लिखूं कलम भी आज नहीं है अपनी।
तू अमर और कवि तेरी अमर कहानी।

गर मिलें राम फिर तो कवि उनसे कहना।
था अवध कभी सूना अब भारत सूना।
कितने रावण हर रहे, जानकी कितनी।
सब मूक खड़े हैं आज मूक कवि वाणी।

जाके जिसपर सत्य सनेहू रामा।
सो तेहि मिलै न कछु सन्देहू रामा।
दुहराता है आज विजय—पथ भारत।
बस दो बर ! हो सत्य तुम्हारी वाणी।

—रणधीर सिंह साहित्यालङ्कार

"महादेवी महासुरी"—

दुर्गा सप्तशतीमें एक प्रार्थना है, जिसके अनुसार भगवतीको महादेवीके साथ "महासुरी" अर्थात् महान् राक्षसीके नामसे भीसम्बोधित किया जाता है। अमर मार्कण्डेय ऋषिने इस प्रार्थना में कपोल-कल्पनाका आश्रय नहीं लिया है। उनका तात्पर्य यह है कि सत, रज, तमसे निर्विकार जगज्जननी जब भौतिक रूप और गुणोंमें प्रकट होती हैं, तो सतोगुणके अनुसार जहां वह महान् देवीका रूप धारण करती हैं, वहां आवश्यकतानुसार तमोगुणके अनुसार उन्हें महान् आसुरीका रूप भी धारण करना पड़ता है। सप्तशती में इन "महासुरी" का दृष्टान्त शुम्भ-निशुम्भ वधमें दिया भी गया है। पर वह हृदयके रणक्षेत्रमें होनेवाले नित्यके देव-दानव सङ्घर्ष, अथवा आध्यात्म स्तरमें होनेवाले सुर-असुर संग्रामकी चर्चा है। आजके भारतमें भी "महासुरी" के देखने के अवसर मिल जाते हैं और सबसे दुखद बात तो यह है कि भारतकी भीषण दरिद्रताने न जाने कितनी माताओंको महासुरीका रूप दे दिया है। हालमें ही छपराके दौरा जजने एक ऐसी अभागिनी माताको आजीवन कारावासका दण्ड दिया है, जिसने भूखकी ज्वालासे पीड़ित होकर अपने तीन बच्चोंके साथ जलमें डूब कर जीवनका अन्त करनेका प्रयत्न किया था। उस असमर्थ और अभागिनी माताकी कहानी इस प्रकार है :—

वह संयुक्त प्रान्तके गोरखपुर जिलेकी रहनेवाली थी, तथा अपने पतिके साथ कलकत्तेमें रहती थी। हालमें ही उसके पतिका कलकत्तेमें देहान्त हो गया। वह पतिकी मृत्युके बाद दासीवृत्तिसे अपने तथा अपने तीन बच्चोंके— जिनकी अवस्था क्रमशः दो, तीन और चार वर्ष थी—पालन-पोषणका प्रयत्न करने लगी, परन्तु उससे उसका निर्वाह न हो सका। अन्तमें वह अपने घरको रवाना हुई। भूखकी पीड़ा न सह सकनेके कारण उसे विवश होकर छपरेमें ही उतर जाना पड़ा। वहां उसने भीख मांगकर भूख मिटानेकी कोशिश की, पर उसमें भी सफल न होनेके कारण रातके दस बजे वह खनुआ नाला-पर गयी, जहां सात फीट जल था। अपने दो बच्चोंको पहले उस नालेमें फेंक, शीघ्र ही अपने सबसे छोटे बच्चेको गोदीमें लेकर वह भी नालेमें कूद गयी। नालेके पास एक लड़का यह हृदय-विदारक दृश्य देख रहा था। उसके चिल्लानेपर लोग आये और माता-पुत्रोंको जलसे निकाला। छोटा बच्चा तो मर चुका था, पर दो बच्चे जीवित मिले, जो जेलमें मर गये।

देशकी इस भीषण दरिद्रताके कारण भारतीय समाजमें आज जो दारुण अव्यवस्था और कटुतापूर्ण अशान्ति है, उपरोक्त दृष्टान्त उसका एक नमूना है। अभी अधिक दिन नहीं हुए, बङ्गालमें भीषण अकाल पड़ा था। उसके कुपरिणाम स्वरूप लाखों व्यक्ति मर गये। समाजकी सारी व्यवस्था टूट गयी, माताओंने पुत्रोंको, पतियोंने पत्नियोंको, युवकों और युवतियोंने बूढ़ोंको और बूढ़ोंने बच्चोंको एक मुट्ठी अन्नके अभावमें मरते देखा और देख कर सिर पीट लिया। पर वे विवश थे। अन्नके अभावकी विवशता कितनी भयानक होती है, इसका जो लोमहर्षक दृश्य कुछ महीने पूर्व बङ्गालने देखा, वह सम्भवतः मानव-वेदनाके इतिहासमें अपना विशेष स्थान रखेगा। भूखने पतियों और पत्नियोंको परस्पर एक दूसरे को परित्याग करनेके लिये विवश कर दिया। परन्तु बङ्गालमें मानव-समाजके इन निर्मम कष्टोंकी कथाएं यहीं तक सीमित न रह सकीं। माता-पिताको अपनी सन्तानें बेंचनी पड़ीं और सतियों को अपना सतीत्व बेंचकर मुंहमें इसलिये कालिख लगानी पड़ी कि एक मुट्ठी अन्नके द्वारा वे अपने प्राणोंको अपने जर्जर कङ्कालों[...] सकें। बङ्गालके इस भयानक अकालके बाद[...] रूपसे फैलनेवाली बीमारियोंका अभी अन्त[...] पाया था कि चटगांवसे निर्मम और [...] कथाओंके समाचार आने लगे हैं। वहां दो[...] पुरुष मर चुके हैं और हजारोंकी संख्यामें [...] मरते जा रहे हैं। पुरुष तो मर गये, अथवा[...] की तलाशमें चले गये, स्त्रियां बहुत बड़ी सं[...] वेश्यालयोंकी शरण ले रही हैं। उस दिन [...] ७ वीं जूनको बङ्गाल व्यवस्थापिका [...] स्पीकरके मना करनेपर भी विरोधी दलके [...] खान बहादुर हाजी बदीअहमद चौधरीने [...] की जो हृदयद्रावक घटना कही, उसे [...] किसी भी हृदय रखनेवाले मनुष्यकी आत्मा[...] उठेगी। खान बहादुरके अनुसार बङ्गालके [...] जिलेमें आज साठ रुपये मन चावल बिक रह[...] ऐसी स्थितिमें चटगांवकी कितनी बह[...] जिनके लिए उनका सतीत्व उनके और [...] प्रिय स्वजनोंके प्राणोंसे भी अधिक मूल्यवान[...] महत्वपूर्ण है, उस पथका आश्रय लेनेको [...] होना पड़ेगा, जिसका आश्रय गोरखपुर[...] अभागिनी बहनको लेना पड़ा और जिसके [...] उसे आजीवन कारावासका दण्ड मिला।

पेटकी किस भीषण ज्वाला तथा जी[...] किन उद्भ्रान्त निराशाओंके कारण माता[...] सुन्दर, कोमल और ममता पूर्ण रूपको [...] आसुरीके रूपमें परिवर्तित होना पड़ा होगा[...] कल्पनातीत है। दासी वृत्ति, भिक्षाटन औ[...] दो जघन्य कार्योंमें भी निराशा प्राप्त क[...] अपने साथ अपने प्राणप्रिय पुत्रोंकी निर्मम [...] का प्रयत्न! माता जब अपने कोमल दु[...] बच्चोंकी हत्या करनेके लिए अपनेको [...] पायेगी, उस समय उसके हृदयमें किस [...] नरककी उग्रतम ज्वाला जल रही होगी, [...] कल्पना साधारण नहीं। यह ऐसी घट[...]

जिसके लिए समाजके पूंजीवादियों और धनिक वर्गोंका सिर लज्जा और ग्लानिसे झुक जाना चाहिये। कलकत्ते जैसी विशाल नगरीमें, जहां नित्य अरबों रुपयोंका कारबार होता है और जहां करोड़पतियों और लखपतियोंकी संख्या सहज ही गिनी नहीं जा सकती, एक नवयुवती विधवा और तीन छोटे बच्चोंकी मां दासीवृत्तिसे अपना और अपने उन कोमल पुत्रोंका पेट न भर सके, कितना जघन्य और नृशंसतापूर्ण है। इसी लिये तो आज मानवताके पीड़ित और पददलित वर्गोंकी टोलियां समाजवाद और क्रान्तिमें ही त्राण और सुरक्षाके सर्वश्रेष्ठ साधन पा रही हैं।

गुण्डावादका उग्रतम रूप—

समाजमें गुण्डावाद अपना उग्रतम रूप धारण कर रहा है। भारतीय संस्कृति और विचार-धाराके प्रति हमारी बढ़ती हुई अश्रद्धा और विरक्तिने हमारी नैतिक-धाराके स्वाभाविक प्रवाहको रोक दिया है और इसके कुपरिणामसे हमारे भीतर नित्य नयी-नयी समस्यायें नये-नये और भयङ्कर रूप धरने लगी हैं। इसमें सबसे बड़ी और महत्वपूर्ण समस्या जो हमारे सामने है, वह यह है कि गुण्डोंके बढ़ते हुए आतङ्क और उपद्रवोंसे हम अपनी बहिनों, अपनी बहू-बेटियोंकी रक्षा किस प्रकार करें। गुण्डोंका यह उपद्रव पहले इसी हदतक सीमित था कि वे अबोध बालिकाओं, तरुणियों तथा युवतियोंको भिन्न-भिन्न प्रलोभनों अथवा मायाजालमें डालकर उन्हें भगाते थे और उन्हें बेंच कर रुपये कमाते थे। यह जघन्य कार्य आज कम नहीं है, प्रत्युत इसमें अधिक वेग और गति आ गयी है। पर इसके अतिरिक्त गुण्डोंने अन्य अनेक साधन भी निकाल रखे हैं। उदाहरणके लिए किसी लड़की को छुरे अथवा अन्य घातक हथियार दिखलाकर और उन्हें डराकर अपने साथ चलनेको बाध्य करना, किसी लड़कीको अकेले पाकर उसे मोटर या बस पर बैठा कर ले भागना, किसी लड़कीको फुसला कर अथवा किसी बहानेसे किसी नियत स्थानपर ले जाना और वहां एकान्त पाकर उसके मुंहमें कपड़े ठूस देना और अपने साथ मोटरपर बैठाकर भाग चलना-इत्यादि, इत्यादि।

हालमें पंजाबके लुधियानेसे इसी प्रकार की एक खबर आयी है। कहते हैं कि लुधियाने शहरमें दो लड़कियां अपने सम्बन्धियोंके घर जा रही थीं। एक सिक्खने उनका पीछा किया। जब वे घण्टा घरके पास पहुंची, तो उस सिक्खने उन्हें फाइल दिखायी और कहा कि मैं तुम्हारे पिताको उस प्रार्थना-पत्रका जवाब दूंगा, जो उन्होंने स्थानान्तरित करनेकी आज्ञाको रद्द करनेके लिये दिया था। तात्पर्य यह कि वह उन्हें इसी प्रकार फुसलाकर अदालतकी ओर ले जाने लगा। राहमें एक लारी खड़ी थी। उसने उन दोनों बहनोंको लारीमें बैठनेको कहा। बिना किसी प्रकारके सन्देहके वे लारीमें बैठ गयीं और वह उन्हें भगा ले गया। दूसरे दिन प्रातः काल छोटी लड़की, जिसकी आयु नौ वर्ष-की थी, रास्तेपर जाती हुई पायी गयी, परन्तु बड़ी लड़कीका, जिसकी आयु बारह वर्ष थी, कुछ भी पता न चल सका, तीसरे दिन किसी प्रकार वह भी उस सिक्ख युवकके कब्जेसे छुटकारा पाकर भागी और पासके पुलिस थानेमें अपनी कहानी सुनायी। पुलिस सिटी इन्स्पेक्टर उस लड़कीके साथ उस मकानकी तलाशमें गये जहां वह बन्द थी, लेकिन वह उसका पता भूल गयी थी और तीन घण्टे तक खोजने पर भी वह उसे न पा सकी। उस व्यक्तिको खोज निकालने के लिये पुलिस विशेष सरगर्मीसे छान-बीन कर रही है।

गुण्डोंकी यह बढ़ती हुई उग्रता, उनके बढ़ते हुए हौसले समाजके लिये अत्यन्त संकटपूर्ण हैं। पहले ऐसा होता था कि हिन्दू लड़कियां ही मुसलमान गुण्डोंके द्वारा भगायी जाती थीं। कारण यह था कि मुसलमान गुण्डोंको इन कुकृत्योंसे दो लाभ होते थे। एक तो उन्हें वे पञ्जाब, सीमा प्रान्त अथवा बलूचिस्तानमें या वेश्यालयों में बेच कर पैसे कमाते और इस प्रकार अपने तथा अपने परिवारकी उदर पूर्ति करते; दूसरे उन्हें मुसलमान बना कर "सवाब" लूटते थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि नारी अपहरणका प्रारम्भिक रूप केवल यही था कि मुसलमान गुन्डे गैर मुस्लिम लड़कियों तरुणियों अथवा युवतियों को फुसला कर भगाते थे। परन्तु आज इस नारी-अपहरणकी सीमा विस्तृत होती जा रही है। आज नारी-अपहरण अथवा स्त्रियोंको भगानेमें जहां मुसलमान, हिन्दू, सिक्ख, सभी सम्प्रदायके गुण्डे संगठित रूपसे जुटे हुए हैं, वहां गैर-हिन्दू लड़कियां भी भगायी जाने लगी हैं। यद्यपि यह बात विशेष रूपसे उल्लेखनीय है कि आज भी भगायी जाने वाली-अथवा बेची जाने वाला औरतोंमें हिन्दू औरतोंकी संख्या ही अधिक है।

इस स्थानपर प्रश्न यह उठता है कि हम इन नर-राक्षस रूपी गुण्डोंके बढ़ते आतंकसे अपनी बहनों, बहु-बेटियोंकी रक्षा किस प्रकार करें? हमें इस समस्यापर गंभीरतापूर्वक सोचना चाहिये, अन्यथा यह भीषण रोग हमारे समाज-को खोखला कर देगा। सबसे पहली और महत्वपूर्ण बात यह है कि हम प्रचारके द्वारा समाजके कर्णधारों तथा समाजके स्तम्भ, अपने नवयुवकों और नवयुतियोंका ध्यान प्रति दिन बढ़ने वाले इस सामाजिक रोगकी ओर आकर्षित करें। हम उनमें यह भाव पैदा कर कि संसारकी सारी स्त्रियां माताका ही भिन्न-भिन्न रूप हैं और उनकी रक्षा करना हमारा सर्वश्रेष्ठ और पवित्रतम कर्त्तव्य हैं। हम उनमें यह भाव पैदा करें कि धार्मिक श्रद्धा और विश्वासके साथ हमें मातृत्वकी रक्षा करनी चाहिये तथा मातृ-जाति के प्रति होने वाले इन अत्याचारोंका शमन करने में कोई भी त्याग और बलिदान हमें लोक और परलोक दोनोंमें ही सहायक होगा। समाजके भीतर इन पवित्र भावोंको जागृत कर हम नारी-रक्षा अथवा नारी-प्रतिकार समितियां सहज ही खोल सकते हैं और फिर संगठित रूपसे हम समाजके भीतर होने वाले इस गुण्डावादको निर्मूल कर सकते हैं।

साथ ही हमें अपने संगठनमें इस बातका भी ध्यान रखना होगा कि कहीं गुण्डे भी उन संगठित दलोंमें न घुस जायें। ऐसा होनेसे रक्षक ही भक्षक बन जायेंगे और जिस पवित्र उद्देश्यसे हम नारी-रक्षिणी समितियोंका निर्माण करेंगे, उसकी पूर्ति न हो सकेगी। हमें ऐसी समितियोंमें उन्हीं सदस्योंको भरती करना होगा जो समाज के सच्चे हित-चिन्तक तथा योग्य कार्यकर्त्ता हैं और जिनके लियें इस महान् उद्देश्यके सामने जीवनकी अनेक दुर्बलताओं और प्रलोभनोंका न तो कुछ मूल्य ही है और न कोई महत्व ही। सबसे प्रधान बात तो यह होनी चाहिये कि समाजमें मातृत्वकी रक्षाकी सर्वोत्कृष्ट भावनाओं का हम अधिकसे अधिक और ठोस प्रचार करें। साथ ही हमें य. नहीं भूलना चाहिये कि आज समाज-सुधार सुधारके अथवा व्यक्तिगत स्वतन्त्रताके नामपर जिस स्वच्छन्दताको प्रश्रय दे रहा है, वह हमें सुधारकी अपेक्षा जीवनके अतल गर्त्तकी ओर ले जायगा और हम इस प्रकार गिरेंगे जहांसे उठना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है।

वेश्यालयोंकी बढ़ती संख्या—

देशके दुर्भाग्यसे और देशकी निर्धनताके कारण आज भारतमें वेश्याओं और वेश्यालयोंकी संख्या बढ़ रही है। बङ्गालके पिछले अकालने इस वृद्धिमें बहुत कुछ योग दिया है और आज भी दे रहा है। चटगांवकी अवस्थाकी चर्चा हमने इसी स्तम्भके "महादेवी महाछरी" शीर्षक टिप्पणीमें की है। उसमें हमने इस बातकी भी चर्चा की है कि निर्धनता और अन्नाभावके कारण चटगांवकी बहनें किस हृदय-विदारक विवशतासे वेश्यालयोंकी शरण ले रही हैं। तात्पर्य यह कि भारतकी निर्धनताको वर्त्तमान युद्ध जनित मुद्रा प्रसार और अन्नाभावने और भी अधिक तीव्र कटु और विनाशकारी बना दिया है और आज हम अपनेको इस दयनीय स्थितिमें पा रहे हैं। अकालके पहले और बाद वाली स्थितिमें साधारणतया समस्त देशके और विशेषकर बङ्गालके सामाजिक जीवनमें आकाश पातालका अन्तर हो गया है। आजका हमारा समाज विशेष कर बङ्गाल प्रान्तका भारतीय समाज अर्थकष्ट और अन्नाभावसे इतना क्षुब्ध है कि हमारी बहनें अपना सतीत्व बेचनेको बाध्य हो रही हैं। इसीलिये वेश्याओं और वेश्यालयोंकी इस बढ़ती हुई संख्या और इस कारण समाजके इस बढ़ते हुए रोगके कारण बङ्गालके यौन-रोगके डाइरेक्टरने अपना मत प्रकट किया है कि वेश्यालयोंका अन्त कर देना समाजके स्वास्थ्यके लिये लाभकारी होगा। आपके विचारसे समाजमें बढ़ते हुए यौन-रोगका मूल कारण ये वेश्यालय ही हैं। इसमें सन्देह नहीं कि उपर्युक्त डाइरेक्टर महोदयको इस सम्बन्धमें सबसे अधिक ज्ञान है। और इस कारण उनके विचार सर्वथा मान्य और विचारणीय हैं। हम उनके इस कथनसे पूर्णतः सहमत हैं कि वेश्यालयोंके कारण आज देश और विशेष कर बङ्गाल प्रान्तमें यौनरोग बड़ी तेजीसे बढ़ रहा है। हम उनकी इस बातका भी पूर्ण समर्थन करते हैं कि कानूनी उपायोंके द्वारा देशके वेश्यालयोंका अन्त कर देना समाजके लिये मङ्गलमय होगा। पर साथ ही एक और भी प्रश्न यहां उठ रहा है और वह यह कि देश और सरकार वेश्याओंके रूपमें इन अभागिनी बहनोंके भरण-पोषणके सम्बन्धमें कोई रचनात्मक कार्यक्रम तैयार करे। केवल कलकत्तेमें ही लाखों वेश्यायें हैं। इनकी संख्या चार लाखसे कम न होगी। समस्त बङ्गाल और भारतकी वेश्याओं की भयङ्कर संख्याका अनुमान कलकत्तेकी संख्या से ही किया जा सकता है। इस प्रश्नमें हम सरकारका ध्यान भी इस महत्वपूर्ण समस्यापर आकर्षित करना आवश्यक समझते हैं। हम समझते हैं कि कानूनके द्वारा केवल वेश्यालयोंका ही अन्त न हो, वरन् सैनिकोंके लिये भी लाइसेन्स प्राप्त वेश्याओंकी प्रथाका भी अन्त बहुत शीघ्र कर दिया जाये। हम यह भी चाहते हैं कि प्रान्तीय सरकारें केवल कानूनके द्वारा वेश्यालयोंका अन्त करके ही चुपचाप न बैठी रहें, वरन् इन असंख्य पतिता बहनोंके भरण-पोषणके लिये ऐसी संस्थाओंका भी निर्माण करें जहां ये थोड़े दिनोंमें ही आवश्यक शिल्पकारी तथा कला सीख कर समाजकी आवश्यक वस्तुओं के उत्पादनमें योग दें। इस प्रकार ये बहनें केवल समाजके लिये ही उपयोगी नहीं हो सकतीं वरन् अपने भरण-पोषणकी समस्या भी स्वयं हल कर सकती हैं। हमें इस बातका पूरा ध्यान रखना चाहिये कि वेश्याओं और वेश्यालयोंके निर्माण और वृद्धिमें आर्थिक कारणोंका जितना हाथ है उतना नैतिक कारणोंका नहीं और जब तक कि हम इन आर्थिक कारणोंका पूर्णतः समाधान न कर सकेंगे तबतक वेश्यालयोंका अन्त होनेपर भी वेश्या वृत्तिका अन्त नहीं हो सकता। और समाज में किसी न किसी रूपसे यह भयानक रोग अपना विनाशकारी कार्य करता रहेगा। इसलिये आज आवश्यकता इस बातकी है कि एक ओर कानूनके द्वारा वेश्यालयों और वेश्या वृत्तिका अन्त कर दिया जाय और दूसरी ओर वेश्याओंकी आर्थिक स्थितिको ठीक करने तथा उनके भरण-पोषणके लिये प्रत्येक आवश्यक उपायको काममें लाया जाय। देशकी केन्द्रीय सरकार तथा प्रान्तीय सरकारें ही इस कार्यको सुन्दर रूपसे सम्पन्न कर सकती हैं, पर साथ ही इसमें जनता और समाजके सहयोगकी भी परम आवश्यकता है।

वर्षा—गीत

आ गयी बरसात!
सरस सुरभित मुग्ध मधुमय प्रकृति पुलकित गात॥
नील नीरद पूर्ण अम्बर
हरित वन शुचि शैल सुन्दर
मन्द मदिर सुगन्धयुत शीतल प्रवाहित बात॥
मेदिनीके मत्त रजकण
तृप्त गुरु गम्भीर निःस्वन
रस छकित मधु स्रवित तरुके नवल पल्लव पात॥

प्रखर वेगवती प्रधावित
प्रिय परस हित मुग्ध सस्मित
उल्लसित अविराम गति स्रोतस्विनी अवदात॥
आज मेरे प्राण श्रमहलथ
और सीमा हीन जग—पथ
आह! कितनी है भयानक यह विरहकी रात।
इधर जगकी देहलीपर छा रही बरसात॥
सजल मृदु बरसात!!

—तपेशचन्द्र त्रिवेदी

एक लोकप्रिय डिक्टेटर

आज कल संसार भरमें डिक्टेटरोंका ही बोलबाला है । जिन देशोंमें फासिस्ट शासन-प्रणाली प्रचलित है, उन देशोंमें तो डिक्टेटर शाहीका घोर आतङ्क है, जिसमें प्रजा अत्यन्त पीड़ित और दुःखी है, परन्तु जो देश प्रजातन्त्र शासन-प्रणालीका गर्व करते हैं, उनमें भी आज हम एक नेताका शासन, एक दलका शासन देख रहे हैं। ये सभी डिक्टेटर अपने देशों तथा उनसे बाहर सारे संसार भरमें बदनाम हैं। उनके देशोंमें उनका वध करनेके लिये नाना प्रकारके षड्यन्त्र रचे जाते हैं और षड्यन्त्रकारियोंसे मुक्ति पानेके लिये वे कितने आतङ्ककारी उपाय काममें लाते हैं, इन सब बातोंसे वे पाठक भलीभांति परिचित होंगे, जिन्होंने इटली, जर्मनी और जापानकी आन्तरिक राजनीतिका थोड़ा बहुत अध्ययन किया होगा। लेकिन इन पृष्ठोंमें हम एक ऐसे डिक्टेटरका परिचय देनेका प्रयत्न करेंगे, जो अपनी कार्य-पद्धति, शान्ति-प्रियता, उदारता और सुशासन एवं सुव्यवस्थाके लिये अपने देशमें पूज्य है और सर्वत्र उसका आदर किया जाता है।

ब्राजील दक्षिणी अमेरिकाका एक प्रमुख देश है और गेटूलियो वर्गास हैं ब्राजीलके राष्ट्रपति। आजसे १२ वर्ष पहले वर्गासने सशस्त्र क्रान्तिके द्वारा शासन-सूत्र अपने हाथमें लिया और तबसे वह आज पर्यन्त देशका बड़ी योग्यताके साथ सञ्चालन कर रहे हैं। राष्ट्रपति वर्गास राज-काज का अधिकांश अपने राज-प्रासादमें ही करते हैं। दोपहरके बाद वह भोजन आदिसे निबट कर अपने मुख्य सलाहकारोंसे मिलते हैं। इसके बाद वह राजधानीके सरकारी भवनमें जाकर आवश्यक फाइलोंको देखते हैं और उनपर अपने हस्ताक्षर करते हैं। फिर शामको वह अपने प्रासादमें जाकर परिवारके लोगोंके साथ सम्मिलित भोजन करते हैं। इसके बाद अर्द्धरात्रि तक लिखते-पढ़ते रहते हैं। वह सुनते खूब हैं, लेकिन मितभाषी हैं। अपने मन्त्रियोंसे प्रति-दिन एक जोड़ेके रूपमें मिलते हैं। वर्गासकी अपने प्रासादको छोड़ कोई अपनी सम्पत्ति नहीं है। उनका वेतन १००० डालर मासिक है। राष्ट्रपतिके सार्वजनिक व्ययके लिये १००,००० डालर अलग मिलते हैं। इसे वे अपने निजी सेक्रेटरियों, नौकर-चाकरों, अङ्ग-रक्षकोंके वेतन, राज-प्रासादोंकी सुरक्षा एवं यात्रा आदिमें व्यय करतेहैं।

वर्गास सदैव प्रसन्न-बदन रहते हैं। उनका व्यवहार सबोंके साथ बहुत ही मृदुल एवं शिष्ट है। उनका न कोई विरोधी है और न शत्रु। लेकिन वह बड़े निर्भीक और साहसी हैं। वह स्वतन्त्र रूपसे सड़कोंपर घूमते हैं और दुनियांमें वह पहले ही डिक्टेटर हैं जो कभी आमर्डकार का प्रयोग नहीं करते। आपको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि वर्गासने कभी राजनीतिक दल-का सङ्गठन नहीं किया। इसीलिये ब्राजीलमें कोई राजनीतिक पार्टी नहीं है, न कोई बैज है,न प्रतीक और न सलामी ही। वह राष्ट्रीय एकताके बड़े समर्थक है।

रामवाण औषध-पेनिस्लीन—

आज पेनिस्लीनके नामसे कौन परिचित नहीं है? उस दिन ब्रिटिश प्रधान-मन्त्री मि० चर्चिल ने अपने भाषणमें जर्मनोंके उड़न बमोंसे इङ्गलैण्ड में हताहतोंका उल्लेख करते हुए यह कहा था कि पेनिस्लीन—जिसका उपयोग अबतक सैनिकों तक ही सीमित रखा गया था—उड़न बमोंसे आहत व्यक्तियोंके लिये भी प्रयोगकी जायगी। तब संसारने यह जान लिया कि यह एक राम-बाण औषध है, जिसका प्रयोग आहत व्यक्तियोंके दुःख निवारणमें बहुमूल्य सिद्ध हुआ है। इस औषधिके आविष्कारकी कहानी बड़ी विचित्र एवं रोचक है। पाठक फफून्दीसे भलीभांति परि-चित ही होंगे। वर्षामें शाक-सब्जी, फल, अचार, मुरब्बे, लकड़ी व कपड़ेके सामानपर एक श्वेत पदार्थ जम जाता है। एक जीव-शास्त्र-विशेषज्ञने बड़े आश्चर्यके साथ यह कहा था कि "परमात्माने इस फफून्दीको क्यों बनाया? इसकी कई सहस्र जातियां हैं। केवल भारतमें अभी तक २४०० जातियां गिनी जा चुकी हैं, जो शायद गिनी या बिना गिनी हुई जातियोंका शतांश हैं। यह फफून्दी हमें हानि ही पहुंचाती है। इसका नाशकारी प्रभाव गन्ने, फल, शाक, गेहूं आदि अन्न एवं बनस्पतियोंपर पड़ता है। इससे हमें लाखोंकी हानि उठानी पड़ती है।

लेकिन सन् १९२९ से पूर्व यह किसको पता था कि यह संसारकी सबसे आश्चर्यजनक राम-बाण औषध—पेनिस्लीन (Penicillin) के आविष्कारका कारण सिद्ध होगी। सन् १९२९ में प्रोफेसर अलेक्जेण्डर फ्लेमिङ्ग स्टेफीलोकोसी नामक एक प्राण घातक कीटाणुका उत्पादन कर रहे थे। इस कीटाणुसे कार्बङ्कल, पीव, मवाद, सड़न आदि भयानक रोग पैदा हो जाते हैं। इनका उत्पादन विशेष भोजन तथा अवस्थामें होता है। इसे 'कल्चर' (Culture) कहते हैं। इस कल्चर प्लेटको रखनेके बाद वह भूल गये और जब कई दिनके बाद देखा तो उसपर फफून्दी जम गयी थी। डा० फ्लेमिङ्गने यह सोचा कि यह फफून्दी यहां कैसे? जब प्रोफेसरने एक बालिकामें कल्चर भरकर अणुवीक्षण यन्त्रसे देखा तो उसमें कीटाणु नदारद थे। जहां लाखों कीटाणुओंकी आशा थी, वहां एक भी न मिला। अब वैज्ञानिकने यह सोचा कि इन कीटाणुओंके अभावका वास्तविक कारण क्या है? क्या यह फफून्दी ही इसका कारण है, जो इसके चारों ओर एक भी बैक्टिरिया नहीं है। बादमें प्रयोग द्वारा प्रो० फ्लेमिङ्गने यह निश्चय किया कि फफून्दी कुछ विशेष कीटाणुओंकी नाशक है। इसे औषधिके रूपमें लानेका श्रेय आक्सफोर्डके विद्वान एच० डब्ल्यू० फ्लोरे, डा० चेन और उनके साथी डा० हीटले, डा० सेण्डर्स, प्रो० गार्डनर, डा० जेनिंग्स, अब्राहम आदिको है। डाक्टरोंका यह कहना है कि औषधियोंके इतिहासमें इसके जोड़की कोई खोज नहीं हुई है। यह फोड़े, जख्म, गलन, पीव, न्यूमोनिया, गर्दन तोड़, स्नायुरोग, मस्तिष्क रोग तथा अन्य अनेक प्रकारके रोगोंके लिये रामबाण सिद्ध हो चुकी है। इसकी मुख्य विशेषता यह है कि इसके प्रयोगके बाद भी शरीरपर अथवा शरीरके श्वेत रक्त-कणोंपर इसका कोई बुरा असर नहीं पड़ता।

इसे जख्म, फोड़ा आदिके लिये इन्जेक्सन द्वारा प्रयोगमें लाया जाता है। यह तीन रूपोंमें मिलती है—(१) जलके समान तरल रूपमें। (२) क्रीमके रूपमें (३) चूर्णके रूपमें। तीन-तीन घण्टे बाद इसके इन्जेक्शन रोगीके लगाये जाते हैं। लेकिन इन्जेक्शनके बाद दर्द काफी

होता है और हर तीसरे घण्टे बाद रोगीको यह कष्ट सहना पड़ता है। अमेरिका, ब्रिटेन आदि देशोंमें इसका उत्पादन बहुत पहलेसे हो रहा है। भारतमें भी विज्ञान शालाओंमें इसके उत्पादन की व्यवस्था हो गयी है। बङ्गलोर इन्स्टीच्यूट आव साइन्सके श्री एम० श्रीनिवासराव और एस० पी० दे गेहूंके छिलकेसे पेनिसलीन तैयार कर रहे हैं। इससे तीन दिनमें ही इतनी पेनिसलीन बन जाती है जितनी अमेरिकन ढङ्गसे १२ दिन में बनती है। इस औषधिका उत्पादन बहुत परिश्रमसे अल्प मात्रामें होता है। इसीलिये जनसाधारणके लिये यह प्राप्य नहीं है।

'उड़ाकू बम'—

गत जूनमें फ्रान्सपर मित्र अभियानकी प्रति-क्रियाके फलस्वरूप प्रत्याक्रमणके रूपमें हिटलरने ब्रिटेनपर बम-वर्षाके लिये एक सर्वथा नवीन एवं गुप्तास्त्रका प्रयोगकर एक बारगी सबोंको विस्मय चकित कर दिया। इस गुप्तास्त्रका नाम है—चालकहीन विमान (Pilotless Planes) यह एक प्रकारका बम ही है, जो स्वयं उड़कर निर्दिष्ट स्थानपर आ गिरता है। गत ६ जुलाईको प्रधान-मन्त्री चर्चिलने अपने भाषणमें यह बतलाया कि प्रतिदिन १०० उड़ाकू बम ब्रिटेनपर गिराये गये। प्रत्येक बम एक टन (२७ मन) का था। छोटे और हलके होनेपर भी इनके विस्फोटसे विस्तृत व्यापक क्षति हुई है। चर्चिलने यह भी कहा कि ६ जुलाई तक जर्मनोंने २,७५४ उड़ाकू बम गिराये जिससे २,७५२ व्यक्ति मर गये। इस प्रकार एक बमसे एक व्यक्ति मरा। लेकिन जो घायल अस्पतालमें मर गये हैं, वे इनमें शामिल नहीं हैं। अस्पतालोंमें ८००० व्यक्ति इन बमोंके कारण आहत दशामें पड़े हुए हैं।

इस प्रकार इन उड़ाकू बमोंके कारण कुछ दिनों तक ब्रिटेनकी जनताका ध्यान अभियान से हटकर इनकी ओर लग गया। आरम्भमें ब्रिटेनकी जनता और युद्ध—विशेषज्ञोंने इन बमों की खिल्ली उड़ाई और कहा कि अब हिटलरकी पराजयकी अन्तिम घड़ी आ गयी है। इसलिये अब वह ऐसे अस्त्रोंका प्रयोग करने लगा है। लेकिन कुछेक दिनोंके बाद विशेषज्ञोंने उसका वास्तवमें मूल्याङ्कन शुरू किया। माइल्स जैसे विशेषज्ञने, जो उड़ाकू बमों तथा लड़ाकू बिमानों का ढांचा बनानेवालोंमें अग्रगण्य हैं, यह कहा है कि यह नया अस्त्र बहुत ही भयानक है। माइल्सका यह कथन है कि इन उड़ाकू बमोंमें अभी काफी सुधार करके चाल तेज की जा सकती और उनकी विनाशकारी शक्ति भी बढ़ायी जा सकती है। राकेट बमके सर्वप्रथम आविष्कार-रक डा० चार्ल्स केटरलिङ्गका यह मत है कि यह अस्त्र 'न नवीन है और न गुप्त' ही। अमेरिकामें ऐसे उड़ाकू बम बनाये गये, पर सरकारने उन्हें रद्द कर दिया।

इस विमानका ढांचा लकड़ीका बना हुआ है। इसके बीचमें एक बम रहता है। इसका नियन्त्रण रेडियोसे नहीं होता, प्रत्युत यह ऐसे ढङ्गसे उड़ाया जाता है कि अपने निर्दिष्ट स्थान तक पहुंच जाता है। इसमें आवश्यक पेट्रोल आदि सामान रहता है। ये बम पाडी कैले क्षेत्रसे छोड़े गये थे।

मंजनोंके सम्बन्धमें सचाई

अङ्गरेजोंकी सभ्यताके प्रसारसे लोग, दातून का सेवन छोड़ कर, टूथ-ब्रश एवं टूथ-पेस्ट खरीदने लगे हैं। किसी भी पढ़े लिखे परिवारमें चले जाइये, आपको दांत साफ करनेका ब्रश और किसी विलायती दन्त-मञ्जनकी डिबिया स्नानागारमें अवश्य मिलेगी। इसपर भी औसत मनुष्य इन वस्तुओंको खरीदते समय इनके चुनावपर कोई विशेष ध्यान नहीं देता। वह इनको सदा इस अलौकिक आशासे खरीद लेता है कि वे पायोरिया (मसूड़ोंसे लहू और पीव गिरना) को दूर कर देंगी' मुंहकी खटासको ठीक कर देंगी' दांतोंका सड़ना रोक देंगी, दांतोंपर मैलके धब्बों को मिटा देंगी, मसूड़ोंसे रक्तके गिरनेको बंद कर देंगी' सांसको शुद्ध कर देंगी, अथवा जुकाम या छूतके दूसरे रोगोंसे बचाये रक्खेंगी।

दांतोंका क्षय, जिसे अङ्गरेजीमें 'केरीज' कहते हैं, एक ऐसा रोग है जिसे दन्त-वैद्य अभी तक पूरी तरहसे नहीं समझ सके। आज तक इसके सम्बन्धमें जो भी सिद्धान्त और जो भी रामबाण औषध पेशकी गयी है, परीक्षा करनेपर वह व्यर्थ सिद्ध हुई है। इस प्रकार यह बात सत्य नहीं है कि "दांतको यदि साफ रक्खा जाय तो वह कभी नहीं सड़ता।" बहुतसे दांत पूरी तरहसे साफ रखनेपर भी सड़ जाते है। यह सत्य नहीं कि मुंह में खटास" रहनेसे दांत या मसूड़ोंका रोग हो जाता है! थूकमें क्रियात्मक रूपसे तेजाबका ही गुण है। इसलिए क्रियात्मक रूपसे प्रत्येक व्यक्ति के मुंहमें खटास है। यह बिलकुल स्वाभाविक अवस्था है। यह भी सत्य नहीं कि मुखकी सफाई न रखनेसे अवश्य ही बड़े भयानक परिमाण होते हैं। एस्कीमो, दक्षिण अफ्रिकाके जङ्गली मनु (बुश मैन) और आदिम मनुष्य, जो क दातून तक नहीं करते, दन्त-रोगोंसे क्वचित् पीड़ित होते हैं, यद्यपि इसका कारण मुंह साफ न रखना नहीं कहा जा सकता।

भोजनका प्रश्न बड़ा महत्वपूर्ण है, विशेष बढ़ते हुए बच्चोंकी दशामें। परन्तु उससे भी अधिक महत्वपूर्ण यह है कि आरम्भमें ही परी करा कर देख लिया जाय कि कोई दांतोंका रो तो नहीं। बल्कि रोग हो तो उसकी चिकि कर ली जाय। इसका अर्थ यह है कि आप किसी अच्छेसे दन्त-वैद्यके पास नियमपूर्वक जा रहना होगा। यदि किफायतके लिये आप दो बातोंमें से एक चुननी पड़े, आपके सामने प्रश्न हो कि मैं दन्त-वैद्यको छोड़ूं या टूथ-ब्रु टूथ-पेस्टों और मञ्जनोंको, तो आपके लिये टूथ-ब्रश आदि शेषोक्त वस्तुओंको छोड़ दे कहीं अधिक अच्छा रहेगा।

यह सम्भव है कि दांतों और मुंहको साफ करते रहनेकी क्रियाका कुछ फल हो पर अधिक सम्भव यह जान पड़ता है, कि दांतों ब्रश करनेका मुख्य लाभ यांत्रिक और सौन्द सम्बन्धी जान पड़ता है।

"जर्नल आव दि अमेरिकन डेण्टल एसो एशन" इसी बातको यों कहता है :—

"किसी दन्त-मंजन या टूथ-पेस्टके विष यह कहना कि इससे रोगके कीटाणु मर जाते या यह रोगको दूर कर देता है, एक हास्यजन बात है। युक्तिके लिये यह मान कर भी कि दन्त मंजनोंमें से किसीमें एक कांचकी नली (टे ट्यूब) में रोगके कीटाणु मारनेकी शक्ति सकती है' तो भी यह बात बाकी रह जाती कि दांतोंको ब्रश करनेमें जो थोड़ा सा परि समय लगता है उसमें रोगको दूर करनेका अ इतना अति सूक्ष्म होता है कि वह किसी गि में नहीं आता। किसी टूथ-पेस्ट या दन्त-मंजनों सम्बन्धमें यह प्रतिज्ञा करना कि इससे रो वास्तविक लाभ होगा कोरी गप और लूट है।

परन्तु हमारा उद्देश्य टूथ-पेस्ट और द धावन (डण्ट्रीफिस) बनानेवालोंके वरि आक्रमण करना या उनको कानूनी शिकं फंसाना नहीं। हमारा एकमात्र उद्देश्य है टूथ-पेस्ट खरीदने वाले जो कुछ खरीदें, धो न खरीदें, वरन् सब कुछ जान लेनेके बाद खरीदें इसमें सबसे विशेष बात तो यह है कि टूथ-

खरीदनेवालेको यह भलीभांति समझ लेना चाहिये कि टूथ-पेस्टमें रोगकी चिकित्सा करने,उसे रोकने या उसे दूर कर देनेका गुण नहीं होता। कोई भी विलायती दन्त-धावन मसूड़ोंसे लहू गिरने, सांस-के साथ दुर्गन्ध आने, पायोरिया या ऐसी ही दू री मुख-व्याधियोंमें विशेष लाभ नहीं पहुंचा सकता। यदि आप ऐसा टूथ-पेस्ट खरीदते हैं जिसमें मिल्क आव मेग्नीशिया पड़ा है तो उसे इसलिए खरीदिये कि वह अच्छा टूथ-पेस्ट है, न कि इसलिए कि वह मुंहकी खटासको दूर कर देगा। इसमें निर्दोष होनेका गुण अवश्य है। यह बात पोटाशियम क्लोरेटके बारेमें खुले तौरपर नहीं कही जा सकती। पोटाशियम क्लोरेट एक विषैला रासायनिक पदार्थ है। सम्प्रति इसे बरजोरी एक रहस्यमय शक्तियोंवाली बहुमूल्य औषध ठहराया गया है। यदि आप पोटाशियम क्लोरेट वाले टूथ-पेस्टका अवश्य ही प्रयोग करना चाहते हैं तो इसे निगलिए मत और बच्चोंसे दूर रखिये।

बुद्धिमत्ता इसीमें है कि रङ्गको उड़ा देनेवाले और धब्बोंको दूर कर देनेवाले सब टूथ-पेस्टोंसे बचा जाय। इनमें सम्भवतः हाईड्रोक्लोरिक एसिड जैसे तेज रासायनिक पदार्थ पड़े होते हैं। जो भी रासायनिक पदार्थ इतने तेज हैं कि वे दांतोंपरसे मैले धब्बोंको दूर कर सकें, वे अन्ततः दांतोंकी चमक (इनैमल) और मसूड़ोंके लिये हानिकारक सिद्ध होंगे। यदि आपको इसमें कुछ सन्देह हो, तो किसीका निकला हुआ दांत मांग कर उसे इन दांतोंके रङ्ग या धब्बोंको साफ करनेवाली दवाइयों (ब्लीच) में से किसी एकमें रात भर भिगो रखिये। अधिक सम्भव यह है कि १२ से २४ घण्टोंमें यह दांतको काफी हानि पहुंचा देगी।

बचाव इसमें है कि मनुष्य समझ ले कि दन्त-धावन क्या कुछ कर सकता है। यह दांतोंको साफ करनेमें सहायता दे सकता है और न्यूना-धिक देता भी है। इसके लिये सबसे उत्तम मञ्जन चाक जैसी किसी रगड़ने वाली और साबुन जैसी किसी मैल काटनेवाली वस्तुको पिलानेसे बन सकता हैं। यह बात अतीव आवश्यक है कि रगड़ने वाली वस्तु बहुत बढ़िया प्रकारकी होनी चाहिये। अर्थात उसमें मोटे या किरकिरे कण न हों। थोड़ा-सा टूथ-पेस्ट दाढ़पर रखकर दोनों दाढ़ोंसे पीसनेसे कई बार कणिकाका पता लग जाता है। चबानेसे कणिका मालूम हो तो समझ लो कि तुम्हारा मञ्जन दैनिक उपयोगके लिये उपयुक्त नहीं। यदि मंजनमें साबुन डाला गया हो तो वह नरम होना चाहिये और अधिक मात्रामें न होना चाहिये। जिस दन्त-धावनके लगानेसे काफी झाग पैदा हो उसके विषयमें अधिक सम्भव यह है कि उसमें साबुनकी मात्रा उस मात्रासे अधिक है जिसकी कि प्रामाणिक दन्त—वैद्य सिफारिश करते हैं।

जितना महत्व दन्त-धावन (डेण्ट्रीफिस) का है, दांतोंको साफ करनेवाले टूथ-ब्रशका उससे कम नहीं। सचाई यह है कि दांतोंको साफ करने में ब्रशकी यान्त्रिक क्रिया सम्भवतः एक मात्र सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात है। ब्रश खरीदते समय बड़ी सावधानीसे काम लेना चाहिये। एक छोटा और "कड़ा" ब्रश, जिसमें बढ़िया प्रकारके छोटे-छोटे बाल हों, देखनेमें सुन्दर गुफ्फे-दार बालों वाले ब्रशोंसे अच्छा होता है। ब्रशको साफ रखो, बार-बार डिसइन्फेक्ट करो, जब बाल नरम पड़ जाय तो फेंक दो।

जो बात दन्त-धावन और ब्रशोंके बारेमें कही गयी है वही गरारे करने या मुंहको साफ करनेकी दवाइयों (माउथ वाश) के सम्बन्धमें भी ठीक है। कभी कभी कुल्ला करके मुंहको शुद्ध करते रहना एक बहुत उत्तम क्रिया है। परन्तु डाक्टरी दृष्टिसे मुंहको साफ करनेके लिये सादा साफ पानी भी उतना ही उपयोगी है जितनीकी बड़ी बड़ी बहुमूल्य औषधियां (पाऊ वाश)। जो एण्टि सेप्टिक (सड़ांदको रोकने वाली) दवा-इयां मुंहको साफ करने या गरारे करनेके लिये प्रसिद्ध हो रही है वे इतनी हलकी हैं कि उनपर हंसी आती है। यदि तेज हों तो एक तो उनसे हानि होनेका डर रहता है और दूसरे उनका स्वाद ठीक नहीं रहता। फिर उपयोगमें लाते समय उनको जितना हलका कर लेना पड़ता है और जिन अवस्थाओंमें उनका उपयोग किया जाता है उससे उनमें सड़ांदका नाश करनेकी कुछ भी शक्ति नहीं रह जाती। दन्त-रोगोंको दूर करने वाली दवाइयोंके सम्बन्धमें डाक्टरोंकी मण्डली कहती है—

"हानि पहुंचाने वाले कीटाणु लसलसी सतहों (mucous surfaces) की गुफाओं और तहोंमें बैठे होते हैं या दांतों एवं मसूड़ोंके साथ चिपटे होते हैं। ऐसी दशामें मुंहको साफ करने की दवाइयोंको इन किटाणुओं तक पहुंचनेका अवसर ही कहां मिल सकता है; परन्तु वे तो पहले ही मुंहसे बाहर निकलने जा रहे होते हैं। गरारोंकी दशामें, स्थिति इससे भी अधिक हास्यजनक है। कारण यह कि मुंहको साफ करनेकी जिस दवाईका उपयोग गरारोंके लिये किया जायगा, उसका संसर्ग टानसिल्जकी गुफाओंमें या नाकसे गलेमें आने वाले मार्गकी तहोंमें बैठे हुए कीटाणुओंसे नहीं होगा।"

इसके अतिरिक्त सामान्य व्यक्तिके लिये दवाइयोंसे मुंहको साफ रखनेकी आवश्यकता भी सिद्ध नहीं हुई।

क्या इसका अर्थ यह है कि मुंहकी सफाई करनेवाली दवाइयां (माऊथ वाश) सब छोड़ देनी चाहिये? यदि आपको दवाईका स्वाद अच्छा लगता है या दवाईसे तरावट मालूम होती है, तो नहीं। आपको केवल इतना समझ लेना चाहिये कि यह औषधि सांसकी दुर्गन्धको दूर नहीं करेगी, जुकामको नहीं रोकेगी—वह आश्च-र्यजनक बातें नहीं कर दिखायगी जिनका इस सम्बन्धमें दावा किया जाता है। इसलिये कौन-सा माऊथ वाश लेना चाहिये, यह अपनी व्यक्ति-गत रुचिकी बात है। जो जिसको रुचिकर जान पड़े वही ले लो बाजारमें जो माऊथ वाश बिक रहे हैं उनमेंसे अधिकांश ऐसे हैं जो हानिकारक नहीं। परन्तु उनके विषयमें जो ये डींगें मारी जाती हैं कि वे दुगुने, तिगुने या चौगुने तेज हैं, वह बिलकुल गप है।

—सुन्तराम बी० ए०
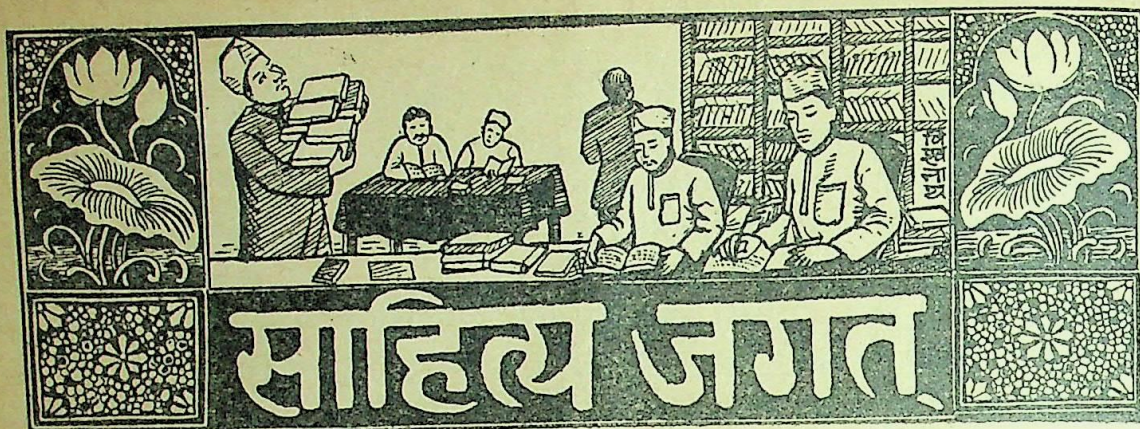
कहानी लेखन

संध्या-कालके पश्चात् ही हमारे घरोंमें एक सुखद चहल-पहल मच उठती है। प्यारे बालक अपने गुरु-जनोंसे कहानियां सुनानेका आग्रह करते हुए दिखायी देने लगते हैं। गुरुजन कितनी ही टालमटोल करें, परन्तु बालक उनका पीछा नहीं छोड़ते। अन्तमें गुरु-जन कहानियां सुनाते, और बालक सुनते-सुनते आत्म-विभोर हो जाते हैं। कहानियोंके प्रति यह अभिरुचि, बालकों ही की सम्पत्ति नहीं है, शिक्षित जनोंमें भी सदासे कहानियोंके प्रति यथेष्ट आकर्षण रहा है। समयकी गतिके साथ-साथ इस अभिरुचिने इस आकर्षणने इतनी उन्नति की है कि आजका युग ही कहानी-मय दिखायी पड़ता है। चाय, सिगरेट आदिके समान कहानी भी मानव-जीवनकी एक अति आवश्यक वस्तु बन गयी है, और यही कारण है, कि उसने साहित्यमें अपने लिये अनन्य स्थान बना लिया है। परन्तु यह निस्सङ्कोच कहा जा सकता है कि कहानीके पाठकोंकी संख्याके अनुपातसे, उसके सिद्ध-हस्त लेखक अत्यल्प ही पाये जाते हैं। इसका कारण भी महत्व-रहित नहीं है।

बात तो यह है कि कहानीकी गुरुता असाधारण है। उसने प्रारम्भसे अब तक अनेक धाराओंमें विभक्त होकर अपना जो क्रमिक एवं सुन्दर विकास किया है, वह कलासे एकाकार हो गया है। उसकी प्रत्येक धाराको—उसकी कला के तत्वको हृदयङ्गम करने एवं तदनुकूल ही उसे रचनेमें विरले कलाकार ही सफल होते हैं। परन्तु इस दिशामें नितान्त गति-शून्य रहनेपर भी अनेक लेखक कहानियां रचनेमें प्रवृत्त हो जाते हैं। परिणाम यह निकलता है कि ऐसे लेखकोंकी लिखी कहानियां निरर्थक ही ठहरती हैं। उनके पाठसे पाठकोंको न तो यथार्थ आनन्दकी उपलब्धि होती है, और न मार्मिक भावोंकी अनुभूति ही। अस्तु।

प्रकृति जिस प्रकार व्यक्ति-विशेषमें ही कविका विकास करती है, उसी प्रकार वह व्यक्ति विशेषको ही कहानी-निर्माणके हेतु रचती है। प्रकृतिने जिसे कविता रचने योग्य मस्तिष्क प्रदान नहीं किया है, यदि वह कविता रचनेका साहस करता है, तो अपने उद्योगमें अकृत-कार्य रहता और उपहासका पात्र बनता है। ठीक यही बात उस कहानी-लेखकके विषयमें भी समझनी चाहिये, जो कहानी-कलासे अपिरिचित रहता है, अथवा जिसमें कहानी रचनेकी प्रतिभा का अभाव होता है। अन्ततः कहानी कविताका ही दूसरा रूप है, और कहानी—लेखक वास्तव में कविके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है। अतएव उसमें तत्सम्बन्धी प्रतिभा तथा स्फूर्तिका प्रचुर मात्रामें होना अत्यावश्यक है !

जिस प्रकार प्रत्येक कविकी प्रत्येक रचनासें काव्य नहीं रहता, उसी प्रकार प्रत्येक कहानी-लेखककी सभी कृतियोंमें तद्विषयक क ाका पूर्ण विकास नहीं पाया जाता। इसका मूल कारण रचयिताके हृदयमें प्रवाहित होनेवाली विचार-धारामें सदैव प्रतिभाका उद्दाम आवेग नहीं हुआ करता। जिस समय प्रतिभा जाग्रत होती है, एवं हृद्देशमें विमल भावोंकी तरङ्ग-मालाएं उठने लगती हैं, उस समय जो कुछ भी लिखा जाता है, वही वास्तवमें 'सत्यं शिवं सुन्दरं' उतरता है। परन्तु कुछ लोग ऐसे भी रहते हैं, जो प्रकृतिके इस रहस्यको नहीं जानते, अथवा जाननेपर भी उपेक्षणीय समझते हैं। भावोंकी सुषुप्ति रहती है, प्रतिभा पीछे हटती है, तथापि उनकी लेखनी अतिक्रमण करनेको उद्यत हो जाती है। फलतः उनके हाथ निष्फलता ही रहती है, फिर चाहे वे कवि हों, चाहे कहानी-लेखक।

अनेक व्यक्ति तो यही समझते हैं कि कहानी कोई महत्वपूर्ण विषय नहीं है, और न उसे लिखना ही कोई दुस्तर कार्य है। परन्तु आश्चर्य है कि वे ऐसी धारणाके वशीभूत होनेपर भी कहानी लिखने बैठ जाते और अपनेको अपढ़ता के साझेदार प्रमाणित करते हैं। प्रकृतिका नियम तो यह है कि जो मनुष्य अपनी धारणाके विरुद्ध साधारण-सा कार्य भी हाथमें ले बैठता है, वह कदापि भलीभांति उसका निर्वाह करनेमें समर्थ नहीं होता। फिर कहानी—लेखन तो एक कलापूर्ण कृत्य है। कलाके सम्बन्धमें यह बात स्मरण रखने योग्य है कि वह स्वयं अत्यन्त कोमल होती है और उसकी रक्षा करनेमें कोमल तथा अनुभूति-पूर्ण हृदय ही समर्थ होता है। यह और बात है कि घटना विशेष ध्यानमें जम जाने पर कहानीका उतार-चढ़ाव अथवा निर्वाह क्रमानुकूल हो जाता है। परन्तु ऐसा होना सदा ही सम्भव नहीं है। बहुधा होता यही है, कि कथा वस्तुकी यथेच्छ एवं सुन्दर उपलब्धि होनेपर भी कहानीका उतार-चढ़ाव या निर्बाह उचितसे अति दूर रहता है। इतना ही नहीं, कभी-कभी तो यहां तक देखा जाता है कि न तो कहानीका प्रारम्भ ही यथा-विधि होता है और न अन्त ही तथा उसके अंतर्गत चरित्रोंके विकासकी धारा पथ-भ्रष्ट होकर कहींकी कहीं जा पहुंचती है।

कहानी-कलाकी सूक्ष्म अवगति ही किसी व्यक्तिको सफल कहानी-लेखक बना सकती है—यह धारणा सर्वांशमें सत्य नहीं हैं। जो व्यक्ति कथा—वस्तुका निर्वाचन-कौशल जानता है, अपने आस-पासके वातावरणका सूक्ष्म निरीक्षण करनेमें समर्थ रहता है, संसारके उतार-चढ़ावसे पूर्ण अभिज्ञ होता है, मनोविज्ञानकी गति भली-भांति समझता है एवं भाषापर यथेष्ट अधिकार रखता है, वही कहानी लिखनेका उचित पात्र बन

सकता है। फिर भी उसे कहानीका तारतम्य सम-तौल रखनेके लिये अपनी ओरसे बहुत कुछ व्यय करना पड़ता है, घटनाके किसी अंशको एक स्थानसे उठाकर दूसरे स्थानपर रखना पड़ता है, किसी अंशको न्यूनाधिक स्वरूप देना पड़ता है, और किसी अंशको निकाल कर उसके स्थान पर कोई नवीन अंश सन्निविष्ट करना पड़ता है। इस कृत्यके साथ-साथ लेखककी कल्पना और अनुभव-शीलताका भी पूर्ण सहयोग चलता है। तभी कहानी बावन तोले पाव रत्ती ठीक ठीक उतरती है। जो कहानीकार इन सब रहस्यों का महत्व समझते हैं, वे ही सुफलके अधिकारी होते हैं।

कुछ कहानी-कार ऐसे भी होते हैं, जो अपने को उपदेशकके आसनपर देखना चाहते हैं। उनकी धारणा रहती है कि कहानी रोचक ही नहीं, शिक्षादायक भी हो। वैसे तो यह विचार सुन्दर प्रतीत होता है, परन्तु है महत्वहीन ही, क्योंकि कहानी-लेखकका कार्य उपदेश प्रदान करना नहीं है। बात तो यह है कि उपदेश और कहानी पृथक्-पृथक् वस्तुएं हैं। उपदेश देना तो उपदेशकका कार्य है, और कहानी लेखकका कर्त्तव्य है केवल कहानी लिखना। कहानी-लेखक ज्योंही उपदेशके क्षेत्रमें उतरता है, वह अपने पदसे च्युत हो जाता है। अतएव जो कहानी लेखक उपदेश प्रदान करनेकी आकांक्षा रखता हो, उसे कहानी जैसे ललित साहित्यके क्षेत्रसे विलग रहना ही उचित है। हां, वह चाहे, तो स्वतन्त्र रूपसे धर्म, आचार और नीति-शिक्षापर अपनी लेखनीका सदुपयोग कर सकता है। इस सम्बन्धमें रवि-बाबूका यह कथन स्मरण रखने योग्य है—"कहानी लिखनेका उद्देश्य कहानी लिखना है। मैं कहानी इसीलिये लिखता हूँ कि मेरी इच्छा कहानी लिखनेकी होती है। कहानी किसी उपदेशके उद्देश्यसे नहीं लिखी जाती।"

यद्यपि कहानी लेखकका वास्तविक कौशल कहानीमें जीवित संसारका आदर्श चित्रित करने तक ही सीमित है, और यही उसके कर्तव्य का मूल केन्द्र-विन्दु भी है, तथापि वह व्याज-रूपसे उपदेश-दानका कार्य हाथमें लेना चाहे, तो उसका विरोध करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। हां, उसे इसका निर्वाह अत्यन्त स्वाभाविक शैलीसे कर दिखाना चाहिये, जिससे किसीको यह बोध भी न हो, कि कहानी-लेखक अपने क्षेत्रसे भटक कर अन्यत्र चला गया है। यदि उसमें कौशल और योग्यता है, तो पात्रोंके चरित्र-चित्रण तथा उनके निष्कर्षसे पाठकोंको यत्किञ्चित उपदेशका प्रभाव-शील आभास दे सकता है। परन्तु ऐसी सूक्ष्म विदग्धता सभी कहानी लेखकोंमें मिलना असम्भव है। विरले ही कहानी लेखक इतने समर्थ होते हैं, जो मानवकी दुर्बलता के गम्भीर रहस्यको सामने लाते हैं, फिर उसपर इस ढङ्गसे चुटकी लेते हैं—ऐसे अनोखे चातुर्यसे आक्षेप करते हैं कि पारखीजन मुग्ध हो जाते हैं। तात्पर्य यह कि कहानी-लेखक अपना कार्य कर जाते हैं और पाठकोंको पता भी नहीं चलता इतनी कुशलता, इतनी स्वाभाविकता रहती है उनकी कृतिमें। वास्तवमें ऐसी कहानियां अत्यन्त दुर्लभ और मूल्यवान होती हैं, जो पाठकों का मनोरञ्जन ही नहीं करतीं, उनके हृदयपर अपना प्रभाव भी छोड़ जाती हैं।

—जहूर बख्श

पुस्तक-परिचय

साहित्य-सन्देश—(मासिक-पत्र) सम्पादक, श्री गुलाबराय एम० ए०, सञ्चालक श्री महेन्द्र (जेलमें)—प्रकाशक साहित्य-रत्न भण्डार आगरा। वार्षिक मूल्य ३)।

सन् १९४२-४३ में भारतमें जो दमन-चक्र चला उससे यहांके समाचार-पत्रोंपर भी घोर सङ्कट आ गया। अनेक पत्र तो दमनके फलस्वरूप लोप हो गये और जो बचे रहे, वे किसी प्रकार अपने जीवनकी घड़ियां गिन रहे हैं। राजनीतिक पत्रोंपर प्रतिबन्ध लगानेका कारण समझमें आ सकता है, लेकिन 'साहित्य-सन्देश' जैसे विशुद्ध साहित्य पत्रपर प्रतिबन्ध लगाकर सरकारने अपनी बुद्धि-हीनता एवं कल्पना शक्तिके अभावका ही परिचय दिया। लेकिन यह साहित्य प्रेमियोंके लिये प्रसन्नताकी बात है कि 'साहित्य सन्देश' गत अप्रेलसे पुनः प्रकाशित होने लगा है। उसका अप्रेल—मईका संयुक्त अङ्क हमारे सामने है। इसमें सभी लेखोंका चयन बहुत सुन्दर हुआ है। प्रो० देवराजका टालस्टाय की कला सम्बन्धी विचार, प्रो० नगेन्द्रका 'हिन्दी उपन्यास' और प्रो० सत्येन्द्रजी का 'प्रसादजीकी पात्र कल्पना' लेख हमें विशेष रूपसे पसन्द हैं। यह पत्र हिन्दी साहित्यमें रुचि रखनेवाले पाठकों एवं विद्यार्थियोंके लिये उपयोगी है। उन्हें इससे लाभ उठाना चाहिए। —यादवेन्दु

उद्गार :—रचयिता श्री अमरनाथ सिंह चौहान 'विशारद'। मूल्य ॥=)।

चौहानजी की कवितायें सरस, भावपूर्ण और हृदयग्राही हैं। इनमें जीवनका राग है, माधुर्यका स्वर है और स्फूर्ति भी है। कवि खोयी हुई स्मृतियोंमें भूला-सा किसी चिर-अभिलाषाको छिपाये हुए गुनगुना उठता है :—

मैं चूम हृदयकी ज्वालाको,
तूफान प्रलयमें चलता हूं।
जीवन साध की रेती पर;
लेकर चिर साध मचलता हूँ।

फिर अपने सुनहले दिनोंकी यादमें, भाग्य-चक्रको दोष देता हुआ कवि गाता है :—

खिले शत दलपर कितनी बार,
हुए जाने निर्मम हिम-पात।
निराशा रजनीमें तम छिपे
हैं, मेरे स्वर्ण प्रभात!

महानाश और प्रलयसे विचलित होकर, विषमता तथा अत्याचारसे उत्पीड़ित कवि शक्तिका आवाहन करता हैं :—

बसुधा पापोंसे है विगलित,
अत्याचारों से उत्पीड़ित।
करती है आह्वान विकल हो,
आज विषमतासे अनुशासित।

मौत की जिन्दगी :—लेखक प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त', प्रकाशक—आरती-मन्दिर, पटना सिटी। मूल्य सवा रुपया।

यह बालोपयोगी उपन्यास है। हिन्दीमें ऐसे साहित्यकी नितान्त कमी है। लेखकने यह पुस्तक किसी अङ्गरेजी पुस्तकके आधारपर लिखी है। पुस्तक और मूल लेखकके नाम नहीं बताये गये हैं। भाषा सरल छपाई सफाई साधारण है। लेखक हिन्दी संसारके मजे हुए लेखकोंमेंसे हैं। उनका यह नवीन प्रयास उपादेय और प्रशंसनीय है।

ऐण्डर्सनकी कहानियां :—(प्रथम भाग) अनुवादक—श्री गङ्गाप्रसाद 'कौशल' प्रकाशक—सरला-पुस्तक-माला, कदम कुआं पार्क, पटना। मूल्य दस आना।

आलोच्य पुस्तक अङ्गरेजी भाषाके विख्यात कहानी लेखक श्री हैंस क्रिश्चियन ऐण्डर्सनकी पांच मनोरञ्जक और उपदेशप्रद कहानियोंका अनुवाद है। अनुवादकने शब्द जालमें न फंस स्वतन्त्र भावधारामें डुबकी लगाकर 'पांच मोती' निकाले हैं। भाषा सरल एवं सुबोध है। आशा है हिन्दी संसारमें ये कहानियां समादृत होंगी।

———
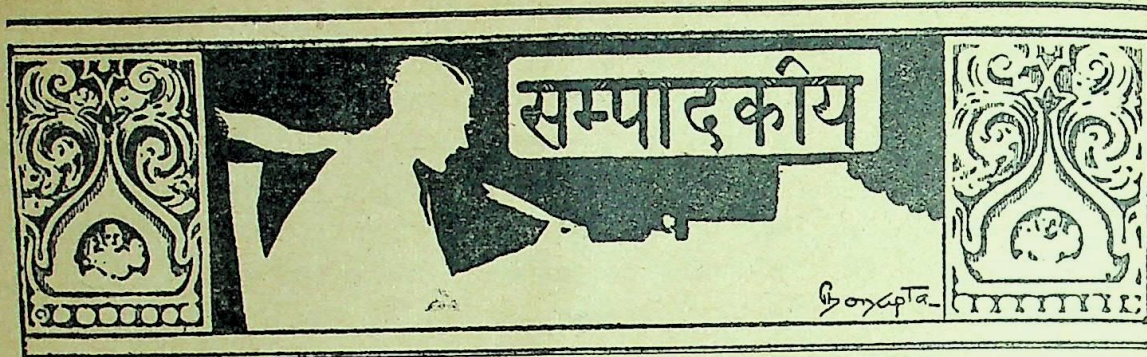
आशा का संचार—

महात्मा गांधी के बाहर आ जानेसे मंझधार में पड़ी देशकी डोलती नैया को फिर कुशलऔर प्रवीण कर्णधार मिल गया। आशाऔर जीवन का संचार हुआ। महात्मा जी क्या कहते हैं यह जानने के लिये हिन्दुस्तान ही नहीं सारा संसार उत्सुक हो उठा। तरह तरहकी अटकलें और अनुमान लगाये जाने लगे। स्वास्थ्य में अनुकूल सुधार होते ही डाक्टरोंकी अनुमतिसे उन्होंने विभिन्न दलोंके प्रतिनिधियों, पत्रकारों, राजनीतिज्ञोंसे पत्रालाप और वार्तालाप द्वारा विचार विनिमय आरम्भ कर दिया। देशकी वास्तविक स्थितिसे बाखूबी परिचित हो जाने के बाद गांधीजीने पत्र व्यवहार द्वारा अधिकारियोंकी नब्ज टटोली। ज्ञात हुआ कि अभी तक वह बहकी हुई है। स्वार्थकी मदिरा पिये हुये व्यक्तिको त्याग और निस्वार्थ भावके उपदेश में रसका बोध नहीं होता। ब्रिटिश सरकारकी भी ऐसी ही स्थिति है। वह अपनी जगहसे टससे मस नहीं होना चाहती। फिर भी संसारके निष्पक्ष और न्यायप्रिय व्यक्तियोंको, हालमें दिये गये गांधीजीके वक्तव्यों और अधिकारियोंके साथ हुए पत्रव्यवहारके प्रकाशनसे वस्तु स्थितिका सच्चा ज्ञान अवश्य हो गया है। समझौते और शान्तिके मार्गमें रोड़े कौन अटका रहा है, युद्ध और युद्ध संलग्न राष्ट्रोंके प्रति कांग्रेस एवं महात्माजीके मनोभाव क्या हैं यह बात संसारको भली भांति विदित हो गयी है। फासिस्ट समर्थक बता कर संसारके सामने कांग्रेसको बदनाम करने और दुनियाकी सहानुभूतिसे उसे बंचित करने का जो घृणित प्रयास ब्रिटिश अधिकारियों और उनके एजेन्टोंने किया उसका भण्डा फोड़ गांधीजी के वक्तव्योंसे अच्छी तरह हो गया है।

गांधी जीके समस्त पत्रों तथा सरकार द्वारा पेश किये गये अभियोग-पत्र—"कांग्रेसका उत्तरदायित्व १९४२-४३"—के उत्तरमें लिखित वक्तव्योंका सार यह है कि 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव में कोई नवीनता नहीं है। सन् १९२० से ही भारतके कार्यक्रममें जन आन्दोलन था। इस बार स्वातंत्र्यको प्रधान स्थान दिया गया है। उसका अर्थ पूर्ण स्वाधीनता है। मेरे द्वारा या किसी कांग्रेसी नेता द्वारा हिसांका विचार नहीं किया गया था। मैने यह घोषणा कर दी थी कि यदि किसी कांग्रेसजनने हिसांकी तो यह सम्भव है कि वे अपने बीच मुझे जीवित न पावें। मैंने जन-आन्दोलन कभी आरम्भ ही नहीं किया। मेंने सरकारके साथ बातचीत चलानेका विचार किया था। मैं बातचीत बिफल हो जानेपर आन्दोलन शुरु करता। इसलिये यह स्पष्ट है कि यदि गिरफ्तारियां न हुई होतीं, जैसा कि ९ अगस्तको और उसके बाद हुआ, तो कोई उपद्रव न हुआ होता। यदि सरकार इसे सही नहीं मानती है, तो एक निष्पक्ष ट्रिब्यूनल द्वारा जाचं करा ले। आपने यह भी स्पष्ट शब्दोंमें कहा है कि 'कांग्रेस पर युद्धोद्योगमें बाधा डालनेका आरोप गलत है।'

श्री जयकरको गांधीजीने एक पत्र लिख कर यह सूचित किया था कि अगस्त प्रस्ताव मैं वापस नहीं ले सकता। बात भी बिलकुल ठीक है, जिसे आल इण्डिया कांग्रेस कमेटीने पास किया था उसे गांधीजी कैसे वापस ले सकते हैं। अन्यायका प्रतिकार करना, अनीतिके विरुद्ध आवाज उठाना गांधीजीका जीवन-धर्म है। वे जिस कार्यको धर्माचरणके प्रतिकूल समझते हैं उसे जीवन श्वास रहते कदापि न करेंगे। हिंसा को वे इसी कोटिमें मानते हैं। अतः यदि क्षण भरके लिये भी कोई यह समझता है कि गांधीजी हिन्सात्मक कामोंको प्रोत्साहन दे सकते हैं तो अवश्य ही उसकी ऐसी समझ किसी स्वार्थसे प्रेरित है। साधनोंकी पवित्रता गांधीजीके लिये उतनी ही प्रिय है जितनी अभीष्ट सिद्धि। इसीलिये साधनोंकी पवित्रतापर विश्वास रखते हुए धन और यशकी लिप्सासे दूर रह एवं फल फलकी परवाह न करके आत्म-संयम, त्याग और बलिदानकी भावनासे सत्याग्रहीको अपने लक्ष्य की तरफ अग्रसर होनेका प्रयास बराबर जारी रखनेका उपदेश देते हुए गांधीजीने जनता और खास कर कांग्रेसकर्मियोंको प्रबोध दिया है कि निराश होनेकी कोई बात नहीं है। हम अपने लक्ष्य तक अवश्य पहुंचेंगे। अवश्य ही आज अपने लक्ष्य तक पहुंचनेके लिये वे भद्रअवज्ञा आन्दोलन को अपना मार्ग नहीं बनाना चाहते। गांधीजी वास्तववादी महा पुरुष हैं। वे जानते हैं कि १९४४,१९४२ नहीं है। इसीलिये बाहर आते ही उन्होंने पुनः वायसरायसे और विचार विनिमयके लिये कांग्रेस वर्किङ्ग कमेटीके जेलमें बन्द सदस्योंसे मिलनेकी अनुमति लार्ड वावेलसे मांगी थी। किन्तु अपनी बिजयोंसे मदमत्त ब्रिटिश सत्ता आज इसकी आवश्यकता नहीं समझती। लार्ड वावेलने महात्मा गांधीजी की इस अत्यन्त छोटी और उचित मांगको अस्वीकार करते हुए कहा कि अभी इसका समय नहीं आया। यदि भविष्यमें आप कोई रचनात्मक सुझाव या कार्यक्रम रक्खेंगे तो उसपर उचित विचार किया जायेगा। रचनात्मक सुझावसे लार्ड बावेलका क्या मतलब है, यह तो वही जानते हैं, लेकिन न्यूज क्रानिकलके प्रतिनिधिसे बातचीतके दौरान में महात्मा गांधीने वर्तमान राजनीतिक गतिरोधको दूर करनेके लिये जो सुन्दर और सरल मार्ग बताया है उसका ब्रिटिश अधिकारियोंने जैसा स्वागत किया है उसे देखकर हम तो यही समझते हैं कि लार्ड बावेल एवं उनके भाग्य विधाता शायद गांधीजीसे भी आशा करते हैं कि रेडिकल डेमाक्रेट श्री जमनादास मेहता और एम० एन० रायकी तरह वे भी सरकारकी कृपा प्राप्त करनेके लिये कोई जीहुजूरी कार्यक्रम तैयार करके उनकी सेवामें उपस्थित करेंगे।

स्वराज्यसे कममें सन्तुष्ट होनेकी गांधीजीसे आशा करना मूर्खता है। ब्रिटिश राजनीतिज्ञ इतने मूर्ख नहीं है कि वे यह बात न समझते हों। दूर असल इस समय वे स्थिति अपने अनुकूल समझ कर भारतके साथ कोई समझौता करना नहीं चाहते। यही कारण है कि राजनीतिक गतिरोधको मिटानेके लिये गांधीजी द्वारा निम्न लिखित सुन्दर योजना उपस्थित की जानेपर भी वे उसे समझौतेकी बातचीत आरम्भ करनेके योग्य आधार भी नहीं समझना चाहते। जान-बूझकर न समझनेवालेको भला कौन समझा सका हैं!

गांधीजीके रचनात्मक सुझाव—

पञ्चगनीमें महात्मा गांधीने लन्दनके 'न्यूज क्रानिकल' के विशेष संवाददाता मि० गेल्डरको पत्र-सम्पादकके विशेष अनुरोध पर एक वक्तव्य दिया, जो पहले बम्बईके 'टाइम्स आफ इण्डिया' और बादमें सभी समाचार पत्रोंमें प्रकाशित हुआ है। यह वक्तव्य बड़े महत्वका है। गत १२ जुलाईको रात्रिके समय उन्होंने जो दो वक्तव्य प्रकाशित किये हैं, उनका सारांश इस प्रकार है:—

(१) कांग्रेस-कार्य-समितिके बिना गांधीजी कुछ भी नहीं कर सकते।

(२) यदि वह वायसरायसे मिलेंगे, तो वह यह बतलायेंगे कि भेंटके लिये जो आग्रह था वह मित्र राष्ट्रीय युद्ध प्रयासमें बाधा डालने के लिये नहीं। प्रत्युत उसमें सहायता देनेके लिये था।

(३) उनका सविनय अवज्ञा (सत्याग्रह) करनेका विचार नहीं है! वह देशको फिर सन् १९४२ की स्थितिमें डाल देना नहीं चाहते।

(४) दो वर्षोंमें दुनियांमें काफी परिवर्तन हुए हैं। इसलिये समूची स्थिति पर नये सिरेसे समालोचन आवश्यक है।

(५) आज गांधीजी राष्ट्रीय सरकारसे ही सन्तुष्ट हो जायंगे। उसके नियन्त्रणमें नागरिक शासन (Civil administration) रहेगा।

(६) गांधीजी कांग्रेसको यह सलाह देंगे कि वह राष्ट्रीय सरकारमें हिस्सा ले।

(७) स्वाधीनता मिल जानेपर वह सम्भवतः कांग्रेसके सलाहकार नहीं रहेंगे। राष्ट्रीय सरकारकी मांगको पुनः गांधीजीने रखा है। नागरिक शासनका पूर्ण अधिकार उन्होंने चाहा है। गांधीजी सत्याग्रहका विचार भी नहीं कर रहे हैं। हम समझते हैं कि इससे अधिक और क्या गारण्टी सरकार चाहती है। कितने स्पष्ट शब्दोंमें उन्होंने मित्रराष्ट्रोंकी सहायताके लिये आश्वासन दिया है और अपनी मांगको भी कितने सुन्दर रूपमें रखा है। यह न्यूज क्रानिकलके शब्दोंमें राजनीतिक उलझनका एक नवीन उपाय है? क्या सरकार इसपर उचित विचार करनेको प्रस्तुत है? नहीं, वह टससे मस भी नहीं होना चाहती।

किस बातमें न्यून है—

कुछ लोगोंने गांधीजीकी इस योजनाको क्रिप्स प्रस्तावसे भी न्यून बताया है अब हम यहांपर इस बातपर विचार करेंगे कि क्या सचमुच गांधीजीकी वर्तमान मांग क्रिप्स प्रस्तावसे न्यून है। आगे बढ़नेके पहले एक बार क्रिप्स प्रस्ताव पर सरसरी नजर डाल लेना अच्छा होगा। प्रस्ताव इस प्रकार था:—(१) वर्तमान युद्धके बन्द होते ही भारतमें एक विधान बनानेवाली परिषदका गठन किया जायेगा। प्रान्तीय व्यवस्थापिकाओंके प्रतिनिधि इस परिषदके सदस्य होंगे। (२) यह परिषद भारत-विधानका निर्माण करेगी जिसे अक्षरशः ब्रिटिश सरकार स्वीकार करेगी। (३) यदि कोई एक या अधिक प्रान्त विधान बनानेवाली परिषदमें भाग न लेना चाहेंगे तो इन प्रान्तोंको स्वतन्त्रता होगी कि वे अपने प्रान्त अथवा प्रान्तोंके लिए विधान बनानेवाली परिषदके सङ्गठनके सम्बन्धमें सर्वोच्च सत्ता (Paramount Power) अर्थात् ब्रिटिश सरकारके साथ नया समझौता करें। (४) जो देशी रियासतें भारतीय सङ्घमें शामिल होना चाहेंगी वे कुछ शर्तोंके साथ ऐसा कर सकती हैं। (५) वर्तमान युद्धके दौरानमें रक्षा (डिफेन्स) को छोड़कर पूर्ण अधिकार प्राप्त एक राष्ट्रीय सरकार कायम की जायेगी। यह है संक्षेपमें क्रिप्स प्रस्ताव। अब यह देखा जाये कि महात्मा गांधी आज क्या कहते हैं। उन्होंने न्यूज क्रानिकलके प्रतिनिधिसे कहा था कि यदि ब्रिटिश सरकार यह गारण्टी देनेको तैयार हों कि युद्धके बाद वह हिन्दुस्तानको पूर्ण स्वतन्त्रता देगी तो युद्ध कालमें राष्ट्रीय सरकारके सङ्गठन में भाग लेनेकी सलाह मैं कांग्रेसको दूंगा।' राष्ट्रीय सरकारका सङ्गठन वैसा ही होगा जैसा ब्रिटिश सरकारका है। अर्थात् वायसरायकी स्थिति वैसी ही होगी जैसी इङ्गलैण्डमें आज वहां के सम्राट की है, जो अपने मन्त्रियोंकी आंखोंसे देखते हैं, उनके कानोंसे सुनते और उनके मुंहसे ही बोलते हैं। युद्ध सञ्चालन सम्बन्धी कार्यके सिवा बाकी तमाम नागरिक शासन व्यवस्थाका पूर्ण उत्तरदायित्व राष्ट्रीय सरकारपर होगा, जो अपने कामोंके लिये व्यवस्थापिका परिषदके सामने जवाबदेह होगी। यह है गांधीजीकी योजना वर्तमान राजनीतिक गत्यवरोधको दूर करनेके लिये। गांधीजीके इस सुझावमें जरा भी पैर पीछे रखनेकी बात नहीं है। यदि ब्रिटिश सरकार युद्ध कालमें गांधीजी द्वारा बतायी गयी वायसरायकी स्थितिको स्वीकार कर लेती है, जिसके कोई लक्षण नहीं नजर आते, और युद्धके बाद भारतको पूर्ण स्वतन्त्र घोषित कर देनेकी गारण्टी दे देती है तो गांधीजी देशको क्रिप्स-प्रस्तावसे चार कदम आगे बढ़ा ले जाते हैं। यह बात स्मरण रखनेकी है कि क्रिप्स-कांग्रेस वार्तालापके समय डिफेंस मिनिस्टरके कार्यक्षेत्र और अधिकारके प्रश्नको लेकर एक उलझन पैदा हो गयी थी और दोनों ही तरफ से कुछ घटने और कुछ आगे बढ़नेके प्रयास द्वारा उस उलझनको सुलझानेका प्रसङ्ग छिड़ा हुआ था कि अकस्मात बातचीतका सिलसिला खत्म हो गया और क्रिप्स साहबको फौरन वापस चला जाना पड़ा था। जानकार लोग जानते हैं कि डिफेन्सके मामलेमें समझौतेकी गुञ्जाइश थी। दोनों ही दल अपनी-अपनी स्थितिसे कुछ-कुछ हटनेको तैयार थे। बातचीतका अन्त डिफेन्स के प्रश्नको लेकर नहीं, बल्कि वायसरायकी स्थितिको लेकर हुआ था। चर्चिल पन्थी सरकार इस बातको माननेको तैयार न थी कि वायसरायका काम केवल मन्त्रिमण्डलके निर्णयपर अपनी स्वीकृतिकी छाप लगाने भरका रह जाये। इधर कांग्रेस भी किसी तरह ऐसी सरकार बनाने को तैयार न थी जिसके निर्णयको वायसरायकी हां और नहींका मुंह देखना पड़े। बस इसी जगह दोनों तरफसे इतनी खींचातानी हुई कि बातचीतकी रस्सी टूट गयी और क्रिप्स महोदय बैरङ्ग वापस लौट गये। गांधीजी आज भी उसी स्थितिपर कायम हैं। फिर हमारी समझमें यह नहीं आता कि गांधीजीकी वर्तमान राजनीतिक मांग क्रिप्स योजनासे भी न्यून किस बातमें है!

कलई खुल गयी—

ब्रिटिश शासकोंकी नस-नससे परिचित

व्यक्ति गांधीजीसे अधिक शायद ही कोई हो। अभी तक ये भलेमानस बराबर यह कहा करते थे कि भारतीय राजनीतिक गत्यावरोधकी सारी जिम्मेदारी महात्मा गांधी और कांग्रेसपर है। इस मिथ्यावादकी धज्जियां उड़ाते हुए गांधीजीने 'न्यूज क्रानिकल' के प्रतिनिधि मि० गेल्डरको जो वक्तव्य दिया है उससे ब्रिटिश सरकारकी असलीयतका पता लग गया और साम्प्रदायिक समस्याको सुलझानेके लिये चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य द्वारा प्रस्तुत की गयी योजनाको स्वीकार करके उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्यवादके प्रकारान्तरसे समर्थक कट्टर साम्प्रदायिक मुसलमानोंकी कलई भी खोल दी। राजाजीकी योजना इस प्रकार है :—

(१) मुस्लिम-लीग स्वाधीनताके लिये भारतीय मांगको स्वीकार करेगी और अपने सहयोगसे अस्थायी सरकारके निर्माणके लिये प्रयत्न करेगी।

(२) युद्धके बाद एक कमीशन नियुक्त किया जायेगा जो भारतके उन उत्तर पश्चिमी तथा पूर्वी जिलोंका जिनमें मुसलमानोंका बहुमत है, जन-मत संग्रह करेगा। यदि हिन्दुस्तानसे पृथक होनेके लिये बहुमत होगा, तो पाकिस्तान की स्थापना हो जायगी।

(३) इस प्रकारके मत-संग्रहसे पूर्व सभी दल अपने अपने विचार स्वतन्त्र रूपसे प्रकट कर सकेंगे।

(४) भारतके दो भागोंमें बंट जानेपर व्यापार, यातायात और देश रक्षा, सेना आदिके बारेमें परस्पर समझौता होगा।

(५) आबादीका स्थानान्तर उसकी स्वेच्छा से ही होगा।

(६) ये शर्तें तभी लागू होंगी, जब कि भारतको ब्रिटेन पूर्ण उत्तर दायित्व प्रदान कर देगा।

वास्तवमें इस तरहका वक्तव्य देना बड़े ही साहसका काम था। इस तरहका साहसपूर्ण काम करनेका साहस गांधीजी ही कर सकते थे। उनके वक्तव्यकी गहराई तक न पहुंच पानेवाले व्यक्तियोंने तरह तरहकी आशंकाएं प्रकट कीं और यहां तक कह डाला कि गांधीजी देशको दो वर्ष पीछे हटा ले गये। ऐसे लोगोंको प्रबोध देते हुए गांधी जीने कहा कि लोगोंको धैर्यसे काम लेना चाहिये। जब तक ब्रिटिश सरकारके प्रतिनिधि-स्थानीय व्यक्ति मेरे प्रस्ताव पर अपनी जबान नहीं खोलते तबतक उनको धैर्य के साथ प्रतीक्षा करनी चाहिये। गांधीजी जानते थे कि कांग्रेस नेताओंके जेलोंमें बन्द रहनेकी स्थितिसे सरकार अब तक नाजायज फायदा उठा रही थीं और दुनियाके सामने भारतको बदनाम करनेके बदुद्देश्यसे वह कांग्रेस और उसके नेताओंको फासिस्टोंका समर्थक बता कर भारतको प्रगतिशील संसारकी सहानुभूतिसे वंचित रखना चाहती थी। महात्मा गांधी वास्तववादी और दूरदर्शी राजनीतिज्ञ हैं। उन्होंने अपनी और कांग्रेसकी स्थितिका स्पष्टीकरण करते हुए संसारको यह बता दिया कि भारतके राजनीतिका और साम्प्रदायिक गत्यावरोधके लिये जिम्मेदार कौन है! अभी उस दिन पार्लमेण्टकी लार्ड सभामें उप-भारत सचिव अर्लमुन्सटरने यह साफ साफ कह दिया कि ब्रिटिश सरकार गांधीजीके प्रस्तावको स्वीकार कर सकनेमें असमर्थ है। आपने कहा कि राष्ट्रीय सरकार बनानेके सम्बन्धमें गांधी जीने जो प्रस्ताव रखा है उसे ब्रिटिश सरकार कदापि स्वीकार नहीं कर सकती, क्यों कि भारतके अल्प संख्य सम्प्रदायोंके हितोंकी रक्षा करनेका उत्तरदायित्व हमारे ऊपर है, ऐसी हालतमें जब तक कांग्रेस और मुसलिम लीगके बीच समझौता नहीं हो जाता ब्रिटिश सरकार फिलहाल वैधानिक प्रगतिके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं कर सकती। गांधीजी जानते थे कि ब्रिटिश सरकार ऐसा ही जवाब देगी। इसीसे पहले ही उन्होंने उस बाधा को भी दूर कर देना उचित समझा जो साम्प्रदायिक समझौतेके मार्गमें बराबर जबर्दस्ती खींच लायी जाती है। मुस्लिम लीगके स्वभाग्य निर्णय के सिद्धान्तपर उन्होंने अपनी स्वीकृतिकी छाप लगा दी। ऐसी स्थितिमें यह समझ कर कि शायद स्वभाग्य निर्णयके आधारपर कांग्रेस और मुसलिम लीगके बीचमें किसी तरहका समझौता हो जाये ब्रिटिश अधिकारियोंने अपना राग बदल दिया। भारत मंत्री मि० एमरीने पार्लमेण्टमें इस सम्भावनाको दृष्टिगत रख कर कहा कि, हमें यह कहते संकोच होता है कि भूगोल और २५० वर्षके ब्रिटिश प्रभावने जो भारतीय ऐक्य स्थापित किया है उसे हम जान बूझ कर टुकड़े टुकड़े कर डालें। मुस्लिम संस्कृति, उनकी रहन सहन और मर्यादाको खतरेमें डालने वाली किसी वैधानिक योजनासे मुस्लिम-प्रधान प्रान्तोंको पृथक रहनेके अधिकारपर हम लोगोंने इस लिये इतना अधिक जोर डाला था कि समझौते और ... दारीके साथ काम लेकर एकता कायमकी ... इस लिये नहीं कि हम भारतको खण्ड ... करना चाहते थे।"

गांधी-जिन्ना मुलाकातके समाचारने ... मंत्रीको इस तरह अपना स्वर बदलनेके ... बाध्य किया है। मि० एमरी यद्यपि आज ... कहते हैं कि मुसलमानोंके स्वभाग्य नि... अधिकारका प्रश्न उठानेमें उनका उद्देश्य ... को विभक्त करना नहीं अपितु ऐक्य स्... करना था, किन्तु यह बतानेकी आवश्यकता ... है कि ब्रिटिश अधिकारियोंने बराब... एकताको दूर भगाने और फूट बढ़ानेके ... घृणितसे घृणित उपायोंका अवलम्बन करनेमें ... रञ्च मात्र द्विधा नहींकी। आज दो भा... परस्पर मिल सकनेकी सम्भावनाके क्षीण ... प्रकाशने ही गौराङ्ग महाप्रभुओंको उद्विग्न ... व्यग्रकर दिया है। इसीसे उन्होंने फौरन अपना ... बदल दिया। दर असल वे किसी स्थितिमें ... कार भारतीयोंको हस्तान्तरित करनेको ... नहीं है और उनके सारे कार्य एक इसी ... को सामने रख कर होते हैं।

शब्दोंका माया जाल—

भारतके प्रश्नपर ब्रिटिश पार्लमेण्टकी ... सभामें जो बहस हुई और भारत सचिव ... एमरीने उसका जो उत्तर दिया है उस... स्पष्ट है कि ब्रिटिश राजनेता भारतको ... शब्दजालमें फंसाये रखना चाहते हैं। दर ... इस समय, बल्कि यह कहिये कि किसी ... भी, ब्रिटिश सरकार भारतको वास्तविक ... कार प्रदान करनेको तैयार नहीं है और ... भी कैसे सकती है। संसारमें यदि उसे ... नेतृत्व का स्थान बनाये रखना है तो उसके ... यह नितान्त आवश्यक है कि भारत जैसे ... साधन सम्पन्न देशपर उसका प्रभुत्व बना ... अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति जिस तेजीसे बदलती ... है उसे देखते हुए राजनीतिका विद्यार्थी ... स्पष्टतया समझता है कि यूरोपपर रूसका ... हुआ प्रभाव ब्रिटिश नेतृत्व और प्रभावके ... खतरनाक सिद्ध होगा। बहुत सम्भव ... रूसके प्रभावके सामने ब्रिटिश नेतृत्व ... यूरोपसे उखड़ जायें, उस अवस्थामें यदि ... पर भी इनका प्रभुत्व न रह जायेगा तो ... प्रथम कोटिके राष्ट्रोंकी पंक्तिमें इनका ... रहेगा या नहीं, यह सन्देह की बात है।

ब्रिटिश राजनेता इस भविष्यको आशङ्का पूर्ण दृष्टिसे देख रहे हैं और यही कारण है कि यूरोप में रूसकी प्रगतिके साथ-साथ ब्रिटेनकी भारत नीति भी कठोर और अचल होती जा रही है। किन्तु शब्दजाल और मायाजाल रचनेमें अङ्ग्रेजोंसे अधिक उस्ताद दूसरा नहीं है। तभी तो प्रश्नका उत्तर देते हुए भारत सचिव मि० एमरी ने कहा कि 'मैं बिना किसी हिचकिचाहटके यह आश्वासन देनेको तैयार हूँ कि क्रिप्स योजना अब भी वर्तमान है। जो उदार, विस्तृत और व्यापक योजना भारत और संसारके सामने उपस्थित की गयी थी सरकार आज भी उसके साथ है। विजयके समय भी हम उसे मानेंगे, वैसे ही जैसे सङ्कटके समय हमने उसे रखा था। युद्धकी स्थितिमें परिवर्तन और विपर्ययका योजना-निर्माणसे कोई सम्बन्ध नहीं था, वैसे ही उसे पूरा करनेमें विजय किसी तरह बाधक नहीं हो सकती। गांधीजीने जो प्रस्ताव रखे हैं उनके आधारपर लार्ड वावेल अथवा नजरबन्द कांग्रेस नेताओंसे विचार विनिमयका सूत्रपात लाभप्रद नहीं हो सकता। रचनात्मक प्रस्ताव उपस्थित करनेका जो निमन्त्रण लार्ड वावेलने दिया था गांधीजीके प्रस्तावको उसका उत्तर कदापि नहीं समझा जा सकता।' आगे चलकर मि० एमरीने कहा कि राजनीतिक समाधानके अनुकूल स्थिति आने तक देशकी कृषि-सम्बन्धी क्षमताको १९सालके भीतर दूनी बनाने, ८० करोड़ पौण्ड व्यय करके निःशुल्क अनिवार्य शिक्षाकी देशव्यापी व्यवस्था और ४ लाख मील सड़कोंके निर्माण जैसे सुधार कार्यको आगे बढ़ाया जायगा। भारतवर्षमें महान औद्योगिक प्रगति होनेवाली है। यह है अपनेको भारतका भाग्य-विधाता समझनेवाले मि०एमरीका स्वरूप। रचनात्मक प्रस्तावोंसे आपका क्या मतलब है, यदि यह भी वे समझा देते तो बड़ी कृपा होती। किन्तु जाल सलझानेके लिये नहीं बिछाया जाता, बल्कि फंसानेके लिये और पहलेसे फंसे हुए लोगोंको और जकड़नेके लिये।

राजनीतिक अधिकारोंकी चर्चाको स्थगित करके कृषि,प्राथमिक शिक्षा और सड़क निर्माणादि की योजनाओंको जो प्रधानता दी जा रही है इसके भीतर भी गूढ़ रहस्य है। उद्योग-प्रधान देश ब्रिटेनको कच्चे मालकी कितनी आवश्यकता है, यह किसीसे छिपा नहीं है। युद्धोत्तर कालीन संसारमें, जब भारत स्वतन्त्र हो जायेगा,ब्रिटेनको कच्चा माल कहांसे मिलेगा। और यदि कच्चा माल न मिलेगा तो उद्योग-धन्धेकी प्रतियोगितामें ब्रिटेन संसारके अन्य उद्योग शील देशोंका मुकाबला कैसे कर सकेगा। अतः यह आवश्यक है कि भारत ब्रिटेनकी इस जरूरतको पूरा करता रहे और यह तभी सम्भव है जब भारतपर ब्रिटेनका अधिकार रहे। अतएव पूंजीवादी और साम्राज्यवादी वर्तमान ब्रिटिश सरकार शक्ति रहते स्वेच्छासे कदापि भारतको स्वतन्त्र नहीं कर सकती, यह बात सूर्यके प्रकाशकी तरह स्पष्ट है। उक्त अराजनीतिक सुधार योजनाओंका जो संकेत मि० एमरीने अपने भाषणमें किया है उसका भी रहस्य यही है, अर्थात् भारतको बराबर अपने नियन्त्रणमें रखना। पूंजीवादी ब्रिटिश राजनीतिज्ञ जानते हैं कि भारतमें अपना आधिपत्य जमाये रखनेके लिये यह आवश्यक है कि व्यक्तिवादी मध्यम वर्गको सन्तुष्ट रखा जाये। इसके सिवा युद्धके लिए भर्ती किये गये लाखों सैनिकोंको, युद्ध बन्द हो जानेके बाद, एवं आज युद्धोद्योगमें लगे हुए लाखों व्यक्तियोंको काममें लगानेका प्रश्न भी उनके सामने है। अतः शिक्षा योजना और सड़क निर्माण जैसी योजनाएं सामने लानेकी आवश्यकता है। ब्रिटिश राजनेता चाहते हैं कि इसी तरहके गौण विषयोंकी तरफ भारतको फंसाये रख कर स्वतन्त्रताकी मूल समस्यासे जहांतक हो सके उसे दूर रखा जाये। इस कार्यके लिये तरह तरह के आकर्षक और फंसाने वाले कार्यक्रम एक तरफ देशके सामने रखे जायेंगे और दूसरी तरफ इस बातकी आप्राण चेष्टा की जाती रहेगी कि देशके विभिन्न वर्गों और सम्प्रदायोंमें कभी किसी तरह ऐक्य न स्थापित होने पाये। इसीलिये तो महात्मा जीका प्रस्ताव बातचीत आरम्भ करनेका पर्याप्त आधार भी नहीं समझा गया किन्तु फिर भी शब्दजाल फैलाते हुए मि० एमरी फरमाते हैं कि क्रिप्स योजना, जिसमें युद्धकालके लिये राष्ट्रीय सरकार और बादमें भारतका स्वतन्त्र विधान बनानेका भार भारतीयोंके हाथोंमें सौंपनेकी बात है, अब भी वर्तमान है। अगर गांधीजीका प्रस्ताव रचनात्मक नहीं है तो स्वयं ब्रिटिश सरकार, यदि वह सचमुच समझौता चाहती हैं, क्यों नहीं रास्ता दिखाती। इसमें सन्देह नहीं कि ब्रिटिश सरकार समझौता चाहती है लेकिन देशकी स्वतन्त्रताके लिये लड़ने वालोंसे नहीं,बल्कि किसी भी मूल्य पर स्वतन्त्रता बेचनेको सदा प्रस्तुत रहनेवालोंसे वह समझौता चाहती है और एक परतन्त्र देशमें इस तरहके नामधारी नेताओंका अभाव नहीं होता। स्वार्थ अन्धा होता है। स्वार्थकी मदिराने यदि ब्रिटिश राजसत्ता और भारतके धन-पद लोलुप व्यक्तियोंको अन्धा बना दिया है तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। देश व्यापी असन्तोषको कुछ समय तक येनकेन प्रकारेण दबाये रखा जा सकता है। लेकिन हमेशा उसे कोई भी शक्ति नहीं दबाये रख सकती। ब्रिटेनके प्रति बढ़ते हुए भारतीय असन्तोषको यदि एमरी कम्पनी भारतीय क्विसलिंगों और अपने शस्त्रबलकी सहायतासे दबाकर दुनियाको यह दिखाना चाहते हैं कि भारतमें सर्वत्र शान्ति और सन्तोष है,केवल थोड़ेसे पथभ्रान्त-व्यक्ति वावेला मचायाकरते हैं तो अभी इतना ही कहना पर्याप्त है कि वेमूर्खोंके स्वर्ग सुखकी कल्पनाके राज्यमें विचरण कर रहे हैं।

भारत और विश्व-मुद्रा निधि—

ब्रेटनवुड (अमेरिका) में राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा-सम्मेलनका आयोजन गत मासमें किया था। इसमें भारतसे भी एक प्रतिनिधि-मण्डल शामिल होने गया था जिसमें सरकारी और गैर सरकारी सदस्य सम्मिलित थे। इस प्रतिनिधि-मण्डलकी ओरसे यह प्रस्ताव रखा गया कि लन्दनमें भारतका जो स्टर्लिङ्ग-कोष जमा है, उसकी अदायगी पर यहां विचार एवं निश्चय कर दिया जाय। लेकिन ब्रिटेन, फ्रान्स और अमेरिकाके सभी प्रतिनिधियोंने इस अत्यन्त आवश्यक और उचित प्रस्तावका विरोध किया। उन्होंने यह आपत्ति प्रकट की कि युद्धकालीन स्टर्लिङ्ग निधिका इस कोषसे कोई सम्बन्ध नहीं। इसलिये इसपर विचार नहीं किया जा सकता। सम्मेलनकी इस स्थितिसे भारतीय प्रतिनिधियोंको ही निराशा नहीं हुई है, प्रत्युत भारतमें भी इसपर चिन्ता प्रकट की जा रही है। देशके उद्योगवादियों तथा बम्बई आर्थिक योजनाके एक योजनाकार श्री ए० डी० श्राफ (डायरेक्टर टाटा केमीकल इन्डस्ट्रीज) ने मुद्रा-सम्मेलनकी इस नीतिपर बहुत ही असन्तोष प्रकट किया है। योजनाकारोंका यह मत है कि भावी स्टर्लिङ्ग कोष (जिसमें १२ अरब रुपये जमा हो चुके हैं) की अदायगी उचित रूप में नहीं की गयी, तो इससे युद्धोत्तर निर्माणकी योजनाएं खटाईमें पड़ जायगी। अतः देशवासियोंमें इससे चिन्ता होना स्वाभाविक है।

पश्चिम पूर्वसे सीखे !—

यलो स्प्रिगस ओहियों (अमेरिका) में एन्टियोक कालेजमें व्याख्यान देते हुये मिस पर्लबकने कहा—

"केवल पूर्वके राष्ट्र ही विश्व—शान्तिके लिये कोई वास्तविक और स्थायी सङ्गठन स्थापित कर सकते हैं; क्यों कि वे ही वास्तवमें मानव प्रकृतिके नियमोंको भली भांति हृदयगंम करनेकी क्षमता रखते हैं।" आपने आगे कहा कि जब पश्चिम पूर्वकी बुद्धिमत्ताको ग्रहण करनेके योग्य बन जायगा तो उससे संसारमें एक अभूत पूर्व जीवनका उदय होगा।" आजसे कुछ वर्षों पूर्व विश्व-कवि रवीन्द्रने भी अपने एक ऐतिहासिक भाषणमें इसी प्रकारके विचार व्यक्त किये थे। उन्होंने यह कहा था कि मुझे पश्चिमसे बड़ी आशाएं थीं; लेकिन अब धीरे धीरे मेरी आशाएं मिट चुकी हैं और मुझे ऐसा लगता है कि विश्वका त्राता पूर्वमें ही जन्म लेगा। विश्वकी महान् लेखिका और भारत-हितैषिणी मिस पर्लबक भी आज यही घोषित कर रही हैं। लेकिन इस युद्ध की भीषण तुमुल-ध्वनिमें आज शान्तिका सन्देश सुनने वाला भी कौन है? इसलिये इन महापुरुषोंके वचन अरण्यरोदन ही सिद्ध हो रहे हैं?

कस्तूर बा स्मारक निधि—

गत जुलाईके आरम्भमें पूनामें कस्तूरबा राष्ट्रीय स्मारक निधिके ट्रस्टियोंकी एक आवश्यक बैठक हुई थी जिसमें महात्मा गांधीने सभापतिका आसन ग्रहण किया था। गांधी जीने गुजरातीमें भाषण करते हुए बतलाया कि इस निधिके प्रमुख प्रर्वतक श्री नारायणदास गांधी हैं। जब इस निधिके निर्माणका प्रयत्न जारी ही हुआ था, तभी कस्तूरबाका दुःखदायी निधन हो गया। 'राष्ट्रीय निधि' के निर्माणका नाता कस्तूरबाकी स्मृतिसे इस प्रकार जोड़ दिया गया। इस प्रकार वर्त्तमान ट्रस्ट का जन्म हुआ। इस ट्रस्टका मुख्य उद्देश्य भारत की ग्रामीण स्त्रियों एवं बच्चोंका कल्याण ही है। नारी एवं बालक-बालिकाओंके 'कल्याण' की विशद व्याख्या करते हुए गांधी जीने बतलाया कि इसके अन्तर्गत प्रसूताकी सेवा सुश्रुषा, सफाई-स्वास्थ्य, और रोग- चिकित्सा तथा शिक्षा शामिल है। शिक्षासे तात्पर्य है हिन्दुस्तानी तालीमी संघकी बेसिक शिक्षा। इसलिये इस निधिका 'उपयोग नगरोंमें अथवा विश्वविद्यालयोंमें नहीं किया जायगा। आपने प्रत्येक भारतीयसे आग्रह करते हुए कहा—कि यह स्मारक राष्ट्रीय स्मारक है। अतः इसमें हरेकको यथा शक्ति भाग लेना चाहिये, चाहे उसके राजनीतिक विचार भले ही भिन्न हों। ७५ लाख रुपये चन्दे द्वारा एकत्रित करके गांधी जीकी आगामी वर्ष गांठ (२ अक्टुबर १९-४४) के उपलक्ष्यमें उन्हें भेंट किये जायंगे। इसी अवसरपर उनकी सेवामें एक अभिनन्दन ग्रन्थ भी समर्पित करनेका आयोजन किया गया है। अब तक प्राय ३५॥ लाख रुपये कोषमें जमा हो चुके हैं, और आशाकी जाती है कि निर्धारित समय तक यह कोष पूरा हो जायगा। यह कार्य वास्तवमें 'राष्ट्रीय महत्व' का है। इसलिये प्रत्येक को अपने सामर्थ्यके अनुसार इस राष्ट्रीय महायज्ञमें अपनी आहुति डालनी चाहिये।

चीनका संघर्ष—

७ जूलाईको चीन-जापान-युद्धका आठवां वर्ष आरम्भ हो गया। इन सात वर्षोंमें चीनी नागरिकोंने कितना बलिदान और कष्ट सहन करके भी अपनी मातृभूमिकी रक्षाकी है, इसका लेखा-जोखा जब लगाया जायगा, तो कोई भी चीनियों के स्वातन्त्र्य-प्रेमकी प्रशंसा किये बिना न रहेगा। इसका संक्षिप्त विवरण बम्बई-स्थित चीनी राजदूतने प्रकाशित किया है। उसके अनुसार इस संघर्षमें ९० प्रतिशत चीनी शिक्षण संस्थाएं जापानियोंने नष्ट कर दीं। यद्यपि चीनी अविराम गतिसे जापानियोंसे लड़ते जा रहे हैं। लेकिन चीनके पास अस्त्र-शस्त्रोंकी कमी और यातायात की कठिनाइयोंके कारण बड़ी दिक्कतोंका सामना करना पड़ रहा है। गत मईके अन्तमें अमेरिकाके उपराष्ट्रपति बालेस चीन यात्राके लिये गये थे। उन्होंने देशका निरीक्षण कर अपनी रिपोर्ट रूजवेल्टको दे दी है, ऐसी आशा है। अपने एक छोटेसे वक्तव्यमें उन्होंने चीनकी स्थिति 'अत्यन्त गम्भीर' बतलायी है। चीनके राष्ट्रपति मार्शल च्याङ्ग-काई शेकने युद्धके सातवीं वर्ष गांठके उपलक्षमें चीन राष्ट्रको जो सन्देश दिया है उसमें भी स्पष्ट शब्दोंमें कहा है कि—"इस सचाई पर आवरण डालनेसे कोई लाभ नहीं कि शत्रुने नयी दिशाओंमें तीव्रगतिसे प्रगति की है और स्थिति गम्भीर है!" चर्चिलने इस अवसरपर च्या[ङ्ग-]काई शेकको जो सन्देश भेजा है, उसमें भी [कहा] है कि हम चीनको उतनी सहायता नहीं [भेज] सके जितनी भेजना चाहते थे। लेकिन [जब] पश्चिममें विजय मिल जायगी, तो पूरी श[क्तिके] साथ जापानकी शक्तिको कुचल दिया जाय[गा।] क्या तब तक चीन ऐसी ही स्थितिमें रहेगा[?] बर्माके उत्तरी भागमें जनरल स्टिलवेलकी सेना[एं] जैसी प्रगति कर रही हैं, यदि वह निर्बाध ज[ारी] रही तो बर्मा-पथ फिर मित्रोंके अधिका[रमें] आ जायगा और इससे चीनके लिये सहाय[ता] भेजनेमें अधिक सुविधा मिल जायगी। देखें ह[म] बालेस राष्ट्रपतिसे क्या सिफारिश करते हैं?

नवलकिशोर सिंह द्वारा 'विश्वमित्र' प्रेस, १४।१ ए, शम्भू चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्तामें सम्पादित मुद्रित और प्रकाशित।

REGD. NO. C. 2230

वार्षिक
६)
विश्वमित्र
मूल्य
।।)
विश्वमित्र कार्यालय
कलकत्ता

DELICIOUS
Lily
BISCUITS
नव वर्ष तथा अन्य सभी
विशेष शुभ अवसरों के निमित्त
अपने प्रियजनोंको लिलि बिस्कुट
का उपहार देकर तृप्त करें।
सर्वदा ताजा और कुरमुरा
स्वाद व सुगन्धमें अतुलनीय
लिलि ब्राण्ड बार्ली, भारत का
श्रेष्ठ पथ्य और पेय खाद्य
थकावट और सुस्ती दूर
करने में अतुलनीय।
LILY BISCUIT Co.
CALCUTTA
BOMBAY
MANUFACTURERS OF THE FAMOUS "LILY BRAND" BARLEY

१ सितम्बर, १९४४

बिदाके क्षण

(१)

उठो शरदके नव प्रभातमें भाल चूम मैं तुम्हें जगाता
यह तुमने दे दिया मुझे क्या मैं क्षण भर विश्राम न पाता
मलयज सिक्त तुम्हारी अलकें खुली जा रहीं मेरे हाथों
जैसे चपल पवन वर्षाकी जल-तमिस्र वेणी फैलाता
हों पुनीत ये मेरी आंखें रहें अधर जीवन भर जूठे
जागो जीवनकी सीपीमें तुम आशाके मोती रूठे

(२)

मेंहदीकी बुन्दियोंसे रंजित शुभ्र हथेली पर मुख प्यारा
जैसे रजत थाल पर फूले फूल कनक चम्पाका न्यारा
कसमस करता यह सुषुप्त लावण्य हथेलीकी सुषमा पर
तरुण कमलिनी पर रह रह ज्यों अकुलाता हो सन्ध्या तारा
अंग अंग झंकृत हो उठता है खुमारकी खुली लहरमें
उठो जगाता मैं मधु-कंठिनि ! तुम्हें शरदके प्रथम प्रहरमें

(३)

नव र्ज वनकी नव उमंगसे नाच रहा है सारा मधुवन
नव जागृतिकी अरुण शिखामें फूट रहा किरणोंका यौवन
जो खूनी नभमें उग आईं चीर स्तब्ध रजनीकी छाती
जिनकी लाली में युगकी संघर्ष-भैरवी मुझे बुलाती
प्रिये ! तुम्हारी सांसोंके मर्मरसे मेरा धुला धुला मन
उठो विभाकी अंगड़ाईसी तोड़ो क्लान्त निशाके बन्धन

(४)

उठो विदा दो मैं जाऊंगा अब चिर दिनका अतिथि तुम्हारा
आ पहुंची प्रयाणकी बेला जाता मैं ममताका मारा
एक लहर आयी थी प्राणोंका संताप बुझाने वाली
किन्तु पुजारीकी तृष्णाका टूट वहां भी गया सहारा
कोई होता और—हृदयकी ज्वाला मेरी समझ न पाता
मेरी इस अमर्त्य लिप्साको—मेरी पूजाको ठुकराता

(५)

देखा करता काश ! तुम्हारी मैं यह नींद भरी सुन्दरता
प्राणोंके प्रत्येक अनामी स्वरमें सुखका कम्पन भरता
सोने देता गति-मयी मैं तुम्हें न कच्ची नींद जगाता
मैं न तुम्हारी शिथिल लहरियासे लहराता—मिन्नत करता
खोलो ! खोलो ! लजवन्ती लतिका सी अपनी पलकें खोलो
प्यासे प्राणोंमें बल भरने वाली चितवनसे कुछ बोलो

(६)

तुम्हें ज्ञात मेरे जीवनका एक लक्ष्य है—एक तराना
पथके अवरोधोंको मैंने अब तक अपराजेय न माना
फिर अदेय यह अनुमति कैसी जागो और बिदा दो उसको
'सबके सुख' सबकी समतामें जिसने नवयुगको पहचाना
क्या सुन पड़तीं नहीं तुम्हें परिवर्तनकी दुर्दम्य पुकारें
क्या सुन पड़तीं नहीं तुम्हें मेरे संकल्पोंकी हुंकारें

यह तुमने दे दिया मुझे क्या मैं विद्रोही चैन न पाता
उठो शरदके नव प्रभातमें भाल चूम मैं तुम्हें जगाता ।७।

—"अंचल"

मनुष्यका पुनर्निर्माण

प्रो० जगन्नाथ प्रसाद मिश्र

मनुष्यका व्यष्टि रूप और समष्टि रूप दोनों ही हैं। व्यष्टि रूपमें जहां वह अपनी स्वतन्त्र सत्ता का, अपने व्यक्तित्वका परिपूर्ण विकासकर सकता है, वहां समष्टि रूपमें उसे यह भी देखना पड़ता है कि उसके व्यक्तित्वका विकास इस रूपमें होना चाहिये जो समाजके लिये अकल्याणकर सिद्ध नहीं हो। उसके व्यक्तित्वके विकासके लिये समाजने उसे जो स्वतन्त्रता प्रदान की है वह इस-लिये कि अपनी योग्यताओं एवं क्षमताओं द्वारा वह समाजकी सेवा कर सके और इस रूपमें उसके ऊपर समाजका जो ऋण है उस ऋणका वह परिशोध कर सके। मनुष्यके व्यक्तित्वका गठन और विकास स्वतःस्फूर्त नहीं होता। वह बहुत कुछ उसके वंशानुक्रमिक पैतृक गुणोंपर, उसकी परिस्थितियों और अभ्यासोंपर तथा आधुनिक समाज द्वारा प्रदत्त उसके विचारोंपर निर्भर करता है। जीवन धारणके लिये उसने जो सब आदतें डाल रखी हैं उनका उसके शरीर और अन्तःकरणपर गहरा प्रभाव पड़ता है। आधुनिक यान्त्रिक सभ्यताने उसके चतुर्दिक जिस वाता-वरणकी सृष्टि कर दी है उस वातावरणके साथ सामंजस्य स्थापित करके चलनेमें वह अपनेको असमर्थ पा रहा है। इस वातावरणके कारण ही आज उसका अधःपतन हो रहा है। किन्तु इस अधःपतनके लिये विज्ञान और यन्त्र उत्तरदायी नहीं है। मनुष्य स्वयं अपराधी है। प्राकृतिक नियमोंका उल्लंघन करके उसने पाप किया है। जड़ विज्ञानने मनुष्यको ऐसे देशमें लाकर पटक दिया है जो देश उसका अपना नहीं है। मनुष्यने अन्ध भावसे जड़ विज्ञानके समस्त दानोंको ग्रहण किया है। और यही कारण है कि मनुष्य आज घोर व्यक्तिवादी, संकीर्ण-बुद्धि-चेता नीति भ्रष्ट, बुद्धिहीन तथा अपनेको और अपनी संस्थाओंको परिचालित करनेमें अक्षम हो रहा है। किन्तु उसके साथ ही विज्ञानने उसे अपने शरीर और अपने अन्तःकरणके क्रम विकासके नियमोंसे भी परिचित करा दिया है। इस ज्ञानके द्वारा यदि वह चाहे तो अपना रूपान्तर कर सकता हैं, अपनेको पुनरुज्जीवित कर सकता है। अपने जीवनकी यान्त्रिक प्रतिक्रियाओंके सम्बन्ध में मनुष्य अबतक सम्पूर्ण अनभिज्ञ बना हुआ था। किन्तु विज्ञानने अब उसके सामने इन रहस्योंका उद्घाटन कर दिया है। विज्ञानने उसे बता दिया है कि वह किस प्रकार अपने शरीर और अपनी अन्तश्चेतनाका गठन कर सकता है, अपने जीवन की यांत्रिक प्रक्रियाओंकी गतिको परिवर्तित कर सकता है। किन्तु क्या मनुष्य अपने इस ज्ञानका अपने वास्तविक कल्याणके लिये उप-योग कर सकता है? हां, कर सकता है। और इसके लिये मनुष्यको अपना पुनर्निर्माण करना होगा। पुनर्निर्माणकी इस प्रक्रियामें उसे कष्ट एवं त्याग स्वीकार करना पड़ेगा। अपने वास्त-विक स्वरूपको पहचाननेके लिये उसके ऊपर अज्ञान एवं भौतिक विज्ञान जनित अन्ध विश्वास का जो स्थूल आवरण पड़ा हुआ है, उस आवरण को छिन्न-भिन्न करना पड़ेगा। आधुनिक यन्त्र-सभ्यता द्वारा उत्पन्न सुख समृद्धि एवं सौन्दर्यका उपभोग करते हुए यह नहीं समझ रहा है कि उसके प्रकृत स्वरूपके ऊपर पड़े हुए स्थूल आवरण को छिन्न-भिन्न कर डालना कितना आवश्यक हो गया है। वह इस बातको हृदयंगम नहीं कर रहा है कि उसका पतन हो रहा है।

किन्तु पिछले बीस सालोंके अन्दर संसारमें जो सब घटनायें हुई हैं और इस समय भी घटित हो रही हैं उनसे मनुष्यका विश्वास, उसकी आस्था एवं श्रद्धा आधुनिक सभ्यताके प्रति संदिग्ध हो उठी है। यन्त्र विज्ञानने सभ्यताकी जो प्रकाण्ड इमारत खड़ी की उसकी नींव हिल चुकी है। वह ध्वंसोन्मुख हो रही है। जीवनकी सक्रियता उसमें नहीं रह गयी है। यह सब है कि इसका बहुत कुछ कारण राजनीतिज्ञों और अर्थशास्त्रियोंकी निष्ठुर धन लालसा, मूर्खता, अज्ञानता एवं मोहान्धता है किन्तु इसके साथ ही इसके नैतिक कारण भी हैं। यह भी मानना ही पड़ेगा कि नैतिक दृष्टिसे सभ्य राष्ट्रोंका अधःपतन हो रहा है। अपराधोंकी संख्या बढ़ रही है। डाका डालनेवाले, पुलिसकी हत्या करने वाले मनुष्यका अपहरण करनेवाले तथा बच्चोंका वध करनेवाले अपने दुष्कर्मोंसे बाज नहीं आ रहे हैं जबकि उनका दमन करनेके लिये अपार धन खर्च किया जा रहा है। सभ्य जातियोंमें दुर्बल बुद्धि एवं विकृत मस्तिष्क वाले मनुष्योंकी संख्या क्यों बढ़ रही है? इन सब बातोंपर यदि हम विचा[र] करें तो हमें मालूम होगा कि वर्तमान विश्व-व्यापी संकटका कारण केवल आर्थिक ही न[हीं] सामाजिक भी है और वे कम महत्वपूर्ण नहीं है और इस सङ्कटके कारण बहुत कुछ हमारे अन्[दर] और हमारी संस्थाओंमें निहित हैं। यह जान लेने पर तो हम मनुष्यके पुनर्निर्माणकी आवश्यकता को पूरी तरह महसूस कर सकते हैं।

मनुष्यमें नीति भ्रष्टता तथा अपराध प्रव[णता] वंशानुक्रमसे नहीं पायी जाती। अधिकांश [मनुष्य] अपने माता पिताके समान ही अन्तर्नि[हित] शक्तियोंको लेकर जन्म ग्रहण करते हैं। यदि [हम] चाहें तो इन शक्तियोंको विकसित कर स[कते] हैं। इसके लिये विज्ञानकी विशाल शक्ति[का] उपयोग किया जा सकता है। निःस्वार्थ भा[वसे] काम करनेकी प्रवृत्ति अब भी लोगोंमें वर्त[मान] है। आधुनिक समाजमें भी ऐसे लोग मौजूद हैं [जो] अपनी बुद्धि द्वारा, नैतिक साहस द्वारा [और] साधुता एवं निर्भीकता द्वारा यह काम कर स[कते] हैं। साधनाकी उज्ज्वल दीप शिखा अब भी [जल] रही है। इसलिये बुराईका निराकरण किया [जा] सकता है। किन्तु व्यक्तिके पुनर्निर्माणके [लिये] यह आवश्यक है कि आधुनिक जीवन प्रणाली [को] रूपान्तरित कर दिया जाय। और यह तभी [हो] सकता है जब कि हममें भौतिक और मान[सिक] क्रान्ति हो, यांत्रिक सभ्यताका जिस प्र[कार] स्वतः भङ्ग होना आरम्भ हो गया है जिससे म[नुष्य] के उन मनोवेगोंके मुक्त होनेमें सहायता [मिल] सकती है जिनकी हमारी वर्तमान आद[तोंके] विनाश और जीवन-धारणाकी नूतन प्रणा[लीकी] सृष्टिके लिये आवश्यकता है।

हम अपना तथा अपनी परिस्थितियोंका उ[द्]धार तबतक नहीं कर सकते जबतक कि ह[मारी] चिंतन प्रणालीमें रूपान्तर न हो। विज्ञा[नकी] साधना केवल विज्ञानके लिये; उसकी [वि]पद्धतके लिये अथवा उसके आलोक [के] सौंदर्यके लिये नहीं होना चाहिये। इ[सका] लक्ष्य होना चाहिये मनुष्यका भौतिक [और] आध्यात्मिक कल्याण। मनुष्यके मनोभावों [और] अनुभूतियोंको उतना ही महत्व मिलना चा[हिये] जितना उसकी गतिविधियों को। वास्त[व]... जीवनके जितने रूप हैं उन सबका समावेश ह[मारे] विचार ज्ञानमें होना अनिवार्य रूपमें आ[व]श्यक है।

मनुष्यके पुनर्निर्माणके लिये यह आव[श्यक]

है कि प्राकृतिक नियमोंके अनुसार उसके शरीर और मनका गठन हो और औद्योगिक सभ्यताके द्वारा निश्चित मतों और आधुनिक समाजके आधारभूत सिद्धान्तोंके कारागारसे व्यक्तिको उसके शैशव कालसे ही मुक्त कर दिया जाय। जीवनकी आधुनिक दशाओंके फलस्वरूप मनुष्य का आज बौद्धिक, नैतिक एवं शारीरिक रूपमें जिस प्रकार ह्रास हो रहा है उस ह्राससे उसका उद्धार करना होगा। उसकी अन्तर्हित क्रिया-शक्तियोंको विकसित करना होगा। उसे स्वस्थ एवं सबल बनाना होगा। उसके व्यक्तित्वके साथ उसका सामंजस्य पुनः स्थापित करना होगा। अपने समस्त पैतृक गुणोंको अपनी अन्तश्चेतना द्वारा कार्यान्वित करनेके लिये उसे प्रवर्तित करना होगा। आधुनिक शिक्षा एवं समाजने उसके चारों ओर जो पाषाण-प्राचीर खड़ा कर रखा है उसे भङ्ग कर देना होगा। मनुष्यकी अपनी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। वह अपनी परिस्थितियोंसे आबद्ध है। अस्तु, उसके पुनर्निर्माणके लिये हमें जगतको ही रूपान्तरित करना पड़ेगा।

हमारे सामाजिक ढांचेका, हमारी भौतिक एवं मानसिक पृष्ठभूमिका पुनर्निर्माण होना चाहिये। किन्तु समाज इतना सहज नमनीय नहीं है। एक क्षणमें उसका रूपान्तर नहीं किया जा सकता। फिर भी इस पुनरुद्धारके कार्यको अविलम्ब आरम्भ कर देना होगा। प्रत्येक व्यक्तिमें इतनी क्षमता है कि वह अपने रहन-सहनमें सुधार कर सके, विवेकहीन जनसमुदायसे भिन्न अपने लिये नूतन परिस्थितिकी सृष्टि कर सके। वह कुछ अंशोंमें अन्य लोगोंसे अपनेको पृथक् कर सकता है। अपनेको इस प्रकारके शारीरिक एवं मानसिक अनुशासनमें बांध सकता है जिससे वह अपने शरीर और मनपर काबू कर सके। किन्तु बिलकुल अकेला रह कर वह अन्त तक अपने भौतिक, मानसिक एवं आर्थिक वातावरण का प्रतिरोध नहीं कर सकता। अपने इस वातावरणका सफलता पूर्वक प्रतिरोध करनेके लिये यह आवश्यक है कि वह व्यक्ति उन लोगोंका साहचर्य्य प्राप्त करे जिनका उद्देश्य उसके समान हो। जब-जब जिस क्षेत्रमें क्रांति हुई है थोड़ेसे लोगोंको लेकर ही। क्रान्तिकी भावनाका जन्म आरम्भमें थोड़ेसे लोगोंमें ही होता है और उन्हींमें वह आलोकित और विकसित होती है। फ्रान्सकी राजक्रान्तिके लिये थोड़ेसे लोगोंने ही पृष्ठभूमि तैयार की थी। जिस प्रचण्ड दुर्दमनीय शक्तिको लेकर राजतन्त्रके विरुद्ध संग्राम किया गया था उसी शक्तिको लेकर औद्योगिक सभ्यताके सिद्धान्तोंके विरुद्ध भी संग्राम करना होगा। यह संग्राम अति कठोर होगा, क्योंकि यन्त्र विज्ञानने हमारी जीवन-प्रणालीका जो रूप कर दिया है वह हमारे लिये उतना ही सुखप्रद है जितना शराब, अफीम या कोकीन जैसी नशीली चीजका अभ्यास! इसलिये थोड़ेसे व्यक्ति जिनमें विद्रोहकी भावना हो वे ही सङ्गठित रूपमें इस कार्य्यको आरम्भ कर सकते हैं।

साधकोंका एक दल—चाहे वह कितना ही छोटा क्यों न हो—यदि चाहे तो अपने युगके समाजके हानिकारक प्रभावसे अपनेको सुरक्षित रख सकता है। किन्तु इसके लिये उस दलके सदस्योंको उसी प्रकारके कठोर नियमोंका अनुशासन मान कर चलना होगा जिस प्रकारका अनुशासन सैनिकोंमें पाया जाता है अथवा प्राचीन कालमें मठों और आश्रमोंमें पाया जाता था। इस प्रकारका अनुशासन हमारे लिये कोई नयी बात नहीं है। युग-युगमें इस प्रकारके साधक स्त्री-पुरुष हुए हैं जिन्होंने अपने आदर्शों-की प्राप्तिके लिये साधारण जनसमूहसे अपनेको पृथक् रखकर कठोर संयम एवं नियमानुशासन-का पालन किया है। मध्य युगमें इस प्रकारके साधक दलोंने ही पाश्चात्य सभ्यताको विकसित किया था। धार्मिक सङ्गठनोंके रूपमें कुछ लोग मठोंमें रहा करते थे और कुछ अपने गृहस्थ जीवनमें। किन्तु सबके सब कठोर शारीरिक एवं मानसिक अनुशासनका पालन करते थे। इसी प्रकार वीर योद्धाओं (Knights) और शिल्पियोंमें भी कठोर नियमानुशासन पाया जाता था। सारांश यह कि इस प्रकारके सम्प्रदायके अनुयायियोंने साधारण ढङ्गकी जीवन प्रणालीका परित्याग करके अपने लिये विशिष्ट जीवनप्रणाली ग्रहण की थी। क्या आज हम वैसा नहीं कर सकते? व्यक्तिकी उन्नतिके लिये दो अत्यावश्यक शर्तें हैं। अपनेको स्वतन्त्र अवस्थामें रखना और नियमानुशासनका पालन करना। आजके बड़े-बड़े शहरोंमें भी प्रत्येक व्यक्ति इन शर्तोंको मान कर अपना जीवन व्यतीत कर सकता है। किसी भी व्यक्तिमें इतनी क्षमता अवश्य है कि वह किसी खेल या सिनेमाको देखने न जाय, अपने बच्चोंको खास-खास स्कूलों में न भेजे, रेडियोके किसी खास प्रोग्रामको न सुने, कतिपय समाचार-पत्रों और पुस्तकोंको न पढ़े इत्यादि। किन्तु इस प्रकार हम अपनेको पुनर्निर्मित तभी कर सकते हैं जब हम मानसिक एवं नैतिक अनुशासनको मानकर चलें और साधारण जनसमूहकी आदतोंसे अपनेको बचाये रखें।

यह आवश्यक नहीं है कि आधुनिक समाज में गम्भीर परिवर्तन लानेके लिये समाजके साधारण मनुष्योंसे अपनेको इस प्रकार पृथक् रखनेवाले दलोंकी संख्या अधिक हो। यह बात अच्छी तरह सिद्ध हो चुकी है कि कठोर नियमानुशासन का पालन मनुष्यको अमित शक्ति प्रदान करता है। एक तपस्वी या साधक अपनी तपस्या एवं साधनाके द्वारा शीघ्र ही वह शक्ति प्राप्त कर लेता है जिसका प्रभाव नीति-भ्रष्ट एवं अधःपतित जनसमुदाय पर विशेष रूपमें पड़ता है। इस प्रभावका प्रतिरोध करना उनके लिये दुःसाध्य हो जाता है। इस प्रकारके थोड़ेसे साधक इस योग्य हो जाते हैं कि वे अनुप्रेरणा द्वारा अथवा अपनी आध्यात्मिक शक्ति द्वारा या मनोबल द्वारा दूसरे लोगोंकी जीवनप्रणालीमें बहुत कुछ परिवर्तन ला दें। आधुनिक समाजका एक भी मत या सिद्धान्त ऐसा नहीं है जिसमें परिवर्तन नहीं लाया जा सके। विशाल कल-कारखाने, गगनचुम्बी अट्टालिकायें, मानवीय भावना हीन नगर, व्यापारिक नीति ज्ञान (Industrial morality) सामूहिक उत्पादनमें विश्वास—ये सब सभ्यताके लिये अनिवार्य रूपमें आवश्यक नहीं हैं। अन्य रूपोंमें भी मनुष्य जीवन धारण कर सकता है और आत्म-चिन्तन कर सकता है। आरामके बिना संस्कृति, विलासिता विहीन सौन्दर्य बोध, मनुष्यके मन प्राणको बन्दी बनाने वाले कारखानोंके बिना, यन्त्र और जड़ोपासना रहित विज्ञान मनुष्यको पुनः बुद्धि, नैतिक ज्ञान एवं पौरुष प्रदान करेंगे और उसे उन्नतिकी चरम सीमा तक ले जायेंगे। × (Culture without comfort, beauty without luxury, machines without enslaving factories, science without the worship of matter, would restore to man his intelligence, his moral sense, his verility, and lead him to the summit of his development.)

× इस लेखके लिखनेमें Dr. Alex's Carrol के Man, the unknown पुस्तकसे विशेष सहायता ली गयी है।

पेरिस

श्री शिवकुमार शास्त्री

मध्ययुगसे फ्रेंच क्रांतितक, एवं १९ वीं शताब्दी भर, जब यूरोप राजनीतिक जनतन्त्रके प्रयोग कर रहा था, पेरिस प्रगतिवादका प्रतीक बना हुआ था। बुद्धि और विवेक एवं मानवकी मर्यादापर विश्वास और आस्था रखनेवाला पेरिसका जीवन अतिउज्जवल रहा है। यूरोपके और अमेरिकाके अन्य किसी नगरको इस प्रकार एकरस और समभावसे इतने दीर्घकालतक प्रगतिवादको पुष्ट करते रहनेका गौरव नहीं प्राप्त है। यही कारण है कि स्वतन्त्रताके इस दुर्गके भीतर १४ जून १९४० को जर्मनोंके प्रवेश करनेसे सभ्यताको नैतिक आघात लगा। लेकिन पेरिसके भाग्यमें इससे भी अधिक दुर्दिन देखना बदा था। बरदूनका महावीर, फ्रांसका एक मार्शल विजेताके सामने नतमस्तक हो गया। कोमपीन नामक स्थानमें उसने अपमानजनक शर्तोंको स्वीकार करके पेरिसके गौरव और प्रतिष्ठाको धूलमें मिला दिया। फ्रेंच स्टेटका प्रधान होकर उस मार्शलने उसकी जड़ोंपर ही कुठाराघात किया। "स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुत्व" की फहराती हुई धवल ध्वजाएं उतार दी गयीं और उनका स्थान नाजी नवीन व्यवस्था और नवीन युगकी क्रूर फिलासफीने लिया।

इन घटनाओंसे यह बात स्पष्ट हो गयी कि तीसरे रिपबलिककी स्थापनाके बाद फ्रेंच जीवनको सदा सर्वदा संकुचित और संकीर्ण बनानेवाले एवं गणतन्त्रकी प्रशस्तिके मार्गमें रोड़े अटकानेका निरन्तर प्रयास करते रहने वाले प्रतिक्रियावादी अपने शत्रुकी सहायता से उस समय शिखरपर पहुंच गये थे। धीरजके साथ चार वर्षतक फ्रांसने विदेशी शासनके अपमानोंका कड़वा घूंट पिया, लेकिन अब उसके स्वातन्त्र्य-सूर्यका पुनःउदय हुआहै। मित्रोंने विशेषतया अमेरिकनोंने पिछले कई सप्ताहोंमें शत्रुको उसकी सरहदकी ओर पीछे हटानेका लाजवाब काम किया। और इसीका परिणाम है कि फ्रेंच देशभक्तोंको पेरिसके उद्धार करनेका स्वर्ण-सुयोग मिला।

प्रायः चार वर्ष दो महीनेतक नाजी शासन में रहनेके बाद पेरिसने स्वाधीनता प्राप्त की और मित्र फौजें पेरिसमें प्रविष्ट हुईं। फ्रांसकी इस ऐतिहासिक राजधानीपर कब्जा हो जानेसे वस्तुतः सारे देशमें शत्रु प्रतिरोध-भङ्ग हो गया और यूरोपकी युद्ध-स्थितिमें महान परिवर्तन हुआ। युद्धके आरम्भिक समयमें फ्रांस मित्रराष्ट्रों और ग्रेट ब्रिटेनका सहयोगी था और यूरोपीय महादेशमें उसका अपना स्थान था। विगत महायुद्धके पश्चात फ्रांसको और भी महत्ता प्राप्त हो गयी थी। पूर्वी यूरोपमें भी फ्रांसका बड़ा प्रभाव था और ब्रिटेन उसकी मित्रताका आश्रित था। हिटलरके प्रादुर्भावके समय जर्मनीमें फ्रांस अपने आन्तरिक झंझटोंके कारण सफलतापूर्वक कुछ करनेमें समर्थ नहीं हुआ। १९३६ में लियो ब्लुमके नेतृत्वमें समाजवादी, साम्यवादी और क्रांतिकारी सदस्योंने मिलकर सार्वजनिक सरकार कायम की, किन्तु यह सरकार अधिक दिनोंतक कायम न रह सकी। इसके बाद दलादिये सरकार बनी और इसी समयसे फ्रांसका प्रभाव घटने लगा। दलादिये दकियानूसी था उसने ब्लूम सरकार द्वारा किये गये सभी सुधारों को रद्द कर दिया। उसके सभी राजनीतिज्ञ साथी नाजी-फासिस्ट सिद्धान्तोंसे प्रभावित हो गये। म्यूनिक कानफरेन्समें दलादियेने फ्रांसकी ओरसे शामिल होकर अपने मित्रदेश जेकोस्लोवाकिया के प्रति विश्वासघात किया। इस समयतक फ्रांस की जन संख्या भी बहुत घट चुकी थी और उसका राजनीतिक महत्व भी दिनोदिन गिर रहा था।

इटलीने उपयुक्त अवसर देख फ्रांससे कोर्सिका, नाइस, सेवोय, ट्यूनिस और जिबूटीकी मांग शुरू की और नाजी प्रचारकोंने फ्रांसको पतित और मृतप्राय राष्ट्र कहना आरम्भ किया। सितम्बर १९३९ में वर्तमान विश्वयुद्धके आरम्भ होनेपर फ्रांसने ब्रिटेनके साथसाथ पोलैण्डकी रक्षाके लिये अपनी सेना खड़ी की, किन्तु देशने पूरे मनसे साथ नहीं दिया। अधिकतर फ्रांसीसी अपनी पूर्वीय मैजिनो पंक्तिपर भरोसा किये बैठे रहे और इस ख़यालमें उनको यह याद नहीं रहा कि बेलजियम की ओर उनके उत्तरी सीमान्तकी किलेबन्दी पूर्ण सुरक्षित नहीं है। दलादियेने लड़ाईका बहाना लेकर मनमाना शासन चालू रखा और कम्यूनिस्टोंका अत्याचारपूर्वक दमन किया। सोवियत-जर्मन समझौतेके कारण कम्यूनिस्टोंने लड़ाई का विरोध करना शुरू किया। अखबारोंका भी खूब दमन हुआ और जनताको सच्चे समाचारों से वंचित रखा जाने लगा। इन सभी कारणोंसे युद्ध प्रयत्नोंको बाधा पहुंची और जब जर्मन सेनाएं हालैंड और बेल्जियम होकर फ्रांसमें प्रविष्ट हुईं, तब पता चला कि फ्रेंच सेनाके पास पर्याप्त शस्त्रास्त्र भी नहीं थे। फ्रांसीसियोंने शुरूमें डटकर जर्मनोंका मुकाबला किया, किन्तु हिटलरी सेनाकी ताकतके सामने वे टिक न सके और २१ जून १९४० को फ्रांस आत्मसमर्पण करनेको बाध्य हुआ।

फ्रांसपर आक्रमण होनेके पूर्व ही मार्च १९४० में दलादिये सरकारका पतन हो गया था और रेनो सरकार कायम हुई थी। मई १९४० में ८४ वर्षीय वृद्ध मार्शल पेतां मन्त्रिमण्डलमें शामिल किये गये। १३ जूनको पेरिसने आत्म समर्पण कर दिया। फ्रांसने उस समय अमेरिकासे सहायता मांगी थी, किन्तु अमेरिका तत्काल कुछ नहीं कर सका, अतएव रेनोने ब्रिटेनको सूचित किया कि जर्मनीके साथ फ्रांस पृथक सन्धि कर लेगा। पूर्व पारस्परिक समझौता इसमें बाधक था। ब्रिटेनने लड़ाई जारी रखनेका प्रस्ताव किया और अपने सहयोगका भरोसा दिलाया, किन्तु फ्रांस राजी नहीं हुआ। तब ब्रिटेनने कहा कि वह फ्रांसको अपनी जिम्मेदारियोंसे मुक्त करनेको तैयार है किन्तु फ्रेंच जंगी बेड़ेको शत्रुके कब्जेमें नहीं जाने दिया जाये। इसी बीच नाजी-पक्षीय और ब्रिटेन विरोधी दलने रेनो-सरकार को उलट दिया और मार्शल पेतां प्रधान मन्त्री बनाये गये। पेतां-सरकारने २२ जूनको जर्मनीसे सन्धि कर ली और एक प्रकारसे जर्मनीके सामने बिना शर्त आत्म-समर्पण कर दिया।

फ्रांसका उत्तरी आधा भाग और स्पेनिश सीमान्त तकका समुद्र तट जर्मन अधिकारमें चला गया और समस्त युद्ध सामग्री नाजी फासिस्टों की चौकसीमें रख दी गयी। प्रधान बन्दरगाहोंके लड़ाकू जहाजोंको निरस्त्र करना और नाजी विरोधी शरणार्थियोंको जर्मनीके सुपुर्द करना तय हुआ। जर्मनीको ब्रिटेनके खिलाफ युद्ध करनेमें फ्रेंच समुद्रतट एवं बन्दरगाहोंका उपयोग करनेकी अनुमति दी गयी। फ्रांसने इटली के साथ भी पृथक सन्धि की और नाजी विरोधी देशभक्तोंका दमन आरम्भ हुआ। पेतां सरकारके इस कार्यका ब्रिटेनने विरोध किया और फ्रेंच

जंगी बेड़ेको शत्रुके हाथमें पड़नेसे रोकना चाहा। फ्रांसीसी बेड़ेमें ८ लड़ाकू जहाज, २० क्रूजर, साठ विध्वंसक और ७७ पनडुब्बी जहाज थे। इनमेंसे दो लड़ाकू जहाजोंको ब्रिटेन ले आया गया, दो जलमग्न किये गये और दो को ब्रिटिश विमानों ने बुरी तरह नष्ट कर दिया। एक जंगी जहाज एलेक्जेण्ड्रियामें निरस्त्र किया गया और इस प्रकार सिर्फ एक जहाज फ्रांसके लिये बच गया। अनेक अन्य फ्रेंच जहाजोंको भी ब्रिटेनने पकड़ लिया अथवा नष्ट कर दिया। इसके फलस्वरूप पेतां सरकारने ब्रिटेनसे अपना सम्बन्ध तोड़ लिया।

पेतां सरकारने फ्रांसके अनधिकृत दक्षिण पश्चिमी भागके विशी नगरमें अपना सदर मुकाम बनाया। अन्तिम फ्रेंच पार्लामेंटकी अन्तिम बैठक विशीमें हुई और पार्लामेंटकी इतिश्री कर दी गयी। फ्रेंच प्रजातन्त्रके राष्ट्रपतिने इस्तीफा दे दिया और पेतांने फ्रांसका सर्वाधिकार ग्रहण किया। पेतांका सहकारी लावल बना और बोदो, जेनरल वेगां तथा मो० बोनेत मन्त्रिमण्डल में शामिल हुए। निर्वाचित पार्लामेंट खतम हुई और पेतां हिटलरके हाथका कठपुतला बन गया। बोदोके बाद लावल वैदेशिक मन्त्री बना, किन्तु १९४० के सितम्बरमें पता चला कि वह फ्रेंच जंगी बेड़ेको जर्मनीके हाथमें सौंप देने तथा ब्रिटेन और फ्रांसमें युद्ध करा देनेकी चेष्टा कर रहा है। पेतांने इसका विरोध किया और ४ दिसम्बरको लावल मन्त्रिमण्डलकी बैठकके समय हिरासतमें ले लिया गया तथा पेतांका उत्तराधिकार और वैदेशिक मन्त्रित्व उससे छीन लिया गया। जर्मन हस्तक्षेपके कारण चार दिन बाद उसकी मुक्ति हुई। उसका स्थान पहले फ्लेन्दिन और बादमें दार्लांको मिला। नौसेनापति दार्लां ९ फरवरी १९४१ को एक साथ प्रधान मन्त्री, वैदेशिक मन्त्री और स्वराष्ट्र मन्त्री बने और उन्होंने जर्मनीसे घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित करनेकी नीति अख्तियार की। इस प्रकार विशी सरकारका रुख ब्रिटेनके प्रति अधिकाधिक शत्रुतापूर्ण होता गया। विशी सरकारने ब्रिटेनके निकटपूर्वके साम्राज्यपर आक्रमण करनेके लिए जर्मनोंको सीरिया के रास्ते निकल जानेकी अनुमति दे दी। जर्मनोंका प्रतिरोध करनेके लिये ८ जून १९४१ को आजाद फ्रेंच और ब्रिटिश फौजें सीरियामें दाखिल हुईं और विशीकी सेनासे उसका प्रचण्ड
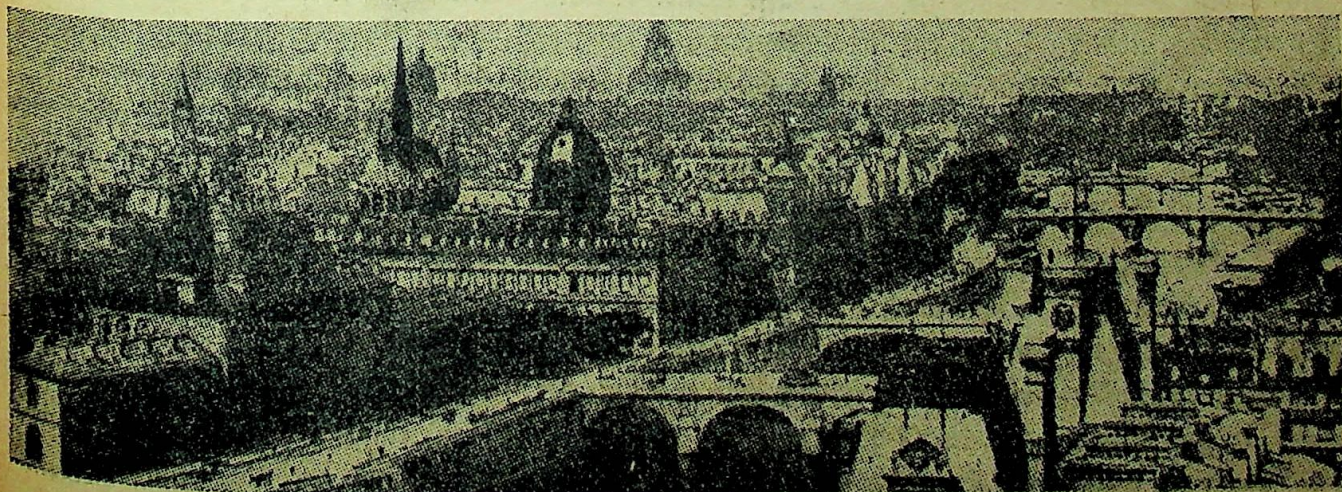
पेरिसका उद्धारक—जेनरल कोयर्निग।

फ्रांसके तिरंगे राष्ट्रीय झण्डोत्तोलनका एक दृश्य। यह चित्र पेरिस पर जर्मन अधिकारके पूर्वका है।

पेरिस नगरका एक दृश्य

युद्ध हुआ। अन्तमें १२ जुलाईको विशीकी सेना ने आत्म समर्पण कर दिया।

अधिकृत फ्रांसमें नाजी अधिकारियोंके खिलाफ प्रतिरोधकी भावना उत्तरोत्तर प्रबल होने लगी। २० नवम्बर १९४० को पेरिसके छात्रोंने जबर्दस्त आन्दोलन किया। अनेक छात्र जर्मनोंकी गोलीके शिकार हुए और पेरिस विश्वविद्यालयको बन्द कर दिया गया। फ्रेंच देश भक्तोंकी प्रतिरोध भावना १९४१ में और बढ़ी। उनका निर्दयतापूर्वक दमन किया गया और अक्टूबर १९४१ में सैकड़ों फ्रांसीसी मौतके घाट उतारे गये। फ्रांसमें और फ्रांसके बाहर आजादीकी प्राप्तिके लिये बराबर प्रयत्न जारी रहा और पेरिसपर सर्वप्रथम उसके ही नागरिकोंने जेनरल कोएनिगके अधिनायकत्वमें जर्मनों के खिलाफ ४ दिनोंतक खूंखार युद्ध कर २३ अगस्त १९४४ को अधिकार स्थापित किया।

ब्रिटेनके बाद फ्रांसका ही औपनिवेशिक साम्राज्य संसारमें सबसे बड़ा था। धुरीराष्ट्रों की प्रगतिको रोकनेके लिये मित्रराष्ट्रोंने सितम्बर १९४२में मेडागास्कर पर फौजी अधिकार कायम किया। अफ्रीकाके प्रदेश भी मुक्त किये जा चुके हैं और वहां स्वतन्त्र फ्रेंच फौजोंका अधिकार है। अन्य फ्रांसीसी शासित प्रदेश भी जेनरल डी-गौलेके अधिकारमें जा चुके हैं! मार्शल पेतांको गिरफ्तार कर किसी अज्ञात स्थानको पहुंचाया गया है और मित्र राष्ट्रीय सेनाएं अब फ्रांसमें तीन दिशाओंसे अग्रसर हो रही हैं।

पेरिसने ४ वर्षों तक नाजी उत्पीड़नमें रहनेके बाद आजादी हासिलकी है। रोमके समान पेरिस भी अति प्राचीन नगर है। इसकी मुक्ति से सारे संसारको आनन्द हुआ है, क्योंकि यह फ्रांसका ही नहीं, सारे विश्वका नगर है। यह संसारके सर्वश्रेष्ठ सांस्कृतिक, व्यापारिक, आर्थिक और औद्योगिक नगरोंमें एक है। यह नगर आरम्भसे ही शिक्षा और कलाका पीठस्थान रहा है और इसका इतिहास अनेक उतार-चढ़ावोंसे भरा हुआ है। पेरिसका इतिहास दो हजार वर्ष पुराना है। जूलियस सीजरने जब गौलको फतह किया, उस समय पेरिस शहर सीन नदीके बीच एक छोटेसे टापू पर बसा हुआ था और वहांकी जनता पैरिसी कहाती थी। रोमन सम्राटोंने इस स्थानकी रमणीकतासे मुग्ध होकर इसे अपनी राजधानी बनाया और इसका नाम लुटेसिया रखा। इसकी आबादी क्रमशः बढ़ने लगी और सीन नदीके दोनों किनारों पर इसका विस्तार होने लगा। रोमनोंने यहां राज प्रासाद, गिरजा घर और सरकारी इमारतों का निर्माण कराया। रोमनोंने यहां अच्छी सड़कें भी बनवायीं जो पेरिसकी गलियोंके रूप में अबतक विद्यमान हैं। रोमनोंके बाद यहां मेरोविंजियन राजाओंका शासन आरम्भ हुआ और सम्राट चार्लमेनके शासन कालमें पेरिस शिक्षा-केन्द्र बना। सीन नदीके बायें तट पर एक विशाल छात्रावासका निर्माण कराया गया, और दूर दूरके शिक्षार्थी यहां शिक्षा ग्रहण करनेके लिये आने लगे। कुछ ही वर्षों बाद पेरिस विश्वविद्यालयकी स्थापना हुई और १४७०ई० में इसी स्थान पर सर्वप्रथम मुद्रण आरम्भ हुआ। अनेक विद्यालय, वेधशाला और औषधालयोंकी स्थापना हुई और पेरिस संसारके सर्वाधिक उन्नत नगरोंमें एक समझा जाने लगा।

सेण्ट डेनिसके शहीद होनेके बाद यहां अनेक धार्मिक संस्थाओंकी स्थापना हुई। ९ वीं सदी में नार्मनोंने पेरिस पर आक्रमण आरम्भ किया और उनसे इसकी रक्षा करनेके लिये नगरके चतुर्दिक दीवार खड़ी कर किलेबन्दीकी गयी। १० वीं सदीमें कैपेटियनोंने शासन सूत्र ग्रहण किया। ह्यू कैपेट प्रथम शासक हुआ और उसने पेरिसको अपनी राजधानी बनाया। १२ वीं सदी तक पेरिस एक महान व्यापारिक केन्द्र बन गया था और सीनके उत्तरी किनारे पर वणिक और कारीगर बसे हुए थे। फिलिप द्वितीयने लोवरेमें किलेबन्दी करायी और पेरिसके चतुर्दिक नयी दीवारका निर्माण कराया। उस समय पेरिस की गलियां बहुत संकरी और कच्ची थीं, तथापि उनकी रमणीकता दर्शनीय थी।

धर्म-युद्धके पश्चात पेरिसमें गिरजोंका निर्माण आरम्भ हुआ और इनमें अमूल्य वस्तुएं इकट्ठीकी जाने लगीं। फिलिप चतुर्थके शासन कालमें पेरिसकी शासन-व्यवस्थाका भार व्यापारियों और सम्राटके प्रतिनिधियोंके हाथोंमें सौंपा गया। चार्ल्स पञ्चमने नगरमें अनेक सुन्दर इमारतोंका निर्माण कराया और नयी किलेबन्दियां करायीं। उसीके शासन कालमें एटिन मार्सलके नेतृत्वमें जनताने विद्रोह किया और अनेक वर्षों क पेरिसमें हत्या-काण्ड, लूट-मार और विनाशलीला जारी रही। इसके बाद ही यहां भीषण रूपसे प्लेग आरम्भ हुआ और १३९९ में अङ्गरेजोंने इस पर अधिकार कर लिया। जोन आव आर्कने १४२९ में पेरिसको कुछ समय के लिये मुक्त करनेमें सफलता प्राप्तकी, लेकिन १४३६ के पूर्व फ्रांसीसियोंका इस पर पूर्ण अधिकार नहीं हो सका। १०० वर्षीय युद्धके समाप्त होने पर मध्यम वर्गकी जनताका उत्थान आरम्भ हुआ और पेरिसका धीरे धीरे सुधार होने लगा। १६ वीं सदीमें यन्त्र युगका आरम्भ होनेके साथ ही साथ पेरिसमें नये नये भवन बनने लगे और यह उस वर्गके लोगोंका केन्द्र स्थल बन गया। हेनरी अष्टमके शासन कालमें जनता में फिर विद्रोहकी भावना उत्पन्न हुई और उसने एक स्विस सेना पेरिसमें सहायताके लिये बुलायी। पेरिसके नागरिकोंने गलियोंमें रुकावटें डालकर सैनिकोंसे घोर युद्ध किया। १५७२ में धर्म-सुधार आन्दोलन आरम्भ होने पर सेण्ट बारथोलोम्यू दिवसको पेरिसमें फिर हत्याकाण्ड हुआ। हेनरी चतुर्थने प्रोटेस्टेण्ट सैनिकोंका नेतृत्व कर कैथोलिक सेनाके नेता गाइजके ड्यूकके खिलाफ युद्ध घोषणाकी और ३ वर्षों तक नगरके चतुर्दिक घेरा डाले रहा, किन्तु पेरिसकी भूखी जनताने आत्म समर्पण करनेसे इनकार कर दिया। हेनरी चतुर्थ पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा और उसने कैथोलिक मत स्वीकार कर लिया, जिससे पुनः शान्ति स्थापित हो गई। उसने पेरिसको और भी सजाया और नयी नयी इमारतें बनवायीं। उसीके शासन कालमें पेरिसमें रेशमी वस्त्र उद्योग आरम्भ हुआ। चौदहवें लुईके समय पेरिसकी उन्नति पराकाष्ठा पर पहुंच चुकी थी। उसकी विजयोंको चिरस्थायी बनानेके लिये अनेक नये प्रासाद और बन्दरगाह निर्मित हुए। किन्तु वहांकी सड़कें उस समय भी बहुत तंग, गंदी और खतरनाक थीं। १७७२ में पेरिस नगरमें भीषण अग्निकाण्ड हुआ और इसके कुछ ही दिन बाद फ्रांसकी ऐतिहासिक क्रान्ति हुई। सोलहवें लुई और मेरी एण्टोयनेटके विवाहके अवसर पर पेरिस में उपद्रव आरम्भ हुआ और इसमें सैकड़ों व्यक्ति मारे गये। जनतामें क्षोभ बढ़ता गया और भीषण रूपसे क्रान्ति आरम्भ हुई। मेरी एण्टोयनेट और लुई सोलहवेंकी हत्या कर दी गयी और बहुत दिनों तक अराजकता कायम रही। इसके बाद नेपोलियनका उत्थान हुआ। इसके शासन कालमें नयी सड़कें बनायी गयीं और सर्वत्र गैसकी रोशनी होने लगी। आधुनिक पेरिसके निर्माण का सारा श्रेय नेपोलियन तृतीयको है। यह पेरिसकी महान समृद्धिका युग था, किन्तु फ्रांस

और प्रशाके बीच १८७० में युद्ध आरम्भ होनेके कारण यहांकी जनताको फिर कष्ट होने लगा। जनता भूखों मरने लगी और चिड़ियाखानोंके जानवरों तकका भक्षण कर डाला। युद्ध समाप्त होने पर पेरिसमें एक पृथक साम्यवादी सरकार की स्थापना हुई किन्तु राष्ट्रीय सेनाने उसको कुचल डाला। इसके दौरानमें हजारों नागरिक मारे गये और सैकड़ोंको देशान्तरित किया गया।

इसके बाद फ्रांसमें तृतीय जन तन्त्र स्थापित हुआ। इफेल टावर, एलेक्जेण्डर ब्रिज, पैलेस डि ट्रोकाडेरो आदि इमारतोंका १९ वीं शताब्दीके अन्तिम वर्षों में निर्माण कराया गया। प्रथम महायुद्धके समय जर्मनोंके गोलोंसे शहरको थोड़ी क्षति पहुंची थी, किन्तु जर्मन इस नगर तक पहुंच नहीं सके थे। वर्तमान महायुद्धमें जर्मनोंने इस पर ४ वर्ष दो महीने तक शासन किया, किन्तु जिस शीघ्रतासे उनको पेरिस छोड़ना पड़ा उससे स्पष्ट हो जाता है कि पेरिसकी जनताका विश्वास प्राप्त करनेमें जर्मन समर्थ नहीं हो सके।

पेरिसको जर्मनोंके अधिकारसे मुक्त करनेके पहले ही फ्रेंच स्वाधीनता समितिने जेनरल कोएनिंगको वहांका सैनिक गवर्नर नियुक्त किया था। जेनरल कोयनिंगका जन्म १८९८ में काएनमें हुआ था। जून १९४२ में उन्होंने फ्रेंच सेना का नायकत्व वीर हकीममें किया था। १९४० में उन्होंने जर्मनोंके खिलाफ युद्ध किया और ब्रिटनी पर नाजी अधिकार हो जानेके बाद एक मछली मारने वाली नौकामें बैठकर वह जेनरल डिगौलेसे जा मिले थे। जेनरल कोएनिंग बड़े ही वीर, परिश्रमी और शान्त स्वभाव के हैं। उनकी उम्र ४९ वर्षकी है, तथापि वे बहुत कम उम्रके दीखते हैं। उनको तेजीसे मोटर चलानेका विशेष शौक है। फ्रांसके इतिहासमें जेनरल कोएनिंगका नाम सदाके लिये अमर हो गया है।

——

सन्यासी

श्री ब्रजराज शर्मा

चारों ओर हरा-भरा बाग-बगीचा, छल-छला धानका खेत, इठलाती हुई सर्पाकार नदी और बीचमें एक उजड़ा-पुजड़ा-सा गांव! मुरारी जब अपने साथी चरवाहोंके साथ बांसुरी लिये हुए भैंसकी पीठपर बाहर निकलता तो चरागाह के अभावमें उसका हृदय बैठ जाता। भैंसके दुःखसे उसका हृदय भर जाता।

बगीचेमें फिर चरवाहोंकी टोली जमती। वहां परियोंकी कथा होती। गोबर चुननेवाली लड़कियां उन कथाओंको चावसे सुनतीं। फिर जब कथा समाप्त होती तो मण्डली नदीमें उतर आती और मछलियोंका शिकार होता।

शाम होते-होते सभी घर लौट आते और फिर जमीन्दारके भाग्यकी प्रशंसा करते—अपने दुर्भाग्यको कोसते, विधिके विधानका रहस्योद्घाटन करते-करते अपनी कुटियाकी चटाइयोंको सुशोभित करते।

रात्रिकी काली चादरमें गांव छिप जाता, और स्यारका "हुआ-हुआ" कुत्तोंके "भों-भों" के अलावे नदीकी "कल-कल" ध्वनि ही शेष रह जाती।

मुरारीका एक मित्र कलकत्तेके किसी चटकलमें काम करता था। जब कभी वह आता कलकत्तेका विविध वर्णन करता। मुरारी सुन-सुनकर विस्मयसे आंखें फाड़ने लगता। वह जितना ही नगरकी कल्पना करता—इन्द्रलोककी तरह कलकत्ता उसकी कल्पना शक्तिसे बाहर ही रहता। मुरारी अपने मित्रके चित्रित चित्रको हृदयङ्गम करनेका जितना भी प्रयत्न करता उसका सारा प्रयत्न निष्फल होता।

उसके हृदयमें उस विशाल नगरका समावेश कैसे होता? उसने तो कभी किसी भी नगरका अभीतक अवलोकन नहीं किया था। रेल-तारका विषय उसकी विचार शक्तिसे परे एक कौतूहलकी चीज थी।

बरसातमें इस छोटेसे गांवके खेतोंमें हल-बैल का तांतां लग जाता। स्त्रियोंके ग्राम्य गीतकी कंठ ध्वनि, मधुर, मंजुल स्वरमें गूंजने लगती। बगीचोंमें हिंडोले अपना अलग एक समां सिरजते। कहीं कबड्डी रंग जमाती। बच्चोंके हास-रुदनसे कुटियोंका रोम-रोम रोमांचित होता।

उस गांवमें कुआं नहीं था। नदी ही कुएं का भी काम देती। स्त्रियोंका नहाना, धोना, पानी लाना, सभी काम नदीसे ही चलता। स्त्रियां जब नदीमें जालकी तरह अपने बालको धोती हुई नहाने लगतीं तो उनके सौन्दर्यके समूह से आकृष्ट होकर नदी स्वयं एक सुन्दर नारीका रूप धारण कर लेत, और उसके प्रखर प्रवाहमें मुरारीका हृदय एक नौकाकी तरह जल-विहार करने लगता, कभी वह कूलसे टकराता और कभी कूलहीन प्रवाहिनी से।

जब कभी कोई साधू-फकीर उस गांवमें आता मुरारी अपने घरको भूल जाता। दैवी शक्तिमें उसका विश्वास था और योग-शक्तिमें उसकी निष्ठा थी। बुद्धदेवकी जीवनी सुनकर उसके हृदयका तार बज उठता। वह भी ठीक उसी तरह रात में अपनी स्त्रीको, अपने बच्चेको निद्रा देवीकी गोदमें छोड़कर उस अज्ञात पथकी ओर दौड़ना चाहता जहां मोह ममताके बन्धनसे दूर शान्तिके अञ्चलमें वह अपने जीवनको छिपा सके।

और एक निस्तब्ध निशामें सचमुच ही वह भोला भाला मुरारी, कर्म-योगसे अनभिज्ञ मुरारी अपने घरसे कमर कसकर चल पड़ा अपने गन्तव्य पथकी ओर। उसकी आंखोंमें वात्सल्य प्रेम मायाविनी मरीचिकाके समान था और दाम्पत्य प्रेम बिलकुल ही शुष्क, नीरस और धोखेकी एक टट्टी। वह निकल पड़ा एक स्वतन्त्र पक्षीकी भांति स्वच्छन्द गतिसे। एक बार उसने घरकी ओर देखा—फिर चलने लगा अपने पथकी ओर। रह रह कर उसके हृदयसे एक आह निकलती।

दूसरे रोज गांवमें हलचल थी और मुरारीकी कुटियामें हाहाकार, हाहाकारकी सत्यमूर्त्ति। बच्चा बिलखता था, स्त्री बिल-बिलाती थी। और गांव? उस गांवके लिये यह घटना साधारण नहीं थी। लोगोंने अपनी-अपनी राय जाहिर की, तरह-तरहकी टीका-टिप्पणी की, लेकिन व्यर्थ! मुरारी लुप्त हो गया। अनुसन्धान भी हुआ किन्तु निष्फल, मुरारीका कहीं भी कुछ पता नहीं। फिर सब अपने काम-धाममें लग गये। यह घटना भी पुरानी हो गयी। हां! मुरारीकी कुटियामें दारिद्र्यका गम्भीर अट्टहास प्रायः होता रहता। एक मुट्ठी चावलके लिये बच्चा अपनी माताका जीर्ण अञ्चल छिन्न-भिन्न करता। सावनमें इस गांवसे पांच कोसपर 'सोमारी' का मेला था। वहां सावनमें प्रत्येक सोमवारको मेला लगता। मालूम नहीं सावनके इस पुण्य पर्वका क्या इतिहास है? लेकिन मेला खूब जमता है। बहुत दूर-दूरसे लोग उमड़ आते हैं। देहातोंमें इसका एक विशेष महत्व

माना जाता है। बहुत दूर-दूरसे स्त्री पुरुष, बच्चे बूढ़े बड़े उत्साहसे यहां जमा होते हैं। यह देहातों के लिये एक स्वर्ण संयोग समझा जाता है।

मुरारीकी स्त्री भी इस मेलाके लिये अपने बच्चेके साथ चल पड़ी। देहातोंका यह मेला बहुत कुछ शहर-बाजारका रूप धारण कर लेता है और उनसे पैसा लूट कर उन्हें नग्न रूपमें छोड़ कर उखड़ जाता है। 'Helter skelter 'और 'Merry-go-round' को लोग आंखें फाड़-फाड़ कर देखते हैं। उनकी नजरोंमें यह अलकापुरी की चीजें जंचतीं। और खिलौनेकी दुकानें भी एक आश्चर्यकी सामग्री होती। मिठाईकी दुकानें धूल और मक्खियोंसे भरी रहतीं। फिर भी वह उनके लिये अमृत भण्डारसे कम नहीं होतीं।

मुरारीकी स्त्रीने अपने जीर्ण अञ्चलके छोरसे एक पैसा निकाला और बताशा खरीदकर अपने बच्चेको दिया। बच्चा खुशीसे उछल पड़ा। खिलौनेकी दूकान सामने थी। बच्चा बताशा खाते हुए आश्चर्यसे उसे देख रहा था।

देखते-देखते वह उस दूकान पर टूट पड़ा और एक जीवित-सा खिलौना अपने हाथोंसे उठा लिया। दुकानदारने पैसा मांगा। मुरारीकी स्त्री के आंचलका छोर शून्य,पैसेसे वञ्चित था। उसके हृदयसे एक आह निकली और आंखोंसे आंसू।

उसने सोचा, आह! यदि मुरारी होता।

दुकानदारने बच्चेका हाथ मरोड़ कर खिलौना छीन लिया। बच्चेके हृदयसे एक चीख निकली। उसका हृदय बैठ गया, हौसला पस्त हो गया। मुरारीकी स्त्री मेलेसे घर चली, मुरारीको याद करती हुई। एक चौराहेपर भीड़ लगी थी। उसने भीड़को देखा। उस भीड़के बीचसे सङ्गीत की एक करुण ध्वनि निकल रही थी।

चिर परिचित यह पतझड़ मेरा,
　　अब वसन्तकी चाह नहीं।
शूल हुए हैं फूल आज,
　　जीवन में कुछ पर्वाह नहीं।
कांटों के चुभने ही में तो,
　　जीवनका अरमान मिटा।
मेरे उपवन के कांटों में,
　　फूलों का गुण - गान लुटा।
जीवन की यह भूल - भुलैयां,
　　उस पर इन कांटों का घेरा।
टेढ़ी मेढ़ी यह पगडण्डी,
　　महाकाल है चित्र-चितेरा।
यह जीवन सांसों की खेती,
　　यहां मृत्युका बीज बिखेरा।
महा नाश के अन्धकार में,
　　जीवनका अब हुआ सवेरा।

मुरारीकी स्त्री सहसा चौंक पड़ी। उसने काषाय वस्त्रको देखा। उसने काषाय वस्त्रमें मुरारीको पहचाना। वह चिल्ला उठी,—"मेरे देवता!" बच्चा चिल्ला उठा, "मेरे बाबू!"

मुरारी ठिठक गया। उसका कण्ठ रुद्ध हो गया। उसके हृदयमें गत जीवनकी मधुर स्मृतियां जाग उठीं। उसकी आंखोंमें वात्सल्य प्रेम छलछला आया। वह बच्चेको चूमनेके लिये आगे बढ़ा। सहसा रुक गया। फिर पीछे मुड़ा और असंख्य नर-मुण्डोंमें तिरोहित हो गया।

बच्चा पुकार रहा था, "मेरे बाबू।"

———

नारी

तू महामहिम तू ज्योतिमयी
इस भूतलपर स्वर्गिक विभूति
तू स्नेह, दया, पावनता की
अकलुष मनमोहक दिव्यमूर्ति! ।१।

जलती इस मर्त्य-सदनमें नित
तेरी सौन्दर्य-शिखा उज्ज्वल
यह अन्ध विश्व नित पाता है
तुझसे ही नव आभा कोमल! ।२।

तेरे स्मित से हो उठता है
नव ऊषा का आनन सस्मित
तेरे मुख की मृदु :स्निग्ध विभा
होती राका-विधु में बिम्बित! ।३।

तेरे उर की शीतलता ले
खिलती चांदनी अम्लान बनी
तेरे उर का ले सौरभ-कण
खिलतीं कलियां अनजान बनीं! ।४।

तेरे उर की पावनता ले
सुरसरि अखिल बहती रहती—
तेरी करुणा से कण-कण को
पल-पल सिंचित करती रहती! ।५।

तू भुवन-मोहिनी, तेरा यह
विस्तीर्ण भुवन साम्राज्य विपुल
तेरे ही जादू से खिलते
वन-उपवन में सौंदर्य-मुकुल! ।६।

तुझ से ही इस जगतीतल को
सुख-सुषमा की अनुभूति मिली
तुझ से ही यौवन को
उमंगकी मोहक-मुग्ध विभूति मिली! ।७।

तू ने निज अमृत-स्पर्श से इस
मरु को नन्दन-वन कर डाला
अणु-अणु में नूतन स्पन्दन भर
जड़ को भी चेतन कर डाला! ।८।

तू ने नीरवता में नवीन
मादक-रव का संचार किया
तू ने सुकुमार कल्पना को
सुन्दर-सुखकर आकार दिया! ।९।

तू ने सोई उर-तन्त्री में
नूतन स्वर का संचार किया
तू ने जड़ पलकों के अन्दर
रच स्वप्नों का संसार दिया! ।१०।

तेरी पद-रज को चूम रहीं
सब ऋद्धि-सिद्धियां नत हो कर
वाणी कर रही स्वयं वन्दन
शतमुख हो कर तेरा सादर! ।११।

पुरुषों का मान-दर्प सब नत
होता तेरे लघु इङ्गित पर
भव-विभव समर्पित हो जाता
तेरे हल्के-से मधु-स्मित पर! ।१२।

तेरी करुणाञ्चल-छाया में
संसृत अबोध शिशु-सी पलती
जन-जन :के उर उर में तेरी
मृदु दीप-शिखा उज्ज्वल जलती! ।१३।

—जितेन्द्र कुमा

भूमिपर धनकी विजय

श्री देव

हालैण्ड, इङ्गलैण्ड और फ्रांसमें एक शताब्दी के अन्तरसे होनेवाली यूरोपीय क्रान्तियोंने बन्द दरवाजोंको धराशायी करके पूंजीवादी विकासका मार्ग प्रशस्त कर दिया। सामन्त शाही प्रणाली, जो भू-सम्पत्ति और दास वर्ग के आधारपर खड़ी थी, और अमीराना ठाट-बाट एवं अत्याचार, पैतृक अधिकार तथा विवेक की दासवृत्तिने जिसे बल देकर पुष्ट किया था, उसे नवीन अर्थ-बलके प्रबल आघातने भू-शायी कर दिया।

धनने भूमिपर विजय प्राप्त की। स्वतन्त्रताके पूर्वाभासको दास-वर्गकी परम्परापर विजय मिली। पश्चिमी यूरोपमें प्रभातकालीन सूर्यका उदय हुआ। रात्रिके अवसान और दिनके आगमनका आभास मिला। उदीयमान धनिकवर्ग, जिसे समाजवादी शब्द-शास्त्रमें बूर्ज्वा समाज कहा जाता है, अधिकारके नये-नये क्षेत्रोंमें प्रवेश करने लगा। हालैण्डसे बाहर निकल कर इस वर्गने औपनिवेशिक सत्ताकी सृष्टि की। विशाल साम्राज्यकी स्थापनाका लाभ सर्वप्रथम हालैण्डने उठाया। उपनिवेशोंसे राशि-राशि-धन-सम्पत्ति मातृ-देशको ढो लायी गयी। इङ्गलैण्डके धनिक वर्गने, अपने देशको संसारके एक कारखानाके रूपमें परिणत कर दिया। यहांके बूर्ज्वा समाजने संसारके सब बाजारों पर अपनी धाक जमा ली, कच्चे मालपर तो मानो इसीका एकाधिकार हो गया था। फ्रांसके धनिक वर्गने सर्वश्रेष्ठ सैनिक शक्तिका निर्माण किया। अपनी सामन्त शाहीके चंगुलसे मुक्त होकर अपनी प्राप्त सामाजिक सफलताओंको स्थायी और सुरक्षित रखनेके लिये फ्रांसीसी बूर्ज्वा समाजने सैनिक शक्तिका सङ्गठन किया और एक समय उसकी यह शक्ति संसारमें सर्वश्रेष्ठ थी।

अपने कार्य और उद्देश्यकी ओर अग्रसर होनेमें बूर्ज्वा समाजने कठिनाइयोंसे जरा भी अपनेको संकुचित नहीं होने दिया। कठिनसे कठिन समस्याओंका सामना इसने बड़ी दिलेरी और बहादुराना ढङ्गसे किया। इसकी हवाके समान उड़ती हुई महत्वाकांक्षाओं और अभिलाषाओंने इसे सुदूर, अति सुदूर, निर्दिष्ट लक्ष्यतक पहुंचाया। और एक दिन अपनी सफलताओंकी मादकतासे मदमत्त बूर्ज्वा समाजने अपने भाग्याकाशके पूर्ण-चन्द्रको प्राप्त कर ही लिया।

सर्वप्रथम आर्थिक ऐश्वर्य और वैभवको पूर्णता प्राप्त हुई। उत्पादन और व्यवसाय प्रणालीके द्वारा उत्पादन क्रमको विशालकाय उद्योगधन्धोंमें परिणत किया गया। इस क्षेत्रमें दूरतक सफलतापूर्वक अग्रसर होकर बूर्ज्वा समाजने राजनीतिक क्रान्तियों द्वारा देशके शासन और व्यवस्थापर अपना आधिपत्य स्थापित किया। राजनीतिक क्रान्तिके बाद यान्त्रिक क्रान्ति आयी। काम करनेके प्राचीन और परम्परागत ढर्रे बदल गये। प्रकृतिके रहस्यका उद्घाटन किया गया। उसकी शक्तिको नियन्त्रणमें लाया गया। इस तरह प्रकृतिपर विजय प्राप्त करनेमें सफल बूर्ज्वा समाजने उत्पादनके प्राकृतिक नियमको मानवकी सेवामें लगाया।
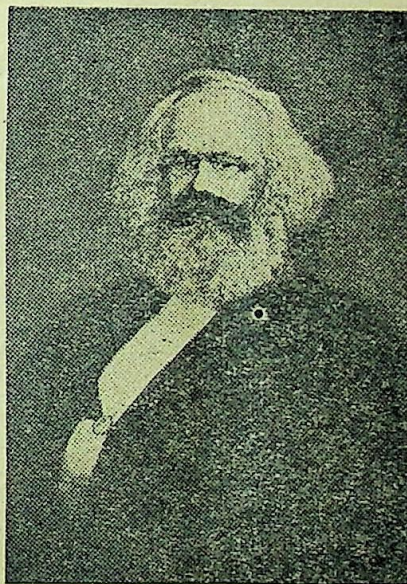
कार्ल मार्क्स

१७६४ में हारग्रीव्सने सूत कातनेकी मशीन ईजाद की। १७६९ में आर्कराइटने लूम और १७७९ में काम्पटनने म्यूल ईजाद किया। १७८१ में वाटने पुराने स्टीम-पम्पका इस प्रकार सुधार किया कि उससे मशीनरी एक जबर्दस्त ताकत हो गयी। १७८७ में कार्टराइटने पावर-लूमका आविष्कार करके वस्त्रोद्योग धन्धेमें क्रान्ति ला दी। सूत कातनेके व्यवसायमें भी क्रान्ति हुई। यूरोपमें रुई आयी। पूंजीवाद रुईके पीछे दीवाना हो उठा। सब तरफ एक ही शब्द रुई, रुईकी प्रतिध्वनि गूंज उठी। बरसाती मेढकोंकी तरह जगह-जगह फैक्टरियां खुल गयीं। पुरुष, स्त्री, बच्चे, झुण्डके झुण्ड, फैक्टरियोंमें समा गये।

एकके बाद दूसरे यान्त्रिक आविष्कारका क्रम जारी रहा। १८०२ में सर्व प्रथम स्टीम-बोट फर्थ आफ क्लाइड तक आया। १८०७ में पहले पैसेञ्जर स्टीमरने हडसनकी यात्रा की। १८०४ से वाटके स्टीम-एञ्जिनसे यंत्र-सञ्चालनका काम लिया जाने लगा। १८२५ में प्रथम बार ट्राफिक के लिये रेलवे लाइन बिछी। इस तरह पंजीवादने गति और समय पर भी विजय प्राप्त की। १८३९ में बिजलीसे टेलीग्राफ (तार) दौड़ने लगे।

कुछ दशाब्दियोंके भीतर ही संसारकी सरहदें एक दूसरेके लिये खुल गयीं। प्राचीन कालकी किम्वदन्तियां वास्तविकताका रूप धारण करके संसारके सामने प्रकट हुईं। मनुष्यके श्रमकी उत्पादिका शक्तियां जिस हद तक बढ़ गयीं, उसकी पहले कल्पना भी न की जा सकती थी। विजय गर्वोन्नत बूर्ज्वा समाजने जो आश्चर्य कर दिखाया वह ताजमहल, इजीपशियन पीरामिड, रोमन अट्टालिकाओं, फौहारों और झरनों एवं गोथिक गिरजा मन्दिरोंके निर्माणसे कहीं अधिक सुन्दर, आकर्षक और मनमोहक था। प्रकृतिकी शक्तियोंको अपना दास बनाना, मशीनरियोंका आविष्कार, उद्योग-धन्धे और कृषिमें रसायनिक प्रक्रियाका प्रयोग, स्टीमशिप, रेलवे, टेलीग्राफ, आदि कार्य मानों जादूके जोरसे भू-गर्भसे निकाल लाये गये। पहलेकी पीढ़ियोंके मनुष्योंने कल्पना भी न की थी कि सम्मिलित परिश्रमके गर्भमें ऐसी उत्पादिका शक्ति सोयी हुई है।

बूर्ज्वा समाजने अपने राजनीतिक वैभवको भी ऐसी ही चरम पराकाष्ठाको पहुंचाया। नेपोलियनके साम्राज्यके पतनके बाद बूर्ज्वा समाजने फ्रांसमें बोरबन राज घरानेकी प्रतिक्रियाको पराभूत करके १८३० की जुलाई वाली क्रान्तिमें उसने राज्याधिकार प्राप्त कर लिया। इङ्गलैण्डमें १५० वर्षोंके भीतर समझौतों और आंशिक समाधानोंसे लाभ उठाते रहनेके बाद अन्त में १८३२ में रिफार्म बिल पास कराकर बूर्ज्वा समाज वहांका कर्ता-धर्ता बन बैठा। उसके इशारेपर सरकारें कानून बनातीं, सेना उसके आदेशसे आगे कदम उठाती। अपने लाभको जहांतक सम्भव हो बढ़ानेके लिये दूसरे देशोंसे मैत्री सम्बन्ध स्थापित किये गये, सन्धि पत्रोंपर हस्ताक्षर हुए, युद्धारम्भ और युद्धान्त हुए, घोषणाएं जारी की गयीं, और कूटनीतिक विचारोंका आदान प्रदान हुआ। अन्तमें बूर्ज्वा समाज सर्व

शक्तिशाली सत्ता बन गया। उसकी राजनीतिक स्थिति सर्वत्र सुरक्षित हो गयी।

रावर्ट ओएन

पूंजीवादके अन्तिम स्वरूपकी रूप-रेखा इस प्रकार है:—"मनुष्योंके मानस पटलपर संसारका चित्र अङ्कित करनेवाली विचार धाराको बूर्ज्वा समाज ने नवीन रूप-रङ्ग और नवीन दृष्टिकोण दिया है। इसने साधु अभिलाषा, वीरत्व सूचक उत्साह और साधारण भावुकताको स्वार्थके ठण्डे पानीमें डुबा दिया है। व्यक्तिगत प्रतिष्ठाका भाव इतना नीचे गिरा दिया है कि आज वह क्रय-विक्रयकी, विनिमयकी, सतहमें पहुंच गया है। महंगा मूल्य देकर खरीदी गयी असंख्य उज्ज्वल स्वतन्त्रताओंके स्थान पर इसने मात्र एक उच्छृङ्खल स्वतन्त्रता स्थापित की और वह है—व्यापारकी स्वतन्त्रता। बूर्ज्वा समाजने उन सब पेशोंका पानी मार दिया है, उनकी आनबान और शानकी छीछालेदर कर दी है, जो पहले आदर और श्रद्धाकी दृष्टिसे देखे जाते थे। डाक्टर, वकील, पुरोहित, कवि और वैज्ञानिक आज उसके मात्र वेतन-भोगी श्रमिकके रूपमें रह गये हैं। पारिवारिक सम्बन्ध पर अब तक भावुकताका जो पर्दा पड़ा था उसे बूर्ज्वा समाजने टूक-टूक कर दिया और अब वह सम्पर्क मात्र पैसेका रह गया है। अधिक कुछ नहीं।" इस तरह बूर्ज्वा समाजने संसारको नवीन मार्ग बतलाया और मानव जीवनको चित्र विचित्र नवीन दृष्टिभङ्गी, नवीन रूप-रेखा और नवीन भाव प्रदान किया है।

उच्च शिखरसे, जहां सफलतापूर्वक सङ्घर्ष करते करते बूर्ज्वा समाज आज आसीन और अधिष्ठित है, वह आज बड़े अभिमान और आत्म-सन्तोषके साथ उस विजय पथको देखा करता है, जिसे उसने आश्चर्यजनक वेग और तीव्रताके साथ अतिक्रमण किया है। बूर्ज्वा समाजके जीवनकी फिलासफी मानवको प्रगतिके मार्गपर अब अधिक अग्रसर कर सकनेमें असमर्थ है। इसका कारण यह नहीं है कि वह इतना लम्बा रास्ता इतनी शीघ्रतासे तय कर लेनेकी वजहसे थक गया है और अब आगे चलनेमें पैर लड़खड़ाते हैं। चल तो वह अब भी रहा है और द्रुतगति से चल रहा है, लेकिन दिशा उसने बदल दी है। सीधा मार्ग छोड़ उसने टेढ़ा रास्ता पकड़ा है। सीधा मार्ग चलनेमें उसे आशंका है कि जिस उच्च शिखर पर आज वह आरुढ़ है एक दिन वह ढह जायेगा और उस दिन उसकी जगह समतल भूमि दिखायी देगी। मनुष्य कृत वैषम्यके ऊंचे शिखर ही बूर्ज्वा समाजके गौरव-गरिमा पूर्ण स्तूप हैं। इनको ढहा कर वह अपनी निजी
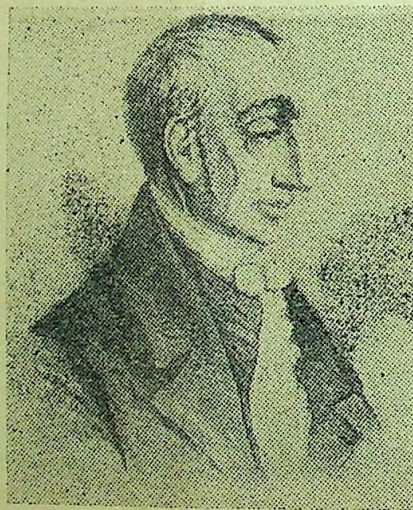
सेइण्ट साइमन

सम्पत्ति, वैभव और ऐश्वर्यपर दूसरोंका भी अधिकार होने देना नहीं चाहता। उच्च शिखरको वह अपने लिये और अधिक स्थायी और शोभाप्रद, प्रभावशाली, एवं सुविधाप्रद बनाये रखना चाहता है। आज भी वह जनसाधारणका नेतृत्व कर रहा है, लेकिन उसका यह नेतृत्व अब अपने अर्जित स्वार्थ और सुख सुविधाको सदा सर्वदा-अक्षुण्ण बनाये रखनेके लिये है। लोकहितकी भावना, यदि कभी थी भी तो, अब उसमें नहीं रह गयी और यही कारण है कि जागृत लोक समाजके भीतर उसके प्रति शनैः शनैः घृणा और असन्तोषके भाव फैल रहे हैं। यह भाव-स्फुलिंग जिस तरह एक दिन रूसमें तत्कालीन समाज और समाज व्यवस्थाको भस्म कर डालने वाली भयंकर विनाशकारी अग्निज्वालाके रूपमें परिणत हो गया था उसी तरह एक दिन संसारमें सर्वत्र मनुष्यकृत वैषम्य के गगनचुम्बी शिखरोंको भस्मसात करके उसकी राखपर समाजवाद और समानताका सुन्दर, सुखद मन्दिर खड़ा करनेका कारण बनेगा। तभी उस मन्दिरमें स्वतन्त्रता देवीकी प्रतिष्ठा सार्थक होगी।

नरम समाजवादी

पूंजीवादी क्रमविकास और उत्कर्षकी, खास कर इंगलैण्ड और फ्रांसमें, बूर्ज्वा समाजमें बड़ी आवभगतके साथ सम्बर्द्धना की गयी। किन्तु उस समय भी कुछ ऐसे प्रखर बुद्धि और तीक्ष्ण प्रतिभाशाली व्यक्ति थे जिन्होंने इस तड़क-भड़क को सन्देहकी दृष्टिसे देखा था। उनकी तीक्ष्ण दृष्टि सतहके नीचे तक पहुंची और उन्होंने यह पता लगानेका प्रयत्न किया कि ऊपरसे दिखायी देने वाले इस सुन्दर आवरणके पीछे क्या है? इन अन्वेषकोंने सफलता, धन वैभव, मुट्ठीभर व्यक्तियोंकी ऊर्ध्वगामी उन्नति और कोटि-कोटि व्यक्तियोंके शोषण, दरिद्रता एवं दासताके भयंकर वैषम्यको देखा। इन लोगोंको यह प्रतीत हुआ कि भौतिक उत्कर्षका लाभ बड़ा मंहगा सौदा है। इस उत्कर्षके साथ-साथ पैशाचिकता और बर्बरताका स्वरूप बड़ा भयंकर होता जा रहा है। उनका विवेक मर्माहत हुआ। उनकी बुद्धि ने कहा कि इस तरहका भयंकर वैषम्य-पूर्ण विकास और उत्कर्ष समाजको अवश्यम्भावी सर्वनाशकी ओर ले जायेगा। उनके उत्तरदायित्व

चार्ल्स फूरियर

बोधने इसके विरुद्ध चेतावनीकी आवाज ऊंची उठानेकी उन्हें प्रेरणा दी। इस प्रकार विवेक और कर्त्तव्य, कल्याण और उत्तरदायित्वकी भावनसे प्रेरित होकर इन व्यक्तियोंने पूंजीवादी समाजपतियों और राजनेताओंसे अपने आवरण पर विचार करने और सुविवेकसे काम लेने और इस तरहकी समाज-व्यवस्थाका विधान करनेकी अपील की, जिससे समाजके सभी वर्गोंको सुख सुविधा प्राप्त हो।

विवेक, न्याय, मानवता और समाजवादके नामपर अपने समयके समाजसे अपील करनेवाले व्यक्ति विशेषतया, फ्रांसके सेइण्ट साइमन और चार्ल्स फूरियर एवं इंगलैण्डके राबर्ट ओएन थे। किन्तु इन लोगोंने विवेक बुद्धिके नामपर अपील की थी। बूर्ज्वा समाजवादी क्रान्तियां भी तो विवेक बुद्धिकी दुहाई देकर ही आकर्षक और सफल बनायी गयी थीं। रूसोके समाज-सम्बन्धी सिद्धान्तोंने ही तो फ्रेंच क्रान्तिके आदर्शोंका रूप धारण किया था। बुद्धि, विवेक और न्याययुक्त राज्य-शासन-प्रणालीकी मांग रूसो के समाज सिद्धान्तका ही सार था, फ्रेंच क्रान्ति का आदर्श था। बूर्ज्वा समाजने वैसी ही राज्य-शासन प्रणाली स्थापित भी की थी। किन्तु उसने कैसा रूप उपस्थित किया? निकृष्ट वर्ग-वैषम्य इस राज्य प्रणालीकी विशेषता है। एक तरफ प्राचुर्य है;दूसरी तरफ भूखकी ज्वाला। महानता, प्रतिष्ठा और सम्मान अधःपतनके आधारपर खड़े हैं। पाप और लज्जाजनक कृत्योंके अन्धकार-के भीतरसे निकलनेवाला प्रकाश इस राज-प्रणाली को प्रकाशमान कर रहा है। इसी राज-व्यवस्था (State) के विरुद्ध समालोचकों और सुधारकोंने अपनी आवाज उठायी और उसकी निन्दा की। किन्तु इस आधारपर भविष्यकी राज-व्यवस्थाको सङ्गठित करनेवाले विवेकका स्वरूप क्या होगा?

इन लोगोंने न्यायके नामपर अपील की थी। बूर्ज्वा समाजका भी तो यही आदर्श वाक्य था। और उसने युगोंकी पुरानी सामन्त शाही व्यवस्था को मिटा दिया, क्रांतिकी आंधियां और तूफान विशेषाधिकारों और सुविधाओंको न जाने कहां उड़ा ले गये। बूर्जवाई स्वतन्त्रताओंकी, सामन्त-शाहीने जिनकी कल्पना भी न की थी, स्थापना की गयी और यह सिद्धान्त स्थिर हुआ कि कानूनके आगे सब नागरिक समान हैं। और न्यायकी मांगको सन्तुष्ट करनेके लिये, इससे अधिक क्या चाहिये? बूर्ज्वा स्टेटका यह दावा है कि वह न्यायके आधार पर खड़ा है। तब उसे सुधारने अथवा उसकी जगह दूसरी स्टेट स्थापित करनेके लिये आप कौन सा सुन्दर तर्क और युक्ति दिखा सकते हैं।

मानवताके नाम पर भी अपीलकी गयी थी। जो अबतक भावुकताके क्षीण आवरणसे अधिक कुछ भी न था, उसे अब कार्यमें परिणित करनेकी बात आयी। यह कहा जाने लगा कि आनेवाले समाजमें सम्पत्तिके स्वत्वाधिकारीके ही नहीं, बल्कि सम्पत्ति-शून्य व्यक्तियोंके दिन भी फिरने वाले हैं। समाज के सामने सभी सदस्योंकी स्थिति सुधारनेका उद्देश्य सामने रख कर आगे बढ़ना चाहिये। किन्तु यह भी स्पष्ट कर दिया गया था कि इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिये क्रान्तिकारी साधनोंका सहारा नहीं लिया जा सकता, क्योंकि उस समय भी क्रान्तिकी विभीषिकाएं, मनुष्यकी स्मृतिमें ताजा थीं। अपने उद्देश्य तक पहुंचनेके लिये बूर्ज्वा-समाजके इन समालोचकों और सुधारकोंने परिश्रम और शिक्षा, संस्कृति और नैतिकताका सहारा पकड़ा। इन लोगोंने ईसाइयतकी नवीन व्याख्याकरके उसे नवीन रूपमें उपस्थित किया। इस नवीन रूपका आदर्श यह बताया गया कि जीवनको नये ढाँचेमें ढालनेके लिये छोटे छोटे सम्प्रदायोंमें समाजको विभक्त किया जायगा, विवाहका नवीन ढंग उपस्थित किया जायगा, स्टेटका नवीन रूपान्तर और सम्पत्तिकी नवीन प्रणालीका प्रणयन किया जायेगा।

अन्तमें इन सुधारकोंने समाज-वादके नाम पर भी अपीलकी थी। इस मांगमें उक्त तीनों महान समाज-सुधारक एकमत थे। किन्तु उन दिनों समाजवादका स्वरूप उस आर्थिक सिद्धान्तके रूप में था जो आर्थिक जीवनको उद्योग-धन्धेकी दृष्टि से, -जिसका अर्थ है बूर्ज्वाका दृष्टिकोण, निस्वका दृष्टिकोण नहीं- नियन्त्रित और नियामित करना चाहता था। फिर भी, विवेक और न्याय, स्वतंत्रता और सत्यकी इनकी धारणा कितनी ही अस्पष्ट और अनिश्चित क्यों न रही हो, जो समाज-व्यवस्था ये प्रतिष्ठित करना चाहते थे, उसके काल्पनिक चित्रके सम्बन्धमें कितनी ही गड़बड़ी और भ्रान्तिमें ये क्यों न रहे हों, एक बातमें ये सब पूर्ण रूपेण सहमत थे कि समाजका पुनर्निमाण, सामूहिक स्वत्वाधिकार, सामूहिक परिश्रम और सामूहिक जीवनके आधार पर होना चाहिये। यही कारण है कि ये सुधारक, बूर्ज्वा समाजके ये समालोचक, समाजवादी कहे जानेके अधिकारी हैं।

किन्तु इनका समाजवाद स्वप्नों और इच्छा-ओंकी खिचड़ी था, अटकलों और अन्दाजोंकी उपज था, कल्पना और इच्छाशक्तिका परिणाम, मानवता और साधुप्राणताका कार्य एवं उदार हृदय और कोमल विचारोंका निचोड़ था। ये अपना समाजवाद, समाजपर ऊपरसे स्थापित करना चाहते थे। उसकी रूप रेखा सोच-विचार पूर्वक स्थिर कर दी गयी। निस्ववर्ग (सर्वहारा), जिसका इसके निर्माणमें हाथ नहीं रखा गया, कृतज्ञता पूर्वक अपने बुद्धिमान और अच्छे दाताओंसे उसे उपहार स्वरूप ग्रहण करेगा। यह था उनके समाज-वादका रूप जिसे यूटोपियन सोशलिज्म कहते हैं।

सेइण्ट साइमनकी प्रतिभाकी प्रशंसा कौन न करेगा। वह प्रतिभा जो उनके ऐतिहासिक, दार्शनिक और सामाजिक विचारोंके घने और मेघाच्छन्न वातावरण में भी बिजलीकी तरह चमक रही थी। चार्ल्स फूरियरने अति निन्दनीय और अप्रिय पूँजीवादकी चिंदियां उड़ानेमें जिस जोरदार भाषामें उसकी समालोचनाकी है उससे कौन प्रभावित न होगा? राबर्ट ओएनने जिस निःस्वार्थ भाव, ज्वलन्त आत्म-त्याग और बलिदानका दृष्टान्त सामने रखकर विषमताओंके संसारके विरुद्ध अपने मनोभावोंको उपस्थित किया उनसे भला कौन व्यक्ति द्रवित और प्रभावित न होगा?

फिर भी यह आशा कि केवल विचारसम्न मस्तिष्कसे प्राप्त नुस्खोंसे ही एक नवीन संसारका पुनर्जन्म होगा, नितान्त माया-मरीचिका तुल्य और रहस्यमयी है। यह विचार कितना लड़कों-जैसा है कि नैतिक हृदय परिवर्तनके बलसे प्रभावित और प्रेरित होकर कारखानोंके मालिक, बैंकर और व्यवसायी अपने आप, स्वेच्छासे, पूंजीवादकी चक्कीके नीचे दबे पड़े मानवको मुक्त-कर उसे जीवन-दान देंगे। आज हम लोगोंको यह बात कैसी विचित्र सी लगती है कि प्रारम्भिक समाजवादियोंमेंसे किसीके दिमागमें भी यह विचार नहीं उठा कि नवीन उच्चतर सामाजिक व्यवस्था ऐतिहासिक उत्क्रान्तिके परिणाम स्वरूप आयेगी और उस व्यवस्थाको लानेमें हाथ होगा सर्वहारा समाजका। इसके सिवा यह बात भी उनकी समझमें नहीं आयी थी कि सामाजिक क्रम-

(शेष १६ वें पृष्ठपर)

सपनेकी कृष्णा

श्री छेदीलाल गुप्त

सपनेमें कृष्णा आती है—हर रात। प्रत्यक्ष नहीं आती। बड़ी शोख है, चैन नहीं लेने देती, दर्द दे जाती है—मुस्कान बिखेर जाती है।

मिलनकी बात— सुहागकी रात कल्पनामें ही समाप्त हो जाती है।

मैं तुम्हारे रूपका वर्णन कवितामें करता अगर कवि होता कि सप्त-रश्मियों-सी साड़ी की लपेट खाकर जो घेरा बन जाता है मानो इन्द्र धनुषकी तुलनामें सही हो। गोरे चिट्टे रङ्गकी, ठिगने कद्की और पतले होंठ मधु मिश्रित कटीली आंखें-बोलमें अधिक शिष्टता और चालमें बेहद गम्भीरता!

प्रियतमे!

तुम बहुत सन्निकट हो—तुम हृदयके बीच हो, तुम जवानीकी बहती हुई लहरोंमें लहरा रही हो और मैं किनारे पर उन लहरोंको चूमनेके लिये खड़ा हूँ जो तुम्हारी जवानीका उपमेय होकर तटसे टकरायेगी—इतनी दूर रहकर भी तुम नजदीक हो।

मेरी कृष्णा।

तुम्हारा वह बार बारका आना-जाना, तुम्हारा वह अस्त-व्यस्त साड़ीके आंचलका संभालना, तुम्हारा कई दिनोंका गायब रहना सब मुझे तड़पाता है—सब मुझे जलाता है, सब मुझे भाता है। पर तुम्हारी काकीको नहीं,जो तुम्हारी अपनी काकी तो नहीं है लेकिन, तुम्हारे सौजन्यसे इस संज्ञाकी अधिकारिणी बन बैठी है।

× × ×

ये पंक्तियां आज जीवनका इतिहास बन गयी हैं—अपनेको खोनेका साधन-यही उनकी पंक्तियां हैं, जो इस दुनियासे चल बसे हैं। जिसकी स्मृति ताजा करनेके लिये, 'वह कौन था?' का उत्तर देनेके लिये मैं पढ़ रही हूँ।

मैं हूँ, और मेरी दुनिया है और मेरे नजदीक कोई और मधुकर है—नाम तो मधुकर नहीं—पर उस सूरतमें मुझे मधुकर ही दीखता है।

(२)

'आप वहां खड़े थे, और मैं आ रही थी।'

'जी, हां लेकिन आप कहां गायब हो जाती हैं—कहां चली जाती हैं?' यह पूछनेका अधिकार मधुकरको नहीं लेकिन मधुकर पूछता है मानो उसे अधिकार हो।

'क्या करूं? मन नहीं लगता, मामीके यहां चली जाती हूँ, सिनेमा देखती हूँ—आप उतना सिनेमा नहीं देखते होंगे जितना मैं।' मैं चुप हुई।

वह कहने लगे—'मुझे सिनेमा अच्छा नहीं लगता और आपका जी क्यों नहीं लगता आप जानती हैं?'

सिर हिलाकर अस्वीकृति की सूचना मैंने दे दी—नहीं जानती।

'मनुष्य जीवनमें साथी चाहता है जो उसके साथ, उसीका होकर जीवन बिताये। बगैर साथी के हम जी भी नहीं सकते। आपको एक साथी की आवश्यकता है जो आपके प्रेमका चिर अधिकारी हो, जो आपके सारे शरीरका अधिकारी हो, जो आपके विचारोंका अधिकारी हो और जो,...जो आपके साथ खेल सके, प्रेमका खेल—सिनेमाका सा खेल।'

मैंने हंस दिया था।

उन्होंने पुनः कहा था—'आप हंसती हैं।'

'हंसू नहीं तो क्या करूं? सभी ऐसा ही कहते हैं।' मैंने कहा। उत्तर मिला—'तो आप समझती हैं मैं यों ही सब कुछ कह रहा हूँ।'

'और नहीं तो क्या? आप तो खुद बगैर साथीके हैं—क्यों जीवित हैं?'

इस प्रश्नका जो उत्तर उन्होंने दिया वास्तवमें वही हुआ।

उन्होंने कहा था—'मैं जीवित हूँ—सपनेके सहारे, नहीं तो कबका चिता पर चुन दिया गया होता।'

'सपनेके सहारे!'—मैंने आश्चर्य प्रकट किया।

'हां, सपनेके सहारे—मेरी एक साथिन है जो केवल सपनेमें आती है।' उन्होंने गर्म आह भर कर कहा।

तब भी मेरा आश्चर्य कम न हुआ—'सपनेकी साथिन?'

'हां, आश्चर्य क्यों? मिलने-जुलनेकी स्वतंत्रता हमें और आपको नहीं, अधिकार-पूर्ण जीवन बितानेकी क्षमता हममें और आपमें नहीं। तो मैं सपनेमें ही अपनी साथिनको पा लेता हूं।'

'वह कौन है?'

'कोई कृष्णा, ठीक नहीं जानता!'

× × ×

प्रेम एक अभिशाप है—पाप है।

यह भी नहीं तो प्रेम केवल एक ढोंग है—वास्तवमें कुछ नहीं।

मां बचपनमें मर गयी। पिताजीके हाथों पली। जिस मकानमें मैं रहती थी, वहीं उनका भी आना-जाना था। आते थे, जाते थे। जिसके यहां आते थे, वे उनकी मामी होती थीं।

मैं उनकी मामीको काकी कहा करती थी। वहीं मेरा उठना और बैठना होता था। अधिक से अधिक समय मेरा काकीके पास गुजरता था।

उस दिन चौकेमें काकी रसोईमें लगी थीं—आटा गूंद रही थीं। चूल्हेपर दूधकी पतीली चढ़ा कर काकी बार-बार मुझसे अनुनय-विनय कर रही थी कि तू साग कतर दे। आंच कड़ी होनेकी वजह दूध उबाल खा रहा था। अब वा सब उफान खा जायेगा। मैं पास ही बैठी परवल छील रही थी। ज्योंहीं दूधकी पतीली पर मेरा ध्यान गया अधछिला परवल थालीमें ज्यों-का-त्यों छोड़ एक सांसमें दूधकी गरम पतीलीके पास पहुंची। आव देखा न ताव, आंचसे लाल पतीली उठाही तो ली। पर यह क्या हुआ। पतीली हाथसे छूट पड़ी। पांचों अँगुलियां जल गयीं और पतीली चूल्हे पर उलटी पड़ी थी। दूध सब गिर गया। मुझे काटो तो खून नहीं। काकीने मेरी ओर कड़ी निगाहसे देख भर लिया—कुछ कहा सुना नहीं।

उन्होंने लपककर चौकेके पास आ पूछा—'अरे, यह क्या किया आपने? हाथ जला लिया न, अच्छा हुआ!'

'अच्छा हुआ, वाह मेरा हाथ जल गया और आप कहते हैं अच्छा हुआ।' मैं बड़-बड़ा गयी।

वह हंसकर दफ्तर चले गये।

उसी दिनसे 'अच्छा हुआ' उनका कहना मुझे भाने लगा। हृदयपर तस्वीरकी तरह उतर गया।

(३)

एक और दिनकी बात—

पिताजीने कहा—'कृष्णा! तेरा इधर-उधर का उठना-बैठना अब अच्छा नहीं। अगर तेरी मां होती तो तुझे और भी दबा कर रखती।'

मैं समझ गयी पिताजी क्या कहना चाहते हैं। क्यों कहते हैं। पर साहस नहीं हुआ कि प्रतिरोध कर सकूं—कुछ साफ-साफ कह दूं।

कहना चाहती हूँ वह कैसे कहूँ ? मैं इसीमें उलझी रही। कह न सकी।

और एक दिन दरवाजे पर बाजे-गाजेके साथ कोई अपरिचित आ डटा, मेरा अधिकारी बनकर मैं खीझ उठी कि यह क्या हुआ। जो हुआ वह ठीक हुआ या नहीं। यद्यपि वह ठीक नहीं हुआ मेरी विष खानेकी इच्छा भी नहीं हुई। अगर मैं ऐसा कर सकती तो क्या संसारमें मेरा कोई अस्तित्व रह जाता। मैं कुछ रह जाती—मेरा नारीत्व कुछ महत्व पा सकता ? कदापि नहीं।

तो किसीने बड़े प्यारसे-प्रेमसे संभाल कर मुझे अपने अंकोंमें भर लिया।

मैंने अपनेको असहाय नहीं समझा और न उनसे ना-नूकुर ही की। जैसे जीमें उनके आया वैसे उन्होंने अपने नजदीक खींचा। खींचते चले गये और तब से मैं किसीकी पत्नी हूँ—मैं किसी-की मां हूं !

अतीतकी मिस्ती-सी रेखा पर आज मुझे रङ्ग भरनेके लिये कहा गया है, बाध्य किया गया है। मेरे अन्दरकी नारीको विद्रोहिणी बनाया गया है—उन्होंने (पति) ने मुझसे पूछा है—'वह कौन थे ?'

आज इम्पोरियम गयी थी वहीं काकीसे मुलाकात हो गयी। पूछ लिया—'कैसे हैं वह ?'

काकी रोनी-सी होकर बोली—'वह तो इस दुनियाको छोड़ गया। सबको छोड़ गया।' क्षण भरको चुप हुईं और फिर कहने लगीं—'डाक्टरों ने बतलाया कि टी० बी० हो गया है—जाने कैसी अङ्गरेजी बीमारी है यह जिससे कोई बचता ही नहीं। सिनेटोरियममें भर्ती कर दिया। वहीं कुछ दिन तक रहा और फिर चल बसा।'

आंखोंमें आंसूके दो बूंद आकर कोनेमें अटक रहे। आंचलसे पोंछ डाला।

घर लौटनेपर उन्होंने सवाल किया—'कौन थे वह ?'

और इस—'कौन थे वह ?' ने मुझे प्रेरित किया, सो सब कह गयी—'कभी कोई मुझे प्यार करते थे—मधुकर……'

'उन्होंने गलती की'—उन्होंने कहा।

'अवश्य'—मेरे मुंहसे अनायास ही निकल गया—'जैसे मैं किसी अपरिचितको अपने सामने पाकर वही मान बैठी हूँ—मधुकर जान बैठी हूँ, वैसे वह भी किसी नारीको अपना बना कर जी सकते थे।'

'ओह ! तुम बड़ी अच्छी हो'—सबसे पहली बार मेरी सराहनामें कहे गये ये चन्द शब्द हैं।

गालपर एक हलकी-सी चपत जम गयी। मैं अपनेमें सिकुड़ गयी–सिमट गयी !

———

जब इस देशमें रेल बनी थी

श्री एम० एस० कृष्णन

अन्तर्राष्ट्रीय सहयोगके आधार पर समाज-का निर्माण देखनेको इच्छुक व्यक्तियोंका यह कर्तव्य हो जाता है कि वे पहले बुद्धि और युक्तिसंगत आधार पर राष्ट्रीयताका निर्माण करें। ऐसे प्रत्येक समुन्नत देशका यह कर्त्तव्य है कि वे उन पिछड़े हुए देशोंको, जो राष्ट्रनिर्माणका कार्य बुद्धि और न्याय सङ्गत आदर्शके आधार पर करना चाहते हैं, उनको सब तरहकी मदद पहुं-चायें और इस आदर्शकी पूर्त्तिमें जो विघ्न बाधायें हैं उनको दूर करनेमें सहायक हों। आज सन्सारकी राजनीतिक एवं आर्थिक अव्यवस्था और उच्छृङ्खलताने अपने ताण्डवसे जो प्रलय-काण्ड उपस्थित कर दिया है उसे देख कोई भी समझदार व्यक्ति जब उसकी तह तक पहुंचता है तो यह बात साफ मालूम हो जाती है कि इस वर्तमान अशान्ति और सन्घर्षकी जिम्मेदारी प्रधान प्रधान उद्योग प्रधान देशोंकी त्रुटि और दोषपूर्ण आर्थिक नीति पर है। इन देशोंने अपनी औद्योगिक हवेलियां खड़ी करनेमें आततायी ढंगसे अख्तियार की गयी संरक्षणात्मक आर्थिक नीतिसे मदद और काम लिया है। इन देशोंने पिछड़े हुए देशोंके औद्योगिक विकासके मार्गमें रोड़े और रुकावटें डालकर अपनी आर्थिक प्रधानता और धाक जमा रखी है। इस तरह जमायी गई धाकको स्थायी और सुरक्षित बनाये रखनेके लिये इन लोगोंने साम्राज्यवादी आर्थिक गुटबंदी खड़ीकी है। आर्थिक साम्राज्यवादके अन्तर्गत समुन्नत देश दो श्रेणियोंमें आते हैं। एक श्रेणी तो उन देशोंकी है जिनके पास उपनिवेश हैं और दूसरी श्रेणीमें वे आते हैं जो उपनिवेशोंकी दृष्टिसे गरीब हैं। फलतः जिन देशोंके पास उपनिवेश न थे अथवा पर्याप्त न थे उन्होंने अपनी राष्ट्रीय आर्थिक इमारतको बाहरी राजनीतिक और आर्थिक शक्तियोंकी पहुंचके बाहर एवं सदा सुरक्षित रखनेके इरादेसे निरंकुश आर्थिक नीति ग्रहण की और युद्धके आधार पर अपने उद्योग धन्धेको पुनर्संगठित किया।

अतएव यदि समुन्नत देश वस्तुतः चाहते हैं कि सन्सारमें शान्ति और व्यवस्था रहे, हर १० अथवा २५ वें साल एक विश्व-युद्ध न छिड़े तो पहले उन्हें स्वार्थकी सीमासे बाहर निकल कर परस्पर सहयोगकी भावनाओंको अपनाना चाहिये। यह काम तभी हो सकता है जब वे त्याग और न्यायके आदर्शको अपनायेंगे। समुन्नत देशोंको अपनी उग्र और निरंकुश राष्ट्रीयताको तिलांजलि देकर अनुन्नत देशोंकी मदद करनी पड़ेगी ताकि वे अपनी औद्योगिक प्रणालीको अधिक स्वस्थ और पुष्टआधार पर खड़ा कर सकें। दुनियामें सच्चा सुख और स्थायी शान्ति तभी हो सकती है जब सन्सारके सभी देश परस्पर सहयोगके आधार पर अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सम्बन्ध स्थापित करेंगे। जब तक सब देशोंको अपना आर्थिक ढांचा सुन्दर और सुरक्षित आधार पर खड़ा करनेकी पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं रहेगी तबतक संसारके आर्थिक साधनोंका उचित और मङ्गल-कारी उपयोग नहीं हो सकता और ऐसा हुए बिना संसारमें शान्ति नहीं हो सकती।

अनुन्नत देश यदि चाहते हैं कि उनके आर्थिक साधनोंका सुन्दर और समुचित उपयोग हो तो उनको अत्यन्त सावधानी और सतर्कताके साथ अपनी आर्थिक नीति बनानी पड़ेगी। ट्रांसपोर्ट पालिसी प्रत्येक देशकी आर्थिक नीतिका प्राण है, यह कहना किंचित अत्युक्ति नहीं। ट्रांसपोर्ट नीति ऐसी होनी चाहिये जो राष्ट्रीय आर्थिक हितोंको आगे बढ़ानेमें सहायक हो। भारत-वर्ष आर्थिक दृष्टिसे अनुन्नत देश है। उस दिनकी प्रतीक्षामें है वह जब अपने आर्थिक साधनोंका उपयोग अपने नागरिकोंके हितार्थ अत्यन्त योग्यताके साथ कर सकेगा। राष्ट्रीय साधनोंके सदुपयोगके लिये भारतीय सरकारको प्रशस्त आर्थिक नीति बनानी पड़ेगी, जो देशका शीघ्र और मजबूत आर्थिकविकास करनेमें सहायक हो।

औद्योगिक और व्यापारिक नीतिका लक्ष्य होगा भारतीय व्यापार और व्यवसाय वाणिज्य, उद्योग धन्धोंको ऐसी समुन्नत और सुन्दर स्थितिमें पहुंचा देना कि वह संसारके किसी समुन्नत देशके व्यवसाय और उद्योग धन्धेकी समता कर सके। भारतके आर्थिक पुनर्संस्कारकी इस योजनामें विचार और गवेषणापूर्वक निर्धारित की गयी राष्ट्रीय रेलवे नीतिका बहुत महत्वपूर्ण स्थान होगा।

देशके शीघ्र और सुन्दर आर्थिक विकास और विस्तारके लिये सरकारकी वर्तमान रेलवे नीति में आमूल परिवर्तन आवश्यक है। यदि हमें भारतकी जनताकी आवश्यकताओंकी पूर्तिमें रेलों से पूरा काम लेना है तो अभी तक जिन प्रतिगामी और पश्चात्‌गामी तत्वोंसे रेलवे नीति को पोषित किया जा रहा है उनको बिदा करके बुद्धि और न्याय सङ्गत आधार पर उसका पुनर्निर्माण करना होगा।

भारतमें रेल के जन्म और विकासके इतिहास पर जब हम दृष्टि डालते हैं तो यह बात स्पष्ट मालूम होती है कि ब्रिटिश व्यापारको भारतके कोने कोने तक पहुंचाने और देश पर प्राप्त सैनिक विजयों तथा ब्रिटिश शासनको स्थायी बनानेके उद्देश्यसे ही यहां रेलका जाल बिछाया गया था। भारतीय रेलवे नीतिका आधार और इतिहास समझनेके लिये हमें इस्ट इण्डिया कम्पनीके उस ज़माने पर दृष्टि डालनी चाहिये जब इस देशमें रेल बनी थी। रेलका इतिहास तीन अध्यायोंमें है। पहले अध्यायमें गारण्टी प्राप्त कम्पनियां हैं, दूसरेमें सरकार द्वारा रेलोंका निर्माण और उनका प्रबन्ध और तीसरेमें सरकार और कम्पनीका सम्मिलित उद्योग है। इन तीन अध्यायोंमें एक चौथा अध्याय, जो राष्ट्रीयकरणके युगके नामसे परिचित है, जोड़ना पड़ेगा। एकवर्थ कमेटीकी सिफारिशों पर सिद्धान्ततः और कार्यतः राष्ट्रीयकरणकी योजना स्वीकार कर ली गयी है। वस्तुतः यह चौथा अध्याय शेष तीनों अध्यायोंसे कहीं अधिक महत्व पूर्ण है। क्योंकि इसी अध्यायमें आकर हम रेलवेकी पुरानी नीतिमें क्रान्तिकारी परिवर्तन देखते हैं।

भारतमें रेल उद्योगधन्धेका श्रीगणेश करने का श्रेय ब्रिटिश पूंजीवादियोंको है जिन्होंने १८४५में "इस्ट इंडिया" और "ग्रेट इंडियन पेनिन सुला" रेलवे कम्पनियोंके नामसे दो प्राइवेट कारपोरेशन बनाये। इनको कलकत्तासे रानीगंज और बम्बईसे कल्याण तक लाइन बनाने का अधिकार मिला था। मद्राससे आरकोनम तक लाइन बनानेके लिये मद्रास रेलवे कम्पनी भी बनी। तत्कालीन भारत सरकारका यह विश्वास था कि मुफ्तमें जमीन पानेका लोभ ब्रिटिश पूंजी और व्यक्तियोंको इस दिशामें आकृष्ट करनेके लिये पर्याप्त है। इसी आधार पर कम्पनियोंसे काम शुरू करनेको कहा गया। आरम्भमें निर्माण कालके दौरानमेंअथवा कार्य पूर्ण होनेके बाद लाभ की गारण्टी नहीं दी गई थी। रेलवे कम्पनीके लाभ निर्धारणका अधिकार सरकारने अपने हाथमें ही रखा था। लेकिन लाभकी गारण्टी बिना ब्रिटिश पूंजी पतियोंने इस दिशामें कदम बढ़ानेसे इनकार कर दिया।

भारतमें रेलोंके बिछे जालके सैनिक, राजनीतिक और व्यवसायिक महत्वको समझते हुए भारत सरकार सब तरहसे रेलवे निर्माण कर्ताओं की मदद करनेको इच्छुक थी। उस समय ब्रिटिश सरकार गारण्टी देनेके प्रतिकूल थी। किन्तु लार्ड डलहौजीने भारतमें रेलवे निर्माणकी योजना को सफल बनाया। १८५३में इन्होंने प्राइवेट एजेंसी द्वारा भारतमें रेलवे बननेकी जबर्दस्त सिफारिश की। इन्होंने दूर-दृष्टिसे भारतमें रेलवे निर्माणकी आवश्यकता और इस कार्यमें ब्रिटिश पूंजीके सहयोगका महत्व समझा था। दूर-दर्शी और मेधावी राज्याधिकारीकी भांति आपने अपनी विलक्षण तीक्ष्ण-दृष्टिसे यह देख लिया था कि विजित देश पर शासनको मजबूत बनाये रखने के लिये यह नितान्त आवश्यक है कि अङ्गरेजों द्वारा नव निर्मित भारतको एक ऐसी शृङ्खलामें बांधना चाहिये कि उसके दूरदराज हिस्सों और अञ्चलोंका परस्पर सम्पर्क बराबर बना रहे। आप यह जानते थे कि भारतको अपने अधिकारमें तभी सुरक्षित रखा जा सकता है जब सभी भागों की सामूहिक शक्ति और साधन 'सम्पूर्ण'की रक्षा में लगाये जा सकेंगे। आपने यह भी अच्छी तरह समझा था कि सामुद्रिक शक्तिसे भारतकी रक्षा करनेकी चर्चामें कोई तत्व नहीं है। विस्तृत और सुन्दर अञ्चलोंमें विभक्त देशको एक शृङ्खला में बांधे रखने और बन्दरगाहोंसे सम्पर्क बनाये रखनेके लिये रेल कितना सुन्दर साधन है लार्ड-डलहौजी इसे बखूबी समझते थे। एक स्थानसे दूसरे स्थानको जितनी शीघ्रताके साथ सैनिक और सामग्रियां पहुंचायी जा सकेंगी, सैनिक शक्तिको उतना ही अधिक प्रभावोत्पादक बनाया जा सकेगा। किसीने बहुत ठीक और जोरदार बात कही है कि सेनाकी शक्ति उसके पैरोंमें होती है। इङ्गलैंडमें रेलवे बोर्डके प्रेसिडेण्टकी हैसियत से लार्ड डलहौजीने अमूल्य अनुभव प्राप्त किया था और उनका यह विश्वास था कि साम्राज्य निर्माणकी व्यापक योजनामें विजयके साथ साथ उन विजित भागोंका परस्पर संघटन अत्यन्त आवश्यक है। इस तरह भीतरी व्यवस्था और शान्ति एवं बाहरी आक्रमणसे रक्षा करनेमें रेलवेका कितना महत्व है लार्ड डलहौजीसे यह बात छिपी न थी। सैनिक विजयसे मदान्ध हो लार्ड डलहौजी एक क्षण भरके लिये भी यह नहीं भूले कि रेलवे बन जानेसे अपरिमित व्यावसायिक और सामाजिक सुविधायें कितनी बढ़ जायेंगी। आप

भूमिपर धनकी विजय

(शेषांश)

विकासके एक निश्चित स्थिति पर पहुंच जाने पर ही उन्नतर सामाजिक व्यवस्था हो सकेगी।

लेकिन दर असल बात यह है कि इस तरह का ख्याल अगर आरम्भके सुधार वादी समाज वादियोंके मनमें नहीं आया तो कोई विचित्र बात नहीं है, क्योंकि तदनुकूल स्थिति और वातावरण तब तक नहीं बन पाया था। बूर्ज्वा विचारक उस समय तक ऐतिहासिक उत्क्रान्ति क्या चीज है जानते भी नहीं थे और यही वजह है कि उस स्थितिकी कल्पना भी वे न कर सकते थे। दूसरी तरफ सर्वहारा उस समय तक अत्यन्त दुर्बल और असंगठित था। राजनीतिक दृष्टिसे तो वह अत्यन्त नगण्य और तुच्छ था। समाज में उसका कोई स्थान ही न था। ऐसी अवस्थामें ऐतिहासिक उत्क्रान्तिका ख्याल भी कैसे आता?

फिर भी इस बातका ख्यालमें आना लाजमी था। क्योंकि समस्याके समाधानका इसके सिवा दूसरा साधन भी तो न था। यह काम विज्ञानका था। व्यवहारिक विकास और उन्नतिके लिये क्या आवश्यक है, विज्ञान उसकी रूप-रेखा पहले सूक्ष्म विचारके रूपमें लाता है और बादमें वही विचार स्थूल कार्य रूपमें परिणत होता है। और विज्ञानकी दृष्टिसे इस समस्या पर सर्व प्रथम प्रकाश डालनेका कार्य कार्ल मार्क्सने किया, इसीलिये मार्क्स द्वारा प्रतिपादित समाज-वादको वैज्ञानिक समाजवाद कहा गया है।

ने 'कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स' को लिखा कि "रेलवे बन जानेसे भारत जो व्यावसायिक और सामाजिक सुविधाएँ प्राप्त करेगा वर्तमानमें उसकी गणना नहीं की जा सकती। प्रदेशके प्रदेश उस हलकेकी पैदावारसे भरे पड़े हैं, उनको बेचा नहीं जा सकता। लोगोंकी समझमें यह नहीं आता कि यदि इस मालको वहां पहुंचाया जा सके जहां इसकी जरूरत है तो उनको प्रचुर लाभ होने लगेगा। ब्रिटिश व्यवसायके लिये सब तरहकी सुविधा ही सुविधा है, क्योंकि हमने देखा है कि विलायती मालकी कितनी जबर्दस्त मांग भारतके दूर दूर भागोंमें है।"

लार्ड डलहौजीने यह बात अपनी दूर दृष्टिसे देख ली थी कि ब्रिटिश व्यवसायके लिये भारत सोनेकी चिड़िया है, क्योंकि यहांसे सस्तासे सस्ता कच्चा माल ब्रिटिश उद्योग धन्धोंको पुष्ट बनानेके लिये भेजा जा सकता है और ब्रिटेनमें बने मालके लिये इतना सुन्दर और विशाल बाजार भी अन्यत्र कहां मिल सकता है। हम यह माननेको तैयार नहीं कि लार्ड डलहौजी चाहते थे कि रेलवे-निर्माणसे भारत भी वैसा ही लाभ उठाये जैसा अन्य यूरोपियन देश उठाते हैं। दरअसल भारतमें रेलवे लाइन बनानेका एकमात्र उद्देश्य यह था कि लार्ड डलहौजी, जो साम्राज्यवादी थे, चाहते थे कि भारतपर ब्रिटेनका आधिपत्य, राजनीतिक और आर्थिक दोनों, हमेशा कायम रहे और उनकी रेलवे नीति उनके इस उद्देश्यको पूरा करनेमें सहायता पहुंचाने वाली एक चतुर चाल थी। फिर भी इतना तो हम मानते ही हैं कि भारतीय व्यापार, उद्योग-धन्धा और व्यवसायको रेलवे-निर्माणसे कई लाभ पहुंचे हैं। सर्वाधिक लाभ तो यह है कि इस विराट देशको एक यूनिटमें बांध दिया गया है। किन्तु यह बात उल्लेखनीय है कि देशके रहने वालोंके जीवन, रीति-रिवाजों, रस्मों और रहन-सहनसे अपरिचित विदेशी विजेताओं के लिये इन बातोंका कोई महत्व न था।

लार्ड डलहौजी इस कार्यका सम्पादन करनेके लिये बहुत उपयुक्त व्यक्ति थे, क्योंकि इङ्गलैण्डमें रेलवे बोर्डके सदस्य की हैसियतसे रेलवे निर्माणादि कार्योंसे वे बखूबी जानकार थे। आपने ब्रिटिश सरकारको भारतमें रेलवे बनानेकी आवश्यकता और सम्भावनाओंको अच्छी तरह समझा दिया और काफी वादविवादके पश्चात् उन्हींकी नीति ग्रहण की गयी। भारतमें रेलके बनाने का काम प्राइवेट एजेन्सियोंको सौंप दिया गया। उस समय भारतमें इस्ट इण्डिया कम्पनीका शासन था। अतः इस्ट इण्डियन और ग्रेट इण्डियन पेनिनसूला रेलवे कम्पनियों और इस्ट इण्डिया कम्पनीके बीच गारण्टीकी शर्तोंपर कण्ट्राक्ट हो गया। बादमें रेलवे बनानेवाली पांच अन्य कम्पनियोंकी रजिस्ट्री हुई। सिन्ध, पञ्जाब और दिल्ली कम्पनी १८५५, इस्टर्न बङ्गाल रेलवे कम्पनी १८५७, बी० बी० एण्ड सी० आई० रेलवे कम्पनी १८५५ और मद्रास रेलवे गारण्टीड कम्पनी १८५३ में बनी।

गारण्टीकी शर्तें

गारण्टी इस बातकी दी गयी थी कि ९९ साल तक इस काममें कम्पनी द्वारा लगायी गयी और सरकारद्वारा स्वीकृत पूंजीपर सालाना पांच प्रतिशत ब्याज मिलेगा। जिस दिन पूंजी लगायी जायेगी उस दिनसे ब्याज चालू होगा और विनिमयकी अनिश्चयताको दूर करनेके लिये यह तय हो गया कि ब्याज चुकानेके लिये रुपया २२ पेंसका समझा जायेगा। जमीन, सरकारने कम्पनियोंको लाइन एवं रेलसे सम्बन्धित अन्य सब कामोंके लिये मुफ्त दी। रेलवे कम्पनियोंके कार्योंपर नियंत्रण और निगरानी रखनेका अधिकार सरकारने रखा। गारण्टीसे अधिक मुनाफा होनेकी स्थितिमें मुनाफेमें कम्पनियोंके बराबर हिस्सा बटानेका अधिकार भी सरकारने रखा। अधिक मुनाफेका अर्द्धांश कम्पनीको मिलेगा, दूसरे हिस्सेसे पहले ब्याजकी रकम चुकायी जायेगी, जो बचेगा वह मूल रकमकी भरपाईके काम में आयेगी। बाकी बची बचाई रकम कम्पनीका डिविडेण्ड (लाभ) बढ़ानेमें लगा दी जायेगी। ९९ वर्षके अन्तमें जमीन और कारखाने स्टेटकी सम्पत्ति हो जायेगी। रेलें एवं अन्य चल सम्पत्ति का उचित मूल्य देकर स्टेट खरीद लेगी। सरकार यदि चाहे तो प्रथम पचीस अथवा पचपन वर्षके बाद भी ६ महीनेका नोटिस देकर लाइन खरीद ले सकती है। खरीदते समय तीन वर्ष पहले शेयरों और कैपिटल स्टाकके बाजार भाव के आधारपर सम्पत्तिका मूल्य आंका जायेगा। कम्पनियोंको भी स्वतन्त्रता दी गयी थी कि यदि वे चाहें तो लाइनके बनकर तैयार हो जानेके बाद ६ महीनेका नोटिस देकर लाइन सरकारको सौंप दें और उस हालतमें सरकार स्वीकृत पूंजी वापस कर देनेको बाध्य होगी। इसी तरह सरकारको भी अधिकार था कि यदि कम्पनी पूंजी-की घोषणा हो जानेके बाद ६ महीनेके भीतर पूंजी न उठा सके तो वह लाइन ले लेगी। इस साझेदारी अथवा द्वैध नियंत्रणके परिणाम स्वरूप महसूलकी दर सरकारकी स्वीकृति पर निर्भर थी और लाभ १० प्रतिशतसे अधिक बढ़ जानेपर वह महसूल घटवा भी सकती थी, लेकिन टैरिफ पर उसका नियन्त्रण नहीं रहा। लार्ड डलहौजी प्रधानतः व्यक्तिवादी दृष्टिकोण रखने वाले थे। इसलिये वे चाहते थे कि प्रत्येक व्यापारिक और अर्द्ध-व्यापारिक कार्योंमें इंगलैण्डकी प्राइवेट पूंजी लगे। भारतीय व्यापार और उद्योग-धन्धों में ब्रिटिश पूंजी और व्यक्तियोंका प्राधान्य देखनेको उत्सुक थे। उन्होंने उज्ज्वल भविष्य अच्छी तरह देख लिया था। उनको अपनी इस नीतिको सफल बनानेमें इस्ट इंडिया कम्पनीके बोर्ड आफ कण्ट्रोलसे पूरा सहयोग मिला। बोर्डका यह मत था कि अपने साम्राज्यको समृद्ध और समुन्नत करनेके लिये यह नितांत आवश्यक और महत्वपूर्ण है कि भारतीय व्यवसायमें ब्रिटिश पूंजी, कौशल और उद्योग लगाया जाये।

जहां तक ब्रिटिश पूंजी लगानेकी बात थी, ठीक और उचित कहा जा सकता है। क्योंकि उस समय भारतीय पूंजीपति इन कामोंमें अपनी पूंजी लगानेको तैयार न थे। ऐसी हालतमें ब्रिटिश पूंजीका व्यवहार अनिवार्य था। किन्तु उस समयकी स्वीकृत नीतिके अनुसार विदेशी पूंजी लानेके साथ साथ विदेशी पूंजीपतियोंको भी लाया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि भारतीय सरकारी खजानेको जबर्दस्त नुकसान उठाना पड़ा। सरकारका ऋण लेना राष्ट्रीय दरिद्रताका चिन्ह हो, ऐसी बात नहीं है। सरकारी कामोंके लिये पूंजी प्राप्त करनेका यह एक सुन्दर और वांछनीय ढङ्ग है और यदि उसे उत्पादनके कार्यमें लगाया जाये तो इससे राष्ट्रीय साधन और देशकी अन्तर्राष्ट्रीय साख बढ़ती है। किन्तु जो देश विदेशसे पूंजी लाता है, और उसका सञ्चालन स्वयं करता है उसमें एवं जो देश विदेशी पूंजी लगाने और अपने देशके साधनोंसे बेजा फायदा उठाने देनेके लिये विदेशी पूंजीपतियोंको आमन्त्रित करता है उसमें कितना स्पष्ट और भारी अन्तर है। प्रथम श्रेणीके कर्जदार देश शीघ्र मितव्ययिताके साथ काम करके विदेशी पूंजीके भारसे अपनेको आननफानन मुक्त करते हैं, किन्तु दूसरी श्रेणीके देशोंकी

स्थिति इससे बिलकुल भिन्न है। वहां तो भारत जैसे परतन्त्र देशमें जान-बूझकर इस बातकी कोशिश की जाती है कि भार अधिकाधिक बढ़ता रहे और स्वभावतः इसके लिये अनापशनाप, आवश्यकतासे कहीं अधिक खर्च बढ़ा लिया जाता है। यहांकी स्थिति ऐसी ही थी। विदेशी पूंजीका सञ्चालन राष्ट्रीय उद्योगियोंके हाथमें होनेसे स्वभावतः वे अपने साधनों और राष्ट्रीय सम्पत्ति को बढ़ानेका बराबर ध्यान रखेंगे जब कि विदेशी उद्योगपति अपने स्वार्थके लिये निरन्तर इस बातकी चेष्टा करता रहेगा कि उसका निहित स्वार्थ बढ़ता रहे। उसे राष्ट्रीय स्वार्थोंकी क्या परवाह? अवश्य ही इस क्रममें यदि यत्किंचित लाभ राष्ट्रको भी पहुंचे तो उसे इसका मलाल नहीं है। दूसरी बात यह है कि जो देश विदेशी पूंजीपतियोंको बुलाता है यदि वह उनको यह आश्वासन भी दे कि उन्हें अपनी पूंजीपर मोटा ब्याज मिलेगा तो इसे तो उसकी आर्थिक आत्म-हत्या ही समझनी चाहिये। आज तक इस बातकी कोई कैफियत नहीं दी गयी कि विदेशी पूंजीको स्टेटकी तरफसे पूरी जमानत और मोटी गारण्टी देनेकी क्या आवश्यकता थी, जब हम जानते हैं कि वह पूंजी इङ्गलैण्डमें फाजिल थी और उसे कहीं लगानेके साधनों और सूत्रकी आग्रह पूर्वक खोज की जा रही थी।

इसके सिवा ध्यान देने योग्य बात यह भी है कि भारतीय पूंजीको मैदानमें लानेके लिये कोई बाकायदा कोशिश भी नहीं की गयी थी। संक्षेपमें हम यह कहे बिना नहीं रह सकते कि भारतीय पूंजीपतियोंको इस दिशामें बढ़नेके लिये भले ही ठीक-ठीक हतोत्साहित न किया गया हो किन्तु उन्हें इधर बढ़नेको प्रोत्साहित तो किया ही नहीं गया। यदि स्थानीय साधनोंको उचित ढङ्गसे काममें लानेकी चेष्टा की जाती तो निस्सन्देह भारतीय पूंजी अवश्य ही मिलती, भले ही वह अपर्याप्त होती।

इस तरह स्थिति यह थी कि रेलवे-निर्माणकी सारी झांकी तो स्टेट पर थी, किन्तु उसकी मलाई खानेका अधिकार उसे न था। वह तो विदेशी पूंजीपतियोंकी सम्पत्ति थी। सरकारकी तरफसे गारण्टी देनेका परिणाम यह हुआ कि रेलवे प्रबन्ध एककी जगह बीस खर्च करने लगा और यह सब फजूल खर्ची किसके माथे? गरीब भारतीयोंके। गोरी कम्पनियोंको अनुकूल शर्तें मिलते ही रेलवे बनानेके लिये बातकी बातमें पूंजी इकट्ठा हो गयी और गारण्टीका असर यह हुआ कि मितव्ययिताका आदर्श हवा हो गया। इतना ही नहीं बल्कि कार्य भी बहुत ढीला ढाला होने लगा। फिजूल खर्चीको निश्चित प्रोत्साहन मिला। पूंजी लगानेवाला जानता था कि काम हो या न हो, लाभ हो या घाटा उसे तो उसकी पूंजीपर ५ प्रतिशत ब्याज मिलेगा ही। उसे इसकी क्या परवाह थी कि लगायी गयी पूंजीसे पूरा-पूरा लाभ उठाया जा रहा है या नहीं। उसकी पूंजी गङ्गामें डाल दी जाये, या ईंट और पत्थर में बदल जाये उसे इसकी जरा भी चिन्ता नहीं। जब शेयर होल्डरोंकी तरफसे जरा भी दिलचस्पी न ली जाती थी तो भला इञ्जीनियरों और एजेण्टोंको क्या पड़ी थी कि वे ईमानदारी और मुस्तैदीसे काम करते। निर्माणका आरम्भिक खर्च अत्यधिक बढ़ गया। देखा गया कि जितना अनुमान लगाया गया था उससे कहीं अधिक खर्च बैठा। आरम्भमें आंका गया था कि एक मील तक डबल लाइन बैठानेमें १५ हजार पौंड और सिंगल लाइनमें ९ हजार पौंड खर्च होगा। किन्तु बनानेका काम शुरू होनेके बाद देखा गया कि प्रायः तीन हजार मील लम्बी ट्रंक लाइन बनानेमें प्रति मील २० हजार पौण्ड खर्च लगा है। इसमें भी भूमिका मूल्य शामिल नहीं है। अक्सर रास्ताके बदलते रहने और गदर आरम्भ हो जानेसे निर्माण व्यय और अधिक बढ़ गया। फलतः रेलवे आमदनीमें इतना घाटा आया कि उससे कुछ जरूरतें भी पूरी न होती थीं और यह घाटा सरकारी खजानेसे पूरा किया गया। इस तरह ऊंचे दर्जेकी दी गयी गारण्टी, कम्पनियोंकी उदासीनता और सरकारी अफसरों की अयोग्यताने मिलकर भारतीय करदाताके बोझको पर्वत समान भारी बना दिया। इस जगह यह याद रखना चाहिये कि मजूरी सस्ती तथा भूमि पर कोई खर्च न होनेपर यह हाल था, अन्यथा करदाताकी गति क्या होती कल्पना की जा सकती है।

यह है भारतमें रेलवे-निर्माणकी कहानी, जिसके ढोल पीट-पीट कर संसारमें गान गाये जाते हैं कि ब्रिटेनने अपनी पूंजीको खतरेमें डाल कर भारतमें उद्योग-धन्धोंकी सृष्टि की है।

———

गीत

बंधन नहीं मन मानता!
शून्य जीवन, सांध्य वेला,
उड़ रहा पंछी अकेला,
कांपते दो पंख दुर्बल,
किन्तु नभ को नापता!
दूर पथ है निविड़ रजनी,
सिहर उठती आज अवनी,
सघन वृक्षों के विपिन में,
नीड़ निज पहचानता!
इस जगत के अमित नाते,
कुछ रुलाते कुछ हंसाते,
मुक्त मन का अमर नाता,
मूक रहना जानता!
बधंन नहीं मन मानता!

—सुश्री तारा पाण्डे

———

वैदिक लोकतन्त्रकी रूप-रेखा ?

श्री व्रजकिशोर वर्मा 'श्याम'

भारतीय सभ्यताकी प्राचीनता संसार मानता है। उसकी सभ्यता उसकी शालीनता, उसकी महत्ता, जीवनके प्रत्येक अङ्गमें प्राप्त की हुई उसकी पूर्णता, धार्मिक, आध्यात्मिक, राजनीतिक विषयोंमें बढ़े हुए विचार, सांसारिक तथा पारलौकिक जीवनमें एकाग्रता स्थापित करके जीवन नौकाको प्रवृत्ति की प्रबल धारामें खेनेका आदर्श-प्रयत्न आदि ऐसे विषय हैं, जिनपर दृष्टि डालनेसे भारतके प्राचीन आर्योंकी आर्यता प्रत्यक्षतः सिद्ध हो जाती है। आज इसीका यह परिणाम है कि क्षण-क्षणमें कालके चक्रमें पड़कर सारा संसार बदलता चला जा रहा है, संसारमें न जाने कितनी नयी सभ्यताएं उत्पन्न हो गयीं और हो रही हैं, तथा न जाने कितनी प्राचीन सभ्यताओंका लोप हो गया और हो रहा है, पर फिर भी उनके प्रबल चपेटों के सहनेपर, अगणित विपत्तियोंके आनेपर संकट का सामना करते हुए, भारतकी प्राचीन सभ्यता किसी न किसी रूपमें स्थित है, और वह आज भी संसारके सामने अपना प्राचीन साहित्य—अपनी प्राचीन गौरवपूर्ण महत्ताके साथ--उपस्थित कर रहा है।

भारतीय सभ्यताके विषयमें विदेशी विद्वानों का यही मत रहा है कि भारतमें धर्म और अध्यात्मका ही इतना प्राधान्य रहा है कि उसने इन्हीं दोनों विषयोंको जीवनमें मुख्य स्थान दिया है। भारत केवल पारलौकिक ज्ञान देनेका कार्य करता रहा है, जीवनकी अन्य ग्रन्थियोंको सुलझानेमें वह प्रयत्नशील नहीं रहा है, उसका उसे अधिक ज्ञान नहीं था। उनका ऐसा सोचना स्वाभाविक ही था। उनका दृष्टिकोण भारतीय न होनेके कारण उनसे भूलें होना तथा अर्थका अनर्थ होना कोई अस्वाभाविक बात नहीं कही जा सकती। उनका यह कथन तो सर्वथा ठीक है कि भारतीयोंकी एक विशेषता यह है कि उनकी सभ्यता अध्यात्म तथा धार्मिकतापर अवलम्बित है, पर उनके ये विचार कि भारतीयोंकी विचारधारामें राष्ट्रीयता और शासन-विज्ञानको कोई स्थान प्राप्त नहीं था, सत्य प्रतीत नहीं होते। नये-नये अनुसन्धानों और खोज के बल पर पहलेकी विचार-धारा कटती जा रही है और उसका स्थान नयी विचार-धारा ले रही है। आज संसारको धीरे-धीरे इस बातका ज्ञान हो रहा है कि जैसे भारतने धर्मशास्त्र और अध्यात्ममें उस प्राचीनकालमें भी—जब कि सारा संसार प्रकृतिके असली रूपमें सो रहा था, विशेषता प्राप्त की थी, उसी प्रकार वह सांसारिक विज्ञानके मुख्य अङ्ग राजनीति विज्ञानमें भी पूर्णरूपसे प्रवेश कर चुका था और उसे भी एक सीमा तक पहुंचानेमें उसको सफलता प्राप्त हो चुकी थी। डा० वेनीप्रसादके मतसे 'मिश्र और वेबीलोनियाकी सभ्यतासे तुलना करनेपर मालूम होता है कि उस पुराने समयमें भी हिन्दुस्तानमें उनकी अपेक्षा जीवनके सुखोंका अच्छा प्रबन्ध था। अतएव वैदिक युग सभ्यता के आरम्भ का न होकर पूर्ण विकासका युग था। प्राचीन वैदिक कालसे ही भारतीय राजनीतिमें उच्चता, महत्ता, स्वतन्त्रता आदिके विचारोंका प्रचुर मात्रामें समावेश था।

यह तो सत्य है कि वेदोंमें लोकतन्त्र जैसे किसी वाक्य अथवा राजनीतिक तन्त्रकी आधुनिक परिभाषाका प्रयोग नहीं हुआ है और न उनके लोकतन्त्रका सिद्धान्त रूपमें विवेचन ही मिलता है फिर भी उस समयके सामाजिक और राजनीतिक सङ्गठनोंकी जो रूप-रेखा वेदोंमें मिलती है उसीके आधार पर हमें देखना है कि वह आधुनिक सिद्धान्तोंमेंसे किसके साथ तारतम्य जोड़ती है।

वैदिक युगमें प्रवेश करनेके पूर्व लोकतन्त्रकी आधुनिक धारणा तथा वर्तमान विद्वानोंके सिद्धान्तोंपर विचार कर लेना भी आवश्यक है। अब तकके लोकतन्त्रके इतिहासके अवलोकनसे इस मान्यताका ज्ञान होता है कि लोकतन्त्रका जन्म पश्चिममें सर्व प्रथम यूनान (ग्रीस) में हुआ। नगरके, जो आज कलके छोटे गांवके आकारसे कुछ अधिक भिन्न नहीं होता था, नागरिक अपनी रक्षा तथा अन्य सार्वजनिक समस्याओंपर, एक स्थानपर एकत्रित होकर सामूहिक रूपसे निर्णय करते थे। इस प्रकारका नगर 'पोलिस' कहलाता था। अरस्तूने इस प्रकारके लगभग १५८ नगरोंकी कार्य-प्रणालीका विवेचन किया है, जिसमेंसे अधिक स्थायी 'दी पालिटी आफ दि एथिनियन्स' रही है। राजनीतिक विधानके इतिहासकारोंने इसीको अपना आधार मान कर इस क्षेत्रमें बहुत कार्य किया है। अरस्तूके पूर्व प्लेटोने भी राजनीति पर लिखा है। उसकी प्रसिद्ध पुस्तक रिपब्लिक है, जिसमें प्रचलित राज्य प्रणालीका विवेचन न होकर दार्शनिक कल्पनाका चिन्तन है। उसने प्रजाके तीन वर्ग किये हैं—शासक,योद्धा और शिल्पी। अरस्तू के विचारोंके अनुसार स्त्री और दास अपनेपर शासन चाहते हैं। अतएव उस समय यह मान्यता थी कि कुछ व्यक्ति तो जन्म हीसे शासित होनेके लिये हैं। क्योंकि जहां शासितकी कल्पना की जाती है, वहां शासककी कल्पना अपने आप हो जाती है।

इस युगमें लोकतन्त्रकी अनेकों परिभाषाएं हैं, फिर भी ठीक परिभाषाके सम्बन्धमें सन्देह कम नहीं है। अधिकांश विद्वान संख्या बल ही में लोकतन्त्रके सत्यका दर्शन करते हैं। बहुमतका शासन ही लोकतन्त्रका प्रदर्शन है। परन्तु क्या यह बहुमत बहुगुणोंको ध्यानमें रखकर होना चाहिये या केवल मतकी संख्या ही पर्याप्त है? अरस्तू कहता है—'लोकतन्त्र स्वतन्त्रताका दूसरा नाम है। किसी देश तथा जातिके उन्नति-क्रममें समूहकी स्वतन्त्रताही आधार शिलाका काम देती है। क्योंकि कोई भी सभ्य जाति विदेशी ऋणको स्वीकार करना नहीं चाहेगी, चाहे उसका शासन कितना ही अच्छा क्यों न हो। इस दृष्टि कोणसे लोकतन्त्र समूहोंकी वह कल्पना है जिसमें हर एक व्यक्तिकी उन्नतिके लिये साधन और सुविधाएं विद्यमान हैं।

पर केवल राजनीतिक जीवनमें ही लोकतन्त्रका होना कभी भी पूर्ण और अच्छा लोकतन्त्र नहीं है। लोकतन्त्रके लिये समाजवाद अनिवार्य शर्त है। वैसे लोकतन्त्र आधुनिक शब्द है और इसका जन्म आधुनिक राजनीतिक अनुभवोंकी दो बुराइयोंके कारण ही हुआ है—निर्धनता और युद्ध। इस युगमें अमरीकाको अधिक लोकतन्त्री बताया जाता है, जिसे सैद्धान्तिक रूपसे स्वीकार करना कठिन है। तर्क और सद्बुद्धिका वहांके राष्ट्रीय जीवनमें बहुत कम महत्व है। तथापि संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा बहुतसे राज्योंका शान्तिसे अपना संघ बना लेना सभ्यताका एक महान प्रगतिशील कार्य कहा गया है।

वेदोंमें 'राजा' शब्दका बार-बार अभिनन्दन किया गया है। परन्तु सिर्फ इसीसे उस समय राजतन्त्र था, यह नहीं कह सकते। राजाका

निर्माण, उसके अधिकार तथा कर्तव्योंका विवेचन आवश्यक है। वैदिक कालका समाजिक नारा 'हम भी सुख पूर्वक रहें और तुम भी रहो' था। अथर्ववेदमें है आए हुए एक सूत्रसे पता चलता है कि सर्व प्रथम राष्ट्रका निर्माण हो जानेके बाद राजाका आह्वान किया गया है। 'राष्ट्रके बन जानेपर हे राजन, तुम महाबलवानको हम आदर से बुलाते हैं।' इससे स्पष्ट हो जाता है कि राजनीतिक चेतना और राष्ट्रका निर्माण हो जानेके बाद राजाको नियुक्त किया जाता था। किसी व्यक्तिके बलवान और शक्तिशाली हो जानेसे या परीक्षा द्वारा राजा नहीं बनाया जाता था। राजा नियुक्त करनेके पहले प्रजा काफी ऐश्वर्यवान तथा शक्तिशाली होती थी और राज्य कार्यमें सहायक भी होती थी। राजाकी नियुक्ति के विषयमें भिन्न-भिन्न मत हैं—प्रथम, युद्धकी आवश्यकतासे, द्वितीय आपसी कलहको मिटाने के लिए, तृतीय समाजके उन कार्योंकी व्यवस्थाके लिए, जिसमें बहुतसे आदमियोंके योगकी आवश्यकता थी। परन्तु हमारे विचारसे तो यह तृतीय मत ही अधिक युक्ति संगत प्रतीत होता है। राजाकी एक बार नियुक्ति हो जानेके बाद क्या व्यवस्था थी, इसपर भी मत भेद है। डा० वेणी प्रसादका मत है कि राजा बहुधा मौरूसी होता था, या एक ही वंशसे राजा चुना जाता था। पर वेदोंमें बहुतसे मंत्र हैं, जिनसे यह प्रमाणित होता है कि राजाका आम जनतामें से चुनाव होता था। डा० वेणी प्रसादके विचारोंमें भी आगे चल कर विरोध उत्पन्न हो जाता है। एक स्थानपर वे लिखते हैं—"सम्राट और राजा बहुधा मौरूसी होते थे, पर एक नये राजाके आरोहणके लिए जनताकी स्वीकृति और राजा का मौरूसी होना दोनों विरोधी बातें है।" जायसवालके मतसे भी चुनाव ही अधिक सम्भव ठहरता है। अथर्व वेदमें आए एक सूत्रसे प्रमाणित होता है कि राजाको समस्त प्रजा स्वयं चुना करती थी। केवल उसके प्रतिनिधियोंको ही राजा चुननेका अधिकार नहीं था। इसी प्रकार एक दूसरे मंत्रसे एक ही वंशमें से राजाकी नियुक्ति वाला सिद्धान्त भी कट जाता है। इससे सिद्ध होता है कि प्रजा अपनेमें से शक्तिशाली और योग्य व्यक्तिको ही राजा चुने और शुभ दिनमें उसका अभिषेक करे। इससे स्पष्ट हो जाता है कि राजा बननेका अधिकार प्रत्येक आर्यको था। वेदोंमें राजत्वकी अवधिके विषयमें कहीं कुछ भी नहीं मिलता। इसलिए यही स्वीकार कर लिया जाना चाहिए कि राजा जब तक अपने पदसे पदच्युत न कर दिया जाये या मर न जाय, तब तक बराबर राजत्व भोगता रहे। राजाके लिये दूसरे गुणों और योग्यताओंके अतिरिक्त स्थानीयताका बन्धन भी पाया जाता है। इस बन्धनके अनुसार जिस स्थानकी प्रजा होती थी, उसी स्थानका उनका शासन भी होता है। अतएव एक राष्ट्र का व्यक्ति दूसरे राष्ट्रमें जाकर शासक और राजा नहीं बन सकता था। अभिषेक होनेके बाद पुरोहित या प्रजा उस समयके लिए चुने हुए प्रतिनिधि राजासे कुछ निवेदन करता था जिसमें 'पूर्व निर्धारित भित्ति' शब्द का प्रयोग हुआ है। इसका अर्थ विद्वानोंने आपसी समझौता बतलाया है। इससे यह सिद्ध होता है कि राजा बननेसे पहले उस व्यक्तिको समाजसे समझौता करना पड़ता था।

राजाके कर्तव्योंका विवेचन करते समय हमे भूलना नहीं चाहिये कि कर्तव्य और अधिकारका एक दूसरेसे घनिष्ठ सम्बन्ध है। राजाके कर्तव्य कुछ हेर फेरके साथ प्रजाके अधिकार रूपमें ही ठहरते हैं। प्रजाकी न्यायानुकूल अभिलाषाओं की पूर्ति करना राजाका कर्तव्य बताया गया है। अतएव यह प्रजाका अधिकार होता है कि वह अपनी उचित और न्याय सङ्गत मांगोंको राजासे स्वीकार कराये। राजा कर्तव्य और धर्मके सूत्रमें आवद्ध है कि वह प्रजाकी मांगको सुने और उसके प्रति अपने कर्तव्यका पालन करे। राजामें घोड़े मेंढ़े तथा गवयके गुण होनेकी आवश्यकतापर जोर दिया गया है। घोड़ेका अभिप्राय है दूसरोंका मन लेकर चलने वाला अर्थात् जनताके कार्य भारको वहन करना! मेढ़से अभिप्राय है विरोधीसे प्राण रहते लड़नेके साहस से तथा गवयसे मतलब है लक्ष्मी संग्रहकी वृत्ति से। परन्तु राजाकी लक्ष्मी संग्रहकी वृत्तिपर आगे चलकर रोक भी लगा दी गई है, जिससे अनुचित और अन्यायपूर्ण मार्गों द्वारा लक्ष्मी संग्रहका कार्य न हो सके। अनुचित उपायोंसे धन संग्रह करने वाले राजाका नाश निश्चित बताया गया है। साधारण स्थितिके आदमियोंसे कर नहीं लिया जाता था। धन-संग्रहका कार्य प्रजा की ही समृद्धिके अवसरपर ही किया जाता था; और वह राष्ट्र निवासी जनताके हितके लिये राष्ट्र कोषमें जमा होता था। राजाका कोई व्यक्तिगत कोष नहीं था और न राजा व्यक्तिगत कार्योंपरही व्यय कर पाता था। राजाके आय-व्यय और विभा- जनकार्यपर सभा समिति का पूर्ण अधिकार था। वेदोंमें बहुतसे मंत्रोंमें राजाको मेघवत् और सूर्यवत् बताया गया है। जिस प्रकार सूर्यकी किरणें पृथ्वीके जलको सोखती है और फिर मेघ रूपमें उसी जलको पृथ्वीकी समृद्धि और हितके लिए बरसाती हैं, उसी प्रकार राजा भी प्रजासे कर प्राप्त करता है और प्रजा के हितके लिये ही, समिति और सभाके नियन्त्रणमें व्यय करता है। इससे प्रकट होता है कि राजाके निर्वाहके लिए या तो निश्चित भूमि होती थी या धन-वृत्ति। राष्ट्र-कोषपर उसका कोई व्यक्तिगत अधिकार नहीं होता था। डा० वेणी प्रसादके मतसे राजाके पास बहुत सी जमीन होती थी, जिसकी आमदनीसे उसके अतिरिक्त शासनका भी बहुत सा खर्च चलता था। शायद अपनी आमदनीमें से कुछ हिस्सा लोग राजाको देते थे। डा० वेणी प्रसादने एक स्थानपर वेदमें आये हुए मंत्रके अनुसार लिखा है कि जैसे राजा अमीरोंको खाता है उसी प्रकार अग्नि जङ्गलोंको खाती है। इससे यह प्रमाणित होता है कि कर उन्हीं लोगोंसे लिया जाता था, जिनके पास जीवनके आवश्यक उपकरणोंसे अधिक उपकरण होते थे। जो केवल अपना निर्वाह करनेमें ही समर्थ थे, उनसे कोई कर नहीं लिया जाता था। अथर्ववेदमें आये हुए एक मन्त्रसे प्रमाणित होता है कि राजा राष्ट्रमें बसने योग्य हरएक-प्रजा-जनको जीवनोपयोगी धन देनेके लिए बाध्य था। इसके अतिरिक्त राजाको प्रजाके आदर्श-रूपमें रहना पड़ता था। प्रजाके चरित्र और कार्योंकी नैतिक जिम्मेदारी राजापर ही थी।

ऋग्वेदमें आये हुए एक सूत्रके अनुसार प्रजारक्षण, प्रजा-शिक्षण तथा प्रजा-पोषण राजाके मुख्य कर्तव्य कहे गये हैं। राष्ट्रमें भूखा कोई रह ही नहीं सकता था। ऋग्वेदमें आये हुए एक दूसरे सूत्रमें राजाको आदेश है कि वह प्रजाको बेघने, बिन सजे, टूटे फूटे गिरे घरमें न रखे और भूखसे पीड़ित-जनों को अन्न और दूध आदि पान करने योग्य पदार्थ प्रदान करे। अभिषेक होनेके बाद राजाको कहा जाता है कि वह सर्पके समान कुटिलकारी तथा अजगरके समान प्रजा-भक्षी न बने। इसी प्रकार एक दूसरे मन्त्रमें बताया गया है कि राजा सांपके समान कुटिल और क्रोधी न हो। अजगर के समान सब प्राणियोंको निगलने वाला न हो उसको अपने बन्धनमें बांधकर मारनेवाला न हो

या कुत्सित भाषी न हो। इन सबके बावजूद यदि चुनावके बाद राजा स्वेच्छाचारी बन जाय तो वेदोंमें कहा गया है कि पुरोहित राजाको भय द्वारा सचेत करता था। 'धर्माचरणसे गिरने पर, न्यायसे च्युत होनेपर अधःपतन होनेपर नीच आचरण करनेपर अन्याय करनेपर तथा प्रजा को दुखी करनेपर हे राजन् मैं तुम्हें कम्पित करूंगा। इसके अतिरिक्त राजाको पूर्व निर्धारित नीतिमें च्युत होते देख सभा भी भयंकर रूप धारण कर लेती थी। जिस प्रकार वन आग लगनेसे भड़क उठता है, उसी प्रकार राजाके नीति-मार्गसे च्युत होनेपर बड़ी राजसभा भी भड़क उठती थी और उसके तमाम सदस्य दुखी तथा क्रोधित हो उठते थे। इसके बाद एक सूत्रमें राजाको राज्य:पदसे च्युत करनेके अधिकारको बताया गया है। जिस प्रकार कोई हृष्ट-पुष्ट कुमारी भूलसे निर्बल पति पाकर उसे अपना स्थान छोड़नेको बाध्य करती है, जैसे तपे तेलके कड़ाईमेंसे व्यक्ति अपनी उंगली बाहर निकालने को बाध्य हो जाता है, उसी प्रकार बलवती राजसभा भी निर्बल पुरुषको राजाके रूपमें पाकर उसे अपने स्थानको रिक्त करनेके लिए बाध्य करती है।

वेदोंमें पुरोहितका स्थान राजासे भी उच्च स्वीकार किया गया है। वह राजाके कार्योंका निरीक्षण करता था, उसकी आलोचना करता था तथा सभा और समितियोंमें राजाके सम्बन्ध में अपना निर्णय देता था। इससे ज्ञात होता है कि जब सभा और समितिकी बैठक नहीं होती थी तो भी उस कालमें किये गये कार्योंपर पुरोहित ध्यान रखता था। इसका उत्तरदायित्व उसके ही ऊपर रहता था। परन्तु पुरोहितकी नियुक्ति के सम्बन्धमें भी काफी मतभेद है। डा० वेणी-प्रसादने इस विषयमें कुछ भी नहीं लिखा है। उन्होंने पुरोहितको बहुत प्रभावशाली बता कर तथा राजाके साथ रहनेवाला कहकर ही छोड़ दिया है। यजुर्वेदमें एक स्थानपर पुरोहितकी नियुक्तिपर कुछ संकेत मिलता है—'राजा अपने ऊपर भी विद्वान ज्ञानवान पुरुषोंको, जनताकी ऐश्वर्यवृद्धि, उत्तम प्रजाओंकी बलवृद्धि आदिके लिये पुरोहित नियुक्ति करे। परन्तु एक दूसरे स्थानपर समितिके अधिकारमें समस्त पदाधि-कारियोंकी नियुक्ति दे रखी है। ऐसी स्थितिमें निश्चित रूपसे कुछ नहीं कहा जा सकता, परन्तु इतना तो तय है कि राजाके न्याय मार्गसे च्युत होनेमें पुरोहित बाधा रूप था तथा आवश्यकता पड़नेपर वह राजाको भय भी दिखा सकता था? प्रजाके विषयमें आये हुए सूत्रोंमें एक स्थानपर लिखा है—'अग्निके समान तेजस्वी विजिगीषुको और सन्मार्ग पर ले जानेवाले विद्वान पुरुषको नियुक्त करो।' यह विद्वान पुरोहितके अति-रिक्त और कोई नहीं हो सकता। क्योंकि अनेक स्थानोंपर ब्राह्मणों और पुरोहितोंकी स्तुति मिलती है और अग्निका देवताओंके पुरोहितके रूपमें वर्णन भी मिलता है। इसलिये यह मानना असंगत नहीं होगा कि अग्निके समान तेजस्वी पुरुष पुरोहित होता था। इस प्रकार पुरोहित-का भी प्रजा द्वारा चुना जाना सिद्ध होता है।

वेदोंमें कई स्थानोंपर सेनानीका उल्लेख मिलता है, जो सेनापति होता था। डा० वेणी-प्रसादने सेनापतिकी नियुक्ति राजा द्वारा लिखी है। डा० जायसवालने हिन्दू पोलिटीमें इस विषयका उल्लेख ही नहीं किया है। वेदोंमें स्पष्ट-तया सेनानीकी नियुक्तिके विषयमें कुछ भी नहीं लिखा है, परन्तु एक स्थान पर 'कुह' नामकी सभाको सामर्थ्यवान पुरुषोंको राष्ट्रकी रक्षाके कार्यमें नियुक्त करनेका अधिकार दिया गया है। यदि हम राजाके सेनापति नियुक्त करनेके अधि-कारको स्वीकार करते हैं तो सभाकी स्वीकृतिके अधिकारको भी स्वीकार करना पड़ेगा। सम्भ-वतः राजा सामर्थ्यवान व्यक्तिका नाम उपस्थित करता होगा और सभा की स्वीकृतिसे उसकी नियुक्ति होती होगी। सेनापतिके अधिकार काफी विस्तृत थे। एक सूत्रमें उसे राजाके समान राज्ययोग्य कहा गया है तथा प्रजाके प्रति उसे भी राजाके समान ही उत्तरदायी ठहराया गया है। परन्तु सेनापतिका क्षेत्र मुख्यतया सेना तथा दुश्मनोंसे प्रजाकी रक्षा करना ही रहा है—'हे राजन् और सेनापते, आप दोनों धन-ऐश्वर्योंका वर्णन करने वाले हों।......आप दोनों राष्ट्रकी व्यवस्थाके इस महान यज्ञके कार्यमें अति व्यग्र रहते हुए या उसीमें अपनेको परम व्यस्त रखते हुए सोम, शासन या राज-पदका उपयोग करें। और राष्ट्रवासियोंको ऐश्वर्य प्रदान करें। एक दूसरे स्थानपर राजा और सेनापतिको मित्र-भावसे रहकर राज्य-कार्य करनेका आदेश दिया गया है।

वैदिक कालकी समिति और सभाके सम्बन्ध में इतिहासकारोंमें और भी मतभेद है। डा० जायसवालका मत है कि राष्ट्रीय जीवनके सब कार्य सार्वजनिक समूहों और संस्थाओं द्वारा हुआ करते थे। इस प्रकार वैदिक कालकी सबसे बड़ी संस्था हमारे पूर्वजोंकी थी। यह समिति जनसाधारण या विशकी राष्ट्रीय सभा थी। 'विश' का अर्थ है सर्वसाधारणमेंसे एक—अर्थात् प्रतिनिधि। डा० वेणीप्रसादके मतसे आर्य लोग उस समय अनेक जनोंमें विभक्त थे। प्रत्येक जन एक स्वतन्त्र राजनीतिक समूह था। उस समय अनेक जनोंमेंसे पांच जन विशेष कर बलवान और महत्वपूर्ण थे—पुरु, तुर्कशस, यदु, अन्तु और द्रुत्यु। पर विश शब्दकी व्याख्या डा० वेणी-प्रसादने कुछ और भी की है। ब्राह्मण और क्षत्रिय के साधारण जनतासे अलग हो जानेपर शेष जनता विश कहलाने लगी। पहले विश शब्दसे समस्त आर्य जनताका बोध होता था। ब्राह्मण और क्षत्रिय शब्द बन जानेपर विश शब्दका प्रयोग वैश्यके लिये किया जाने लगा। विश उत्पादनका बड़ा भारी वर्ग था। अतएव डा० जायसवालके मतसे समिति विश वर्ग की थी।

समिति और सभा शब्द वेदोंमें अनेक बार आये हैं। लुडविगने समितिमें सारी जनताको माना है, तथा सभामें बड़े आदमी और ब्राह्मणों की कल्पना की है। जिमरके मतसे सभा गांवके लोगोंकी होती थी और समिति सारी जनता थी। हिलीब्रांट, मैकडोनल्ड और कीथके मता-नुसार सभा और समिति दोनों एक ही चीज थी। डा० वेणीप्रसादने दोनोंको एक दूसरेसे मिलती-जुलती, पर अलग-अलग माना है। डा० जायसवालने समितिको विशकी राष्ट्रीय सभा माना है तथा सभाको गोल-मोल न्यायालयका रूप दिया है तथा उसे समितिके अधीन माना है। मैकडोनल्ड तथा कीथके मतको हम स्वीकार नहीं कर सकते क्योंकि अथर्ववेदमें आये हुए सूत्र के अनुसार समिति और सभा प्रजापतिकी दो कन्याओंकी तरह मानी गयी हैं। जिमरका मत भी मानने योग्य नहीं है। वेदोंमें सभाको नरिष्ठा कहा गया है और सायणके अनुसार नरिष्ठा बहुतसे लोगोंके उस निर्णयको कहते हैं जिसका उल्लङ्घन नहीं हो सके। यदि सभाको हम गांव-की ठहराते हैं तो राष्ट्रीय समितिको इस निर्णय-को पलटनेकी जो शक्ति रहती है उससे इसके नरिष्ठा नामका विरोध होता है। अथर्ववेदमें आये हुए एक सूत्रमें पांच विद्वत् समितियोंका वर्णन मिलता है। परन्तु उनके काम और नाम के विषयमें कोई संकेत नहीं मिलता। अथर्ववेद

ही के एक सूत्रमें राष्ट्र व्यवस्थापिकाको 'यमिनी' कह कर सम्बोधित किया गया है और उसके समस्त राष्ट्रके कल्याणकारी और सुखकारी होनेके लिये प्रार्थना की गयी है। यह राष्ट्र व्यवस्थापिका तथा यमिनी ही सभा तथा समिति हैं।

अथर्ववेदमें आये हुए एक दूसरे सूत्रमें भी समिति और सभाका विवेचन मिलता है। उसमें समितिको प्रजाकी प्रतिनिधि तथा आधुनिक धारा सभाके रूपमें अङ्कित किया गया है और सभाको आधुनिक राज-सभा अथवा स्टेट कौंसिलके रूपमें किसी निर्णयके लिये पहले प्रजा प्रतिनिधि सभा और बादमें राज-सभामें विवेचन होता था। दोनोंके एक मत होनेपर ही निर्णय निश्चित समझा जाता था। इससे यह सिद्ध होता है कि समिति और सभा दो बहनोंके समान थी और निर्णयमें दोनोंका महत्वपूर्ण भाग था।

वेदोंमें अन्यत्र तीन प्रकारकी सभाओंका तथा तीन प्रकारकी प्रजाओंका वर्णन मिलता है। युजुर्वेदमें आये हुए एक सूत्रके अनुसार तीन प्रकारकी भिन्न-भिन्न सभाओंका पता चलता है। 'भारती' नामक परिषत् परम विद्वान पुरुषोंकी 'दिव' नामक सर्वोच्च राज-सभाको संयोजित करती थी। 'सरस्वति' नामक व्यवस्थित विद्वत् सभा दुष्टोंके दमनके उपायोंका आविष्कार करती थी और तीसरी 'इड़ावस्तु' अर्थात् राष्ट्रके वासियोंको अपनेमें धारण करने वाली जनपद सभा-गृहोंका प्रबन्ध करती थी। डा० जायसवालने समिति और सभाके अतिरिक्त 'विदथ और 'सेना' नामके दो सङ्गठन और स्वीकार किये हैं। विदथ द्वारा धार्मिक जीवनकी व्यवस्था होती थी और सेना द्वारा सेनाका भीतरी शासन।

वेदोंमें आये हुए सूत्रोंके अनुसार राजा, प्रजामेंसे शासन भार उठानेके लिये २० प्रधान पुरुष नियुक्त करता था। इन बीस धुरन्धरोंकी राज-सभा दक्षिणा कहलाती थी। इसी प्रकार एक उत्तरा अमावस्याका वर्णन भी मिलता है जो साधारण सभाकी अन्तरङ्ग सभा थी। 'इसको' 'कुह' नामक गुप्त सभाके नामसे भी सम्बोधित किया गया है। इसमें राजा स्वयं १६ या २० अमात्यों सहित राष्ट्रके कार्योंपर विचार कर व्यवस्था करता था। इनके अतिरिक्त एक अनुमति सभाका भी वर्णन मिलता है। जो आदमी जिस कामके करनेकी क्षमता रखता हो या जो जिस कामको करना चाहता हो, उसे यह सभा उसके लिये अनुमति देती है।

वेदोंमें साम्राज्य शब्द भी बहुतसे स्थानोंपर आया है और बहुतसे सूत्रोंमें राजाको युद्धके लिये प्रेरणा देने, शत्रुओंका नाश करने और राज्य बढ़ानेका आदेश है। ऐसी स्थितिमें यह प्रश्न स्वाभाविक है कि जीते हुए राज्योंमें शासन किस प्रकार किया जाता था? ऋग्वेदके सूत्रमें स्वराजका वर्णन मिलता है। इससे मालूम होता है कि राज्यमें स्वराज-शासन प्रणाली मौजूद थी। बहुतसे स्थानोंमें साम्राज्य, सम्राट, तथा शासक शब्द भी आया है। बहुतसे स्थानोंमें 'राजन्य' शब्द भी मिलता है। ऋग्वेदमें आये हुए एक सूत्रसे ज्ञात होता है कि राजा अपना राज्य तभी बढ़ा सकता था जब कि राज-सभासे उसे अनुमति मिल जाती थी। बड़े राजाका अभ्युदय तभी सम्भव था, जब कि वह राज-सभा समस्त राष्ट्रके अधीन शासकोंका चुनाव करके राज्य करनेको उद्यत होता था। इससे यह प्रकट होता है कि प्रान्तोंके शासक चुने हुए होते थे और राज्य-विस्तार सभाकी अनुमतिसे होता था।

सभा और समितिमें प्रत्येक सदस्यको बोलने और अपने विचार प्रकट करनेकी पूर्ण स्वतन्त्रता थी। वर्गसके अनुसार लोकतन्त्री शासनके नागरिकोंमें जो गुण होने चाहिये वे सभी उस कालके आर्योंमें थे। उस समयकी शासन व्यवस्था पूर्ण लोकतन्त्री थी। असभ्य व्यक्ति ऐसी व्यवस्थाका आभास मात्र भी नहीं पा सकते थे।

अनुरोध

(१)

बजा हृदय वीणा मेरी
होता है संघर्ष परस्पर
एक एक कर तार बराबर
टूट रहे तू सजा सजा कर
भर उनमें अपना नूतन स्वर
गा, मैं सुनूं रागिनी तेरी
बजा हृदय वीणा मेरी

(२)

जगमें महा मोह था छाया
मद मत्सरताकी थी माया
तूने अमर गीत तब गाया
आज, आज फिर वह दिन आया
गा, मैं सुनूं रागिनी तेरी
बजा हृदय वीणा मेरी

(३)

राज्य कर रही है बर्बरता
रावणकी पशुता दानवता
सहमी सी फिरती मानवता
कवि! तू जगा सत्य सुख, समता
गा, मैं सुनूं रागिनी तेरी
बजा हृदय वीणा मेरी

(४)

देव! रामको तू फिर ला दे
वही, उसी युगकी छबि छा दे
आकुल है बसुधा, समझा दे
गा दे, हां, 'मानस' फिर गा दे
गा, मैं सुनूं रागिनी तेरी
बजा हृदय वीणा मेरी

(५)

नभमें राग, राग हो छाये
लय लहरावलिमें लहराये
स्वर सौन्दर्य-सृष्टि बन जाये
गीत शांति सुषमा सरसाये
गा, मैं सुनूं रागिनी तेरी
बजा हृदय वीणा मेरी

—श्रीरत्न शुक्ल

हमारी दान प्रणाली

प्रो० शिवपूजन सहाय

दरिद्रान्भर कौन्तेय मा प्रयच्छेश्वरे धनम्।
व्याधितस्यौषधं पथ्यं नीरुजस्य किमौषधैः ॥*
—महाभारत

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्विकं विदुः ॥×
—भगवद्गीता

हमारे देशमें दानकी बड़ी महिमा गायी गयी है। भारतीय धनिकोंकी दानशीलताका वर्णन भारतीय साहित्यमें भरा पड़ा है। प्राचीन ग्रन्थोंमें बड़े-बड़े दानवीरोंकी कहानियां मिलती हैं। आज भारत पराधीन, पददलित और शोषित है। तब भी यहां आज अनेक आदर्श दानवीर हैं, यह मानना पड़ेगा। सारे देशमें नाना प्रकारके अभावोंका बोलबाला है। जनताकी दरिद्रता पराकाष्ठाको पहुंच गयी है। क्षुधा और रोगसे प्रपीड़ित असंख्य मनुष्य अकाल मृत्युके शिकार हो रहे हैं। पशुधनका भीषण ह्रास हो रहा है। फिर भी तीर्थोंमें प्रति दिन लाखों रुपये लुटाये जा रहे हैं, दान धर्मके विविध कर्म नित्य होते ही रहते हैं। मन्दिरों और धर्मशालाओंके निर्माणकी प्रवृत्ति भी सजीव है, भले ही उनके संरक्षण और सुप्रबन्धकी ओर निर्माताओंका ध्यान पर्याप्त न हो। परलोक संवारनेके लिये तो अगणित प्रकारके छोटे बड़े दान अहर्निश हो रहे हैं। किन्तु हमारी दान-प्रणालीमें सामयिकताका सर्वथा अभाव है। युगकी मांग पूरी करनेवाले दान बहुत ही कम देखे सुने जाते हैं। युगधर्मकी पुकार सुननेवाले दानी उङ्गलियोंपर गिन लिये जा सकते हैं। किस प्रकारके दानसे देशकी वर्तमान स्थितिमें सुधार होगा—दुर्दशाग्रस्त देशका उद्धार होगा, इसपर केवल गिने-चुने दानियोंका ही ध्यान है। अधिकांश दानी देशकी वास्तविक दशासे अनभिज्ञ और असावधान हैं। देशकी भलाईके कितने ही कामोंके लिए समय-समयपर जो लाखों या करोड़ों रुपयेका चन्दा मिलता रहता है, वह स्वेच्छानुसार किया हुआ दान नहीं है, तथापि प्रेरणा और प्रोत्साहनसे जो दान किया जाता है वह भी प्रशंसनीय ही है। किन्तु दान करनेके लिये जो स्वतः प्रवृत्ति हममें होती है या है, उसके आगे विवेकका आलोक होना अत्यन्त आवश्यक है। आत्म-कल्याण और व्यक्ति कल्याणके लिये जो लोग दानधर्मका आचरण करते हैं उन्हें समझना चाहिये कि लोक-कल्याणमें ही व्यक्ति कल्याण भी निहित है। हमारे अधिकांश दानियोंमें लोकसंग्रहकी भावना उद्बुद्ध नहीं हुई है और जबतक उनकी दान-धर्म-परायणता लोक-कल्याणके निमित्त स्वतः प्रवृत्त न होगी, तबतक वे स्वदेशके लिये उपकारी या हितकर नहीं सिद्ध हो सकते।

आज देशमें नये-नये मन्दिरोंकी आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता है पुराने मन्दिरोंके संरक्षण अथवा जीर्णोद्धार की। देशमें ऐसे असंख्य मन्दिर हैं जिनके साथ कोई देवोत्तर सम्पत्ति नहीं लगी हुई है। नगरों और ग्रामोंमें अनेक ऐसे 'अनाथ' मन्दिर देखे जाते हैं जिनमें देवता बेचारे असहाय दशामें पड़े हुए हैं। ऐसे मन्दिरोंके निर्माता स्वर्गमें किस दशामें होंगे, यह तो शास्त्रोंसे पूछिए, पर मानव-हृदय तो यही कहता है कि ऐसे मन्दिर-निर्माताके लिये नरकके भी द्वार बन्द ही होंगे। यदि हिन्दू-महासभा या सनातन धर्म सभा ऐसे असहाय मन्दिरोंकी तालिका तैयार करे तो प्रत्येक प्रांतमें हजारों उपेक्षित देव स्थान मिलेंगे। आश्चर्य तो यह है कि जिन तीर्थ स्थानोंमें पहले हीसे अनेक बड़े-बड़े मन्दिर हैं वहां भी फिर नये-नये छोटे-बड़े मन्दिर बनते जा रहे हैं। ऐसे पुण्यात्मा पुरुषोंको देशमें केवल मन्दिरोंका ही अभाव सूझता है। विद्यालय, पुस्तकालय, अनाथालय, पाठशाला, उद्योगशाला, गोशाला आदि जो वर्तमान युगकी अनिवार्य आवश्यकताएं हैं, उनकी ओर कभी पुण्यात्माओंका ध्यान ही नहीं जाता। देशके अनेक स्थानोंमें इन संस्थाओंकी आवश्यकता है। जहां कहीं इस तरहकी संस्थाएं हैं भी, वहां उनकी स्थिति सन्तोषजनक नहीं है। किन्तु धनीमानी सज्जन अपने आस-पासकी संस्थाओंकी दुर्गति देखते हुए भी अनावश्यक दानपुण्यमें धन व्यय करते जाते हैं। देशके अधिकांश बड़े-बड़े दानवीरोंकी दृष्टि भी देशके महानगरोंमें ही रमती हैं, असंख्य अभावग्रस्त ग्रामोंकी ओर झांकती भी नहीं। देशके अगणित ग्रामोंमें जलाशयोंके अभावसे कृषिकर्ममें भी बाधा पड़ रही है और ग्रामीणोंकी स्वास्थ्य रक्षामें भी हजारों गांव ऐसे हैं जहां अच्छे कूएं नहीं हैं, तालतलैया नहीं है।' जिससे गांवके गरीबोंको अपार जल कष्ट है। गांवोंमें अच्छी सड़कोंका भी अभाव है, जिससे गांवोंकी बहुत-सी उपज शहरों तक बिक्रीके लिये पहुंच नहीं पाती। युद्धोत्तर निर्माणकार्यमें सड़कोंके विस्तारकी मनमोहनी आशा झलक तो रही है, पर जब निर्माणकार्यका आरम्भ होगा तब कितने गांवोंका भाग जागेगा, यह भविष्यके गर्भमें है। गांवोंकी आवश्यकताओंकी ओर दानियोंका ध्यान जाना चाहिये। दानियोंकी कीर्त्तियां गांवोंमें जितना चमकेंगी उतना शहरोंमें नहीं। देशमें होते रहने वाले बड़े-बड़े दानोंके लाभसे अभी तक हमारे हजारों ग्राम सर्वथा वञ्चित हैं। विदेशोंके दानी अपने देशकी सामयिक मांग पूरी करनेमें कितनी तत्परता दिखाते हैं, यह हम लोग विदेशी समाचारोंमें पढ़ा करते हैं, पर तब भी हमारी आंखें नहीं खुलतीं।

हमारे देशके हजारों लाखों प्रतिभाशाली विद्यार्थी उपयुक्त सहायता न पा सकनेके कारण उन्नति पथपर अग्रसर नहीं हो पाते। बहुतसे धनी घरानोंमें प्रभूत धन फालतू पड़ा हुआ है, जिसका उपभोग करनेवाला कोई नहीं, परन्तु होनहार असहाय छात्रोंकी खोज-खबर लेनेवाला कोई नहीं। उस उपभोग-रहित धनकी राशिपर कोई वृद्धा विधवा या मरणासन्न वृद्ध अजगर बना बैठा है, जो परलोक सुधारनेकी चिन्तामें रत रहकर तीर्थाटन और मन्दिर-निर्माणका ही स्वप्न देखा करता है। इसका मुख्य कारण एक यह भी है कि धर्मके प्रकृत स्वरूपका ज्ञान बहुत कम लोगोंको है और युग धर्मका ज्ञान तो कदाचित् प्रतिशत एक ही दानीको है। वर्तमान परिस्थितिके अध्ययनसे ऐसा ही प्रतीत होता है।

गोरक्षाके लिये देशके बहुतेरे धनिकों और दानियोंने प्रशंसनीय उदारता दिखायी है, इसमें सन्देह नहीं, पर फिर भी गोरक्षिणी संस्थाओं

---

* हे युधिष्ठिर! दरिद्रोंका भरण-पोषण करो, समर्थोंको धन-दान न दो, क्योंकि जो रोगी है उसीके लिये दवा हितकर है, नीरोगको दवा देनेसे क्या लाभ? (महाभारत)

× हे अर्जुन, दान देना ही कर्त्तव्य है, ऐसे भावसे जो दान देश, काल और पात्रके प्राप्त होनेपर, प्रत्युपकार न करने वालेके लिये दिया जाता है वह दान सात्विक कहा गया है। (गीता)

का अस्तित्व अभी तक नगरों तक ही सीमित है। देहातमें बहुत ही कम ऐसी संस्थाएं हैं, जो पशुधनके संरक्षणमें दत्तचित्त हों। नगरोंकी ऐसी संस्थाएं भी अधिकतर निकम्मे पशुओंको ही आश्रय देती हैं, पशु-धनकी वृद्धिके लिये कोई विशेष प्रयत्न नहीं करतीं। कई प्रसिद्ध संस्थाएं कुछ महानगरोंमें ऐसी अवश्य हैं, जो गोवंश वृद्धि का भी उद्योग करती है, पर उनकी संख्या दालमें नमकके बराबर भी नहीं। अधिकांश संस्थाएं द्रव्या-भावके कारण गौओंकी नस्लें सुधारनेमें असमर्थ हैं, दुग्धशालाका सञ्चालन तो बहुत दूर की बात है। ऐसी असमर्थ और विवश संस्थाओंके आस-पास धनाढ्य जनोंकी कमी नहीं, दानियोंका भी सर्वथा अभाव नहीं, पर किसी धनी या दानीका ध्यान उन संस्थाओंकी ओर नहीं जाता, बल्कि वे तो अपने ही पाप-तापसे त्रस्त होकर परलोकके लिये हाय-हाय करते हुए अन्धाधुन्ध लकीर पीट रहे हैं। राष्ट्रका कितना धन व्यर्थ नष्ट हो रहा है, यह कूता नहीं जा सकता। फिर भी अनुमानतः यह कहा जा सकता है कि प्रतिवर्ष करोड़ों रुपये परलोकके बैंकमें जमा हो जाते हैं और इहलोक बेचारा मुंह ताकता रह जाता है।

ऐसी शोचनीय स्थितिमें यह कहना असङ्गत न होगा कि देशके धनी और दानी व्यक्ति यदि व्यापारिक दृष्टिसे भी लोक-हितकर कार्य करने पर उतारू हों, तो देशका कुछ कम उपकार न होगा। गरीब पर होनहार विद्यार्थियोंकी प्रतिभाका देशहितार्थ सदुपयोग करनेके लिये ऐसी बीमा कम्पनियोंकी आवश्यकता प्रत्येक प्रान्तमें है, जो मेधावी छात्रोंके विकासमें सहायक हो सकें। अनाथों, विधवाओं और अन्धे-लंगड़े, लूलों तथा भिखमङ्गोंके लिये ऐसी उद्योग शालाएं खोली जा सकती हैं, जिनके द्वारा उन असहायों और अपाहिजोंका तो भरण-पोषण होगा ही, उनके हस्त शिल्प कौशलसे व्यवसायिक लाभ भी यथेष्ट ही होगा। आदर्श-स्वरूप ऐसी कुछ संस्थाएं देशमें यत्र-तत्र हैं भी, पर अनेक स्थलोंमें ऐसी संस्थाओंका सर्वथा अभाव है। जहां-तहां ग्राम-समूहोंका एक मण्डल बनाकर उपयुक्त केन्द्रस्थल में कृषिक्षेत्र (फार्म) खोले जा सकते हैं, जिनमें समीप वर्ती कृषकोंके सहयोगसे भी लाभ उठाया जा सकता है अथवा वैज्ञानिक रीतिसे खाद और सिंचाईके प्रयोगोंको प्रदर्शित करके किसानों को उपज बढ़ानेके उपाय सुझाये जा सकते हैं। वैज्ञानिक पद्धतिसे पशुपालनका निदर्शन भी ग्रामीणोंके लिये बड़ा हितकर सिद्ध होगा और इसके द्वारा पशुधनकी वृद्धि तथा दुग्धशालाका व्यवसाय भी चलता रहेगा। तात्पर्य यह कि इसी तरहके अनेकानेक उद्योग धन्धे व्यापारिक शैली से चलाये जा सकते हैं। इससे एक पन्थ दो काज सिद्ध होंगे। यदि इतना भी हो तो देशकी आर्थिक स्थितिमें बहुत कुछ सुधार हो सकता है। देशके दानशील और सम्पत्ति शाली व्यक्तियोंको महाभारत और गीताके पूर्वोक्त श्लोकोंपर विशेष गम्भीरता पूर्वक विचार करना चाहिये।

———

पुलिसकी दफा

श्री यशपाल

पंजाबके स्कूलोंमें गरमीकी छुट्टियां बरसातमें-जुलाई अगस्त-में होती हैं। गांव पहुंचनेसे पहले ही सब ओर गहरी हरियाली छायी रहती है। स्टेशनसे कसबा तक कच्ची, पक्की सड़ककी दोनों ओर धान और मक्का खेतोंमें घुटनों तक बढ़ आती हैं। सड़क किनारे गढ़ोंमें गदला जल ताल तलैया के रूपमें भर जाता है।

बन्देगढ़ कांगड़ेके पहाड़ोंकी तराईमें एक बहुत छोटा सा कसबा है। आस पासके पहाड़ी गांवोंसे लोग मक्का और धान बेच गुड़, नमक, तेल तम्बाकू और वस्त्रादि खरीद ले जाते हैं। दो तीन दुकाने बजाजोंकी हैं, दो चार सुनारोंकी। राधे पसारी जनरल मर्चेण्ट और हकीम भी है। अजवाय , जीरा, लालटैन और किसानोंके औजारोंके लिये कच्चा लोहा तक बेचता है। कसबेमें डाकखाना, थाना, और प्राइमरी स्कूल भी है।

गांव भरमें मैं ही अकेला व्यक्ति हूं जिसने होशियारपुर और जालन्धर जाकर बी० ए० की डिगरी हासिलकी है और अब फगवाड़ेके हाई स्कूलमें मास्टर हूं।

मानसिक रूपसे मैं कूप मण्डूक नहीं। जानता हूं, यह संसार विशाल और विस्तृत है, रोचक और रहस्यमय है। स्कूलमें लड़कोंको भूगोल पढ़ाता हूं। गरमियोंके दो मासके अवकाशमें स्वीडन जाकर मध्यरात्रिके सूर्यके दर्शन नहीं कर सकता, वेनिस की गलियोंमें गण्डोलाकी सैर भी नहीं कर सकता, परन्तु इस विस्तृत और विचित्र देशमें भी बहुत कुछ है। कराची, बम्बई, मद्रास और पुरीमें समुद्र तट है। उससे भी समीप पेशावरमें खैबरका ऐतिहासिक दर्रा है और स्वर्गकी उपमा पाने वाला काश्मीर है। मैं अभी तक सैंकड़ों राजवंशोंको निगल जाने वाली अपने देशकी राजधानी दिल्ली भी नहीं देख पाया।

तीन वर्षसे छुट्टियोंके अन्तमें, जब अपने सीमित संकुचित कसबेसे उकता जाता हूं, आने वाली छुट्टियोंमें कश्मीरजाकर शिकारेपर निशात, शालीमार और मार्तण्डकी सैर करनेका निश्चय करता हूं। पहलगांव, गुलमर्ग, कुकड़नाग वैरीनाग सब मुझे याद हैं। परन्तु छुट्टियोंके एक सप्ताह पूर्वसे ही बन्देगढ़का आकर्षण प्रबल हो जाता है। विचार बदल जाते हैं। रक्खा हलवाईकी धुएंसे काली ततैयों और बरैयोंसे छाई दूकान गुलमर्गके फूलोंसे भरी उपत्यकाओं और अधित्यकाओं से कहीं अधिक चित्रमय और मोहक बन जाती है। उसकी दूकानके गुड़के सेव और तेलके पकौड़े कश्मीरके बागोंकी चेरी, बगूगोशे और सेवोंसे अधिक आकर्षक बन जाते हैं। राधे पंसारीका चूर्ण डा० साहके कार्मिनेटिव मिक्स्चरसे अधिक विश्वास योग्य जान पड़ने लगता है। मुरली सुनार अपने चांदीके चश्मेको सूतसे ४५° अक्षांश पर साधे मेरी प्रतीक्षामें धसकाता जान पड़ता है, हां, अब तो बम्बई और विलायत जाओगे, हाथ गन्दा करनेको हमारी ही दुकान रह गयी थी! कादन सिंह अपने पके गलमुच्छे संवार कर कहेगा, अब नहीं कहानी सुनोगे, क्यों? उसकी रहस्यमय कहानियां याद आने लगती हैं। फिर दादी...इस वर्ष जिन्दा हैं, अगले वर्षका क्या ठिकाना...यह तो सृष्टिका क्रम है। बुजुर्गोंकी छत्र छाया सिरपर बनी रहते, पत्नी और एक वर्ष के बच्चेकी यादकी बात कहना ढीठपना है। सब लोग जानते हैं वे हैं, पर मेरा व्यवहार ऐसा है, जानो वे हैं ही नहीं।

गांवमें मेरी एक स्थिति है और आदर भी है। वहांकोई मेरी उपेक्षा नहीं करता। जाते ही सब लोग आन्तरिकता और चिन्तासे स्वास्थ्यका हाल और दूसरी बातें पूछते हैं, मानों वर्ष भर मेरे विछोहसे

वे कलपते रहे हैं। वर्ष भर स्कूलमें लड़कोंकी सन्दिग्ध और शिकायत भरी, हेड मास्टरोंकी हुकूमत भरी और दूसरे सहयोगी मास्टरोंकी प्रतिद्वन्द्विता भरी दृष्टियोंसे मन इतना विषण्ण हो जाता है कि अपनी प्रतीक्षामें बिछी बन्देगढ़की आंखोंमें आ विश्राम पाये बिना जीवन सम्भव नहीं जान पड़ता। फिर वही सब बातें, जिनसे छुट्टियां समाप्त होनेके पहले उकता जाता हूं। मकानके निचले बरामदेमें मोढ़ेपर बैठे बैठे पुरानी पाठ्य पुस्तकोंको पढ़ते रहना, कलम सिंहकी खपरैलकी छाजनपरसे पीपलके पत्तोंको हिलते देखते रहना और उससे बहुत दूर ज्वालामुखीकी पहाड़ियोंकी हाष्ट सी रेखा। गलीमें बरसातका कीचड़, फसल और महम्देकी चीनी बत्तखोंके झुंडका एकके पीछे गलीके पूर्वसे पश्चिम और पश्चिमसे पूर्व दाने दुनके और गिलाजतकी खोजमें धावे करना, पत्थर मढ़ी गलीमें पहाड़से आने जानेवाले खच्चरों का गुजरना। सन्ध्या समय बिशन भड़भूंजेके छप्परसे धुएंके बादलोंके साथ ताजे भुनते चने, और मक्का की खीलोंकी सोंधी-सोंधी गन्ध। बिशनकी भट्टीके सन्मुख गली और आस पासके मुहल्लेके बच्चोंका जमघट। उनकी महीन और तीखी आवाजें,कल्लू, नरायन' मत्ती, खिज्जू, रहीमा जिन्हें मैं प्रति वर्ष बालिश्त बालिश्त भर बढ़ता देखता आया हूँ, फिर वही सब कुछ, अदम्य आकर्षण बन्देगढ़ खींच लाता है, और फिर मैं उनसे उकताने लगता हूं।

बन्देगढ़ आये डेढ़ सप्ताह गुजर गया। दोपहर की नींदके बाद जम्हाइयां लेता नीचे बरामदेमें मोढ़ेपर आकर बैठा था कि पूर्वकी ओरसे गुरो छोटी सी पोटली कांखमें दबाये आती दिखायी दी।

जम्हाईसे खुले जबड़ोंको वशमें कर पूछा-'भाभी कब आ गयीं ?'

कलम सिंह पिछले वर्ष भरती होकर लामपर चला गया था। हर महीने उसका मनीआर्डर घर आ जाता था। मनी आर्डर गुरोके नाम आता था। गुरोकी सास इस बातसे बहुत बिगड़ती। उसका कहना था- लड़केका व्याह कर उसे खो दिया। काली चोटी वालीने लड़केको जाने क्या कर दिया कि उसीका हो रहा। मां कुछ भी न रही।

पिछले तीन महीनेसे कलम सिंहकी कुछ खबर नहीं आ रही थी। मां को सन्देह था' बहू ने उसे रुपये भेजने और खत लिखनेको मना कर दिया है।बेटेके प्रति अपना क्रोध वह बहूपर झाड़ती। दुपट्टा गलेमें डाल वह गली किनारेकी खिड़कीके पास बैठ जाती और हाथ बढ़ा कर घंटों कोसती रहती। तूने यह किया, तूने वह किया, तूने उसे सिपाही बना लामपर भेज दिया, जल गया तेरा पेट जो मेरे बेटेकी कमाईसे नहीं भरा, तेरी कोखमें पत्थर भरे हैं, तेरे मां, बाप ऐसे, तेरे मायके वाले वैसे—।'

छुट्टियोंमें गांव आनेपर सुना था, परेशान हो गुरो अपने मायके, भुरोवाल चली गयी है। सहसा उसे सन्मुख देख पूछा—

'क्या अकेली ही ?'...कुशल तो है ?'

'हां' वीर'- (भैया)-वो लोग आने नहीं देते थे। भाई कहते थे, रखड़ी (राखी) के बाद जाना। रखड़ीसे पहले हम छोड़ने नहीं जांयगे ! एक बहन है, उसे सावनमें कैसे घरसे निकाल दें। मेरा दिल नहीं माना। तीन महीने हो गये। लाम परसे तुम्हारे भाईकी कोई खबर ही नहीं आयी। चिट्ठी तो इसी पतेसे आती है। क्या करूं चिट्ठी आती है तो सास दबा लेती हैं। मेरा दिल नहीं माना, चलूं देखूं कोई खबर आयी हो !' तुम कब आये ? इधर कोई चिट्ठी तो नहीं आयी ?'

विश्वास दिलाया- नहीं इधर दस दिनके भीतर तो नहीं आयी। आनेपर कलम सिंहकी मां मुझीसे तो पढ़ा कर सुनती। जब चिट्ठी आयेगी मैं तुम्हें जरूर खबर कर दूंगा।

पहाड़का आंचल होनेसे बन्देगढ़में वर्षा अधिक होती है। पहाड़ोंपर चढ़नेसे पहले बादल पर्वत श्रेणियोंसे टकरा कर छलक पड़ते हैं। प्रायः दोपहर भर बादल बरसता रहता।उस समय खपरैलोंपर पड़ती वर्षाकी गूंजमें ऐसी नींद आती है जैसे कोई थपकी देकर सुलारहा हो। दोपहरकी नींदके बाद नीचे आ देखता गुरो अपने पुराने अभ्यासके अनुसार दोपहरमें मेरे निचले बरामदेके सामने अपनी खिड़कीके सामने चर्खा कातने बैठी है। मेरी दृष्टि प्रायः उस ओर जाती। उसका उदास पीला चेहरा, मैला सा कुरता और लाल छींटकी सिलवार और सिरपर बेपरवाहीसे समेटा हुआ दुपट्टा। कभ गलीमें आहट पा आकाशसे पृथ्वीको छूती जलके तारोंमें से उसकी दृष्टि मेरी ओर भी हो जाती है। पहचान पानेकी एक हल्की सी मुस्कराहट, बादलोंमें से पल भरको झांक जानेवाली धूपकी भांति आकर विलीन हो जाती। सावनकी उस सूनी श्यामल दुपहरियाको किसी परस्पर रहस्यमें बितानेका प्रोत्साहन गुरोंके उदास मुखसे न मिला। वह यों भाव शून्य होकर चर्खा चलाती रहती, मानों वह चर्खेका ही अङ्ग है।

तीसरे पहर डाकिया इलाही मियां छोटे-छोटे लड़के-लड़कियोंका गोल पीछे लिये बोली-ठोली मारते हमारी गलीसे गुजरे। एक पोस्टकार्ड मेरे लिये था। साढ़े तीन महीने बाद कलम सिंह की भी चिट्ठी आयी। डाकियेको देख बुढ़िया हांफती हुई ऊपरकी छतसे उतरी और चिट्ठी ले पढ़ाने मेरे यहां आ गयी। गुरो ऊपरकी खिड़की से देखती रही।

अपने नाम आया पोस्टकार्ड पढ़ सकूं, इससे पहले अनेक आशीर्वाद दे बुढ़ियाने अपना सरकारी मोहरका लिफाफा मेरे हाथमें दे दिया। कठिनतासे वह दुखदाई समाचार बुढ़ियाको सुनाया। कलम सिंह लामपर खेत हो गया था। बारह रुपया महीना गुरोके नाम कलम सिंहकी पेन्शन का हुकुम भी था।

बुढ़िया चीखमार, पछाड़ खा वहीं गिर पड़ी। ऊपरसे मेरी दादी उतर आयीं। अगल बगलके मकानोंसे, राम लाल और शेर सिंहके घरकी स्त्रियां निकल आयीं। और भी बूढ़ें बुढ़ियां एकत्र हो सिर और कपड़े नोचती, छाती पीटती कलम सिंहकी मांको सम्भालने लगीं। मैंने एक बार ऊपर गुरोकी ओर देखा वह अपने चर्खेके सामने निश्चल बैठी थी।

कलम सिंहके मकानमें कसबे भरके बूढ़े बुढ़िया पल पल भर बैठने आये और आखें पोंछते बुढ़ियाको सान्त्वना दे चले गये। चार पांच दिन तक उस खिड़कीसे समय असमय बुढ़ियाका विलाप सुनाई देता रहा। गुरोके रोनेका स्वर नहीं सुनाई दिया। बुढ़ियाके विलापमें सीठने (मृतककी प्रशंसा) कोसने सभी शामिल थे। उस हृदय विदारक चीत्कारके कारण अपने निचले बरामदेमें बैठना सम्भव न होता। निरन्तर वर्षा के कारण कहीं जाना भी कठिन था।

दो सप्ताहसे अधिक गुजर गया। पहले पहर आकाश खुलकर धूप फैल रही थी। बुढ़िया आयी। उसकी आंखें सूजी हुई और लाल थीं। कलमसिंहकी मृत्युके समाचारका बादामी सरकारी कागज और तहसीलके नाम पेन्शनके हुक्मका कागज ले किसी तरह जीना चढ़ कर वह हमारे यहां ऊपर ही पहुंची।

मेरी सौ बलायें अपने सिर ले, बुढ़ियाने फिर से कागज पढ़ा कर सुना। निरंतर बहते आंसुओं को दुपट्टेसे पोछनेका व्यर्थ प्रयत्न करते हुए पूछा,

पेन्शनके लिये मैं कहां जाऊँ? गुरो के प्रति संकेत कर बुढ़िया ने कहा—उसका क्या है उसके मायकेमें सब कुछ हैं। वह जवान है, उसके हाथ पैर चलते हैं, उसे क्या फिक्र है? मेरा तो सहारा वही लड़का था। इस कोख से तीन लड़के पैदा किये। यही एक बचा था। उसे भी डायन खा गयी। शंकर खत्री शंकर गड़ जा रहा था उसी के साथ जाने की बात कह बुढ़िया चली गई।

भादों जा रहा था। बादलोंका रंग गहरा हो गया। गर्जन अधिक और वर्षा कम होने लगी। गुरोके चेहरे पर आने जाने वाली मुस्कराहट की धूप भी विलीन हो गयी। कलम सिंहके छप्पर के निचले तल्ले में शंकर खत्री गुड़ भर लेता था। ऊपर खपरैल की छत के नीचे की कोठरी में उस खिड़की के अतिरिक्त बैठने की और जगह न थी। गुरो अब भी वहीं बैठी रहती। तेरहवीं के बाद से उसने फिर चरखा भी रख लिया। चरखे से तार भी खींचती ही थी। अब नीचे गली में आहट सुन उसकी दृष्टि उधर न जाती और कभी उधर देखने लगती तो वहां देखने को कुछ न होने पर भी देखती ही रहती। जो कुछ वह देखती थी वह गलीमें नहीं उसके मन में ही था। मैं अब भी कभी उसकी ओर देख लेता परन्तु देखने से दुख सा होता और दृष्टि टिक न पाती।

वही तीसरे पहर का समय था। गुरो अपनी खिड़की में और मैं निचले बरामदे में। एक गहरी बौछार बरस कर पानी थम गया था! गुरो अपनी खिड़की की चौखट से सिर टिकाये नीचे गली की ओर आंखें किये बैठी थी। मेरी दृष्टि उसकी ओर गयी और फिर नीचे गली में।

वर्षाके बाद फजल और महम्दकी चीनी बत्तखें अपने चौड़े झिल्लीदार पंजों पर अपना बदन तौलतीं, चारे की खोज में गली में निकल पड़ीं। चौक की ओर से माल से लदे खच्चर भी गले में बंधे घुंघुरू बजाते चले आ रहे थे। बत्तखें खच्चरों से बिदक कर इधर उधर हो जातीं। सहसा एक खच्चर का सुम एक चीना बत्तख की पीठ पर पूरा पड़ गया। खच्चर निकल गया। बत्तख छटपटायी। पर फड़-फड़ा, अपनी पीली चोंच खोल बत्तख ने श्वास लेने का यत्न किया और ठण्डी हो गयी।

खच्चर ने नहीं समझा क्या हुआ। खच्चर वाले ने देखा। खिजलाहट से एक ओर घूम बत्तख को गाली दे बत्तखों के मालिक के पहुंच जाने से पहले ही निकल जाने के लिये, खच्चरों को जल्दी से हांकता हुआ निकल गया।

दुर्घटना से बत्तख का यों मर जाना अच्छा नहीं लगा। उधर से दृष्टि हटानेके लिये गुरो की खिड़की की ओर देखा—वह वैसे ही निश्चल चौखट से सिर टिकाये, अब भी कुचली हुई बत्तख को देख रही थी। दृष्टि फिर उसी ओर लौट गई।

खच्चरों के सुमों से बिदक कर भाग गयीं बत्तखें घटना स्थल पर लौट आयीं। उन्होंने कुचली हुई बत्तख को घेर लिया। उसे सूंघ, चोंच से उसके पर सहला, उसे सचेत कर सकने के यत्न में असफल हो एक एक कर वे मृतक बत्तखको छोड़ कर चली गयीं। रह गई केवल एक बत्तख जो अब भी अपनी चोंच कुचल गई बत्तख की चोंचमें दे उसे उठानेका प्रयत्न कर रही थी। अब भी अपने पंजों से निश्चेष्ट बत्तखके शरीर को सचेत करने का यत्न कर रही थी। अपने मृतक साथी की उपेक्षा से यह बत्तख व्याकुल हो कुरला उठती परन्तु उसे छोड़ कर जा न पाती। मन में करुणा का उच्छ्वास सा उठ आंखें सजल हो आयीं। उस ओरसे दृष्टि चुराने के लिये गुरो की ओर देखा। वह अब भी अपलक बत्तखों के व्यवहारको देख रही थी। उसकी स्थिरता से चुप हो आंख या नाक पर आ बैठने वाली मक्खियों को उड़ा देने के लिये उसका हाथ हिल जाता था।

गुरो की दृष्टिका अनुसरण कर आंखें फिर बत्तखों के जोड़े की ओर चली गयीं। कुचली हुई बत्तख के बिछोह में वह जीवित बत्तख पागल हो गई। प्रेम और प्रणय के उपचारों के बाद भी अपने जोड़े को अचल देख बत्तख कुड़-कुड़ा कर प्रणय की अन्तिम क्रिया में व्यस्त हो गई। उस ओर देखते अच्छा न लगा, विशेष कर एक स्त्री की दृष्टि के सामने। आंखें फिरा लीं परन्तु झुकी हुई दृष्टि गुरो की खिड़की की ओर से घूमकर लौटी। वह अब भी उसी प्रकार निस्संकोच मृतक और जीवित बत्तख के जोड़े की केलि क्रिया को देख रही थी। गुरो के प्रति सहानुभूति होने पर भी उसका वह निस्संकोच और फूहड़पन भला न लगा। मोढ़े से उठ मैं ऊपर चला गया।

कुछ देर बाद कलमसिंह की मां की पुकार सुनाई दी। वह बहू पर बिगड़ रही थी, सांझ होनेको आई, थकी मांदी लौट कर क्या पानी लेने भी मुझे ही जाना होगा?

देखा गुरो अब भी चौखट से उसी प्रकार टेक दिये बैठी है। बिलकुल स्थिर। सासकी बात जैसे उसने सुनी ही नहीं। उसकी वह स्थिरता भयानक सी लगी। उसी पल कलम की मां सिर पीट कर चीखती सुनाई दी 'हाय मैं उजड़ गई...!'

चोट खा हृदय धक से रह गया। दृष्टि फिरा ली। नीचे पत्थर मढ़ी गली में दिखाई दिया वही बत्तखों का जोड़ा! कुचली हुई बत्तखके ऊपर ही उसका साथी निर्जीव पड़ा था। उस समय उन क्षुद्र जीवों की ओर क्या ध्यान जाता!

गुरो की सास के विलाप से पड़ोस से स्त्रियां और मर्द आजुटे। अनेक प्रकार से बुढ़िया के दुर्भाग्य और शोक की चर्चा थी। मुझे भी जाना पड़ा। रामलाल ने बिना किसी के कहे कफन का कपड़ा ला दिया। शंकर खत्री अर्थी के लिये बाँस, फूस और रस्सी ले आया। दुर्भाग्य से उसी समय फिर बूंदें आ गयीं। धीरे धीरे अर्थी बन रही थी और चर्चा चल रही थी बदकिस्मत की। मरना तो था ही, दस रोज पहले ही मरती! नसीबन सुहागन तो मरती। अर्थी पर फुलवारी पड़ जाती। पानी रुका तो अँधेरा हो गया था।

श्मशान दूर था। फिर भी मुहल्ले में किसी गरीबका मुर्दा पड़ा रहे, यह कैसे हो सकता था। लालटैन जला ली। लोग अर्थी पर कंधा लगाने को ही थे कि हवल्दार साहब ने आ दारोगा साहबका हुक्म सुनाया। 'लाश बिना तहकीकात के नहीं उठ सकती।'

बेबस लोग इधर उधर खिसकने लगे। दारोगा साहब स्वयं कुछ दूरी पर खड़े रहे। रामलाल, शंकर खत्री और मैंने आगे बढ़ दारोगा साहब से बातें कीं।

दारोगा साहब को मामले में शुबह की गुंजाइश जान पड़ती थी। मरहूमा को कोई बीमारी नहीं थी। सुबह के बक्त पीपल वाले कुएँ से पानी का घड़ा लाते उसे देखा गया था। बुढ़िया का सलूक उसके साथ अच्छा नहीं था। मरहूम सिपाही ने अपनी पेंशन का वारिस अपनी बीबी को मुकर्रर किया था। बुढ़िया इससे खुश नहीं थी। 'साहब क्या किया जाय; हमें अफसोस है ऐसे वक्त सङ्गदिली से काम लेना पड़ता है लेकिन जुर्म की तहकीकात करना पुलिस का फर्ज है।

पिछले दारोगा साहब होते तो बात और थी। रामलाल, शंकर खत्री और हमारे अपने लाला जीका उनसे रसूख था। कसबेकी इज्जत रखने के लिये बीसियों वारदातें दबाई गयीं। दारोगा गुलज़ारी लाल खाने पीनेके शौकीन थे। लोग कहते थे, उनका पेट बड़ा है लेकिन आंखों में लिहाज भी था।

यह दारोगा साहब ऐसे रूखे हैं कि किसी की हिम्मत उनसे कुछ कहने की नहीं। घर के और नीयत के भी वैसे ही हैं। पहले दारोगा साहब के यहां दो भैंसें थीं, तीन नौकर थे और दो घोड़ियां। इनकी बेगम खुद रोटी थाप लेती हैं। दूधके लिये बकरी और सवारी के लिये मज़बूत एक टट्टू है। हरदम वर्दी डाटे हैं, जैसे दूसरा कोई कपड़ा ही नहीं।

लाचार हो लौट आये। रात भर नींद न आई। दारोगा को शक है कि पेंशन हथियाने के लिये बुढ़िया ने बहू को कुछ खिला दिया है। लाश होशियारपुर जायेगी। तहकीकातका मतलब है, शव की चीर फाड़ (Post Martem) बुढ़िया हिरासत में ले ली गयी थी। बुढ़िया के प्रति सहानुभूतिका विचार नहीं आया, परन्तु गुरोके शव की चीर फाड़के विचार से मन बैठा जा रहा था। दिलकी धड़कन सहसा बन्द हो जानेसे उसकी मृत्यु हो गयी थी, पर क्यों? थानेदार साहबकी तसल्ली के लिये क्या जवाब हो?

रातभर गुरो की मृत्यु के बारे में, दारोगा साहब को संतुष्ट कर सकने लायक कारण सोचता रहा। गुरो के हृदय की गति रुक कर उसकी मृत्यु हो जाने की परिस्थितियों पर गौर करते समय केवल नीचे गली में बत्तख के कुचले जाने और दूसरी बत्तख के अपने साथी के लिये प्रणयाकुल और कामातुर हो प्राण दे देनेकी ही घटना दिखाई देती थी। वही क्षुद्र जीवों का व्यापार! सहसा मनमें ख्याल आया—अपने जोड़ेकी मृत्युके दुखसे पक्षीके प्राण दे सती हो जानेकी घटनाने उसके मन पर आघात किया और वह सती हो गयी! एक सतीके शव के निरादर की बात सोच मन तड़प उठा।

शेष रात नींद न आई। सुबह उठ, दारोगा साहबको सारी परिस्थिति समझाने का निश्चय कर पड़ रहा।

दारोगा साहब रोज़-नामचा लिये बैठे थे। अंग्रेजीमें बोला इससे कुर्सी मिल गयी। गत संध्या की मृत्यु के विषय में बात शुरु की। अपनी बकर दाढ़ी को थामे दारोगा साहब प्रकट में ध्यानसे मेरी बात सुन रहे थे और "जी...जी' हुकारा भरते जाते थे।

बात पूरी होने पर उन्होंने पूछा, मास्टर साहब! आखिर आप मौतकी वजह क्या बतायेंगे?

गम्भीरता से उत्तर दिया—"विरह की पीड़ा...सदमे मुफारकत!"

'मुआफ़ कीजिये' अपनी कुर्सी पर करवट बदलकर उन्होंने उत्तर दिया—'पुलिस की दफ़ा में ऐसी कोई चीज़ नहीं है।'

सतीकी मान रक्षाके प्रयत्नमें असफल हो, पुलिसकी दफ़ाके सन्मुख सिर झुका मैं क्षुब्ध और असहाय लौट आया।

औरतोंके दर्जी

ले०—श्री अविनाशचन्द्र

मन्नासिंहने अपनी पत्नीके लिये छींटका एक सूट खरीदा।

उस दिन उसे छुट्टी जल्दी हो गयी थी। सरदार कृपालसिंहके यहां श्रीवाह गुरुकी कृपासे साठ वर्षकी उम्रमें बच्चा पैदा हुआ था और वह भी लड़का—गोरा-गोरा, लाल-लाल। जवानीमें उन्होंने बहुत कोशिश की कि तेजकौरसे, जो बड़े घरानेकी लड़की थी, कोई लड़का, जो आगे चलकर उनके बुढ़ापेकी लाठी बनेगा हो जाये, पर उनके सब प्रयत्न निष्फल गये। जब हजारके लगभग रुपये रोकड़में ज्योतिषियों, साधुओं, मुल्लाओंके नाम टके दिखायी पड़ेतो हारकर इस निश्चय पर पहुंचे कि तेज कौरसे बच्चेकी आशा न रखनी चाहिये। तब एक दिन सोते समय उन्होंने तेज कौरसे कहा—'तेजो मैं तो अब हार गया। लाख इलाज तेरे भी करवाये और अपने भी पर मालूम होता है बेटेका मुंह देखना लिखा ही नहीं है।'

तेजने सरदारकी पीठ सहलाते हुए कहा—'आप बुरा न मानें तो एक बात कहूँ?'

'कहो न! तुम्हारी बातको मैंने कभी बुरा माना भी है।'

'तुम एक ब्याह और कर लो। हमारे कुटुम्ब में एक लड़की है, जवान, शर्मीली, देखनेमें सुन्दर और बिलकुल गऊ! मैं उन्हें कहूँ तो वह मान भी जायेंगे।'

सरदार कृपालसिंह पिछले कुछ दिनोंसे स्वयं यही सोच रहे थे, उमरके साथ-साथ बेटेकी चाह भी बढ़ रही थी। जब तेजने कह दिया तो दूसरा ब्याह करनेका पक्का निश्चय भी कर लिया। महीने भरमें तेजने उनका ब्याह उस गऊसे करवा दिया जो चारा-सानीके बावजूद भी कृपालसिंह को कोई बछड़ा न दे सकी। चारा-सानी हज़्म होता देख तेजो और कृपालसिंह आह भरकर रह गये। फिर उसने सरदारजी की तीसरी शादी करवायी। सुनते हैं भैरोगढ़के महाराज प्रतापसिंहने मरते समय अपने भतीजे हरीसिंहसे कहा था,'जब तक पुत्र पैदा न हो शादी करते जाना। तेज कौर से जाने किसने कहा था, 'जब तक तुम्हारे पतिदेवके पुत्र न हो उनकी शादी करवाती जाना।' इस तीसरी बीबीसे सरदारजीके घर साठ वर्षकी उम्रमें बच्चा पैदा हो गया। पहले तो इससे भी निराशा हो चली थी पर भला हो उस चौड़ी छाती और तनी हुई मूछों वाले चपरासी मोहनसिंहका जो सरदारकी नयी बीबीको एक साधुके पास ले गया जहांसे लौटनेके ठीक दो सौ अस्सीवें दिन उनके पुत्र-रत्न प्राप्त हुआ। सो इस पुत्र जन्मकी खुशीमें खुशियां मनायी जा रही थीं और डेरीके कर्मचारियोंको एक मासकी तनखाह पुरस्कारस्वरूप दी जा रही थी।

मन्नासिंहकी जेबमें पचीस रुपयेके नये-नये नोट चुरमुर-चुरमुर कर रहे थे। बार-बार वह कोटके अन्दरकी जेबमें हाथ डालकर उन्हें सम्हाल लेता, कहता, 'अन्दर ही भले हो, पर ये बार-बार बाहर निकल आना चाहते। नये नोटोंमें न जाने यह क्या बुरी आदत है। व्हूलर ब्रदर्जसे, जिन्होंने डेरीके सामने अपना डिपो खोला था, एक युवती निकल रही थी। देखनेमें वह मोटी थी पर चेहरा आकर्षक और उसकी पोशाक भड़कीली

थी। दुकानका नौकर एक बण्डल उठाये उसके पीछे-पीछे चला आ रहा था। बड़ी दुकानोंमें अब ऐसा सिस्टम, जिसे वह होम डिलिवरी कहते हैं, बना लिया है कि पन्द्रह रुपये माहवार पर कुछ छोकरे रख लिये जाते हैं जो ग्राहकों-का सामान उनके घर तक पहुंचा आते हैं और जिनकी तनखाह कपड़ेके दाम बढ़ाकर ग्राहकोंसे निकाल ली जाती है। यह तरीका विलायतका है। इसलिये ग्राहक ज्यादा पैसे देनेमें कोई आपत्ति नहीं करते।

मन्नासिंहने सोचा उसकी बीबी भी कितने दिनोंसे बाहर जानेके लिये एक सल्वार और कमीज मांग रही है और फिर अब सौदागरसिंह के ब्याहपर भी तो जाना पड़ेगा। नये वस्त्रोंका होना जरूरी है। सब औरतें नये वस्त्र पहनेंगी, इसने न पहना तो सब यही कहेंगी,'न जाने मन्ना-सिंह कैसा आदमी है, बीबीको दो जोड़े कपड़े भी नहीं बनवा दिये। लाहौरमें इतने बड़े ठेके-दारके पास काम करता है।' वह औरतें यह सब कहते समय शायद यह ध्यान नहीं रखतीं कि लाहौर जैसे महंगे शहरमें जहां मन्नासिंह-को हफ्तेमें एक बार साबुनसे धुले कपड़े पहनने पड़ते हैं और जहां पानी भी मोल बिकता है, पचीस रुपल्लीमें बीबीके कपड़े बनवाना मुश्किल है। वह यह सोचता भी जा रहा था और उसके पैर जैसे अपने आप उस दुकान पर चढ़ते जा रहे थे जहांसे वह सात गज प्रिंटेड छींट रुपये गजके भावसे यह सोचते हुए फड़वा लाया था कि अगर अच्छा सूट सिला तो खूब खिलेगा। उसे कदाचित ऐसा ख्याल न आता। पर उसी दुकानमें खड़ी एक लड़की बिलकुल उसी कपड़ेकी कमीज पहने थी। कसी हुई कमीज जिसका गलेका आकार सामने और पीछे दोनों ओरसे V नुमा था,ऊंची एड़ीकी नोकको छूती हुई खुली-खुली सलवार और चुन्नट दिया हुआ दुपट्टा जो उसकी दो वेणियोंके बीचमेंसे सांपकी तरह पड़ा हुआ, देखनेमें बड़ा आकर्षक मालूम होता था। मन्नासिंहने सोचा यह पीछे V कबसे शुरू हुआ है। उसे क्या पता था कि दर्जी अब्बा-जानके घरसे फैशन नहीं लाते, नये पुराने मिलाकर ताजे कर देते हैं। पीठ पर V की जगह कुछ बढ़े हुए बाल भी थे जो 'न्यू वीट' से उड़ाये नहीं गये थे, इसका कारण शायद यही था कि इश्तहारमें दी हुई मेमकी तस्वीर पर पीठकी जगह 'यहांसे भी उड़ाइये'—सूचित तीर नहीं था। खैर उस लड़कीपर वह कपड़ा खूब खिल रहा था। शानोंपर भी खिल सकता है, हां, यदि अच्छी तरह सिला तो। उसने फिर एकबार उस लड़कीकी कसी हुई कमीज पर नजर डाली और यही निश्चय किया कि वह इस बार यह सूट किसी अच्छे दर्जीसे बनवायेगा। पैसे थोड़े ज्यादा भी लग जायें तो भी कोई बात नहीं। शानो खुश हो जायेगी और उसके कसे हुए गठीले शरीर पर वह सूट, कितना खिलेगा इसकी वह कल्पना भी करने लगा। इस लड़की की तो कमीज ही कसी है, उसका तो बदन भी कसा है।

बीडन रोड पर कत्थू दर्जीका बोर्ड उसने कई बार आते-जाते पढ़ा था और वहां लगी भीड़ भी देखी थी, उसने सोचा पहले वहीं चलना चाहिये। वह अच्छा दर्जी मालूम होता है। दो चार मोटर तांगें हमेशा उसकी दुकानके आगे खड़े रहते हैं। अनारकलीसे उसके पैर बीडन रोडकी ओर घूमे।

एक स्त्री जो घुटनों तक प्लशका कम्बल ओढ़े थीं, फिटनसे उतरीं और कत्थूकी दुकान पर चढ़ीं। मन्नासिंह भी, बगलमें पुराने 'ट्रिब्यून' अखबारके कागजमें लिपटा सात गज प्रिण्टेड छींट सम्हाले दुकानमें घुसे ? वह स्त्री जरूरतसे ज्यादा मोटी थी। काला रङ्ग मुंहपर कीलें और झाइयां थीं फिर भी काफी 'मेक-अप' किये थी। काले-काले ओठोंपर लाल रङ्ग लगाकर उन्हें जा-मुन-सा कर लिया था और पोपले पिचके गालोंपर सुर्खी लगाकर उन्हें बिलकुल लखनवी बैगनों जैसा बना लिया था। कोई लखनवी सब्जी बेचनेवाला उसे देखता तो शायद पूछ बैठता, 'यह बैगन किस भावमें लिया है ?' वह भड़कीले कपड़े पहने थीं। सिल्ककी गुलाबी रङ्गकी कमीज पहने थी जिसकी बाहें दर्जीने शायद गलती से लगा दी थी। कुल्चेकी तरह फूली हुई और जेलीकी तरह ढीली बाहों पर, दोनों ओर, रुपयेके बराबर बड़े-बड़े शीतला माताके टीकेके दाग थे। जिस डाक्टरने बचपनमें उन्हें टीका लगाया था उसमें इतनी दूरदर्शिता नहीं थी कि वह सोच सकता कि उसके जवान होते तक 'बांहें' बढ़ जायेंगी और बड़े-बड़े दाग भद्दे लगेंगे। सफेद लट्ठेकी सलवार और कन्धेपर चुन्नट की हुई चुनरी पड़ी थी। दूकानके अन्दर उस स्त्रीके पैर रखते ही कत्थूने, जो एक सफेद पतलून, सफेद रेशमी कमीज और वास्कट पहने था आगे बढ़-कर अभिवादन किया और सोफेमें बैठनेको कहा। दर्जीकी दूकानमें सोफे ! मन्नासिंहका ध्यान अपने घरमें धरी टीनकी साढ़े तीन टांगकी कुर्सीकी ओर गया जिसके नीचे एक ईंट रखकर उसे खड़ा किया जाता था। वह मोटी औरत सोफेमें धरे हुए एक फेशनेबल बुर्केको हटाकर बैठ गयी। सोफाकी सीट निश्चय ही जमीनसे जा लगी होगी।

कत्थूने पूछा,—'कहिये बहनजी, अच्छी तो हैं न ? आपके कपड़े बस तैयार हैं।' और फिर आवाज दी, 'अरे गामू, बीबीजीका वह ब्रोकेडका जम्पर लाना तो।'

मोटी औरतने शिकायत करते हुए कहा,—'देखूं तो कैसा सिला है ? मास्टरजी मैं आपसे बहुत नाराज हूं।'

'मुझसे ? अनजानमें कोई गलती हो गयी हो तो माफी चाहता हूं। वैसे जिस तरह मैं आपका काम करता हूँ —'

मोटी औरतने बीच हीमें बात काटकर 'अरे बातें न बनाओ। यह देखो अपने कामका नमूना और अपनी कमीजको दोनों हाथोंसे बदनपरसे उठाते हुए कहा, 'यही फिटिङ्ग है, एक आदमी और अन्दर घुस आये।'

मुंडू, गामा और नत्थू, जिन्हें उनके मां-बापने कत्थूके यहां शागिर्द रख छोड़ा था और जिन्हें कत्थू एक आना, चार चपतें और ढेर-सी गालियां रोज देता था और जो लोहा गरम करते और सिटीमें 'साडे कोलूं बटन चंगे जेड़े सीने नाल लाये ओएनी' बजाते बटन लगाया करते थे एक दूसरेकी ओर देखकर हंस पड़े।

कत्थू बोला, 'आज कल लूज फिटिङ्ग' ही पसन्द की जाती है और आप अगर 'टाइट फिटिङ्ग' चाहती हैं तो इस बार अगर ऐसी फिटिङ्ग न हुई तो हाथ काट लीजियेगा।' और उसने उस मिट्टीकी मेमकी ओर संकेत किया जिसपर लेई लगाकर उसने ब्लाऊज चिपकाया था और जो कत्थूके यहांकी फिटिङ्गका नमूना थी।

वे लड़के, जिनमेंसे एक तो बटन लगा रहा था और दूसरा लोहेमें मुंह लगाकर राख उड़ा रहा था, फिर हंस पड़े। उन्होंने एक बार उस मोटी औरतकी ओर देखा और एक बार उस मिट्टीकी मेमको।

मोटी औरतने कहा, 'अभी देख लेती हूँ।'

कत्थूने कहा, 'हां पर एक बात जान ली-

जिये। आप हमें ठीक माप तो लेने नहीं देतीं फिर थोड़ी कमी वेशी अगर रह जाय तो—'

वह मोटी औरत कल्थूको माप न लेने देती थी स्वयं फीता अपने चारों ओर लपेट लेती और कल्थू पढ़ लेता कि उनकी छाती साठ इञ्च है और कमर बासठ। पर दर्ज़ीका हाथ दर्ज़ीका है और अपना अपना। माप लेनेमें ही तो सब सफाई है। कल्थू कहता था कि यही कारण था उनकी फिटिङ्ग ठीक न होनेका।

मोटी औरतने पूछा, 'कितनी देर बैठना पड़ेगा ?'

कल्थू बोला, 'जी बस तैयार ही है।' और फिर बटन लगाते हुए छोकरेसे कहा, 'जा ये देख क्या देर है। लीजिये अभी आता है।'

छोकरेने आकर कहा, 'जी प्रेस हो रहा है।'

'अभी प्रेस हो रहा है।'

कल्थूने उस्तादाना ढङ्गसे कहा, 'इस वक्त दोबारा प्रेस किया जाता है।' असलमें उस ब्लाउज़के बटन अभी लगनेको थे और थोड़ी सिलाई भी बाकी थी। 'आप बैठिये अभी लिये आता है।'

जिनका बुर्का बाहर सोफेमें पड़ा था, ड्रेसिंग रूमसे निकल आयीं। वह देखनेमें काफी खूबसूरत थीं। कुछ खूबसूरती उनकी अपनी थी और कुछ पैसोंसे मोल ली हुई! मेरून रङ्गकी सेटिन का सूट वह पहने थीं, जो उनके गुदगुदे शरीरपर जरूरतसे ज्यादा फिट आ रहा था और मांस बाहर निकलता-सा मालूम होता था। वह अपने आपको नीचेसे ऊपर तक बराबर देख रही थीं, लोगोंकी आंखोंमें तो जंचेगा सो जंचेगा पहले अपनी आंखोंमें तो जंच ले।

उसकी ओर देखते हुए कल्थू बोला, 'देखिये क्या फिटिङ्ग आयी है। है इस माडलसे कम ? आपने ऐसी ही फिटिङ्ग तो चाही थी।' उसने फिर उस मिट्टीकी मेमकी ओर संकेत किया वह औरत बोली, 'कुछ ज्यादा कसा नहीं है क्या ?

'आप इसे कसा हुआ कहती हैं। अजी आज कलकी लड़कियां तो इसे ढीला कहती हैं ढीला। अगर कसा हुआ होता तो—'

'पीछेसे तो ठीक है न ?' उस औरतने कहा और पीठ करके खड़ी हो गयी।

कल्थूने कहा, 'ऐसी फिटिङ्ग इत्तफाकसे ही आती है। सब कोई पूछने न लगे तो कहियेगा।'

वह औरत घूमकर खड़ी हो गयी। कल्थूने पूछा, 'बन्द करवा दूं ?'

उसने कहा, 'नहीं। मैं यही पहने रहूँगी। आप वह बन्द करवा दें।' और मोटी औरतके पास पड़ा हुआ बुर्का उसने उठाया।

मन्नासिंह, जो अभी दरवाजेमें खड़ा था, सोच रहा था, जाने यह मुसलमान लड़कियां क्यों ऐसे कपड़े पहनती हैं और क्यों ऐसा मेक-अप करती हैं। ऊपरसे उन्हें बुर्का तो ओढ़ना ही है फिर यह सब किस काम! पर नहीं, अपने मियांको खुश करनेके लिये ही शायद यह सब कुछ करती हैं।

बुर्का पहन कर वह बोली, 'आप यह कपड़े और बिल घर भिजवा दीजिये। मैं इस वक्त कहीं बाहर जा रही हूँ और बुर्केकी नकाब गिरा कर वह बाहर हो गयी।

मन्नासिंह अभी छींट बगलमें दबाये दरवाजेपर इस इन्तजारमें खड़ा था कि कब यह औरतें निकलें और कब वह कल्थू दर्ज़ीसे पूछे कि वह उसकी बीबीके सूटकी बढ़िया सिलाईका क्या लेगा। उन औरतोंके सामने जो ऐसे बढ़िया कपड़े पहने थीं, ऐसा मेक-अप किये थीं, जो बार-बार नजर उठाकर उसकी भूरी दाढ़ी और कजरारी आंखोंमें एक अजीब ढङ्गसे देख लेती थीं, वह यह प्रश्न करते समय जरूर झिझक जायेगा। 'मा' पर वह बहुधा अटक जाता है और कल्थूको 'मास्टरजी' कहना बहुत जरूरी है। उस बुर्केवाली औरतके चले जानेपर उसे थोड़ी आशा बंधी, अभी यह मोटी औरत उठेगी और वह कल्थूसे बात कर लेगा। परन्तु उसी समय एक कार आकर रुकी और दो युवतियों ने बड़ी लापरवाहीसे दुकानमें प्रवेश किया। जिसके बाल कटे हुए थे, वह बहुत पतली और कमजोर थी, गाल, जिनपर काफी नकली रङ्ग चढ़ा था, पिचके हुए थे, छाती तङ्ग थी और कमर पतली। दूसरी देखनेमें न अच्छी थी न बुरी। उसकी शक्लसे इतना अवश्य टपकता था कि वह दरमियाने दर्जेके घरानेमें से है और कटे बालोंवाली की 'यस फ्रेंड'। उसके हाथमें कोई कपड़ा था जो उसने मेजपर रख दिया।

उनके अन्दर प्रवेश करते ही कल्थूने नमस्कार किया और हंसकर कहा, 'इस बार बहुत दिनों पीछे आयी हैं, कहिये अच्छी हैं न ?'

'हां, अभी उस दिन ही तो काश्मीरसे आयी हूँ।'

'अभी तक वहीं थीं ?'

'हां। काश्मीरमें रहनेका असल मौसिम तो यही है। रश, भीड़-भड़ाका भी खत्म हो जाता है, फल-फ्रूट भी उतर आता है।—'

कल्थू हां में हां मिलाते हुए बोला, 'हां यह तो ठीक है। बैठिये न।'

'नहीं, वक्त ज्यादा नहीं है।' उस कटे बालों वालीने घड़ी की ओर देखते हुए कहा— 'रीगल पहुंचना है।'

कपड़ेको खोलते हुए कल्थूने पूछा, 'कपड़ा तो बहुत बढ़िया है। क्या भाव मिला है? कोट बनेगा क्या ?'

कटे बालों वाली बोली, 'नहीं ब्रीचिज़।'

'आपकी ? बहुत अच्छा। माप दे दीजिये।' कल्थूने कहा और पर्देसे बने माप लेनेवाले कमरेकी ओर बढ़ा।

कटे बालोंवालीका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता इसलिये उसके पिता बहुत चिन्तित रहते थे। नवम्बर तक उसे पहाड़ पर रखते, छः अण्डे, एक चूजेका सूप और चार चम्मच काड लीवर आयल रोज देते थे। अब किसीने उनसे कहा है कि घोड़ेकी सवारी और तैरना दो ऐसी चीजें हैं जो मुर्देमें भी जान फूंक देती हैं। सो वह एक घोड़ा खरीद लाये थे और अपने पड़ोसी राय बहादुर सूरजमलसे, जिनके बेटेने विलायतसे मेमके साथ लौटनेके बाद घरमें ही अपने और मेम साहिबा के तैरनेके लिये एक तालाब बनवाया था, आज्ञा ले ली कि वह उनकी लड़कीको थोड़े दिन अपने तालाबमें तैरने देंगे, इतनी देरमें उनका अपना तालाब तैयार हो जायेगा। राय बहादुरने आज्ञा दे दी और उसके बेटेने वादा किया कि वह उनकी लड़कीको तैरना सिखा देगा। घोड़ेकी सवारीके लिये ब्रीचिज और तैरनेके लिये बेदिङ्ग कोस्ट्यूमकी आवश्यकता थी, इसीलिये वह कल्थूके पास आयी थी।

कटे बालों वालीने अपनी सहेलीकी ओर देखा और माप देनेवाले कमरेमें चली गयी। सहेली भी अन्दर चली जाती पर वहां दो मनुष्यों से ज्यादाके खड़े होनेके लिये स्थान ही नहीं था।

कल्थू अन्दर माप लेने लगा और बाहर खड़ा मुन्शी- जो कापी पेन्सिल लिये था, लिखने लगा, लम्बाई इकतालिस, थाई अठारह, हिप चौंतीस कमर सत्ताइस, खुब ग्यारह, गिवड़ी......।

मन्नासिंह सोचमें पड़ गया। उसकी कुछ समझ में नहीं आ रहा था। यह लड़की जो अभी कुमारी ही मालूम होती है यूंही एक पराये मर्दको

अपने शरीरका माप दे रही है। उसकी बीबी भी तो है, उसके कपड़े भी तो बनते हैं। धन्नेशाह दर्जी, जो उनकी गलीके सिरेपर लकड़ीके चौखटेपर मशीन रखकर बैठता है, कभी उसका माप नहीं मांगता। भई, एक बढ़िया-सा सूट सी दो।' कह कर वह कपड़ा उसके यहां छोड़ आता है और तीसरे दिन सूट सिला-सिलाया मिल जाता है जो ठीक ही बैठता है। उसने माप कभी नहीं मांगा। हां, गलीमेंसे गुजरते देख भले ही लिया हो। यहां अगर उसने सूट सिलने दिया तो उसे माप देने आना पड़ेगा और यह कत्थू दर्जी उस कमरेमें उसका माप लेगा, छाती इतने इञ्च, कमर इतने इञ्च .....

माप देकर वह लड़की बाहर निकल आयी। पूछा, 'मास्टरजी आपने कभी बेदिङ्ग कोस्च्यूम भी बनाये हैं?'

'बेदिङ्ग कोस्च्यूम! यह तो हमारी स्पेसेलिटी है। आपने शायद यह नहीं देखा?' उसने सामने दीवारमें लगी एक तस्वीरकी ओर संकेत किया जिसमें एक लड़की सतरङ्गा बेदिङ्ग कोस्च्यूम पहने खड़ी थी! इस कोस्च्यूमसे उसकी छातीका थोड़ा हिस्सा और कमरका थोड़ा हिस्सा ढंका था, पेट और पीठ खुली थी।

कटे बालों वालीने कहा, 'मुझे एक डिजाइन पसन्द है। पर इस वक्त बाजारमें मिल नहीं रहा है?'

आप डिजाइन और माप दे दीजिये, हम कोस्च्यूम बना देंगे। आपको पसन्द न भी हुआ तो हम खुद रख लेंगे। एक सिला-सिलाया हमारे पास तैयार भी पड़ा है। लाना वे वहां से बेदिङ्ग कस्च्यूम।' कत्थूने आवाज दी। 'आप बैठिये न।' 'नहीं, हमें जल्दी जाना है।'

'अरे ला भी। बस जी एक मिनट।'

गामा एक डब्बा ले आया जिसे पोंछकर कत्थूने एक सेट निकाला?

मन्नासिंहने सोचा था, शायद सिला-सिलाया उन्हें चाहिये, यह बड़े दर्जी औसत मापकी कमीज-सलवारें शायद सीकर रख देते हों। पर कत्थूने जब उस डब्बेमेंसे बेदिङ्ग कोस्च्यूम निकाला तो उसे कुछ निराशा हुई। वह रङ्गदार चिथड़ा-सा, रङ्ग सभी ही अच्छे थे, आकर्षक थे, पर जगह-जगहसे इङ्गलिस्तानके तटकी तरह कटा-फटा था। यह सूट! जिसे गांवकी लड़कियां कतरन समझकर गुड़ियोंके कपड़े बनावें। पर यह पूरा सूट था। नूतन और फैशनेबुल।

सुनते हैं एक जमाना था, जब एक स्त्रीके सूटका कपड़ा अंगुलीके छल्लेमेंसे निकल जाता था, आज भी यह सिला-सिलाया सूटका सूट न निकले तो हम झूठे। फिर कौन कह सकता है, भारतीय कलाने अवनति की है।

कत्थूने सूट अपनी छातीके पास लगाते हुए कहा, 'देखिये क्या डिजाइन है। कपड़ा देखिये, और हाथ लगाकर देखिये।'

जो लड़का लोहा फूंक रहा था, उसने दूसरे लड़केसे आंखों ही आंखोंमें कुछ कहा और दोनों बांहोंमें मुंह छिपाकर हंसने लगे।

'बिलकुल वही डिजाइन है, 'कत्थूने शीशेवाली मेमकी ओर संकेत करते हुए कहा। कटे बालों वालीने अपनी साथिनकी ओर देखा, 'क्यों कैसा है?'

'अच्छा है।' सहेलीने उत्तर दिया।

कत्थूने कहा, 'अजी ऐसी चीज वार टाइममें मिलनेकी नहीं, आगे आपकी मर्जी।'

कटे बालों वालीने कहा, 'तो फिर यही लेती चलें?'

'जी हां, यह ले जाइये और जो डिजाइन आपके पास है छोड़ती जाइये, सूट बन जायेगा। कटे बालों वालीने न जाने फिर क्यों पूछा, 'तो फिर ले लूं?'

सहेली बोली, 'ले लो।'

कत्थूने इसी बीचमें वह 'सूट' 'पैक' कर दिया था। डब्बा उनकी ओर बढ़ाते हुए बोला 'यह लीजिये।'

सहेलीने डब्बा ले लिया।

'अच्छा ब्रीचिज कब तक तैयार हो जायेगी?' चलते हुए कटे बालों वालीने पूछा।

'कोई बीस दिन लगेंगे। कामका बहुत रश है।'

'जल्दी नहीं दे सकते।'

'देखिये न कितना काम पड़ा है। फिर ब्रीचिजकी सिलाई भी तो वक्त खाती है।'

'अच्छा' कहकर वह चली गयी।

कत्थू उस मोटी औरतकी ओर घूमते हुए बोला, 'जी मिल गया आपका जम्पर?' 'बातें बनाते हो मास्टर! ऊंहूं। यहां एक न चलेगी।'

'सचमुच अभी तक नहीं मिला? अरे अभी तक जम्पर प्रेस नहीं हुआ क्या?' ऊंचेसे आवाज देकर फिर उस मोटी औरतसे कहने लगा, 'बारीक काममें आप जानती हैं देर लग ही जाती है!'

'बातें बहुत बनाना जानते हो। क्यों न?'

'हैं, हैं, हैं' कत्थू उस कच्चे चोरकी तरह हंसा जिसे चोरी करते किसी साधु मित्रने देख लिया हो और फिर वह बात बदलना चाहता हो।

मोटी औरतने अपना पर्स खोला और छोटे सफरी शीशेमें मुंह देखने लगी—बैंगन चमक रहे हैं या नहीं? दांत निकाल कर देखे और फिर मन ही मन कहा, दो वक्त कालीनस रगड़ती हूं फिर भी कालेके काले। फिर एकदम होंट भींच लिये।

'आप जानती हैं इन्हें?' कत्थूने पूछा। 'रायबहादुर चौधरी छोटूलालकी लड़की है, हमारी पुरानी ग्राहक हैं! बड़ा टेस्ट है।'

मोटी औरतने नाक सिकोड़ ली। उसके सामने वह उस 'बाँकी-पतली'की तारीफ कर रहा था, यह उसे अखरा। मनमें सोच रही थी, मेरे मुटापेसे तो उसका पतलापन अच्छा है। सरदारजी हमेशा मुझसे इसी मुटापेके कारण नाराज रहते हैं और उनका वह मित्र भी, जो नन्द कैलाश से हँस-खेलकर बात करता है, मेरी ओरसे उदासीन रहता है।

कत्थूने मुंशीसे पूछा, 'क्यों भई बना दिया हसरत बेगमका बिल? सूटकी सिलाई सात रुपये लगाना और तीन खर्चेके डालकर दसका बिल बना देना। और गामा, तूने खां-साहबका घर देखा है न?'

गामा, वह लड़का जो अभीतक लोहेपर ही गर्दन झुकाये बैठा था, चमककर बोला, 'जी'। वह दूसरा, गंजा, लड़का जो बटन लगाते-लगाते तङ्ग आ गया था, बोला, 'उस्तादजी, मुझे भी मालूम है।' सुबहसे बैठा वह बटन लगा रहा था। चार चपतें और चालीस गालियाँ खाकर वह, थोड़ी तफरीह करना चाहता था। जाकर एक-आध बीड़ी भी पी लेता और अपना प्यारा गाना 'मेरे लिये जहानमें चैन ना करार है।' ऊँचे सुरमें गायेगा और सुबहसे हो रही गलेकी खारिशको मिटायेगा।'

'जा-जा! मैं भी जानता हूं! हरामीका पिल्ला; काम-चोर कहींका! जा-वे गामे, उनका सूट और बिल देकर आ। जल्दी लौटना, नहीं तो कान पकड़वाऊँगा।'

'हरामीका पिल्ला' बुलडागको देखकर दुबक कर बैठ गया और मन-ही-मन उसे कुत्तेका पिल्ला बनाता हुआ बटन टाँकनेका अभिनय करने लगा।

नामा विजेता-की हँसी हँसता हुआ चला गया।

'माह र अब तेरे पास नहीं आना। कितनी देर हो रही है।'

'अरे पेसपर ही सो गया क्या? ला जम्पर बहांसे। घण्टे भरसे इन्तजार कर रही हैं! कल्यूने ऊँचे स्वरमें आवाज दी, फिर नम्रतासे बोला, 'हो-जी बस आया।'

अन्दरसे एक लड़का एक इन्द्र-धनुष रङ्गका जम्पर ले आया। कल्यूने हाथमें लेते हुए कहा, 'आह-हा! क्या लाजवाब चीज बनी है! ऐसी फिटिङ्ग न हुई तो कहियेगा।' उसने मिट्टीकी मेम की ओर सङ्केत किया।

'लाओ भला देखूं।'

'देखनेकी क्या जरूरत है?'

'न न देखूं भला', वह स्त्री जम्पर लेते हुए बोली, 'मैंने तो तुम्हें गले और बाहोंपर झालर लगानेको कहा था।'

'झालर? क्या कह रही हैं। पिछली सदीका फैशन! कभी किसी मेमको भी झालर पहने देखा है!'

'पर मैंने तो कहा था कि जरूरी है।'

'आप...में झालर अब लगाये देता हूं, पर गुस्ताखी माफ—झालर,जानती हैं—कौन—लेटेस्ट चीज है।'

'जा बहाने-बाज कहींका।'

'उठ-बे गंजे, यह जम्पर गाड़ीमें रख दे। और बिल भेज दूं क्या?'

'हाँ क्यों नहीं! पैसे लेनेको शेर है! भेज देना' कहकर मोटी औरत चलने लगी।

'कल्यूकी नजर कोनेमें खड़े मन्नासिंहकी ओर गयी। बोला, 'कहिये।'

मोटी औरतने सोचा, प्रश्न शायद मुझसे किया गया है, बोली, 'कुछ नहीं।'

कल्यूने सोचा यह शायद उस मोटी औरतके साथ मुन्शी या नौकर है, इसलिये और कुछ नहीं कहा।

मन्नासिंह जो 'मास्टरजी' कहनेके लिये 'म' पर अटका हुआ था, पर मोटी औरतका 'कुछ नहीं' सुन और 'मास्टरजी'को मुड़ते देखकर खुश हो गया। सरसे बला टली। और वह उस मोटी औरतके पीछे-पीछे दुकानसे उतर गया। चलते समय एक बार उसने उस मिट्टीकी मेमकी ओर देखा और फिर एक बार उस मोटी औरतको, जो अपने बदनको कसने और पतला बनानेके लिये न जाने क्या बांधे थी। उसने एक ठण्डी सांस ली और बरकी ओर मुड़ा?—जैसा सूट वह दर्जी दस आनेमें सीता है, वैसा कल्यू दस रुपयेमें भी नहीं सी सकता। फिर कसे हुए कपड़े नहीं पहनना चाहिये, लोगोंकी नजर जल्दी पड़ती है और बदनको ठीक तरहसे बढ़नेका मौका नहीं मिलता। खुले कपड़े कितने अच्छे रहते हैं—पुराने गुरु-घण्टालके बने हुए एक लिफाफेपर, जिसमें उसने एकबार शब्जी ली थी, इसी आशयका एक अच्छा सा मजमून उसने पढ़ा था, उसीका ध्यान आ गया था।

आज वह सूट देगा, परसोंतक सिल जायेगा, दस आने पैसे लगेंगे, वह खुश हो जायेगी। यह लेडीज टेलर तो चोर लगते हैं चोर। लुटेरे......!

आस्ट्रेलिया उपनिवेश कैसे बना

श्री एस० डी० चक्रवर्ती विद्यालंकार

वर्तमान महायुद्ध के स्थायी प्रभावों में से सबसे महत्व-पूर्ण प्रभाव भारत तथा आस्ट्रेलिया के पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्धोंका होना है। समय की प्रेरणा तथा नवयुग का तकाज़ा, दोनों इस सम्बन्ध की मांग भी उपस्थित कर रहे थे। आस्ट्रेलिया में कई ऐसी महत्व-पूर्ण चीजें हैं, जो भारत के लिये भविष्यमें लाभप्रद सिद्ध हो सकती हैं। इसलिये भारतीयों का आस्ट्रेलियाके विषय में दिलचस्पी रखना अनिवार्य है। यहां के कृषि सम्बन्धी तथा औद्योगिक विकास (Agricultural and Industrial Developments) के उदाहरण हमारे लिये अत्यन्त महत्व पूर्ण सिद्ध होंगे। यही तो कारण है कि भारत में आस्ट्रेलिया के हाई कमिश्नर सर आइवन मैकेने यह घोषित करते हुए कहा था कि यदि वैज्ञानिक, औद्योगिक, कृषक, विद्यार्थी यात्री, कलाकार और पत्रकार आदि अन्वेषणात्मक बुद्धिके साथ आस्ट्रेलियाका अध्ययनकरें तो उनके लिये यह प्रक्रिया महत्व-पूर्ण सिद्ध होगी। कई आस्ट्रेलियन यूनिवर्सिटियों ने भारतीय विद्यार्थियों को छात्र वृत्तियां भी प्रदान की हैं। और इस समय आस्ट्रेलिया में लगभग दो हजार भारतीय निवास कर रहे हैं। दोनों देशोंमें करोड़ों रुपयेके सामान तथा मालका विनिमयभी होता है। सन १९४२-४३ में भारतसे १६ करोड़ रुपयेका माल आस्ट्रेलिया को भेजा गया था और आस्ट्रेलियासे साढ़े तीन करोड़ रुपयेका माल भारतवर्ष में आया था। निस्सन्देह आस्ट्रेलिया में लज्जा-जनक 'श्वेत आस्ट्रेलिया - नीति' White Australia Policy का प्रभुत्व है! आस्ट्रेलिया इतना विशाल देश है कि जिसमें लगभग ९ करोड़ व्यक्ति रह सकते हैं। किन्तु इस समय केवल ५० लाख व्यक्तियों का ही वहां निवास है। संभवतः युद्धोत्तरकालीन संसारमें होने वाले अनिवार्य परिवर्तनोंके कारण विचारों की पुनरावृत्तिके साथ-साथ दोनों देशोंमें इससे भी अधिक उपयुक्त मित्रता-पूर्ण और अधिक उपयोगी सम्बन्धों की स्थापना होगी।

हमें आस्ट्रेलिया तथा भारत दोनोंके विषय में पर्याप्त ज्ञानका होना आवश्यक है। एक ऐसी विचार धारा प्रचलित है जिसके अनुसार आस्ट्रेलिया को अपराधियों का उपनिवेश (Convict Colony) कहा जाता है। यह भी कल्पनाकी जाती है कि आधुनिक आस्ट्रेलिया के निवासी उन्हीं अपराधी लोगोंकी सन्तान हैं। इस लेखमें मैंने यही दिखानेका प्रयत्न किया है कि उपरोक्त कल्पनामें कुछ सत्यांश भी निहित है, और वह सत्यांश केवल इतनी ही मात्रा तक सीमित है कि अपराधी कहलाये जाने वाले व्यक्ति केवल सामयिक कानूनोंकी अस्थिर गतिके कारण ही अपराधी कहे जाते हैं और इसी कारण आस्ट्रेलियाका प्रारम्भ भी इन्हीं अपराधियोंसे हुआ था।

सर जान सीले का कथन है—"The British Empire was acquired in a fit of absent-mindedness" अर्थात् शून्य मनस्कताके आवेश में ही ब्रिटिश साम्राज्य ने अपनी स्थिति लाभ की है। मेरे विचार में आस्ट्रेलिया के उपनिवेशीकरण के इतिहास में सीलेके येशब्द सार्थक प्रतीत होते हैं। इस समय महाद्वीप आस्ट्रेलिया एक समृद्ध ब्रिटिश उपनिवेश है, जिसकी जन संख्या लगभग

५० लाख है। किन्तु प्रश्न यह है कि कुक (Cook) की यात्राके सोलह वर्ष पश्चात् ब्रिटिश सरकारने आस्ट्रेलियाकी ओर अपना ध्यान क्यों आकृष्ट किया? इस प्रश्नका उत्तर इस के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता कि ब्रिटिश सरकार अपने बचे-खुचे अपराधियोंको कहीं पर सस्ते दामोंमें बेचना चाहती थी। एक ब्रिटिश जहाज़ी बेड़ा सात सौ अपराधियोंसे लद कर उपनिवेश स्थापनके लिये ब्रिटेनसे आस्ट्रेलियाकी ओर रवाना हुआ। इसी भांति प्रति वर्ष इन अपराधियोंके जहाज आस्ट्रेलियामें आने लगे और वहां अपराधी नगर (Convict Settlement) बनानेका भी प्रयत्न किया गया। कुछ वर्षोंके पश्चात् इस पद्धतिके असफल होनेसे सन् १८४३में इस नीति का परित्याग किया गया। ब्रिटिश सरकारने लगभग अर्धशताब्दी तक जो प्रयत्न किये और करोड़ों रुपये भी व्यय किये सब निरर्थक सिद्ध हुए। किन्तु फिर भी अंग्रेजोंने एक महाद्वीप पर प्रभुत्व स्थापित करके उसे अपने साम्राज्यका उपनिवेश बना ही लिया।

"इस उपनिवेश की स्थापना ग्रेट ब्रिटेन में होने वाले अपराधोंकी बृद्धिका परिणाम था" —यह कल्पना कुछ हास्यास्पदसी प्रतीत होती है। सरकारने बढ़ते हुए इन अपराधोंके वास्तविक कारणको समझनेका तनिक भी प्रयत्न नहीं किया। डाक्टर चार्ल्स मार्सियर का कथन है कि अपराधका कारण लालसा पूर्ण प्रवृत्ति, अवसर अथवा परिस्थितिमूलक कोई दबाव है जो अपराधीके मानसिक झुकाव पर कोई क्रिया करनेमें सदा सफल रहता है। अठारहवीं शताब्दीके आर्थिक और सामाजिक स्थिति का विहङ्गम दृष्टिसे अध्ययन करनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि चार्ल्सका कथन सर्वथा सत्य है। इस शताब्दीमें होने वाली शहराती और देहाती गरीबी तथा बेरोजगारीकी बढ़तीके कारण ही इन अपराधोंका बोलबाला हो रहा था। इस सत्यकी सर्वथा उपेक्षा करके तत्कालीन सम्पत्तिशाली वर्गने दण्ड द्वारा इन भयङ्कर अपराधों का दमन करनेके लिये सरकारका ध्यान आकृष्ट किया। ब्लैक स्टोनने लगभग दो सौ अपराधों को तो Capital offence करार दिया था। ब्लीचिंग ग्राउण्डसे सनके कपड़ोंकी चोरी करना, कहींसे घोड़ेको भगा ले जाना, किसी मछलियों के तालाबके प्रधान क्षेत्रको अथवा समुद्र या नदीके तटोंको आघात पहुंचाना, धमकाने या डराने वाले पत्रोंका भेजना, ये सारे अपराध Capital offence कहलाते थे और उस समय इनके निवारणका एक मात्र उपाय प्राण-दण्ड ही समझा जाता था। क्रूरतापूर्ण कानूनोंके प्रचलित होनेसे कानून द्वारा दण्डके रूपमें देश निर्वासनको महत्व प्राप्त हुआ। कई अपराधोंका कानूनी दण्ड देश निर्वासन ही उचित समझा जाता था। एक अधिकारी ने सन् १७९१ के Newgate calender को उद्धृत करते हुए उसमें देश निर्वासन का दण्ड पाने वाले अपराधियोंका एक लम्बा ब्यौरा भी दिया है। कुछ अपराधों के निम्न उदाहरण भी हैं। कई व्यक्तियोंको घड़ी, पेटीकोट, शीशा और साबुन आदिके चुरानेके साधारण से अपराधोंके लिये भी देश निर्वासन तकका दण्ड दिया गया। दो सोलह वर्षके लड़कोंको एक रूमाल चुरानेके अपराधमें और एक अन्य पन्द्रह वर्षके बालकको जूतेके बकसुये चुरानेके अपराधमें भी देशसे निर्वासित किया गया। एक ऐसे व्यक्तिको भी निर्वासित किया गया, जिस पर ट्रंक चुरानेका संदेह किया जा रहा था। इस प्रकारके अपराध करने वाले बहुसंख्यक व्यक्तियोंके एक समूहको दण्डके रूपमें देशसे निर्वासित किया गया। देश निर्वासनकी प्रति वर्षकी औसतन संख्या एक हज़ार थी। सन् १७७६ तक ब्रिटिश सरकार इन अपराधियों को अमेरिकामें ही भेजती रही, किन्तु वहां विद्रोह होनेके कारण इनका वहां भेजना बन्द कर दिया गया। दण्डोंके कठोर होते हुए भी अपराधोंमें कोई कमी नहीं आई। अपराधियों से सारे कारावास भर गए तो नये स्थान खोजने पड़े। किन्तु सार्वजनिक विरोधके कारण सरकार को अपने प्रयत्नोंमें असफल होना पड़ा। अब अमेरिकाके बाद देशनिर्वासनके लिए अन्य उपयुक्त स्थानों की खोज प्रारम्भ हुई। पूर्वी और पश्चिमी द्वीप समूह, केनाडा, अफ्रीका आदि प्रदेशोंको अपराधियोंके प्रतिकूल जानकर उपयोग में नहीं लाया गया और अन्तमें 'बाटनी बे' (Botany Bay) को ही अपराधियोंके लिये सर्वोत्तम स्थान चुना गया।

कैप्टन आर्थर फिलिप नामक व्यक्ति को अपराधी नगरके प्रधान निरीक्षक का अधिकार दिया गया। इस कामके लिये वह पीछे योग्य भी सिद्ध हुआ। उस समय कैदियोंकी आवश्यकताओं की सदा उपेक्षा की जाती थी, किन्तु फिलिपने निर्वासन कालमें भी अपराधियों तथा कैदियोंके अधिकारोंकी पूर्ण सुरक्षाका आश्वासन दिया। यह उसी की बुद्धिमता तथा दूरदर्शिताका परिणाम था कि एक समय चौदह सौ व्यक्तियोंने निर्भीकतापूर्वक पन्द्रह हज़ार मील लम्बी सामुद्रिक यात्रा के लिये अपनेको कटिबद्ध रूपमें प्रस्तुत किया। आस्ट्रेलियामें जन्नवरी १७८८ में अपराधी नगर (Convict Settlement) का सूत्रपात हुआ। गवर्नर फिलिपके समक्ष कई प्रकार के उच्च आदर्श थे। वह कारावासका विरोधी था। उसकी यह उत्कट अभिलाषा थी कि ये अपराधी एक नया उपनिवेश बसा कर वहां युग प्रेरणा के अनुसार नवीन परिस्थितियोंके आश्रयसे उच्च कोटिके नागरिकके रूपमें अपना विकास कर सकें। इस कार्यके संपादनके लिये वह उनके अपराधोंकी गुरुता, लघुताका अनुमान करके कई पृथक बिभागोंमें विभक्त कर उन्हें उचित ढंगसे निरीक्षित करना चाहता था। किन्तु दैवकी गति न्यारी ही होती है। फिलिपके मार्गमें कई कठिनाइयाँ उपस्थित हुईं। अब ब्रिटिश सरकार घर बैठे हुए अपराधियोंसे अपना पिण्ड छुड़ाना चाहती थी। इसीलिये इस समय उसने निरीक्षकोंकी आवश्यकताको अनुभव ही नहीं किया। वह चाहती थी कि अपराधियोंमेंसे कुछेकको निरीक्षक (Supervisor) बन जाना चाहिये। किन्तु वे इस कार्यको करनेमें असमर्थ थे। अपराधियोंकी स्वाभाविक प्रकृतिको केवल विश्वसनीय प्रबन्धकों, शिक्षकों तथा धर्म गुरुओंकी सहायतासे ही विजित किया जा सकता था। किन्तु इस ओर सरकारने ध्यान नहीं दिया। फिर भी फिलिपने अपने सामर्थ्यके अनुसार सब कुछ किया। देशको विभक्त करके जमीनको उपजाऊ तथा समृद्धशाली बनाया गया। धीरे धीरे मकान भी बनने लगे और एक प्रकारका कठोर नागरिक शासन भी संचालित हुआ। कुछेक बसने वालोंको उत्साहित किया गया। कई अपराधियोंको मुक्त करनेके उपरान्त प्रति पुरुषको ३० एकड़ जमीन के हिसाबसे ग्राण्ट दी गयी। इसी कारण कुछ व्यक्ति समृद्ध नागरिक भी बन गये। कई अपराधी वापिस घर जानेको इच्छुक थे। फिलिप को आशा थी कि इङ्गलैंडके उचित सहयोगसे एक नियमित व्यवस्थाके हो जाने की संभावना

है। लेकिन उसकी योजनाओं का अनुकरण नहीं किया गया। सन् १७९२ में :फिलिप ने आस्ट्रेलिया छोड़ दिया। उसके उत्तराधिकारी गवर्नरोंको स्वल्पमात्रामें ही सफलता मिली। सेना का हाथ सदा ऊँचा रहा, जो अपराधियों के विकास तथा सुधारकी ओर कभी ध्यान न दे सकी। सेना वालोंने अपने ही कई मित्रों को जमीन देकर पर्याप्त मुनाफा उड़ाया। अन्ततोगत्वा 'कन्विक्ट सेटलमेण्ट' असफल सिद्ध हुआ। निर्वासनकी समस्या खर्चीली थी। अपराधियों का सुधार नहीं किया गया। इन सम्पूर्ण व्यवस्थाओंकी असफलताके कारण देश के लोगों का ध्यान Bentham,s Panopticon और Penitentiary System की ओर आकृष्ट हुआ। सन् १८४३ में देश निर्वासन पद्धतिको अनुचित करार देकर उसका परित्याग किया गया। यद्यपि 'आस्ट्रेलियन कन्विक्ट सेटलमेण्ट' असफल हुआ तो भी एक नये समृद्ध उपनिवेशकी स्थापना तो हो ही गई।

उस समय से लेकर अब तक आस्ट्रेलिया का उपनिवेश निरन्तर उन्नति कर रहा है। सबसे महत्व पूर्ण चीज़ यह है कि आस्ट्रेलिया का चरित्र ही परिवर्तित हो गया। 'कन्विक्ट सेटलमेण्ट' पीछेसे एक नियमित उपनिवेशके रूपमें परिवर्तित हो गया। प्रारंभमें केवल ७१७ अपराधी थे। सन् १८२१ में इनकी संख्या सपरिवार १३००० तक पहुंच गयी। स्वतन्त्र रूपसे बसने वालोंकी संख्या २९०० ही थी। किन्तु स्वतन्त्र मनुष्योंके देशान्तर गमन (Migration) की क्रियामें प्रति वर्ष वृद्धि होनेसे 'नेपोलियनके युद्धों' के उपरान्त इनकी संख्याने उन्मुक्त अपराधियोंकी संख्याको भी अतिक्रान्त कर दिया। आस्ट्रेलियाका उपनिवेशीकरण सफल क्यों रहा, इसका उत्तर स्टिफन लीकाकने इन शब्दोंमें दिया है—"The English were always ideal settlers"। अर्थात् अंग्रेज लोग आदर्श उपनिवेशक थे। आस्ट्रेलिया जाने वाले अंग्रेजोंने आस्ट्रेलियाको अपना घर बनाया और अन्तमें वहीं पर निवास करते हुए उन्होंने दीर्घकालीन आशा पूर्ण भविष्यकी प्रतीक्षामें एक उपनिवेशकी स्थापना ही कर डाली। आस्ट्रेलिया उपनिवेश कैसे बना, इसकी यही सची कहानी है।

साहित्यमें नारीकी दुर्गति

श्री लक्ष्मीनाथ श्रीवास्तव

वकील-मुख्तारोंकी संख्या बढ़ी, तो मुकदमेबाजी भी बढ़ गयी। डाक्टर, वैद्य और हकीमोंकी तादादमें वृद्धि हुई, तो नये-नये रोग भी पनप उठे—जिनका पूर्वी या पश्चिमी, किसी भी चिकित्सा-प्रणालीमें जिक्रतक नहीं है। किसी प्रकारके नये रोगकी दवा ईजाद भी नहीं हुई कि एक दूसरे प्रकारका नया मर्ज डाक्टरोंको परेशान करने लगता है। ऐसी ही कुछ हालत साहित्यमें भी दृष्टिगोचर हो रही है। जितना ही साहित्यका प्रचार बढ़ता जा रहा है, अथवा साहित्यकारोंकी संख्या बढ़ती जा रही है, पत्र-पत्रिकाओं तथा पुस्तकोंका बाहुल्य होता जा रहा है, उसी अनुपातमें साहित्यकी छीछालेदर भी होने लगी है।

दो पन्नेका कोई गम्भीर लेख लिखना उतना आसान नहीं, जितना चार सौ पन्नेका उपन्यास लिख डालना। चण्डूकी मस्तीमें जिस प्रकार गप्पें हाँकना आसान है, उसी प्रकार एक कप चाय और दो-तीन सिगरेट खींचकर किसी नवीन सिद्धान्तका प्रतिपादन कर देना अथवा किसी मौलिक (?) विचारको संसारके सामने पेश कर देना आसान है। सोमरस का सेवनकर ऋषियोंने वैदिक ऋचाओंकी रचना कर डाली, तो कोई आश्चर्य नहीं यदि वर्तमान शताब्दिके सोमरस—चाय—का पान कर हम भी कोई नूतन विचार संसारके सम्मुख रख दें। इन सब वस्तुओंसे दिमागकी उड़ान सातवें आस्मानतक फौरन पहुंच जाती है और कल्पना-परीका मादक नृत्य हमें मदहोश बनानेके साथ-साथ, ऐसी सूक्ष्म शक्ति हममें भर देता है कि प्राचीन कालके त्रिकालदर्शी ऋषियोंकी नाईं हम भी भूत, भविष्य, वर्तमानको समान रूपसे, अपने लिखनेकी टेबुलपर ऐलबमके रूपमें देखने लग जाते हैं। गरम चायकी भाप और सिगरेटकी चक्करदार एवं बल खाती धूमराशिमें याज्ञिक हवनकी शक्ति प्रादुर्भूत हो गयी है—इसी हेतु इसके सेवन मात्रसे लोग आत्म-अनुभूति एवं आत्म-प्रकाशका अनुभव करने लगते हैं। फिर जो उनमें ऐसी शक्ति आ जाती है कि ऋषि—विश्वामित्र—की तरह वे एक नवीन सृष्टिका ही निर्माण करनेके लिये छटपटाने लगते हैं—ऐसी सृष्टि, जिसके नर-नारी ईश्वरीय सृष्टिके नर-नारीसे बिलकुल भिन्न हों, जिनके आचार-विचार, प्रवृत्ति-मनोवृत्ति सबमें कुछ न कुछ विचित्रता हो।

हमारे साहित्यिक-विचारकोंकी एक मण्डली कुछ इसी प्रकारकी शक्तिको प्राप्त कर अवतरित हुई है। अपनी मौलिकता एवं प्रगतिशीलता (?) के प्रबल प्रवाहमें वह मानव-समाजकी नैसर्गिक प्रवृत्तियों एवं भावनाओंतकको बहा ले जाना चाहती है। सभ्यताकी सनातन नैतिकता, आचार विचार—इत्यादिको वह अपने मार्गकी बाधा मान रही है। समाजकी 'नारी' पर इसका ध्यान विशेष रूपसे गया है और यह उसीको लेकर बेचैन है। नारीकी चिन्ता करते-करते उसका मस्तिष्क उत्तप्त हो गया है और अपनी कुण्ठित भावनाओंके आवेशमें वह उद्घोष कर रहा है नारीकी स्वतन्त्रताका। उसका कहना है कि अति प्राचीन कालसे (शायद जबसे नर-नारीकी सृष्टि हुई) पुरुष स्त्रीपर अत्याचार करता आ रहा है और सभी क्षेत्रोंमें उसे अपने अधीन कर उसे अपना दासी बना छोड़ा है। यह जोरका शासन है, अत्याचार है। सची मानवता इसमें है कि नारीको सभी प्रकारके (सामाजिक, नैतिक) बन्धनोंसे मुक्त कर पुरुष अपने समकक्ष आसीन करे। उसकी यह भी शिकायत है कि 'सतीत्व' केवल ढकोसला है। स्त्रीको पुरुषकी चेरी बनाकर रखनेका यह बहानामात्र है और नैतिक दृष्टिसे इस का कोई मूल्य नहीं। किसी विवाहित स्त्रीका, एक दो बार कितने भी पुरुषोंसे सम्बन्ध हो, तो उसे दोष नहीं दिया जा सकता; क्योंकि यह मानवकी प्राकृतिक भूख है। इसमें पाप-पुण्यका सवाल ही नहीं उठ सकता है। इत्यादि-इत्यादि।

हिन्दी-साहित्य (?) के 'नरमेध' पर दृष्टिपात कीजिये! और गौर कीजिये इसकी नायिका 'उर्मिला'की कारगुजारियोंपर, जिनकी वकालत लेखकने जोरदार शब्दोंमें की है।

उर्मिलाका पति है देवेन्द्र—स्वतन्त्र एवं उदार विचारोंका एक सहृदय नवयुवक। नारी जातिकी स्वतन्त्रताका वह सच्चा उपासक है और अपने इस विचारको स्वयं अपनी पत्नीके प्रति व्यवहृत करता है। पत्नीपर उसका प्रचुर प्रेम और

प्रगाढ़ आस्था है। अपने सम्पूर्ण हृदयसे वह उसे प्यार करता है। विश्वास इतना कि अपने नवयुवक मित्रको समूचे घरमें अकेली पत्नीके साथ बेहिचक छोड़ कर बाहर चला जाता है। पर उर्मिला इस श्रद्धापूर्ण, प्रगाढ़ एकनिष्ठ प्रेमका कैसा प्रतिदान देती है। एक छिछोरी, कामुक वेश्याकी तरह फौरन अनूपकी अङ्कशायिनी बन जाती है। अपने पतिका कोई ख्याल नहीं रह जाता। अपने सहृदय, सुयोग्य प्यारे पतिके प्रेम-विश्वास, प्रणय-सहवास सब कुछको बालाए-ताख कर एक पर-पुरुषके साथ निःसंशय एवं निर्द्वन्द रूपसे काम-केलिमें निमग्न हो जाती है। देवता-सरीखे पतिके लिये भी उसका हृदय शून्य सा हो उठता है। मानों भावना-हीन, हृदय-हीन, पुंश्चलताकी प्रतिमा हो। यह है मनुष्यता, स्वच्छन्दता एवं सामाजिक उन्मुक्तताका नमूना। कौन विचारशील व्यक्ति होगा जो उसके इस आचरणपर घृणा और धिक्कारसे सिहर नहीं उठेगा? मजा यह कि वह अपने पतिको प्यार ही नहीं करती, बल्कि एक अभिभावककी तरह उस भोले-भाले सरल हृदय पतिका खयाल रखती है। कैसा गन्दा तथा भद्दा विरोधाभास है। मानवीय मनो-विज्ञानसे जिसका कोई सरोकार भी नहीं। यह है एक सुसंस्कृत परिवारकी वधू का चित्रण, तथा सामाजिक स्वतन्त्रताके उन्मुक्त वातावरणकी पृष्ठ भूमिका नमूना और प्रगतिशीलता एवं मौलिकताका दावा रखनेवाले उपन्यासकारका दृष्टिकोण।

उर्मिलाका चित्रण भद्दा तो है ही, अस्वाभाविक भी है। मनुष्यका हृदय कुछ इस तरहका है कि अपने प्रेमपात्रको वह सम्पूर्ण रूपसे अपना लेना चाहता है और प्रतिदानमें भी यही चाहता है कि उसका प्रेमी कर्म-मन-वचनसे उसीका होकर रहे। मनुष्यकी इसी भावनाको दृष्टिगत करके यह व्यवस्था निर्धारित की गयी कि विवाहित दम्पत्ति एक दूसरेको छोड़कर तीसरे की ओर आंख उठाकर भी नहीं देखें। मन-प्राण से एक होकर दोनों एक दूसरेमें घुल-मिल जायं। प्रणय सम्बन्धी मामलोंमें परस्पर, एक दूसरेको छोड़कर और किसी व्यक्तिका उनकी दृष्टिमें कोई स्थान न हो तभी निश्चिन्त सम्पूर्ण एवं सच्चे मनसे एक दूसरेको अपना सकता है—वरना बावन कोठोंमें मन दौड़ानेसे 'धोबीका कुत्ता, न घरका न घाटका' वाली हालत हो जाती है। पत्नी न कुलवधू ही हो पायेगी, न वेश्या।

अलैक्जैण्डर ड्यूमाकी एक उक्ति है:– हमारे समस्त मनोविचारोंमें प्रेम सबसे अधिक स्वार्थमय है।

एक व्यक्तिके दो प्रेमी होते हैं तो षड्यन्त्र, ईर्ष्या, छल-कपट, कभी-कभी हत्या तक हो जाती है अतएव इस विषयमें यदि कोई कठोर सामाजिक विधान नहीं रखा जाये तो समाजमें विश्रृङ्खलता अनाचार तथा अराजकता फैल जायगी। इसी बातको अच्छे दृष्टिमें रखते हुए 'विवाह और दम्पत्तिके बीच पारस्परिक एकनिष्ठाकी व्यवस्था की गयी। जो लोग स्त्री-पुरुषके शारीरिक सम्बन्धको पाप-पुण्यके पचड़ेसे दूर रखना चाहते हैं, उन्हें यह भी सोचना चाहिये कि दम्पत्तिमेंसे कोई भी यदि तीसरे व्यक्ति से शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करता है तो उसके जोड़ेके लिये यह कितना असह्य एवं मर्मघाती हो उठता है। और जिस कर्मसे दूसरेको दुख हो वही तो पाप है—इस प्रकार दम्पत्तिकी पारस्परिक निष्ठा ही पुण्य तथा इसकी अवहेलना पाप है। मनुष्य सब कुछ सह सकता है पर अपने प्रेमपात्रको दूसरेसे सम्बन्ध स्थापित करते नहीं देख सकता। स्वयं 'नरमेध' के लेखकने ही देवेन्द्र के चित्रणसे यह बात स्पष्ट कर दी है कि उदार से उदार विचार वाला मनुष्य भी अपनी पत्नीको दूसरेसे प्रेम करते देख मर्माहत हो जाता है। तिसपर शारीरिक सम्बन्ध तो जलेपर नमक जैसा बन जाता है। भले ही वह उसका अन्यतम मित्र हो।

पति-पत्नीकी बात छोड़िये। वेश्यालयों तकमें इस बातपर छुरेबाजी और परस्पर मुठभेंडकी नौबत आ जाती है। किसी वेश्याका प्रगाढ़-प्रेमी जब दूसरे पुरुषको उसके पास आते-जाते देखता है तो वह जल-भुन जाता है और अपनी सारी ताकत लगा देता है कि वह दूसरेकी न होने पाये। इसी धुनमें कितने लोग लाखोंकी सम्पत्ति स्वाहा कर देते हैं। तथा अपने प्रतिद्वन्दीको अपने रास्तेसे हटा देते हैं।

उर्मिला जैसी हृदयहीन नारी मिलना कठिन है। देवेन्द्र सरीखे आदर्श पतिके वियोगमें भी उसे किञ्चित मात्र उदासीका अनुभव नहीं होता बल्कि उसे आंखोंसे ओझल होते देर नहीं लगती कि वह अनूपके सङ्ग गुलछर्रे उड़ाने लगती है। मजा यह कि यदि अनूप इस व्यापारमें झिझकता है तो उसे वह प्रोत्साहित कर देती है। पत्नीके नाते नहीं, तो क्या मनुष्यताके नाते भी उसका यह कर्तव्य नहीं होता कि जिस व्यक्तिके साथ उसका इतने दिनोंका प्रेम-पूर्ण सहवास रहा है उसकी स्मृति स्वरूप भी तो वह कुछ सूनापन महसूस करती पर हृदय उसका मानो पत्थरका बना हुआ है। और कृतघ्नताकी तो वह साक्षात मूर्ति ही दीख पड़ती है।

अत्यधिक भावुकता अथवा मानसिक आवेग दोनों ही मस्तिष्कको विकृत कर विवेक-शक्तिका ह्रास कर देते हैं। ऐसी मनोदशामें कोई व्यक्ति किसी समस्याके निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता। स्वाधीनताकी भावनाओंके आवेशमें आजकलके लेखक विचारक, बिना आगे पीछे सोचे समझे ऐसे ऐसे विचार उगलने लगते हैं जिनका समर्थन मात्र समाजके लिये घातक होगा। भावनाओंकी उबालमें उन्हें भले बुरेका भेद भी नहीं दीख पड़ता। फल यह होता है कि जिस बुराईका वे मूलोच्छेद करना चाहते हैं, अपने उलझे एवं विकृत विचारोंके कारण तथा अनजानेमें ही, उससे कहीं अधिक भयंकर बुराइयोंका प्रचार करने लगते हैं। जल्दीका काम ही ऐसा होता है।

'स्वतन्त्रता' या 'स्वाधीनता' सापेक्ष शब्द है। कोई व्यक्ति या समाज पूर्ण स्वतन्त्र नहीं हो सकता। देश-कालकी सीमाएं हैं, सभ्यता और शिष्टाचारकी मर्यादाएं हैं। तथा इनके आधार पर स्थित मर्यादाकी एक सीमा है जिसे मानना होगा। देश-काल पात्र, अथवा व्यक्ति-समाज-संसारको दृष्टिगत रखते हुए ही अपनी रहन-सहन और व्यवहारोंको निर्धारित करनेके लिये सभ्य मानव बाध्य है। मनुष्यके लिये जिस प्रकार 'भोग' की प्रवृत्ति प्रबल एवं नैसर्गिक है उसी प्रकार संकोच तथा लज्जाकी भावना भी। सभ्य मनुष्यकी इस भावनाको ब्रह्मज्ञानकी निस्सारवादिता भी नहीं मिटा सकती। पुरुषके सम्मुख नारीका, नारीके सम्मुख पुरुषका, कुछ झिझक संकोचका अनुभव करना एक सहज दुर्बलता है। इस दुर्बलताको कोई भी नहीं दबा सकता। वेश्याओंकी बात छोड़िये, अपवाद प्रत्येक नियमका होता है। इसी सहज-भावनाके कारण है कि जंगली-असभ्य-वर्वर तथा मूढ़ातिमूढ़ समाजमें भी स्त्री-पुरुष दोनों ही अपने गुप्तांगोंको ढके हुए नज़र आते हैं।

'स्वाधीनता'का अर्थ छिछोरापन, वेश्यापन नहीं है। सभ्यताका प्रधान उपकरण है विवेक बुद्धि, और इसके अनिवार्य समवाय हैं, नैतिकता

आचार-विचारकी स्वच्छता, तथा रहन-सहनकी पवित्रता एवं सुन्दरता। नैतिकताको पाप-पुण्य की अन्धी भावनासे प्रेरित होकर समाज-शास्त्रियोंने नहीं बनाया, जैसा कि आज कलके दर्शनको फैशन और मनोरंजनके रूपमें लेने वाले विचारकों (?) का ख्याल है, बल्कि समाजकी सुख-शान्ति एवं मङ्गल कामनाकी भावनाओंसे प्रेरित होकर। समाजके जो भी नियम प्राचीन कालमें निर्धारित हुए हैं, वे बहुत ही समझ-बूझ तर्क-वितर्कके पश्चात् ही अपनाये गये हैं। मनुष्य जातिकी आवश्यकताओं, उसकी नैसर्गिक प्रवृत्तियों, दुर्बलताओं तथा भावनाओं-इत्यादि सभी बातोंके गहन मनोवैज्ञानिक-विश्लेषणके आधार पर ही उसके नैतिक नियमों तथा आचार-विचार, रहन-सहनके स्टैण्डर्ड कायम किये गये हैं। समाजकी सुख शान्तिको लक्ष्यमें रखते हुए पूर्वजोंने बारीकसे बारीक, क्षुद्रसे क्षुद्र व्यापार-व्यवहार, कार्य-कलापकी भी (जिस हद तक व्यक्ति और समाजका सम्बन्ध है) अवहेलना नहीं की। सब पर विचार किया और हर पहलू से।

हमारी प्राचीन व्यवस्था, अथवा नैतिकता-की मूलगत भावनामें समाजकी सुख-शान्ति निहित है। हां, उसमें पाखण्ड एवं विकार घुस आये हैं, इस कारण उनका स्वरूप भद्दा हो गया है। जैसे पति-पत्नीके पारस्परिक सम्बन्ध को ही ले लीजिये। किसी भी समाजकी मूलगत भावना ऐसी नहीं है कि पति पत्नीपर जोर जुल्म करे, अन्यायपूर्ण शासन करे, या उसके व्यक्तित्व, उसकी वैयक्तिक स्वतन्त्रताको हड़प जाय। प्रत्येक समाजमें उसके प्रति प्रेम और सम्मानके भाव हैं। पर साथ-साथ वह भी ध्यान देनेकी बात है कि प्रकृतिका विधान ही कुछ ऐसा है, मानवी सृष्टि ही ऐसी है कि नारी अपने सुखी, निश्चिन्त तथा निर्विघ्न जीवनके लिये कुछ हद तक अवश्य पुरुषकी आश्रित है। सृष्टि और संसार दोनों ही सङ्घर्ष-प्रधान हैं। स्त्रीकी अपेक्षा पुरुष, अधिक सबल, धीर, गम्भीर है। स्त्री भावना शील है, पुरुष विचार-शील है। स्त्रीमें भोलेपन और कोमलताकी मात्रा अधिक है, पुरुषमें व्यवहार-कुशलता और कठोरताकी--अतएव स्त्रीको पुरुषकी सहायता एवं संरक्षकताकी अपेक्षा है ही।

बाहरी दुनियाका संघर्ष, नाना प्रकारकी कठिनाइयां, झंझट और बखेड़े, सबको सहन करके पुरुष जो अर्थोपार्जन करता है उसे बिलकुल निश्चिन्त भावसे अपनी घरणीको दे डालता है। पुरुषके इस कार्यमें, समाजकी इस व्यवस्था की मूलगत भावनामें नारीके प्रति पुरुषका कितना त्याग, कितना सम्मान, विश्वास, कितनी श्रद्धा तथा कितना प्रेम सन्निहित है इसे सोचनेकी तकलीफ कोई नहीं उठाता।

समाजकी सुख-शान्ति और सुव्यवस्थाके लिये जिस तरह 'विवाह' आवश्यक है, उसी तरह 'सतीत्व' भी। हां, 'सतीत्व'का अर्थ यह नहीं है कि पत्नी पर-पुरुषकी ओर आंख उठाकर भी न देखे, न पर-पुरुषसे वार्तालाप अथवा मित्रवत् व्यवहार कर सके। सतीत्वका अर्थ यह भी नहीं कि पतिकी मृत्युपर पत्नी उसके सङ्ग चितारूढ़ हो जाय या आजीवन उसके नामकी माला जपती रहे, बल्कि अपनी इच्छाके विरुद्ध, जबरन, लोक-लज्जासे वैधव्यका जीवन बिताना ही पाप है।

'सतीत्व'का अर्थ है पत्नीका पतिके प्रति प्रगाढ़, एकनिष्ठ प्रेम। समाजके सामने पतिको जबतक पति मानती हो, उसे सम्पूर्ण हृदयसे प्यार करे, सम्पूर्ण मन-प्राणसे। प्यार नहीं करती हो, प्यार करनेकी कोशिश करे—वास्तवमें जीवन है क्या? साधनाओंका समूह मात्र—और यदि किसी प्रकार भी प्यार नहीं कर सकतीं, तो इस बातको पतिपर, समाजके सम्मुख प्रकट कर दो। पतिको, समाजको तथा स्वयं अपने आपको छलने की कोशिश मत करो। यही सबसे बड़ा पाप है। तुम नारी हो, नारीके सहज गुण हैं—पवित्रता, प्रेम, भोलापन तथा सरलता—न कि छल-कपट, प्रवंचकता अथवा पाखण्ड। स्पष्ट रूपसे, एक पति को छोड़कर, दूसरेको पति बनाकर भी तुम पत्नी ही बनी रहोगी, पर एक ही पति रखते हुए भी यदि मन-ही-मन दूसरेको प्यार करती हो, अथवा दूसरेसे आंखें लड़ाती हो, तो तुम वेश्या हो। गृहिणी नारी और वेश्यामें सिर्फ यही फर्क है।

विवाह तो एक समझौता है, पति पत्नीके बीच, परस्पर सच्ची मित्रताकी शपथ। इस समझौता और शपथकी यही सबसे प्रमुख शर्त है कि दोनों एक दूसरेको तन-मनसे, मन-प्राण-हृदयसे प्यार करेंगे अपने व्यक्तिको इस तरह मिला देंगे कि दो शरीर एक प्राणकी तरह हो जायेंगे। समझौते और शपथको निभाना ही मनुष्यता है। जब निभानेकी इच्छा नहीं हो, तो स्पष्ट रूपसे इस सम्बन्धको तोड़ देना अच्छा है, पर परस्पर छल-कपटका व्यवहार ठीक नहीं। यही दुराचार है, यही पाप है।

उच्छृङ्खलता अथवा भ्रमर-प्रवृत्ति (पत्नीका पर-पुरुषसे तथा पतिका पर-पत्नीसे कायिक सम्बन्ध) स्त्री-पुरुष दोनोंके लिये समान रूपसे घृणित एवं दुराचार है। पर, उच्छृङ्खलतावादी इसमें कोई अन्तर नहीं देखते। नैतिकताका उनकी दृष्टिमें कोई मोल नहीं। उनका ख्याल है कि काम-लिप्सा मानवकी एक प्राकृतिक भूख, सहज प्रवृत्ति है, जैसे खाना-पीना, सोना इत्यादि। हम भी यह मानते हैं कि यह एक शारीरिक, वरंच प्रबल बुभुक्षा है, पर इसीलिये क्या इसे अनियंत्रित छोड़ दिया जाये? आपको यदि भूख लगे, तो क्या दूसरेकी थाली छीनकर खा लेंगे?

वास्तवमें ऐसे लोगोंके मस्तिष्कमें पश्चिमकी भोगवादी सभ्यता घर कर गयी है और दास मनोवृत्तिके फल-स्वरूप उन्हें विदेशी सभी चीजें—सभ्यता, आचार-विचार, रहन-सहन अच्छी ही लगती हैं। पर पश्चिम स्वयं इस उच्छृङ्खलतावादसे घबड़ा और ऊब उठा है। वहांकी सामाजिक एवं पारिवारिक सुख-शान्ति मृग-तृष्णा बन गयी है।

मानव सभ्यता और उच्च संस्कृतिका सबसे प्रधान उपकरण है आत्म-संयम। जिस समाजमें इसका महत्व नहीं, वह अधिक दिनोंतक समृद्धिशाली नहीं बना रह सकता। नैसर्गिक कामनाओंको दबाना भोगवादमें मूर्खताका परिचायक है, पर मन तो एक तेज घोड़ा है, बे-लगाम करो अथवा जरा भी बाग ढीला करो कि खाईमें गिरानेको तैयार। मनकी मौज ही पर लोग काम करने लगें—सोचें-विचारें नहीं, अपने व्यवहारोंको, कार्य-कलापोंको, नाना व्यापारोंको नियन्त्रित नहीं रखें, तो सभी जगह अनाचार और अराजकताका साम्राज्य फैल जाय। 'मन' तो उस धातुसे बना है कि उसे जितना बढ़ाइये, उतना ही और प्रबल होगा। तारीफ तो, इसपर नियन्त्रण रखनेमें है। इसीमें आपकी तथा आपके समाजकी भलाई है। नहीं तो इसी मामलेको लेकर रात-दिन ईर्षा-द्वेष, मार-काट, छल-प्रपंच मचे रहें। शायद ही कोई उदार-चेता उच्छृङ्खलतावादी हो, जो अपनी पत्नीको पर-पुरुषसे सम्बन्ध रखते हुए जानकर भी दुखी न हो, डाहसे दुर्दमनीय आत्म-ग्लानिसे जल नहीं उठे। ऐसी परिस्थिति में पति-पत्नीके बीच सन्देह, दुर्भावना, क्रोध तथा पाखण्ड इत्यादिके ही व्यवहार रहेंगे। पुरुष पुरुष

के बीच घोर शत्रुताकी, आन्तरिक जलनकी, एक दूसरेको मिटा देनेकी ही भावनाएं काम करती रहेंगी। पत्नीको बच्चा पैदा होगा, तो पतिके हृदयको वात्सल्य प्रेमकी भावनाके बदले सन्देहका भूत सताने लगेगा—'यह सन्तान उसका है या किसी औरका?' फलस्वरूप उसके पालन-पोषणपर भी उसका उचित ध्यान नहीं जायेगा। आर्थिक मामलोंमें भी पति-पत्नीएक दूसरेका विश्वास नहीं करेंगे। पति महाशय सोचेंगे 'यदि इसके (पत्नी) हाथमें रुपये दे दूं, तो अपने यारको दे डालेगी।' उधर पत्नीके हृदयमें यथार्थ या काल्पनिक दुख-सन्देह बना रहेगा कि उसके पतिकी सारी कमाई किसी सौतके अंचलमें बँध जाती है।

वास्तवमें आचार-विचारकी नैतिकताके मूलमें कोई धार्मिक भावना नहीं निहित है, न उसमें पाप-पुण्यका कोई प्रश्न है, पर एक बात है, जो इन सबोंसे बढ़कर है और उसीको ध्यानमें रखकर विवाहकी तथा पति-पत्नीके बीच पारस्परिक एकनिष्ठताकी व्यवस्था समाज-शास्त्रियों ने की है: वह है समाजकी सुख-शान्ति, समाज-की मंगल-कामना।

'दादा कामरेड'की शैलको देखिये तथा दृष्टिपात कीजिये, उसके अप्राकृतिक (Abnor-mal) प्रवृत्तियोंपर। हृदयसे प्यार करती है वह हरीश-को, पर प्रणय-केलि होता है उसका राबर्टके साथ। खींच-तानकर चरित्र-चित्रणमें नवीनता तथा विचित्रता दिखा देना ही मानो मौलिकता-की कसौटी हो। नारी जब किसी पुरुषको हृदयसे चाहती है, तो उसके लिये सर्वस्व समर्पण करनेको तैयार हो जाती है; दुनियाका कोई भी पर पुरुष चाहे वह कितना भी सुन्दर अथवा सकल-गुण-सम्पन्न हो, उसके लिये प्रेमकी दुनियामें कोई आकर्षण नहीं रखता—पर शैलको हम दो पुरुषों-से प्रगाढ़ प्रेम करते हुए एक ही बार पाते हैं—जो सरासर अस्वाभाविक है। पर अन्तमें, हरीशके साथ ही शैलका सम्बन्ध जोड़नेके लिये लेखक बाध्य होता है; मानो वह भी अपनी उपचेतनामें महसूस करता है कि शैलका वास्तविक प्रेमी हरीश ही है—राबर्ट—शैलकी प्रणय-चर्चा मानो मौलिकताको बलात् पेश करनेका एक खामखाह प्रयास है।

'समरथको नहिं दोष गुसाई'—इस लोकोक्ति के अनुसार अभी जो कुछ कहने जा रहा हूँ, वह छोटे मुंह बड़ी बात तो होगी, पर कहे बिना रहा भी नहीं जाता—उच्छृङ्खलतावादकी चकाचौंध और चपेटमें जैनेन्द्रजी भी आ गये। सुनीता सी गम्भीर एवं पति-परायणा स्त्रीका एकाएक प्रसन्नके सामने आपाद-मस्तक नंगी हो जाना क्या स्वाभाविक लगता है? रात्रिके गम्भीर सन्नाटेमें, केवल हरि-प्रसन्नके साथ किसी अज्ञात दुर्गम स्थानकी यात्रा ही क्या कम थी। फिर, सबके अन्तमें हरि-प्रसन्नकी अन्तिम विदाईके समय सुनीताका उसके चरणोंकी धूल लेना! यह सब क्या रहस्यमय व्यापार नहीं कहे जा सकते? केवल विचित्रता लिये हुए। यों तो किसी भी प्रकारके मानवी व्यापारका, किसी भी विचित्रता अथवा अस्वाभाविकताका सीधा-सादा उत्तर (explanation) सुलभ है—वह है मानवी मनोविज्ञानकी पेचीदगी (the complexity of human psychology) कैसा भी चरित्र-चित्रण क्यों न हो मनोविज्ञानकी आड़ उसके लिये सुप्राप्य है। किसी अजीब-सी बातको सुनकर आप कहें—नहीं, ऐसा नहीं हो सकता, कभी भी किसी मनुष्यमें इस तरहकी बात देखनेमें नहीं आयी है, पर इसका प्रत्युत्तर पहलेसे कटा-छंटा तैयार है—अजी! यह मनोविज्ञान है, इसको समझना कठिन है, मस्तिष्क बुद्धिसे परे हमारी अचेतन अवस्थामें इस तरहके कार्य सम्पादित हो रहे हैं...... " इत्यादि। पर मन क्या इसे मंजूर करता है?

यह है कतिपय आधुनिक उपन्यासकारोंका दृष्टिकोण। नारीत्वके प्रति पुरुषकी मौलिक एवं प्रगतिशील भावना! पर क्या मैं पूछ सकता हूं यह मानवी मनोविज्ञानकी मौलिक खोज है अथवा नारीकी छीछालेदर?

चांद

चांद न तू; मधु-विक्रयि-बाला।

(१)

तितली के रंगीन परों पर;
सस्मित सुमनों के अधरों पर;
चम-चम शबनम बिछी दूबपर,
छिड़काती हो अपनी हाला।
रजत-ज्योत्स्ना की वह हाला।
चांद न तू, मधु-विक्रयि-बाला।

(२)

तेरे युग्म नयन दो मधु-घट,
विस्तृत नीलाम्बर तेरा पट;
जिस पर कढ़े हुए फूलों से
होता है कुछ मन्द उजाला।
तारों का यह मन्द उजाला।
चांद न तू; मधु-विक्रयि-बाला।

(३)

किरणों के प्यालों को धोकर;
मादक मधु उन में भर-भर कर;
एक-एक कर सब प्यालों की,
पिला रही जगती को हाला।
धवल चन्द्रिका की यह हाला।
चांद न तू; मधु-विक्रयि-बाला।

(४)

मोल चुकाया बन-फूलों ने;
सरिता के श्यामल कूलों ने;
दोनों ने दे दिये मूल्य में,
एक-एक मोती की माला।
हिम-कणकी मुक्तामयि माला।
चांद न तू; मधु-विक्रयि-बाला।

(५)

जब प्रभात-पथ से प्रिय आकर;
लेते समुद चूम अरुणाधर;
लज्जा से लोहित कपोल—
होते; होती पुलकित मधु-शाला।
तेरे अन्तर की मधु-शाला।
चांद न तू; मधु-विक्रयि-बाला।

—राजेन्द्रप्रसाद सिंह,

महात्माजीका नेतृत्व

श्री चक्रधर शर्मा

आज हमारा देश राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक आपदाओंसे घिरा हुआ है। विपत्ति और संकटके बादलोंने उसके भविष्यको अंधकार के आवरणमें ढक रखा है। उसके सभी प्रकारके स्वार्थों पर, देशी और विदेशी दोनों, मिलकर और अलग-अलग, चोटके ऊपर चोट करते जा रहे हैं। देशसे हमारा मतलब ८० फी सदी जनतासे है, जिसको आज मुट्ठी भर अन्नके लिये, दो टुकड़े वस्त्रके लिये, शिक्षा, स्वास्थ्य और आमोद-प्रमोद की बातें तो अभी बहुत दूर हैं, अपनी इज्ज़त और आबरू बेचने को बाध्य होना पड़ रहा है। एक भगवानके नामका सहारा छोड़ जिसके लिये दूसरा कोई आश्रय नहीं है वह गरीब जनता आज त्राहि त्राहि की रट लगा रही है। किन्तु उसके सामने, अगल बगल, सर्वत्र अंधेरा ही अंधेरा है। नेत्रहीन जनता जो अबतक इस अंधकारके आवरणमें पद पद पर खड़ी की गयी दीवालोंसे टकरा टकरा कर अपना सर फोड़ रही थी, महात्मा गांधीके जेलसे बाहर आ जानेके कारण उसे इस घन-घोर अंधकारमें भी क्षीण आशाका प्रकाश मिला। आज उसकी धुंधली आंखें प्रकाशकी ज्योति पानेके लिये महात्माजीकी तरफ आशा भरी दृष्टि गड़ाये हैं। सबको इस बातका पूरा पूरा विश्वास हो गया है कि आज हो या कल, महात्माजीके प्रभावसे वे दीवालें ढहेंगी, जिनको देशी स्वार्थी और कुचक्री धन-लोलुप व्यक्तियोंने विदेशी सत्ताकी सहायतासे खड़ी करके उनकी जीवन-यात्राके पथको संकटा-कीर्ण बना दिया है। इसमें सन्देह नहीं कि महात्माजी अपने प्रयास द्वारा जीवन यात्राको सहज और सरल बनानेके लिये कोई बात उठा न रखेंगे और उन्होंने तो देशको सब प्रकारकी दासताओं और यन्त्रणाओंसे मुक्त करनेके लिये, अपना जीवन ही उत्सर्ग कर रखा है। किन्तु चाहनेसे ही कुछ नहीं हो जाता। चाहके पीछे कर्म-प्रेरणा होनी चाहिये। हर चीज़ अपना मूल्य चाहती है। जब तक पूरा पूरा मूल्य नहीं दिया जाता तब तक किसीको कोई वस्तु मुफ्त ही नहीं मिलती। देशको इस अधः पतित अवस्थासे ऊपर उठाकर स्वतंत्र राष्ट्रोंकी पंक्तिमें खड़ा करनेके लिये हमें पर्याप्त मात्रामें त्याग और बलिदान करना ही होगा। आज हम अनजाने तिल तिल अपना बलिदान कर रहे हैं, हमारा शोषण करने वाली सामाजिक और आर्थिक प्रणालीको बल देने वाली, शक्ति-साधन-सम्पन्न राज-प्रणालीके कोल्हूमें हम दिन प्रतिदिन पिस रहे हैं, फिर भी उसका अन्त करनेके लिये जब हमारा नेता संघबद्ध हो अन्यायका प्रतिकार करनेको खड़ा होनेके लिये हमारा आह्वान करता है तब हम तत्काल-बलिदानकी विभीषिका से विचलित हो उठते हैं। उस समय हम यह भूल जाते हैं कि हम तो प्रतिदिन क्षण-क्षण तिल-तिल मिटते जा रहे हैं, अतः इससे अच्छा है कि 'कार्यं वा साधयामि शरीरं वा पातयामि।'

आज सौभाग्यसे महात्मा गांधी जैसा देवता तुल्य नेता हमें प्राप्त हुआ है। किन्तु अकेला नेता तब तक क्या कर सकता है जब तक जनबल, हमारा तात्पर्य कर्मिष्ठ जनबलसे है, उसके पीछे न हो। जब तक उसकी जयके नारे लगाने वाले असंख्य नर-नारी, उसके बताये मार्गका अनुसरण करनेको तैयार नहीं होंगे तब तक अकेला नेता अपने निर्दिष्ट लक्ष्य तक देशको कैसे ले जा सकता है। आज हमारा राष्ट्र जीवन और मरणके संधिस्थल पर खड़ा है। यह सौभाग्यकी बात है कि हमारे ऐसे सङ्कटके समय हमारा पथ प्रदर्शन और नेतृत्व करनेके लिये महात्मा गांधी सरीखे मनीषी नेता हमारे बीचमें वर्तमान हैं। ऐसी विभूति शताब्दियों और सहस्राब्दियोंमें कभी कभी प्राप्त होती हैं। यदि इस विभूतिसे हम लाभ न उठा सकें तो यह हमारा दुर्भाग्य है। आज देशकी गरीब जनताका यह कर्तव्य है, यदि वह अपनी भावी सन्ततिको भी विपत्तियोंके पहाड़के बोझके नीचे अपनी ही तरह दबा रखना नहीं चाहती तो, वह कमर कसकर उनके झण्डेके नीचे आये और वे जिस मार्ग पर उनको ले जाना चाहते हैं उसी पर वह चलनेको तैयार हो। इसमें सन्देह नहीं कि वे अवतारी महापुरुष हैं। लेकिन हमें यह न भूल जाना चाहिये कि अवतारी मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्रजीको भी सीताका उद्धार करनेके हेतु रावणकी दानवी शक्तिका मुकाबला करनेके लिये बानरी सेनाका सङ्गठन करना पड़ा था। उस बानरी सेनाने अपने नेताके बताये मार्ग पर चल कर रावणी सेनाका सामना किया था, अपना बलिदान किया था, तब सीताका उद्धार हुआ था। केवल, राम तुम्हारी जय हो कह कर यदि वे किलकारियां ही मारते रहते तो न तो सीताका उद्धार होता और न मानवता पर दानवताका जो उच्छृंखल ताण्डव हो रहा था उसका अन्त होता। हम यदि सचमुच गांधीजीकी जयके नारे लगाते हैं, हम यदि वस्तुतः उनको देवता तुल्य और बापू तुल्य अपना नेता मानते हैं, तो जय घोष करके ही हमें अपने कर्त्तव्यकी इति-श्री न समझ लेनी चाहिये। मर तो हम रहे ही हैं, मनुष्यकी तरह हमें मरना सीखना चाहिये। जिसे हम देवता और अवतारी भगवान समझते हैं उसके संकेत पर अपना बलिदान करनेको अपना सौभाग्य समझना चाहिये। और आज इस परिवर्तित अवस्थामें उनका संकेत क्या है? वे आपसे तलवार उठानेको नहीं कहते, किसीकी हत्या करनेको नहीं कहते, वे कहते हैं, और कहते हैं इसलिये कि वे हमको आपको मनुष्य समझते हैं, अन्यायका, अनीतिका, शोषण और दोहनका अन्त करनेके लिये हम-आप संघबद्ध हो जायें। पुराणोंमें भी तो यही कहा है कि 'कलौ संघे शक्तिः।' करोड़ों देश-वासियोंकी एक आवाज़ हो 'हम अन्याय और अनीतिका अन्त कर देंगे, भले ही ऐसा करनेमें हम स्वयं मिट जायें।' और आपको मिट जाना ही होगा। किन्तु अन्याय के प्रतिकारमें मिट जानेका ही दूसरा अर्थ है जीवन। हम इस तरह स्वयं मिट कर देशके जीवनको बल देंगे। हमारे मिट जानेसे बल-प्राप्त हमारा राष्ट्र नवजीवन पायेगा और उस जीवनमें मनुष्यकृत, असमानता, वैषम्य और व्यक्तिगत स्वार्थके लिये प्रतिस्पर्द्धाका स्थान समानता, समता और सुख स्वच्छन्दता ग्रहण करेगी। इसलिये हम यदि सचमुच अपनी भावी सन्ततिको भी दुःख कष्ट और दासताके क्षोभमें ही नहीं डाले रहना चाहते तो जिस तरह भगवान कृष्णके उपदेशसे मोहमुक्त होकर गाण्डीव धारी अर्जुनने अपना गाण्डीव उठाया था उसी तरह आज भी महात्मा गांधीकी आशावाणीसे प्रबुद्ध होकर सत्यके रथपर चढ़ अहिंसाको अपना अस्त्र बनाकर अपने बलिदानके बाण चलाइये। 'हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्' के

अनुसार तब आप या तो अपने बलिदानसे अपनेको अमर बनाकर उन शहीदोंकी श्रेणीमें अपनेको बैठायेंगे जिन्होंने अपने जीवनोत्सर्ग द्वारा मातृभूमिका मुख उज्ज्वल कर दिया है या अपने देशको परतन्त्रताकी बेड़ियोंसे मुक्त करने एवं मनुष्यकी तरह जीवन यापन करनेका श्रेय प्राप्त करेंगे। किन्तु अहिंसाका अस्त्र सञ्चालन करनेके लिये एक निश्चित योग्यता और क्षमता-की आवश्यकता है। इस तरहके दिव्यास्त्रोंको अधिकारी व्यक्ति ही सञ्चालित कर सकते हैं। और अधिकारी आप तभी हो सकते हैं जब सर्वप्रथम आप आत्म-संयम करना सीखें। बिना आत्म-संयमके आप बराबर पथभ्रान्त हो जायेंगे। सहज और सस्तेमें अपने लक्ष्यतक पहुंचा देनेकी कुचेष्टाएं आपको बराबर बहका देंगी और इस तरह लक्ष्यसे हमेशा दूर होते जायेंगे। आत्म-संयमके लिये यह आवश्यक है कि आप सहिष्णुता, विवेक और प्रीतिसे काम लें। अपने स्वार्थके आगे दूसरोंके स्वार्थोंकी आप तभी परवाह कर सकते हैं जब आपके भीतर दूसरेके प्रति प्रेम भाव हो। संयम और त्याग उसीके प्रति दिखाया जा सकता है जिसके लिये आपके हृदयमें प्रेमका भाव है। कहनेका तात्पर्य यह है कि गांधीवादी वही व्यक्ति बन सकता है, जिसका हृदय मानवतासे ओत-प्रोत है। जो अपने कष्टों और अभावोंको पीड़ित मानव मात्रके कष्टों और अभावोंके आगे तुच्छ समझता है और सङ्कटमें पड़ी मानवताको त्रस्त देखकर जिसका हृदय विचलित हो उठता है, और विचलित होकर ही जिसे सन्तोष नहीं होता बल्कि त्रस्त मानवताके संकट-मोचन के लिए जो सहर्ष अपने ऊपर संकट लानेको तैयार हो जाता है, वही सच्चा गांधीवादी हो सकता है और वही व्यक्ति गांधेयास्त्र अहिंसा-का सफलता पूर्वक सञ्चालन कर सकता है।

आज अपनेको गांधीवादी और महात्माजीको बापू कहने वालोंकी संख्या कम नहीं है। किन्तु इनमें अधिकांश व्यक्ति गांधी आदर्शसे प्रभावित होकर गांधीवादी नहीं बने। हम जब इन गांधीवादियोंकी तरफ अन्तर्दृष्टि डालते हैं तो हमें साफ यह बात मालूम हो जाती है कि ये स्वार्थ - बुद्धिसे प्रेरित होकर गांधीवादी-का छद्मवेश धारण किये घूम रहे हैं। दरअसल ये सुविधा और अवसरवादी हैं। वर्तमान साम्राज्यवादी—व्यवस्थाके सहायक भारतीयोंमें और इनमें वेशभूषाका ही अन्तर है। लक्ष्य दोनोंका ही स्वार्थ—साधन है। देश-हितसे ये दोनों वर्ग कोसों दूर रहते हैं। यह बात दूसरी है कि अपने स्वार्थ साधनके सिलसिलेमें देश-का भी कुछ भला हो जाये, उसी तरह जैसे ब्रिटिश साम्राज्यवादियों और पूंजीपतियोंने अपने व्यवसाय-वाणिज्यको बढ़ाने और देशका अधिकाधिक शोषण कर सकनेके लिये हिन्दु-स्तानमें कुछ सुधार कार्य किये। कालान्तरमें जब इन सुधार कार्योंको देशहितार्थ परिवर्तित करने की चेष्टा की गयी और उसमें कुछ सफलता भी मिली तो हमारे इन सुधारकोंने संसारके सामने अपनी शराफतका नमूना पेश करते हुए गला फाड़ फाड़ कर यह कहना शुरू किया कि भारतमें हमारे शासनका एकमात्र उद्देश्य भारतीयोंको सुख स्वच्छन्दता पूर्ण जीवन व्यतीत करने योग्य बना देना है; हम तो बतौर ट्रस्टी उस देशका शासन-सूत्र अपने हाथमें लिये हुए हैं, जिस दिन वे स्वयं उसके संभालने योग्य हो जायंगे हम सहर्ष उनको शासनाधिकार सौंप देंगे।

तो,इन छद्मवेशी गांधीवादियोंसे हमें कभी इस बातकी आशा ही न रखनी चाहिये कि ये गांधीजी के आदर्शके लिए चूड़ान्त बलिदान करनेको प्रस्तुत होंगे। सच्चा सत्याग्रही ही गांधीवादी और नैतिक दृष्टिसे गांधीजीको बापू कहनेका अधि-कारी हो सकता है! और सत्याग्रहीका आदर्श क्या है, यह अभी उस दिन पुनः महात्माजीने पूनाके कांग्रेसकर्मियोंको उपदेश देते हुए बताया है। उन्होंने कहा था कि सत्याग्रही धन और यशके पीछे मारा मारा नहीं फिरता। गांधीजीका यह वाक्य ही इन मात्र वस्त्रधारी बापू पन्थियोंका भेद खोलनेको पर्याप्त है। हमारे स्वतन्त्रताके सङ्घर्षकी सफलताके मार्गमें ये कम बाधक नहीं हैं। इनके पास धन होनेकी वजहसे आज समाज पर इन्होंने अपना सिक्का जमा रखा है। इस कार्यमें इनकी वेश-भूषा सहायक होती है। जन साधारणमें गांधीजी कितने लोकप्रिय हैं और कितनी श्रद्धा और सम्मानसे देखे जाते हैं, यह ये भली प्रकार समझते हैं और समझकर उससे जहांतक फायदा उठाया जा सकता है ये उठाते हैं। उदाहरणके लिये हम एक खद्दरधारी कन्ट्राक्टर और सेना विभागके उच्च पदस्थ एक अङ्गरेज अधिकारीकी बात-चीत यहां रखते हैं। उस अधिकारीने पूछा—वेल मिस्टर, आप गांधी टोपी और खद्दर पहनते हैं। हम इनको विद्रोहीकी वर्दी समझते हैं।" कण्ट्राक्टरने फौरन जवाब दिया—साहब, इस टोपी और खद्दरके सहारे ही हम आपका काम बहुत आसानीसे कर सकते हैं। इन दोनोंकी सहायतासे जनसाधारणकी सहानुभूति हम जितनी पा सकते हैं, सूट-बूटधारी होकर वह नहीं पा सकते। आपका काम सहज और सस्तेमें होता है।" यह जवाब सुनकर वह अधिकारी कुछ घृणापूर्वक मुसकरा कर चुप होरहा। यह है रहस्य गांधी:भक्ति और खद्दर प्रेमका।

हम अपने प्रसङ्गसे कुछ दूर हट गये। हम यह कह रहे थे कि सच्चा गांधीवादी वही हो सकता है जो उनके आदर्शोंके लिये सदा सहर्ष संकटों को निमंत्रण देनेमें अपूर्व आनन्दका अनुभव करता है। देशकी गरीब जनता आज महान् संकटमें फंसी हुई है। तिल तिल उसका विनाश हो रहा है। और यह क्रम तबतक जारी रहेगा जबतक देश स्वतन्त्र नहीं हो जाता। स्वतन्त्र हो जानेपर भी यदि दुर्भाग्यसे शासन सूत्र गांधी टोपीधारी आजके व्यवसायियोंके हाथोंमें चला जायेगा तो भी संकटोंसे मुक्ति उसे न मिलेगी। अतएव जन साधारणको विवेक और संयमके साथ उस मार्गपर चलनेको तैयार हो जाना चाहिये जो महात्मा गांधीके नेतृत्वमें कांग्रेस हमको बताये। कांग्रेसने त्याग और बलिदानका मार्ग बताया है। हम इसी मार्गपर चलकर अपने लक्ष्य तक पहुंच सकते हैं। किन्तु इसके साथ-साथ राज-नीति-क्षेत्रमें महात्मा गांधीके उत्तराधिकारी पण्डित जवाहरलाल नेहरूने जो चेतावनी दी है उसे सदा अपने सामने रखना चाहिये :—

"आज हमारा यह कर्त्तव्य है कि स्वतंत्रता का आन्दोलन एक ही झण्डेके नीचे रह कर चलाया जाये। किन्तु साथ ही जनता और उसके स्वार्थोंका हित देखने वाले उन प्रतिनि-धियोंको जिसका स्वार्थ कांग्रेसके अन्तर्गत पूंजी-वादी एवं अन्य सुविधावादी दलोंके स्वार्थोंसे बिल्कुल भिन्न है, सदा इस बातसे सतर्क और सचेत रहना चाहिये कि राजनीतिक अधिकार उनके हाथोंमें न चले जाने पायें जिनका स्वार्थ देशके साधनों और जन साधारणका शोषण करनेमें है। अधिकार हस्तगत करनेका समय आने पर जनताके सच्चे प्रतिनिधियोंको इस संभावना को रोकनेके लिये सदा सतर्क रहनेकी आवश्यकता है, किन्तु जबतक वह समय नहीं आता तबतक हमें गृह-युद्ध आरम्भ करके स्वतंत्रताको पीछे न ठेल देना चाहिये।"

रस-रचना और रचयिता

श्री शिवशेखर द्विवेदी

साहित्यमें रचयिता और उसके निन्दक ठीक साथ-साथ चलते हैं। ढङ्ग पुराना है। लेकिन शुरू होनेके बादसे आज तक इस ढङ्गमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ और न आगे होनेकी कोई सम्भावना है, अभी ऐसी कल्पना भी मनमें नहीं आती। दुनियामें ऐसे एक भी लेखक या कवि नहीं, जिसके निन्दक न हुए हों। जान पड़ता है, साहित्यकी मर्यादा बांधनेवालोंको निन्दाको भी साहित्यका एक आवश्यक अङ्ग मान लेना पड़ा था और अब तो इसकी कद्र बढ़ गयी है। यानी वह असलमें साहित्यिक नहीं माना जा सकता, जिसकी कलम उठाकर निन्दा न की गयी हो। अतएव जिस साहित्यिकके निन्दक बहुत अधिक हों, साबित है, वह एक बहुत तगड़ा लेखक अवश्य है।

स्रष्टा और निन्दकके साहित्यमें प्रतिभाके दो अपूर्व चित्र कभी कभी साथ ही और कभी-कभी कुछ आगे-पीछे समाजको मिलते हैं। इनमें कुछ चित्र तो सचमुच बन पड़ते हैं। किन्तु अपनी धुनमें मस्त लेखक अथवा निन्दकको इसका ज्ञान तक नहीं होता। प्रतिभाकी चमकमें हृदयको छूकर भावकी अमर छवि सबकी और सब समय की चीज बन जाती है।

मानवकी मिथ्या-मूर्तिको व्यङ्ग करके दुनिया को आनन्द विभोर करनेवाली प्रतिभाको निन्दक की चीज कहना कोई ईमानदारी नहीं है। वह अपने इस गुणके कारण स्रष्टाके साथ कहीं वैसी ही और कहीं उससे भी बढ़कर प्रतिष्ठा प्राप्त करती है। प्रति-स्पर्द्धामें उतर कर ऐसी प्रतिभायें ही दुनियाको आशासे अधिक दे जाती हैं। द्विवेदीजीके एक शब्दको लेकर ही स्वर्गीय बालमुकुन्द गुप्तने भाषाकी कितनी हो मजेदार चीजें आत्मारामके नामसे समाजको दे सके थे और फिर उन्हीं आत्मारामकी टें-टें लिखकर पण्डित गोविन्द नारायण मिश्रने अपनी अथाह प्रतिभा और अगाध पाण्डित्यसे अनोखी चीज़ दी थी। मेघनाद-बधके व्यङ्गमें लिखित छछूंदर-बध सचमुच एक अपूर्व भावपूर्ण चित्र-काव्य है।

बहुत पहले, संस्कृतके कालीदास, भवभूति और हिन्दीके कबीर, तुलसी आदिके जमानेमें भी प्रतिस्पर्द्धी और निन्दक प्रतिभाओंने उच्च-कोटिके चित्र साहित्यमें खींचे हैं। बल्कि निष्पक्ष भावसे विचार करनेपर हर इंसाफीको मान लेना पड़ेगा कि विरोध ही साहित्यमें परिवर्तन और नव-सृजनका कारण है। देव-चरितोंकी बराबरीके लिए दैत्य-चरितोंकी सृष्टि हुई और उसके भी पहले आस्तिकवादके मुकाबिले नास्तिकवाद साहित्यकी सृष्टि हुई। इसीलिए कहा, किसी भी तरहकी भावनाके पक कर हद पर पहुंचनेके पहले ही नई चीजको जन्म सिर्फ विरोध-निन्दासे मिल जाता है। निन्दाके ऐसे चित्रको साहित्यमें समय आनेपर स्थायी रूप मिलता है।

खड़ी बोलीका आरम्भ भी विरोध और निन्दासे हुआ था। खड़ी बोलीकी कवि-गोष्ठीकी चहल-पहल कुछ दिनों तक सिर्फ एक दूसरेके विरुद्ध विकृत चित्र पेश करनेके कौशलमें थी। धीरे-धीरे यही साहित्य इतिहास बन गया। फिर धाराका विरोध बढ़ा। बादके विवादमें छायावाद आया, रहस्यवाद आया और अब सुनते हैं, गरीबवादको ही लोग कविता बनानेवाले हैं। इधर यूरपकी लड़ाईके विश्व-व्यापी प्रभावने पूंजीवादियोंके कान ऐसे ऐंठे हैं कि उन्हें भी बचावकी फिक्रमें अपना साहित्य गढ़ना पड़ रहा है। भारतके भाग्यमें अवश्य यह बात न बदेगी। कारण, पूंजीवादी साहित्यसे कोरे हैं और गरीबवादी साहित्यिक अपने ढर्रेपर ठीक हैं। फिर भी, इस खींच-तानमें साहित्यकी श्री बढ़ेगी, सन्देह नहीं। सच है, विरोधकी महिमा अनूठी है।

विरोधमें विरोधीकी भावना केवल प्रतिभा का मजाक उड़ाकर ही शान्ति लाभ नहीं करती, वह उसके चरितपर भी हमला करती है और उसे अपना रङ्ग देकर सबकी निगाहमें चमका देती है, बना देती है, बिगाड़ देती है। महर्षि पराशरने केवट-कन्याको रूप-यौवनकी सुगन्धिका बना दिया था, पण्डितराज जगन्नाथने लवङ्गीको अंकशायिनी बनाया था, विद्यापति लखिमा रानीके संकेत पर थिरके थे, चण्डीदासकी धोबिन ही कविता थी। कविवर शिवदुलारेने एक रङ्ग-रेज कन्याको आत्म-समर्पण करके शांतिका अनुभव किया था, और महाकवि घनानन्दका परमार्थ सुजान वेश्या थी। इस जमानेमें साहित्यकी रङ्ग भूमिपर कहां कौन कैसा अभिनय कर रहा है, थोड़ा बहुत सभी जानते हैं।

साहित्यपर एक जबर्दस्त अंकुश राजशक्तिका हमेशा रहता है। प्रत्येक साहित्यिकको प्रतिभा के कारबारकी एक सीमा निर्धारित करनी पड़ती है। मनपर काबू न पानेपर जब वह सीमाके बाहर निकल जाता है, तो उसे निर्वासन; प्राण दण्ड आदि राज्य-सत्ताका कठोर सत्कार स्वीकार करना पड़ता है। रूसके अनेक निर्वासित और अनेक प्राण-हीन इस जमानेके अच्छे प्रमाण हैं। इसीलिये जातीय प्रज्ञा बन्धन तोड़कर कुछ कहनेके साथ ही दाब दी जाती है। महाकवि गङ्गको हाथीका पैर मिला था। और महाकवि भूषणको मातृ-भूमिसे दूर दाक्षिणात्य होना पड़ा था। रोनाल्डसे को देश छोड़ कर भागना पड़ा था। इस समय हमारे देशमें प्रत्येक लेखकको इच्छा-विरुद्ध कानूनकी जानकारी हासिल ही करनी पड़ती है। लेकिन यह सब होनेपर भी एक मजेदार चीज यह है कि पुलिसके कर्मचारी, फौजी अथवा अन्य किसी भी राजकीय अनुष्ठानमें रहनेवाले साहित्यमें जगह पाते हैं—वहां किसीके लिये रोक-टोक नहीं है। ये लोग साहित्यमें इसका अङ्ग बन जाते हैं और इनके चरितकी चर्चासे स्थायी मनोरञ्जन होता है। जासूसी उपन्यासोंकी सृष्टिका यही रस है। इनका कलुष और उज्ज्वल चित्रण मानव-समाजके गढ़े कानूनोंका खास परिचायक है।

सामाजिक प्रतिबन्ध भी साहित्यिकोंपर कुछ कम नहीं है। खासकर समाजकी रेखाके बाहर कदम उठानेके बादसे जीवन भर फिर जिस युद्ध-प्रियता और तत्परताका परिचय लेखकको अदा करना पड़ता है, वही उसकी सर्वश्रेष्ठ देन है। किन्तु डरकर यदि लेखकने गति बदल दी, तो साहित्यकी ऐसी भयंकर हानि होती है, जिसका वर्णन अकथनीय है। यह सामाजिक शक्ति समाज व्यवस्थाके आर्थिक पहलू की है। पूंजीवादी साहित्यमें बनावट, सिंगार और मिथ्याको सत्य रूपमें प्रदर्शित करनेका छल अधिक है। इसलिये स्वविचार छोड़कर परिस्थितिवश, अथवा ईर्ष्याकी पूर्तिके लिये सैकड़ों लेखकोंको आत्माके विरुद्ध चलना पड़ता है और इस तरह मोड़ ग्रहण करते ही उनकी साधनाकी समस्त सिद्धि उड़न-छू हो जाती है। उनकी रचनामें कोई खिंचाव नहीं रहता। लांछित कलाका यह रूप बड़ा भद्दा, निंदनीय और हटाने लायक है। पर यह चीज़

समाजके सामूहिक विवेचनमें वास्तवकी भूख जागनेके पहले दूर न होगी। लाचारीमें साहित्य की पंगुताका दर्द कितना मोहक और चिन्तनीय होता है। दीन गालिब, भाड़ झोंकनेवाले रहीम, ठोकरें खानेवाले महाकवि देवको छोड़कर आज कल वालोंकी तरफ गौरसे देखकर समझिये।

राज सत्ता, समाज-सत्ता, वर्ग-सत्ता और स्वार्थ-सत्ताके कारण हुए अत्याचारोंकी साहित्य में काफी चर्चा है। दुनियाका कोई भी राष्ट्र नहीं, जहां ऐसे उत्कर्ष अवकर्ष साहित्यके भाग्यमें न जुड़े हों। कोई राष्ट्र नहीं, जिसके होनहार पनपनेके पहले ही न मुर्झाये हों।

अवश्य इस समय साहित्यकी सबसे बढ़कर श्री उसकी गरीबी है। पराधीनताकी जंजीरमें बंधी यह गरीबी कितनी जर्जर, क्षीण और दया दृष्टि खींचनेवाली हो गयी है, लिखकर देखिये। उन हतभागोंसे उम्मीद ही क्या है, जो अपनी अन्तरात्माकी पीड़ाको रूप देनेमें समर्थ होकर भी आत्म-प्रकाशनके मौकेसे ही हाथ धो बैठनेको बेबस किये जा चुके हैं। इतिहासके यात्रियोंके निष्ठुर पैरोंके नीचे, सरस्वतीके मन्दिर-द्वारपर दण्डायमान इन साहित्यिकोंके भाव कुसुम दल-मल, छिन्न-भिन्न और श्री हीन होकर असमय ही धूलिमें मिल जाते हैं। इनका घाव और दर्द रात-दिन बढ़ता ही जाता है और तबतक बढ़ता जायगा, जबतक उनके जीवन-दीप की लौ फीकी नहीं पड़ेगी। उपेक्षा ही जैसे उनकी भाग्य-लिपि है। फिरदोसीकी निराशा ही जीवनका अन्त है। गालिबकी गरीबीकी कराह आज भी कानोंमें गूंज रही है और न जाने कहां-कहां क्या-क्या मुसीबतें गुजरीं।

कवि और लेखकका उसकी रचनाके साथ क्या सम्बन्ध है? यह रहस्य अचिन्तनीय ही है। क्योंकि इसकी विवेचना अभी तक कहीं नहीं हुई और भविष्यमें होनेकी कोई आशा भी नहीं हैं। महाकवि कालीदासका ऊंट, महाकवि भूषण का नमक, महाकवि बाल्मीकिका क्रौंच-पतनके पहलेकी बर्बरता आदि मशहूर गप्पें हैं। इन गप्पोंमें वे महामूर्ख ही सिद्ध हुए हैं। इसलिये जीवन की गप्पोंके साथ मेल मिलानेसे उनकी रचनाका सम्बन्ध समझ लेना किसी तरह भी सम्भव नहीं है। बाज बाजके मतसे रचनामें खिले चरित्रोंमें लेखकके चरित्रकी प्रधान छाया रहती है, सर्वत्र सही नहीं जान पड़ता। उदाहरणमें उमर खैय्याम एक वेदांती कवि है, रचनामें श्रृङ्गारका रस लबा-लब है। चाणक्य बाल ब्रह्मचारी होकर भी काम-सूत्रके रचयिताओंके प्रधान आचार्य हुए हैं। भोगी मण्डन मिश्र वेदान्तके श्रष्टा हैं और योगी जगद्गुरु शङ्कराचार्य ही रस-काव्य अमरुक शतक के निर्माता हैं। कैहां तक कहें, इस विषय के अमीमांसित रहने देनेमें ही अपूर्व शोभा है।

साहित्यमें इस तरहकी और भी कई उलझनें हैं, जिनके सम्बन्धमें देश-कालकी परिधि कभी दूर और कभी निकट जान पड़ती है। लेकिन उसकी दूरीकी कोई निश्चित रेखा नहीं खींची जा सकती।

ऐसी विभिन्न चर्चाओंमें आभिजात्य और नारी रूप मुख्य हैं। प्रकृतिने नारीको सचमुच ही बड़ी अपूर्व रूप-प्रतिमा गढ़कर कवि-कल्पना को उकसाया और कार्य-कर्मको फैलाया है। प्रकृतिकी जितनी भी उत्तम, कोमल और सुन्दर वस्तुयें हैं, वे सभी इकट्ठी करके कवि अपनी नारी की मूर्त्ति गढ़ता है। और ऐसी नारीकी सृष्टि कर के उसे सर्वजनीन बनाकर जात्याभिमान तथा कुलीनताकी मर्य्यादाको हेय कर देता है। मत्स्य-गंधा, महाश्वेता, उर्वशी, रंभा, शकुन्तला आदि अनेक रूपवती नारियां अपने रूपमें जन्म-गत अधिकारको पार करके बहुत ही ऊपर उठ गयी हैं। गंधर्व-कन्यायें और अप्सरायें रूपका जादू लेकर ही मानव-लोकमें उतर आयी हैं। हिडिम्बा अलूपी आदि दैत्य कन्यायें, चंन्द्रसेनादिनाग कन्यायें कुल मर्यादा तोड़कर भूमंडल पर अपनी अपनी छवि छिटकाती हुई धन्य हुई हैं। इसलिये सत्य-शिव और सुन्दरके अनुष्ठानमें लोकाचारका महत्व साहित्यको छूकर पद-भ्रष्ट नहीं कर सकता, यही ठीक और मान्य है।

बंगला कहानी-कला

श्री बुद्धदेव बोस

आज हमारी यह एक अहष्ट सी धारणा है कि हमारा साहित्य महान है। परन्तु यह निःसन्देह एक अतिशयोक्ति ही है। हमारे साहित्यमें कुछेक महान् लेखक हैं और कुछ प्रथम श्रेणीकी रचनाएं भी हैं, परन्तु इतने भरसे ही साहित्य महान् तो नहीं हो सकता। ऐतिहासिक दृष्टिकोणसे रचनाओंकी मात्रा और विविधताका उतना ही मूल्य है जितना कि उनके गुणोंका। महान साहित्य विशद होनेके साथ ही साथ विविध विषयसे पूर्ण होता है। हमारा साहित्य तो लघु है। यह कहना सत्यके अधिक निकट होगा कि बंगला साहित्य एक महान साहित्यके उपयुक्त है; क्योंकि उसने डेढ़ सौ वर्षोंके इतिहासमें काफी प्रगतिकी है। यह सच है कि हमें साहित्यमें एकनूतन परम्पराकी प्रतिष्ठा करनी है और प्रतिदिन उसका निर्माण भी हो रहा है; क्योंकि हमारे साहित्य रचनाका कार्य अविराम गतिसे जारी है। यह भी सच है कि हमने अभी तक समस्त साहित्यिक रूपोंका विकास नहीं किया है। यह हमारे साहित्यकी एक भारी कमी है। प्रथम तो हमारा कविता-साहित्य जितना श्रेष्ठ और परिस्कृत है उतना गद्य नहीं है। अभी हाल तक हमारा गद्य-साहित्य कवितामय था। प्रमथ चौधरीने शिष्ट गद्य-शैली का आदर्श उपस्थित किया; परन्तु उनके सफल शिष्य अधिक नहीं हैं। हमारे यहां जीवनी, निबन्ध और पत्र-साहित्य तो बहुत ही कम है। नाटकमें उन्नीसवीं सदीमें दीनबन्धु मित्र और माइकेल दत्तके नाम ही चमकते हैं। (मैं कवि-वर रवीन्द्रके नाटकों पर यहां विचार नहीं करूंगा, क्योंकि वास्तवमें वे 'नाटक' श्रेणीमें नहीं आते।) श्री द्विजेन्द्र लाल राय वास्तवमें एक उच्चकोटिके प्रतिभाशाली नाट्यकार थे। हमारे युगमें शिशिर एक महान नायक या अभिनेता तो हैं, पर महान नाटक कहां है।

उपन्यास और कहानी

कुछ विचित्र कारणोंसे हमारे लिये उपन्यास पूर्णतः नहीं तो अंशतः अभी तक विदेशी बना हुआ है। हमारे श्रेष्ठ लेखकोंने भी उपन्यासके स्वरूप और ढांचे पर विचार नहीं किया। हमारे यहां जिन्हें उपन्यास कहा जाता है, वे वास्तवमें बड़ी कहानियां ही हैं। बंकिम चन्द्रकी समस्त रचनाओंके सम्बन्धमें यही बात लागू है। शरत चन्द्रके अधिकांश ग्रंथोंके विषयमें भी यही बात पाई जाती है। दत्ता, पल्ली-समाज, देना-

पावना और श्रीकान्तके प्रथम दो भागोंके सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि वे सुन्दर लघु कथायें ही हैं जिन्हें विस्तार दे दिया गया है। एक या दो बार चरित्रहीन या गृहदाहमें शरतचन्द्रने उपन्यासका निर्माण करनेका प्रयास किया पर सफलता नहीं मिली। उपन्यास केवल बड़ा होनेके कारण ही लघु-कथासे भिन्न नहीं होता। दोनोंके रूपमें मौलिक अन्तर है। उपन्यासकार और कहानीकार दोनों ही संसारका अवलोकन अपने-अपने दृष्टिकोणसे करते हैं। वे अपने-अपने उद्देश्यकी पूर्तिके लिये अपने ही ढंगके साधनोंका प्रयोग करते हैं। यह इस कथनसे और भी स्पष्ट हो जायेगा कि लघुकथाका कुशल लेखक अनिवार्यतः श्रेष्ठ उपन्यासकार नहीं होता और न श्रेष्ठ उपन्यासकार ही अनिवार्यतः कुशल कहानीकार होता है। फ्रेंच मोपांसाके उपन्यास निश्चय रूपसे निकृष्ट हैं और हार्डीकी कहानियां वास्तवमें संक्षिप्त उपन्यास ही हैं। उपन्यासमें गहराई अधिक होती है, कहानी या लघु कथामें समुज्वलता। उपन्यास उस आलोककी तरह है जो धीरे धीरे मानव जीवनको प्रकाशवान बनाता है और कहानी जीवनके केवल एक अंग पर ही तीव्र प्रकाश डालती है। श्रेष्ठ कहानीमें पाठककी रुचि उस समय तक बनी रहती है, जब तक कि किसी समस्याका समाधान उसके सम्मुख उपस्थित नहीं होता।

अगर बंगलामें कोई महान उपन्यास है, तो वह है रवीन्द्रनाथका 'गोरा'। लेकिन मैं माणिक बनर्जीके 'पदम नादिर माफी'को नहीं भूल सकता जो वास्तवमें एक श्रेष्ठतम उपन्यास है। इस लेखकमें प्रथम श्रेणीके उपन्यासकारके सभी गुण हैं।

इसके बावजूद भी बंगलामें कविता और कहानियोंकी धूम है। कवि और कहानीकार इतने हैं कि वे संसारकी किसी भाषाको गौरवान्वित कर सकते हैं। कवितामें हमारी सफलता आश्चर्यजनक नहीं है; लेकिन जो बात सचमुच ही मार्केकी है, वह यह है कि हम कहानी साहित्य में इतनी प्रगति कर चुके हैं। कहानी विशुद्ध रूपसे विदेशी चीज है इसकी जन्मभूमि इङ्गलैंड नहीं है। क्योंकि मोपांसा और चेखोवकी अनुदित कहानियोंके द्वारा ही अंग्रेजोंको साहित्यके इस अंगका ज्ञान हुआ था। इंगलैण्डमें फील्डिंग, डिकिन्स और हार्डी आदि महान् श्रेष्ठ कलाकार (उपन्यासकार) हुये, लेकिन उन्नीसवीं सदीके अन्त तक, सर्वश्रेष्ठ लघु कथायें पद्यमें ही लिखी जाती थीं। चौसर की 'केन्टरबरी-टेल्स' और ब्राउनिंगकी 'मैन और वीमैन' (पुरुष-स्त्री) पद्यमय कहानियां ही हैं। इंगलैण्डको कहानियोंसे परिचय फ्रांस और रूस के कहानी-साहित्यसे ही मिला।

आधुनिक समयमें भी अंग्रेज लेखकोंका उपन्यास-साहित्य पर ही अच्छा अधिकार है। कहानियां तो इङ्गलैंडके मासिक साहित्यकी सामग्री हैं। पर मेरे कथनका यह मतलब नहीं कि इङ्गलैंडने इस शताब्दीमें श्रेष्ठतम कहानियोंकी रचना नहीं की। परन्तु वहांके लेखक मुख्यतः कवि या उपन्यासकार ही हैं। अंग्रेजीमें मोपांसा तुर्गनेव अथवा पाल मारोंके जोड़का कहानीकार नहीं है। अंग्रेजीमें एल्डोअस हक्सले, समरसेट और केथराइन मैन्सफील्ड ही विशुद्ध रूपसे उच्च कोटिके कहानीकार हैं।

आधुनिक, बंगला गल्प, बंगाली कहानियोंका एक श्रेष्ठतम संग्रह है।

कहानी-कला

शैलजानन्द मुकर्जी बङ्गलाके एक महान कहानीकार हैं। उनकी सुन्दरतम कहानियोंके कई उत्तम संग्रह छप चुके हैं। अगर वह यूरोपियन होते, तो निःसन्देह अपनी कहानी-कलाके लिये संसारमें प्रसिद्ध हो गये होते। मैं मोपांसाकी कहानियोंके अतिरिक्त और इतर कहानियोंसे शैलजानन्द मुकर्जीकी सम्पत्ति या नारीमेध जैसी कहानियोंके नग्न आतंककी तुलना नहीं कर सकता। मोपासांके पात्रोंकी तरह मुकर्जी के इन दो पात्रोंमें कितनी स्वभावगत समता है।

इन पात्रोंमें 'काम' (Sex) और लोभ ये दो मनोभाव ही अव्यक्त प्रबल रूपमें पाये जाते हैं। मुकर्जीकी कहानियोंमें चरित्र-हीन और दुष्टों की भरमार है। चरित्र-हीन भी डिकिन्सके धर्मात्मा दुराचारी नहीं है। वास्तवमें शैलजानन्दमें अपने बंधुओंके प्रति ईसाई सद्भावनाका अभाव है। वह सुधारक नहीं है। न चोरी, न बलात्कार और न हत्यासे ही उसे रोष पैदा होता है। वह संसारका उसी रूपमें चित्रण करता है, जिस रूपमें उसने उसका अवलोकन किया है। मोपांसामें भी यही विशेषता थी। परन्तु फिर भी उ के हृदयमें कोमलता है, दया नहीं। दयासे वैचित्र्यका प्रादुर्भाव, रोषसे व्यंग्य काजन्म और सद्भावनासे भावुकताका प्रादुर्भाव होता है। मोपासां इन तीनोंसे बचे रहे। यही बात शैलजानन्दके बारेमें है। उसमें कोमलता, स्वाभाविक मानवी आसक्तिका भी अभाव है। यहां तक कि उनका 'सेक्स' अमानवी और आदिम तथा पाशविक है। उसकी तरुण कामासक्त नारियां केवल काम-पूर्तिके लिये ही कामकी तृप्ति नहीं चाहतीं प्रत्युत सन्तानके लिये काम-तृप्ति चाहती हैं। वंध्या स्त्रियोंके विषयमें उन्होंने अपनी कहानियोंमें यह प्रतिपादन किया है कि वे सन्तानके लिये कितनी पागल बन जाती हैं।

वे न करुणाजनक हैं और न दयनीय! उनमें प्रकृतिका भय, आतंक उग्र रूपमें मौजूद हैं। यह वही प्रकृति है जो मनुष्योंको पथभ्रष्ट करके प्रेमाचारके बन्धनमें डाल देती है, जिससे सन्तानोत्पादनका कार्य निर्बाध गतिसे चलता रहे। शैलजानन्दके पात्र प्रेम नहीं कर सकते। उसकी स्त्रियां अपने प्रेमियोंको इसीलिये चाहती हैं कि वे उनकी सन्तानोत्पत्तिके साधनमात्र हैं। उनके पुरुषोंमें लोभ ही पापोंके लिये प्रेरणा है। इन सबका चित्रण इतने प्रभावपूर्ण ढङ्गसे किया गया है कि कभी-कभी हम विस्मय-चकित रह जाते हैं और यहां तक कि क्षुब्ध हो जाते हैं, परन्तु लेखक अपूर्व साहसके साथ अपनी कहानीका अन्त तक बड़े कौशलसे निर्वाह करता है। यह शैलजानन्दकी एक प्रमुख विशेषता है।

मैंने शैलजानन्द पर जो इतना विवेचन किया है, उसका कारण यह भी है कि अभीतक किसी गम्भीर समालोचकने उसका समुचित ढङ्गसे मूल्यांकन नहीं किया। तरुण लेखकोंकी निन्दा या प्रशंसा करना एक अर्सेसे प्रचलित है। परन्तु यह स्पष्ट ही है कि तरुण लेखकोंने बङ्गाली साहित्यमें एक युगान्तर उपस्थित कर दिया है।

कवि रवीन्द्रका प्रभाव

कहानियोंकी ही बात ले लीजिये। यदि संसारके लेखकोंकी बहुमुखी प्रतिभाकी प्रतियोगिता सम्भव है, तो निश्चय ही रवीन्द्रनाथको विश्व-साहित्यमें सम्माननीय स्थान मिलेगा। साहित्यके नाना अङ्गोंको परिस्कृत बनानेके साथ ही साथ रवीन्द्रने सबसे प्रथम बार कहानीको परिमार्जित किया। उसका संस्कार किया। जबतक भाषा जीती-जागती रहेगी, तबतक उनकी गल्पगुच्छ पढ़ी जायगी। बङ्गला कहानी पर उनका इतना गहरा और व्यापक प्रभाव पड़ा कि बङ्गाली कहानीका ढांचा ही 'ठाकुरी' ढांचा माना जाने लगा। प्रभात मुकर्जी और शरत चटर्जी

दोनोंने ही अपने-अपने ढङ्गसे रवीन्द्रनाथ ठाकुरसे प्रतियोगिता की।

प्रमथ चौधरी

इस युगके कहानीकारोंमें प्रमथ चौधरी ही अकेले ऐसे दृष्टिकोणके लेखक हैं जो रवीन्द्रनाथ ठाकुरके प्रभावसे बचे हुए हैं। वह गद्यके एक प्रधान शैलीकार भी हैं और उनकी शैलीका रवीन्द्र पर प्रभाव पड़ा। जैसा कि उनके 'घरे-बाहिरे' की उस चालित भाषासे प्रकट होता है जो सबुजपत्रमें छपा था। प्रमथ चौधरीकी कहानियां समस्त बङ्गला कहानियोंमें अनूठी हैं।

'कल्लोल दल'

'कल्लोल' ने, जो अब बन्द हो गया है, तरुण दलके लेखकोंको जनताके सम्मुख उपस्थित किया और कहानीको नये विषय और नूतन अभिव्यञ्जना प्रदान की। कहानी-कलाके क्षेत्रमें अभिनव आन्दोलनके श्रीगणेशका सौभाग्य शैलजानन्द और प्रेमेन्द्र मित्रको है। उनसे कुछ दिन पूर्व मणीन्द्रलाल बोसने बङ्गलामें कुछ सनसनी मचायी। वह एक बड़े विलक्षण रोमाञ्चक लेखक थे। आज भी उनकी कहानियां बड़ी रुचिके साथ पढ़ी जाती हैं। उनकी भाषा बड़ी अलंकारपूर्ण चुभती हुई होती थी। उसकी सजावट बड़े मनोयोगसे की जाती थी। उसका माधुर्य्य और सौरभ वैसा ही था जैसा कि एक सुसज्जित कमरे के नाना प्रकारके वस्तुओंसे घिरे हुए कालीनसे ढके फर्श और पर्दोंमें होता है। यह रोचकता तो जरूर थी। परन्तु नवीन लेखक इससे दूर भागते थे। जमीन्दार और पूंजीपतियोंके बजाय वे मध्य श्रेणी और निम्नश्रेणी की जनताको रङ्गमञ्च पर न लाये। उनका ध्यान ग्रामोंकी ओरसे हटकर नागरिक जीवनपर केन्द्रित हो गया। प्रेमेन्द्रनाथ मित्र ही सबसे पहले कहानीकार हैं जिन्होंने सबसे पहले निम्न मध्यम श्रेणीके नागरिक जीवनका अध्ययन या नगरोंकी गरीबी, नगरोंकी गन्दगी और उनके रोमांसको देखा और अपनी कहानियोंमें उसका चित्रण किया। प्रेमेन्द्रनाथकी भाषा अत्यन्त सरल और स्वाभाविक है। उसमें न कहीं कृत्रिमता है और न सजावट। उत्कृष्ट भाषा शैलीका उन्होंने अच्छा आदर्श पेश किया है। उनकी कल्पना शक्ति बड़ी उर्वरा है। उनमें विविधताका भी अभाव नहीं है। उन्होंने जो 'वैज्ञानिक' कहानियां बालकोंके लिये लिखी हैं वे तरुणोंके लिये भी उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं।

नये लेखक

हमारे साहित्यमें अनेक प्रतिष्ठित कहानीकार हैं, जिनमें अचिंत्य सेन गुप्त, अन्नदा शंकर राय, विभूतिभूषण बनर्जी, ताराशंकर बनर्जीके नाम उल्लेखनीय हैं। अन्नदाशंकरकी प्रधान विशेषता यह है कि उनका गद्य अत्यन्त सुन्दर होता है, परन्तु दुर्भाग्य यह है कि उन्होंने जो कुछ लिखा है, वह कम है। विभूतिभूषणने अपनी कहानियोंमें ग्राम्य जीवनके सरस पहलूका बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया है। ताराशंकरने भी ग्राम्य—जीवनका चित्रण किया है। परन्तु उनका चित्रण करुणाजनक है। अचिंत्य सेनगुप्तका पालन—पोषण नगरमें होनेसे उन्होंने अपनी कहानियोंमें नागरिक जीवनको ही सबसे पहले स्थान दिया। परन्तु बादमें उन्होंने उपनगरोंपर अपनी दृष्टि डाली और वहांके दूषित जीवनका मार्मिक चित्रण किया। यह वास्तवमें एक नूतन विषय है और इस विषयमें हमारी उनमें पूरी आस्था है। उनमें पर्य्यवेक्षणकी अद्भुत शक्तिके साथ सत्य कथनका अपूर्व साहस भी है।

स्थानाभावसे न इन कलाकारोंके सम्बन्धमें अधिक विवेचन किया जा सकता है और न समस्त लेखकोंका उल्लेख ही। मेरा दावा तो यह है कि कविताके बाद लघु—कथा—कहानीमें हमने पर्याप्त सफलता प्राप्त की है। प्रायः ५० वर्ष के समयमें ही हमने इतनी कहानियोंकी रचना की है और इतने कहानीकार पैदा किए हैं कि जिनकी तुलना संसारके किसी भी देशके साथ बड़ी आसानीके साथ की जा सकती है। यदि बंगाली जीवन इतना मर्माहत और शुष्क न होता तो कहानियां औरभी अधिक तथा अत्यन्त उच्चकोटिकी लिखी जातीं। प्रतिभाकी प्रथम कलियोंके खिल जानेके उपरान्त बंगला कहानियों के लिये विषय ही नहीं मिलते। चाहे वह जितनी देखभाल करे, उसकी कल्पना शक्ति केवल दो चीजोंको ही देख सकती हैं, पूंजीपतिके सुसज्जित 'ड्राइंग रूम' की झांकी या गरीब क्लर्ककी धूमिल कोठरी। सैनिकों, नाविकों और वायुयान-चालकों तथा हवाखोरोंके विषयमें कहानियां असम्भव हैं, अपराधों तथा जासूसीकी कहानियां सम्भव नहीं। महिलाएं सामाजिक तथा आर्थिक स्वाधीनतासे कोसों दूर हैं और प्रम—कहानियोंका क्षेत्र बहुत ही सीमित है। यह ठीक है कि वास्तवमें प्रतिभाशाली लेखकके लिये सामग्रीकी कभी कमी नहीं रहती। लेकिन आप एक महान प्रतिभाशाली कहानीकारको जन-हीन टापू में रखिये, तो वह दो-चार कहानियोंसे अधिक न लिख सकेगा। कहानियां उन्हींके सम्बन्धमें लिखी जाती हैं जिनके सम्बन्धमें लेखक देखता है, सुनता है, और बात-चीत करता है। क्योंकि विचार और भावना तो दैनिक व्यवहार के अनुभवसे ही पैदा होते हैं। वह जितना ही अधिक देखेगा और सुनेगा उतना ही उसके लिये हित-प्रद होगा। नगरका मुन्शी, व्यापारी, व्यवसायी, तरुण कलाकार, विवर्ण अध्यापिका चिड़चिड़ी पत्नी, संयुक्त परिवारमें त्रस्त व्यक्ति, उच्च वर्गीय फैशनेबुल व्यक्तिमें ही सब हमारे कहानी-साहित्यके उपकरण हैं।

मेरा आशय यद्यपि यह नहीं है कि कहानीके उपकरण इनके सिवा और नहीं हो सकते अथवा नये पात्र और चरित्र ढूंढना सम्भव नहीं है। लेकिन जब सब कुछ कहा और किया जा चुका तब सम्भावनाएं कम ही रहती हैं। कलाकार अपनी कलामें नवीनता या मौलिकता अपने अनुभव द्वारा ही ला सकता है। बंगला-सिनेमा कहानीकारके लिये नयी स्थितियों पर विषय प्रदान नहीं करता।

कलाका भविष्य

एक व्यापक, स्वतन्त्र और विविधता पूर्ण जीवनके अभावमें, कहानीके कारण बंगला लेखक एक बड़ी उलझनमें हैं। इसका उपाय क्या है? यह भी सुझाव पेश किया जा रहा है कि बंगला कहानीकारोंको सर्वहारा शोषित वर्ग (proletariat) के विषयमें कहानियां लिखनी चाहिये। यह समुचय ही बड़ी उत्तम योजना है। पर इसे अमलमें लाना तो एक विकट पहेली है। हमारे लेखकोंका शोषित वर्गसे जरा भी सम्पर्क नहीं है। कोई भी लेखक सिर्फ इस वर्गका अनुभव प्राप्त करनेके लिये क्या उसके बीच रहना चाहेगा और क्या इस प्रकारका अनुभव वास्तवमें कहानीके लिये उपकरण दे सकेगा?

हमें अपने तरुण पीढ़ीके लेखकोंसे यह आशा है कि वे इस दिशामें कहानी-साहित्यमें एक नयी धाराको जन्म देनेमें सफल हो सकेंगे।

बंजारा

श्रीमती आशादेवी

नेहनीके रूप और यौवनकी चर्चा सारे गांव में है। उसका रूप क्या है मानो चमचमाता हुआ पूनोका चांद। जो कोई भी देखता है मुग्ध रह जाता है। जवानी हो तो ऐसी हो! जैसे बसन्त ऋतुमें खिली हुई गुलनार। उज्ज्वल रंग, गोल मुंह, रसीली आंखें, सुराहीदार गर्दन, सुडौल शरीर, अंग-प्रत्यंग विधाताने मानो सांचे में ढाला है। सुमधुर स्वर सुनने वालोंके कानोंमें रस घोलता है। नारंगीकी फांकके समान पतले अधरों पर नृत्य करने वाली सरल मुस्कान में जादू है। आकर्षण है। उसकी मतवाली, मन्थर चाल पर लोग लट्टू हैं। घूंघट काढ़, पतली कमर पर पानीका घड़ा रख, छम छम करती हुई जब वह पनघटसे लौटती है, तो गांवके प्रेमी तरुण ठंडी आहें भरते हैं। पन्द्रह बीस झोपड़ों वाली बंजारोंकी उस छोटी सी बस्तीमें वह अपने अनुपम सौन्दर्यका प्रकाश लेकर आई है स्त्रियां दांतों तले उँगली दाब परस्पर काना-फूसी करती हैं—"बंजारोंके घर यह पूनोंका चाँद कैसे निकल आया। भगवान जाने उसमें कितना नमक फूट पड़ा है। गरीब घरकी छोरी और ऐसी तन्दुरुस्त। काम करनेसे तो थकती ही नहीं। सबेरेसे लेकर रात तक बैलकी तरह जुटी रहती है। पानी भरती है। उपले पाथती है। घर बाहरका काम देखती है। बजरंगी बड़ा भाग्यवान है, जो उसे ऐसी सुघर बहू मिली।"

तबीयतदार दिल फेंक युवकोंका यह हाल है कि वह नेहनीकी रूप राशि पर लट्टू हैं। बजरंगीके दरवाजे तमाखू पीने अथवा गप्प लड़ानेके बहाने उनका जमघट लगा ही रहता है और नेहनीके निकलते पैठते वे छिपी आंखों उसे देख कर अपने मनकी तृषा शान्त करते हैं। हाल ही में नेहनीका गौना होकर आया है। उसकी अवस्था १८, १९ वर्षकी है। वह लज्जा शील भी है। किन्तु अपने दायित्व और कर्तव्यसे परिचित है। इसलिये भावजका रिश्ता जोड़ कर हँसी-मजाक करने वाले मुंह फट देवरोंसे नाता नहीं जोड़ती।

बजरङ्गी सीधे सादे स्वभावका मनुष्य है। घरका अकेला है। बैलोंके क्रय-विक्रयमें सालके छै महीने परदेश घूमता है। इसलिये गांवके लोगोंसे मिलकर चलता है। कोई दो बात कह ले, तो सुनी अनसुनी कर जाता है। वह स्वयं रसिक और विनोदी प्रकृतिका मनुष्य है। मजाक करने और किस्से कहानी कहनेमें उसे आनन्द मिलता है। उसके स्वभावमें मिलनसारी है। वह खुद हंसता है और दूसरोंको हंसाता है। किसी समय गांवकी युवक मण्डली का वह सरदार था। निर्द्वन्द्व जीवन व्यतीत करता था। लेकिन ब्याह और बहूने उसे जिम्मेदारियोंके बन्धनमें बांध दिया है। जीवनका एक मात्र उद्देश्य केवल खाना पीना और मौज उड़ाना ही नहीं है। अब उसको धनोपार्जनकी फिक्र अधिक रहती है। नेहनीको वह जीसे प्यार करता है। वह उसके जीवनकी ज्योति और कामनाओंकी फुलवारी है। वह उसके जीवनमें प्रेम और कर्तव्यका नया संसार लेकर आई है।

इसलिये गंगा दशहराके भोर अपने ढोरोंको इकट्ठा करके शुभ मुहूर्तमें जब वह परदेश जानेकी तैय्यारी करने लगा, तो विछोहकी उस करुण वेलामें उसका मन चञ्चल हो उठा। वह पत्नीसे दूर जा रहा था। विचारोंमें उलझा हुआ जिस समय वह सामानकी गठरी बांध रहा था, उसी समय उसका पड़ोसी गोकुल उसके मकानमें दाखिल हुआ। वह उसका मित्र और स्नेही था। सुख दुखके समय उसका हाथ बटाता था।

बजरङ्गीकी उतरी हुई आंखें देखकर उसने आश्चर्य भावसे कहा—"वाह भैय्या, बिना कहे सुने इतनी जल्दी तैय्यारी करदी।"

बजरङ्गने दीर्घ निश्वास लेकर उत्तर दिया—"बैठो गोकुल भाई। तुमसे मिले बिना भला मैं कैसे जा सकता था।"

चौपालमें नेहनीकी मथानी चल रही थी। उसने गोकुलके लिये चारपाई बिछा दी।

"भैय्या तुम चले जाओगे, तो मेरा समय कैसे कटेगा। अबकी दफे आमोंकी फसल भी अच्छी थी।" गोकुलने उदासभावसे कहा।

बजरङ्गीने चिलम भरकर कहा—"सो तो ठीक है, लेकिन उद्यम धंधा तो देखना ही पड़ेगा कुंवरजू। चार पैसा पैदा किये बिना गिरस्ती की ज़रूरतें कैसे रफा होंगी।"

गोकुल हँसकर बोला—"माया मोहमें फँस गये भैय्या। यह गिरस्ती और लुगाईका जञ्जाल ही ऐसा है।"

इतनेमें नेहनी दही और गुड़ लेकर गोकुलके सन्मुख उपस्थित होती हुई बोली—"लुगाई होती तो ऐसा न कहते कुँवर जू। लो जलपान कर लो।"

गोकुलने हंसकर उत्तर दिया—"तुम जो कैसी हो भौजी।"

बजरङ्गीने कहा—"गोकुल भाई मेरे जैसे अकेले आदमीकी बड़ी मुसीबत है। खेती पाती का मैंने प्रबंध कर दिया है, लेकिन मेरे पीठ पीछे अपनी भावजका ख्याल रखना। इन्हें कोई कष्ट न होने पाये।"

गोकुलने हाथ मुंह धोकर उत्तर दिया—"वाह भैया, यह भी कोई कहनेकी बात है। इससे तुम निसाखातिर रहो।"

बजरङ्गी बोला—"आज कल ज़माना बड़ा खराब है। तुम अपने जाने बूझे आदमी हो।"

गोकुलने चिलम फूँकते हुए कहा—"नहीं भैय्या, कोई खटका मत करो। लौटोगे कब तक?"

"कजली यहीं करूँगा।"

"हां भैय्या राखी तक ज़रूर आ जाना। त्योहारको तुम्हारे बिना घर सूना रहना ठीक नहीं।"

यह सुनकर बजरङ्गी हँसने लगा।

(२)

गोकुल अपने घरका खाता पीता और मालदार युवक था। वह कुश्ती कसरत करता, भंग पीता और आंखोंमें सुरमा डालकर इधर उधर घूमता। गाय-भैंस चराता और बन्सरीकी मीठी ध्वनि पर गज़लें और कव्वाली गाता। इस भांति वह जितना ही रसिक और शौकीन था उतना ही नटखट भी। बात बात पर झगड़ने और मारपीट करनेको आमादा हो जाता। इसलिये गांव वाले उससे दबते थे और पीठ पीछे उसकी बुराई भी करते थे। लेकिन बजरङ्गीका वह सन्मान करता था। उसका बड़प्पन मानता था।

कुछ समय व्यतीत हुआ। गांवमें गोकुलके चरित्रके सम्बन्धमें तरह तरहके संकल्प विकल्प किये जाने लगे। सूने घरमें नेहनीसे उसका स्वच्छंदता पूर्वक मिलना और हंसी मज़ाक करना लोगोंको खटका। वे कहते—"आग तेलका संयोग क्या कभी हितकर हो सकता है। बजरङ्गी तो बेवकूफ है। ऐसे आवारको अपना

घर सिपुर्द कर दिया। ऐसे ही था, तो औरतको उसके नैहर भेज देता।"

स्त्रियां भी तिलका ताड़ बनानेमें पुरुषोंसे पीछे न रहीं। गोकुल जैसे युवकके ऊपर सन्देह करना स्वाभाविक ही था। बात मुंहों मुंह फैलने लगी। यहां तक कि गोकुलके कुछ मुंह फट मित्रोंने उसके मुंह पर व्यंग करना शुरू कर दिया। गोकुलके लिये यह असह्य था। वह परेशान हो उठा। वह नेहनीको प्यार करता था पर अपनी बदनामी न चाहता था। इसलिये वह अपने साथियोंसे दूर दूर रहने लगा।

व्यास पूजाका दिन था। गोकुलने नेहनीसे कहा—"आज पूरी कचौरी न बनेगी भौजी?"

"पूरी कचौरी बनके आज क्या होगा कुंवर जू?"

"वाह भौजी, आज त्योहारकी तुम्हें खबर नहीं। तुम कितनी भोली हो।"

"काहेको हँसी करते हो कुंवर जू।"

"खिलाना पिलाना न हो, तो साफ कह दो।"

"नहीं मेरेको कोई पता न था। चलो अब तुम्हारा न्योता रहा।"

"धन्य भाग। तुम्हारे हाथके बने भोजन में न जाने कितना स्वाद आता है भौजी।"

"फिर मज़ाक। बस रहने दो कुंवर जू।"

"रहने क्यों दूँ। हँसी खेलके यही दिन हैं। जवानी बार बार नहीं आती भौजी।"

गोकुलका अनुराग देखकर नेहनीने लज्जासे आंखें नीची कर लीं।

सावन आया। आसमान पर काली काली घटायें घिरने लगीं। बादल गरजते, बिजली कौंधती। मेहकी झड़ी लग जाती। नेहनीके आंगनमें एक ओर नीमका पेड़ था। उसने उसी में झूला डाला। वह फुर्सतके समय झूला झूलती। लम्बी पैंगे मारती। बारह मासा चौमासा गाती। उस दिन प्रातः काल हीसे बारिश हो रही थी। मौसम सुहावना और ठण्डा था। गोकुल बगियासे आम बीन कर लाया। आम पके, पीले और मीठे थे। उसने उन्हें नेहनीकी भेंट करते हुए कहा—"यह लो भौजी, तुम्हारे लिये आम लाया हूँ।"

उठती फसलके ढेरसे आमोंको देखकर नेहनी का जी ललचा उठा। उसने मुसकुरा कर कहा "काहेको इत्ता कष्ट करते हो कुंवर जू।"

"इसमें कष्ट काहेका। आम तो तुम्हारी पसन्दकी चीज़ है। तुम्हारे लिये तो मैं आसमान के तारे ला सकता हूँ भौजी।" गोकुल भावोंकी लहर में बह रहा था।

"लो फिर तुम भी चूसो।"

"मैं तो बगियासे छक कर आ रहा हूँ।"

"आओ, एक दो और सही।"

गोकुल नेहनीका अनुरोध न टाल सका। वह आम चूसता जाता था और नेहनीके रूप गुण की प्रशंसा भी करता जाता था। इस प्रशंसा के पीछे प्रेमी हृदयकी वासना छिपी थी। उस दिन उसका रूप विन्यास भी अपूर्व था। गुलाब के फूलकी भांति वह खिल पड़ा था। उसकी सेंदुर भरी मांग, कजरारी आंखें और रचे हुए ओंठ देखकर गोकुलके मनमें मिश्री घुल रही थी। उसने कहा—"भौजी, कोई गीत न सुनाओगी।"

"तुम्हें मेरा गीत पसन्द है।"

"क्यों नहीं।" गोकुलने नेहनीको झूला झुलाते हुए कहा—

नेहनीने गाना आरम्भ किया—'अरी ओ सखी, घनश्याम बिन मोहे कल न पड़े री।' गोकुलके मनकी गति भी ठीक इसी भांति थी। क्षण भरके लिये वह तड़प उठा। मनकी लगाम ढीली हो गयी। कुत्सित भावनाओंके पर लग गये। प्रेमकी चिनगारी एक अर्सेसे सुलग रही थी। वह अकस्मात् धधक उठी। गोकुल सोचने लगा—"गांवमें उसकी बदनामी फैल ही चुकी है। लोग उसको बुरा भला कहते हैं। तब वह अपने आपपर कहांतक जब्र करे। किसीसे प्रेम करना पाप नहीं। नेहनी भी उसको चाहती है। तब उसके अधरामृतका पान करके वह अपने हृदयकी प्यासको क्यों न शांत करे?"

गोकुल अपना विवेक खो बैठा। नेहनीके निकट जा उसका हाथ पकड़ कर वह बोला—"भौजी, एक बात कहूँ बुरा तो न मानोगी।"

नेहनी बेवकूफ न थी। वह गोकुलके हाव-भाव देखकर उसका मर्म समझ गयी। हाथ छुड़ा कर बोली—"खबरदार ये मन दूर रखना कुंवर जू?"

गोकुलके कल्पनाओंका महल ढहकर गिर पड़ा। उसे अपने पैरों तलेसे भूमि खिसकती-सी जान पड़ने लगी। निराश होकर बोला—"भौजी, जन्मभर तुम्हारा अहसान न भूलूंगा।"

"अहसानके बच्चे, मैं पापकी साथी नहीं।" नेहनीकी आंखें क्रोधसे उबल पड़ीं। गोकुल लड़खड़ाती जबानसे बोला—"भौजी, मुझे तुमसे ऐसी उम्मीद न थी।"

नेहनी और भी उग्र हो उठी। बोली—"बस अब जबान बन्द रखना नहीं तो अनर्थ हो जायगा गोकुल।"

गोकुलकी सारी आशाओंपर पानी फिर गया। वह चुप था। अपमानित था और मन-ही-मन आत्म-ग्लानिकी अग्निमें जल रहा था।

(३)

उपर्युक्त घटनाके उपरान्त गोकुलका नेहनीके यहां आना जाना बन्द हो गया। वह क्या मुंह लेकर नेहनीके सम्मुख जाता।

रातका समय था। नीले आसमानमें तारे टिमटिमा रहे थे। गोकुल चारपाई पर करवटें बदलता हुआ अपने भविष्यपर विचार कर रहा था। नेहनी जैसी सती-साध्वी स्त्रीपर कुदृष्टि डालकर उसने कैसा भारी अपराध किया था। उसने उसके निष्कपट प्रेमको खो दिया। पापका घड़ा जब फूटेगा और बजरङ्गको यह बात मालूम होगी तो वह भी उससे नाराज होगा। दिन व्यतीत होने लगे। गोकुलके मनका पाप, उसके अन्तस्तलमें पीड़ा बनकर उसको विचलित करता रहता। नेहनी उसकी ओर आंख उठाकर भी न देखती। उसकी निगाहमें वह मनुष्य नहीं शैतान था। लेकिन उसने उस घटनाका किसीसे जिक्र नहीं किया। कड़ुवे विषकी भांति वह उस बात को पी गयी।

सावनका महीना खतम हो रहा था। ऐसे ही मौके पर एक रातको नेहनीके मकानमें आदमियोंका शोर-गुल सुनायी पड़ा। नेहनी विस्मय में थी। घबड़ायी हुई थी। दरवाजा तोड़कर डाकू उसका मालमत्ता लूटने लगे। असहायावस्था में वह सहायताके लिये चिल्ला उठी। गांव वाले लाठियां लेकर दौड़ पड़े, लेकिन बन्दूककी आवाज सुनकर उनका उत्साह ठण्डा पड़ गया। गोलियों के सामने टिकना हंसी खेल न था। ग्रामीणोंकी इस टोलीमें गोकुल भी था। गोकुलने सोचा कि वह अपनी जानपर खेलकर नेहनीकी रक्षा करेगा। वह आगे बढ़ा। सामने एक डाकू गठरी बांधे रहा था। गोकुलने उसके सरपर लट्ठ दे मारा। वार करारा बैठा। डाकू जहांका तहां धराशायी हो गया। वह और आगे बढ़ा। औरों लट्ठके हाथ दिखाये। कई डाकू चुटैल हो गये और उनमें भगदड़ मच गयी। तब गांव वालों

को साथ लेकर उसने डाकुओंका पीछा किया। लाठियोंकी मार बेढब थी, किन्तु चलते-चलाते डाकुओंने गोकुलको धराशायी कर ही दिया। गोली उसके पैरमें लगी। आहत होकर वह गिर पड़ा।

गोकुलके पैरसे रक्त बह रहा था। वह पीड़ाके कारण कराह रहा था। लेकिन इस दर्दमें भी उसको प्रसन्नता थी। आत्म-सन्तोष था। उसने नेहनीकी रक्षा की। उसको लुटनेसे बचा लिया। नेहनी सहमी हुई उसके सामने खड़ी थी, उसको देखकर गोकुलका गला भर आया। आंखोंमें आंसू भर कर बोला—"भौजी मेरा अपराध क्षमा करना।"

यह सुनकर नेहनीका स्वर भी भारी हो उठा। मुंह घुमाकर वह भी सिसकियां लेने लगी।

(४)

गोकुलके पैरका घाव धीरे-धीरे अच्छा होने लगा। इसी बीचमें बजरङ्गी भी परदेशसे लौटा। गोकुलका साहस सुनकर उसकी प्रसन्नताका ठिकाना न रहा। उसने सगर्व नेहनीसे कहा—"देखा, दोस्त हो तो ऐसा हो। बेचारेने संकटके समय अपना करतब दिखा दिया।"

यह सुनकर नेहनीको गोकुलके दुर्व्यवहारकी बात स्मरण हो आयी। परन्तु अब वह पारस्परिक कटुताको बढ़ाना नहीं चाहती थी। उसके हृदयमें गोकुलके प्रति अब घृणाके बजाय कृतज्ञता थी। पुरानी बातको भुलाकर अब वह उसको सम्मानकी दृष्टिसे देखती थी। लेकिन गोकुलके मनमें तो चोर पैठा था। बजरङ्गके आगमनसे वह इतना भयभीत था कि वह उससे मिलने भी नहीं गया। बजरङ्ग उसकी इस उपेक्षासे आश्चर्यमें था। खा-पीकर उसके घर पहुंचा और बोला—"वाह भाई गोकुल, यहां मुंह छिपाये पड़े हो। मैं तुम्हारी राह देख रहा था। चलो, घर चलें।"

गोकुलकी अन्तरात्मा कांप उठी। उतरे मुंहसे बोला,—"बैठो, कब आये भैय्या।"

"यह लो तुम्हें खबर ही नहीं। मैं सुबह ही आ गया था।"

"मजेमें रहे।"

"हां, आनन्दमें रहा। यहां बड़ा गड़बड़ हो गया।"

"हां, लेकिन अधिक नुकसान नहीं हुआ।"

"तुम्हारी मौजूदगीमें नुकसान कैसे होता।"

"मैंने क्या किया भैय्या। सब भगवान भला करता है।"

"अच्छा उठो, चलो।"

बजरङ्गीने गोकुलका हाथ पकड़ कर उठा लिया। लेकिन गोकुलके पैर लड़खड़ा रहे थे। दरवाजे पर नेहनी खड़ी थी। उसने हंसकर स्वागत किया। गोकुलकी जानमें जान आयी। उसने झुककर नेहनीके पैर छूए। नेहनीने उसको आशीर्वाद दिया और बोली—"कुंवर जू, अब तबीयत कैसी है।"

"ठीक है भौजी।"

गोकुल उस समय आनन्दकी लहरोंमें उतरा रहा था। उसके मनका विषाद दूर हो चुका था।

मानसिक ग्रन्थियां

प्रो० लालजीराम शुक्ल

मनुष्यके सभी प्रकारके असाधारण व्यवहारोंका कारण मानसिक ग्रन्थियां ही होती हैं। मानसिक ग्रन्थियां ही उसके स्वप्नोंका कारण होती हैं। इन्हीं ग्रन्थियोंके कारण मनुष्यमें अनेक प्रकारकी मानसिक व शरीरिक बीमारियां उत्पन्न होती हैं। अतएव मनुष्यके स्वभाव तथा उसकी असाधारण चेष्टाओं और बीमारियोंको समझनेके लिये मानसिक ग्रन्थियोंके स्वरूपका समझना आवश्यक है।

मानसिक ग्रन्थियां मनुष्यके विकृत स्थायी भाव हैं। अतएव स्थायी भावोंका स्वरूप समझे बिना मानसिक ग्रन्थियोंका स्वरूप समझना सम्भव नहीं। स्थायी भाव मनुष्यकी जन्मजात प्रवृत्तियों अर्थात् मूल प्रवृत्तियों और वातावरणके संपर्कसे उत्पन्न होती हैं। मनुष्यके स्वभावमें अनेक प्रकारकी मूल प्रवृत्तियां हैं। ये मूल प्रवृत्तियां उसके मनमें जन्मसे ही रहती हैं। जब मनुष्य वातावरणके सम्पर्क में आता है तब इसी एक विषयके प्रति अनेक मूल प्रवृत्तियोंकी उत्तेजना होती है। इस उत्तेजना के कारण उस पदार्थके प्रति मनुष्य अनेक प्रकारके संवेगोंकी अनुभूति करता है। ये संवेग बार बार उत्तेजित होने पर एक दूसरेसे सम्बन्धित हो जाते हैं और जब कभी उक्त विषय मनुष्यकी चेतनाके समक्ष आता है तो वे संवेग क्रियामाण होते हैं। इस तरह मनुष्य किसी विशेष विषय अथवा उससे सम्बन्ध रखने वाले विषयके प्रति अनेक प्रकारके संवेगोंकी अनुभूति करता है। स्थायी भाव मनुष्यके मनोभावोंका ऐसा समुच्चय है, जिसको वह स्वीकार करता है और जिसके साथ वह जानबूझकर आत्म सम्बन्ध स्थापित करता है। उदाहरणार्थ देश-भक्तिको लीजिये। देश-भक्ति एक स्थायी भाव है। यह स्थायी भाव देशके प्रति अनेक प्रकारके संवेगोंके समुच्चयसे बना हुआ है। जिसमें देश-भक्तिका स्थायी भाव है वह उस स्थायी भावका अभिमान रखता है और उसके साथ उसका आत्म सम्बन्ध हो जाता है। वह उसे अपने स्वभावका अंग समझता है। यदि कोई व्यक्ति उससे कहे कि तुम देश-भक्त हो तो उसे इन शब्दोंको सुनकर लज्जा नहीं लगती अपितु वह प्रसन्नताकी अनुभूति करता है। इसी तरह धार्मिकता भी एक स्थायी भाव है। यह स्थायी भाव ईश्वर अथवा किसी अवतारके प्रति अनेक प्रकारके संवेगोंके बार बार अनुभूतिसे पैदा होता है। धार्मिकताका स्थायी भाव रखने वाला व्यक्ति इस भावको अच्छा समझता है तथा जानबूझ कर अपनाता है। इसी तरह बालकमें माताके प्रति और शिष्यमें अपने गुरुके प्रति, दार्शनिकमें सत्यके प्रति स्थायी भाव रहते हैं। ये स्थायी भाव उनके स्वभावके अंग होते हैं।

स्थायी भाव अच्छे अथवा बुरे हो सकते हैं। किन्तु जहां तक वे व्यक्ति द्वारा स्वीकार किये जाते हैं, वे स्थायी भाव ही कहलाते हैं। यदि साधारण जन समुदाय उन्हें भला समझता है तो वह भले हैं यदि वह उन्हें बुरा समझता है तो वे बुरे हैं।

भावना ग्रन्थियां वे स्थायी भाव हैं जो किसी व्यक्तिके मनमें वर्तमान है किन्तु वह उन्हें स्वीकार नहीं करना चाहता। स्थायी भावों के सदृश भावना ग्रन्थियां भी अनेक प्रकारके संवेगोंके समुच्चय होते हैं जोकि किसी बाह्य पदार्थ अथवा विचारके आस पास केन्द्रित हो जाते हैं। वे दुःखदायी स्मृतिको जाग्रत करते हैं और अपने चरित्रके प्रतिकूल होते हैं अतएव हमारा स्वत्व व आत्मा उन्हें स्वीकार नहीं

करता। दुखदायी भावनाएं अनुभवके मिल जानेसे प्रबल हो उठती हैं और ये अनुभव ही भावना ग्रन्थियोंके कारण बन जाते हैं। उदाहरणार्थ, बुजदिलीके काम, आत्म-सम्मानको ठेस पहुंचाने वाला अनुभव अथवा बलात्कारका अनुभव दुखदायी होता है और उसकी स्मृति मनमें आने पर दुखदायी भावोंकी अनुभूति होती है। अतएव इस प्रकारके अनुभवकी स्मृतिको हमारा मन चेतनाके समक्ष आनेसे रोकता रहता है; अर्थात् दुखदायी अनुभवोंकी स्मृतिका दमन किया जाता है। भावना ग्रन्थियां ऐसे ही दुखदायी मानसिक विकारको कहा जाता है, जिसे आत्मा स्वीकार नहीं करना चाहती और जिनकी स्मृति को दबानेकी वह चेष्टा करती रहती है।

भावना ग्रन्थियोंके नाम कभी कभी उसमें उपस्थित प्रधान संवेगके अनुसार पड़ता है, जैसे भयकी भावना ग्रन्थि, कामकी भावना ग्रन्थि, अथवा हीनताकी भावना ग्रन्थि। कभी कभी भावना ग्रन्थियोंके नाम जिस पदार्थके प्रति संवेग केन्द्रित होते हैं उसके अनुसार पड़ते हैं जैसे विमाताकी भावना ग्रन्थि, धर्म सम्बन्धी भावना ग्रन्थि, लड़ाईकी भावना ग्रन्थि आदि। ये भावना ग्रन्थियाँ ऐसी प्रेरणायें उत्पन्न करती हैं जिनका कारण वह नहीं जानता, जो प्रायः उसके विवेकके प्रतिकूल होती हैं, और मनुष्यके अनेक प्रयत्न करने पर भी जो उसके मनसे नहीं जाती। हम किसी व्यक्तिके प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करना चाहते हैं, किन्तु हम उसके प्रति अनुचित व्यवहार करनेकी प्रेरणा अपने मनमें पाते हैं। हमारा विवेक हमें एक बात करनेको कहता है और भावना ग्रन्थि जनित प्रेरणा हमें बरबस दूसरी ओर ले जाती है।

भावना विषयक ग्रन्थियोंके विषयमें यह स्मरण रखना आवश्यक है कि जो भावना ग्रन्थियां एक समय स्मृतिमें आने पर दुःखकी वेदना पैदा करती हैं वे ही दूसरे समय चेतनाके समक्ष आने पर कोई दुखकी वेदना नहीं पैदा करती अतएव जिन भावना ग्रन्थियोंको हम एकबार स्वीकार नहीं करना चाहते वे दूसरी बार अवस्था के परिवर्तनके कारण स्वीकृत हो सकती हैं। किन्तु उन्हें स्वीकार तभी किया जा सकता है जबकि वे चेतनाके समक्ष आयें। अधिकतर वे दमनके कारण हमारे अचेतन मनमें ही दबी रह जाती हैं और इस तरह हमारे स्वास्थ्य अथवा आचरणमें अनेक प्रकारके दोष उत्पन्न करती रहती हैं। जो अनुभव हमारी प्रौढ़ अवस्थामें लज्जा और आत्म ग्लानिका कारण बन जाता है, वही वृद्धावस्थामें हँसीका कारण हो सकता है। अतएव जब अपनी प्रौढ़ावस्थामें मनुष्य अपने बचपनकी भावना ग्रन्थियोंको चेतनाके समक्ष ले आता है तो उनके कारण वह दुखी नहीं होता, वे फिर उसके जीवनमें किसी प्रकारकी विषमता उत्पन्न नहीं करती और इस तरह उनका अंत हो जाता है।

भावना ग्रन्थियां मनुष्यको ज्ञात अथवा अज्ञात रह सकती हैं। कभी-कभी हमारी दुःखद अनुभूतियां प्रयत्न करनेपर भी मनसे अलग नहीं होतीं। अपनी कायरताकी स्मृति अथवा अपमानकी स्मृति प्रयत्न करनेपर भी नष्ट नहीं होती। पर साधारणतया अपनी मानसिक ग्रन्थियोंको हम नहीं जानते हैं, अर्थात् जिस अनुभूतिके कारण वे उत्पन्न होती हैं वह हमें स्मरण नहीं रहती। अपने कुछ दुःखद अनुभवोंको हम भूल जानेकी चेष्टा करते हैं और उन्हें स्वीकार करना ही नहीं चाहते। जिस तरह हम अपने उन मित्रों व सम्बन्धियोंसे नाता नहीं रखना चाहते जिन्होंने हमें अपमानित किया, उसी तरह हम उन अनुभवोंको भी अपनाना नहीं चाहते जिनसे हमें दुःख हुआ और जिनकी स्मृति भी दुःखद है। दुःखद स्मृतिको न आने देनेकी चेष्टा करना दमन कहलाता है और इस प्रकार प्रयत्नपूर्वक दबायी गयी स्मृति दलित ग्रन्थि कहलाती है।

भावना ग्रन्थिके दो भाग होते हैं एक भाव और दूसरा पदार्थ जिसके ऊपर भाव आरोपित रहता है। भावना ग्रन्थि जब कभी चेतनामें प्रकाशित होती है तो मूल अनुभवसे किसी दूसरे पर आरोपित होकर प्रकाशित होती है। मान लीजिये कि किसी एक व्यक्तिने हमारा अपमान किया है, उस अपमानकी स्मृति हमारी चेतनाके समक्ष नहीं आती है पर इसके प्रतिकारस्वरूप हमारे अनजाने हमें अकारण हर एक ऐसे व्यक्ति से घृणा हो जाती है, जो किसी बातमें हमारा अपमान करने वाले व्यक्तिसे मिलता जुलता है। कभी कभी भावना ग्रन्थिका प्रकाशन अकारण-भयसे हो जाता है। किसी व्यक्तिको भय रहता है कि उसे मृत्यु-दण्ड मिलेगा। वह उसका कारण नहीं जानता। अपनी समझमें उसने कोई अपराध नहीं किया, परन्तु तिसपर भी वह मृत्यु-दण्डके भयसे त्रस्त रहता है। यदि वह किसीकी हत्याका समाचार सुन लेता है तो वह उस हत्यारे से अपना इतना अधिक आत्म-सम्पर्क स्थापितकर लेता है कि वह अपने आपको ही हत्यारा मान बैठता है। इस प्रकारकी मानसिक स्थितिका कारण मनमें स्थित भावना ग्रन्थिका रहना है।

भावना ग्रन्थि शारीरिक बीमारियोंमें भी प्रकाशित होती है, जैसे लकवा, अंधापन आदि। इस प्रकारकी बीमारियोंको रूपान्तरित हिस्टीरिया कहा जाता है। यहां कोई दुर्भाव अज्ञात रूपसे शारीरिक बीमारीमें प्रकाशित होता है। इस प्रकारकी बीमारियां मानसिक विकारके बाहर निकलनेकी चेष्टा मात्र हैं। शारीरिक वेदना आन्तरिक वेदनासे अधिक वांछनीय है, इसी कारण मानसिक वेदना शारीरिक बीमारियोंमें परिणत हो जाती है।

भावना ग्रन्थि अनेक प्रकारकी क्रियात्मक उत्तेजना पैदा करती है! इन उत्तेजनाओंको जान-बूझकर प्रकाशित होनेसे रोकना संयम कहलाता है और अनजाने रोकना दमन कहलाता है। दमन अज्ञात मानसिक क्रिया है। दमन हमारी नैतिक बुद्धि अथवा किसी विशेष प्रकार की स्थायी धारणाके कारण होता है। यह हानिकर होता है। दमनके प्रतिक्रिया स्वरूप अनेक प्रकारकी मानसिक व शारीरिक बीमारियां उत्पन्न होती हैं तथा अनेक प्रकारके दुराचारकी प्रवृत्ति भी इसीके कारण होती है।

भावना ग्रन्थियोंका दमन तीन प्रकारसे होता है! कभी-कभी मनुष्यकी दो प्रबल प्रवृत्तियोंमें द्वन्द्व होता है जिसके परिणाम स्वरूप एकका दमन हो जाता है और दूसरी प्रबल हो जाती है। उदाहरणार्थ, किसी बालकमें दूसरोंकी प्रशंसा पानेकी इच्छा और परिणामके भयके बीचमें अन्तर्द्वन्द हो सकता है। उसकी प्रशंसा पानेकी इच्छा भयके कारण दब जाती है, अथवा उसका भय प्रशंसा पानेकी इच्छाके कारण दब जाता है। इस प्रकारके दमनसे दलित भाव जटिल हो जाता है। कभी-कभी पूर्व अवस्थाका कोई भाव पीछे आनेवाली अवस्थाके किसी भावको दबा लेता है। कितने ही लोग जो स्त्री-प्रेमसे विरत रहते हैं वास्तवमें स्वार्थी होते हैं, भावना-ग्रन्थिका दमन स्वत्वके द्वारा भी होता है। जो मनोभाव हमारी आत्म-प्रतिष्ठाके प्रतिकूल होते हैं उनका स्वत्व दमन करता है। तीनों प्रकारके दमनमेंसे सबसे अधिक दमन स्वत्व द्वारा ही होता है।

—:०:—

बर्लिनसे दिल्ली

श्री अल्फ्रेड टीरानोर

सुभाषचन्द्र बोस सिंगापुरके जापानियों-द्वारा प्रवर्तित "स्वतन्त्र भारतीय सरकार" के प्रधान हैं। एशियामें इस युद्धके परिणाम-स्वरूप धुरी शक्तियोंको इतना जबर्दस्त और महान व्यक्तित्ववाला दूसरा व्यक्ति नहीं मिला। धुरी शक्तियोंद्वारा बैठाये गये दूसरे कठपुतलोंसे इनका व्यक्तित्व कहीं ऊंचा और शान-शौकतवाला है। चतुर, सुन्दर, बुद्धिमान, ब्रिटिश-शिक्षाप्राप्त, दर्पपूर्ण और असीम महत्वाकांक्षी बोसमें चकित करनेवाले परिवर्तन हुए। क्रान्तिकारी समाज-वादीसे वे फासिज्मके कट्टर समर्थक बन गये थे, आजसे प्रायः ठीक दस वर्ष पहले।

१९३३ में उन्होंने जो कुछ कहा था, वह मुझे अब भी अच्छी तरह याद है। उस समय उनका यह वक्तव्य फासिज्मकी सिर्फ कैफियत और पैरवीके अर्थमें लिया था। लेकिन आज पिछले १० सालकी घटनाओंका सिंहावलोकन करनेसे उस वक्तव्यमें भविष्यवाणी और भावी कार्यक्रमका सुन्दर आकर्षक सम्मिश्रण ही साफ दिखायी देता है। उन्होंने मुझसे कहा था : फासिज्म प्रधानतया सैनिकवाद है। अनिवार्यतः फासिज्म संसारको एक नये विश्व-संघर्षकी ओर अग्रसर करेगा और इस तरह भारतको ब्रिटिश-दासत्व-शृङ्खलासे अपनेको मुक्त करनेका अपूर्व सुयोग देगा। मेरा यह विश्वास है कि बड़ी-बड़ी राष्ट्रीय और सामाजिक समस्याओंका समाधान शक्ति द्वारा ही हो सकता है। युद्ध और क्रान्तिमें मैं विश्वास करता हूँ। आप जैसे शान्तिवादी लोगोंके शब्दोंमें उसीको मैं इस तरह कह सकता हूँ कि मैं मानव-बलिदानमें विश्वास करता हूं। भारतकी स्वतन्त्रता जैसी महती वस्तुकी प्राप्तिके लिये कोटि, दो कोटि व्यक्ति मर भी जायें, तो ऐसे उच्च और महान कार्यके लिये यह कीमत कुछ अधिक न होगी।

सुभास चन्द्र बोस

हिटलर

जिनके प्रचण्ड धर्मान्धपूर्ण एवं निष्ठुर सिद्धा-न्तकी बातें सुनकर बहुतसे श्रोतागण झूम उठते थे और कितने ही उसकी सत्यतामें सन्देहसे मुसका देते थे, आज वही बोस, जो कभी देश निर्वासित थे, ब्रिटेन और संयुक्त राज्य अमेरिकाके खिलाफ युद्ध लड़ रहे हैं। जापा-नियोंकी मददसे उन्होंने 'स्वतन्त्र भारतीय सेना' का सङ्गठन किया है। जापानी साधनों और शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित भारतीय सेनाका युद्ध-घोष है—"आगे बढ़ो, कूच करो दिल्लीको।"

अंग्रेजोंद्वारा निर्मित किन्तु जापानियोंद्वारा सञ्चालित शक्तिशाली सिंगापुर रेडियोसे बोस दिन-रात घृणाका प्रचार करते हैं। यह कौशल उन्होंने स्वयं डाक्टर गोयबलससे सीखा है। बोस
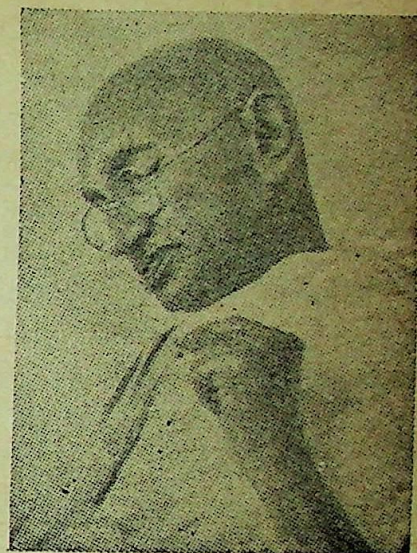
महात्मा गांधी

प्रेरणा और प्रतीति उत्पन्न करनेवाले लेखक और आग बरसानेवाले वक्ता हैं। वे उच्छृङ्खल प्रचारक और उग्र एवं प्रचण्ड चोट कर सकनेकी क्षमता-प्राप्त शास्त्रार्थी हैं।

यह कहकर कि महात्माजीको जेलमें बन्द कर रखा गया है, अपने मतलबके लिये, जहांतक सम्भव है अधिकसे अधिक लाभ उठानेसे वे नहीं चूकते, किन्तु साथ-ही-साथ महात्माजीकी प्रतिष्ठा घटानेके प्रयत्नसे भी बाज नहीं आते। इस कलामें वे इतना कुशल हैं।

प्रथम विश्व संघर्षकी समाप्तिके बाद ही बोस महात्मा गांधीके कट्टर अनुयायी हो गये, उस समय वे विद्यार्थी जीवनमें ही थे। १९२० के बाद बोस, जनताके श्रद्धा-भाजन महात्मा और उनके घनिष्टतम मित्र जवाहरलाल नेहरूके सम्पर्कका लाभ उठाते हुए वाम पक्षकी ओर तीव्रता और दृढ़ताके साथ बढ़ने लगे। अन्तमें उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलनके एक अति उग्र और प्रगति-वादी नेता विट्ठल भाई पटेलके साथ अपना सम्पर्क जोड़ा।

बोस कितनीही बार गिरफ्तार किये गये और अंगरेजोंद्वारा दण्डित हुए। प्रत्येक बार जेलसे निकलनेके बाद उनके राजनीतिक और सामा-जिक विचार पहलेसे तीव्र और उग्र होते गये। प्रायः ११ वर्ष पहले जब वे बीमारीकी वजहसे जेल-मुक्त हुए और यूरोप आये थे, उस समय वे मास्कोसे सहायता लेनेका संकल्प लेकर आये थे और सोवियट राजधानीमें अपना राजनीतिक सदर मुकाम स्थापित करनेकी योजना बना चुके थे। उस समय वृद्ध विट्ठल भाई पहलेसे ही
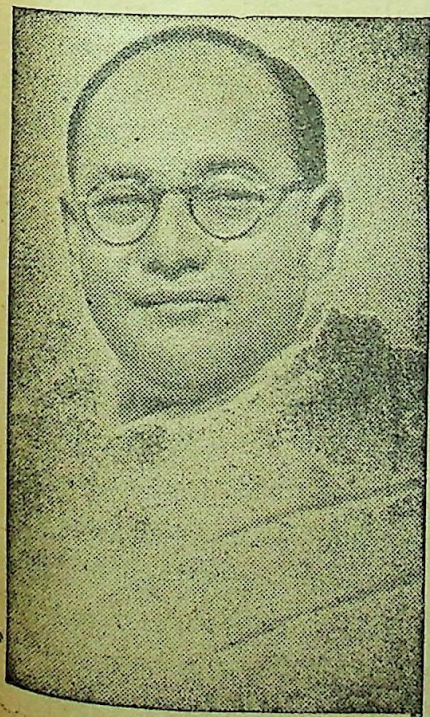
च्छापूर्वक यूरोपमें निर्वासित जीवन बिता रहे थे। उन्होंने बोसको लिखा कि 'तुम मुझसे आकर मिलो।' बोस राजी हो गये और वियेना पहुंचे। पटेल बोससे अधिक बुद्धिमान थे, किन्तु रुग्ण भी वे बोससे अधिक थे। वियेनाके प्रसिद्ध डाक्टरोंसे चिकित्सा विषयक परामर्श तो लिया, किन्तु उन्होंने किसीकी राजनीतिक अभिभावकता में रहना अस्वीकार किया और मास्को, बर्लिन अथवा रोमसे आनेवाले निमन्त्रणोंको उन्होंने कभी स्वीकार नहीं किया। किन्तु बोसने ऐसा नहीं किया। यद्यपि मास्कोके सम्बन्धमें उन्होंने अपना विचार बदल दिया था, किन्तु उन्होंने मुसोलिनीके निमन्त्रणको स्वीकार किया और रोममें उनसे मिले। और १९३३ में बर्लिनके लिये बोसका मार्ग रोममें ही खुल गया था।

आरम्भमें बोसने हिटलरके कैम्पमें शामिल होनेमें हिचक की। १९३३ के ग्रीष्ममें उन्होंने विश्वास दिलाते हुए मुझसे कहा था—'एशिया-वासी कोई स्वाभिमानी व्यक्ति जातीय श्रेष्ठताकी नाजी कल्पनाके आगे कभी नतमस्तक नहीं हो सकता।' तथापि, कुछ महीने बाद ही दर्पपूर्ण नार्दिक, वेलटानशाङ्के कई प्रमुख सदस्योंसे बोसकी मित्रता बढ़ती देखी गयी।

ऐतिहासिक दस्तावेज

मेरे वृद्ध, श्वेत दाढ़ीवाले मित्र पटेलने बोसके इस कामको पसन्द नहीं किया। मास्कोके सहयोग और सहायतापर उन्हें अधिक आशा नहीं थी, किन्तु बर्लिन और रोमकी मित्रतापर तो उन्हें विश्वास भी नहीं था। अवश्य ही राजनीतिक हथकण्डोंको वे बुरा न समझते थे, लेकिन नाजियोंसे किसी तरहका सम्बन्ध रखनेके वे सख्त विरोधी थे। इसके सिवा एक बात यह भी थी कि पटेल भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलनके समर्थक धनी भारतीय उद्योगपतियों, व्यवसायियों और पूंजीपतियोंको,—जो अंगरेजोंको तो नापसंद करते थे लेकिन उनसे अधिक हिंसाको,—विरोधी न बनाना चाहते थे। पटेल और बादमें बोसके आस्ट्रियामें अपना सदर मुकाम कायम करनेके बाद तो वहां भारतीय पर्यटकोंका तांता बंध गया। पटेल और बोस अकसर मेरे अतिथि हुआ करते थे। भारतीय मामलोंमें मेरी पुरानी दिलचस्पी फिर जाग उठी और शीघ्र ही गांधीजीके साथ मेरा पत्रालाप आरम्भ हो गया।

१९३३ भाग्य-परिवर्तनकारी वर्ष हुआ। जर्मनीमें हिटलरने अधिकार हस्तगत कर लिया और मुसोलिनीने उनका समर्थन किया। इसके पहले ही मुसोलिनी अफ्रीकन युद्ध छेड़नेकी पूरी तैयारी कर चुका था, जिसका मतलब था ब्रिटिश साम्राज्यसे खुल्लमखुल्ला लड़ाई मोल लेना। इसके प्रतिकूल नाजी चैलेंजका सामना करनेके लिये रूसने फ्रांससे सन्धि की और ब्रिटेन तथा संयुक्त राज्य अमेरिकासे सद्व्यवहारपूर्ण मैत्री सम्बन्ध स्थापित किया। उधर जापान, जो चीनसे मानचूकोको पहले ही छीन चुका था, जेहोलको भी हथिया लिया और यह स्पष्ट प्रतीत होने लगा कि वह एशियाके भीतर आगे कदम बढ़ानेकी तैयारी कर रहा है।

पटेल और बोस दोनोंका ही यह मत था कि सङ्घर्षके लिये यही अच्छा मौका है। लेकिन पटेल मुख्यतः भारतके जन-आन्दोलनपर आस्था रखते थे और बोसको आगाह कर दिया था कि यूरोपमें उनको आवश्यकतासे अधिक बढ़कर किसीके साथ बातकी हारजीतमें न पड़ना चाहिये। लेकिन बोसको यह बात पसन्द न थी। उन्होंने आपत्ति करते हुए कहा कि इंगलैण्डका शत्रु भारतका मित्र होगा। और बादमें मुझे यह बात मालूम हुई कि उसी समय वे फासिस्ट शक्तियोंके संसर्गमें आ चुके थे। इस तरहके क्षुब्ध एवं गम्भीर वातावरणमें दोनों भारतीय नेताओंने गांधीजीकी अहिंसा नीतिके खिलाफ सम्मिलित आक्रमण शुरू करनेका निश्चय किया।

वियेनाके होटलके उस सुन्दर सुसज्जित कमरे का अपूर्व चित्र आज भी मुझे अच्छी तरह याद है, जहां बैठकर दो प्रभावशाली भारतीयोंने अशुभसूचक दस्तावेजको मोहरबन्द किया था। १९३३ के शेष भागमें एक दिन मैं वियेना होटल दि फ्रांसमें पटेलसे मिलने गया था। मैंने देखा कि शैयाग्रस्त पटेलका समय चिकित्सकों और बन्धुओंके बीचमें व्यतीत हो रहा था।

हार्दिक स्वागत-सत्कार जतानेके बाद पटेलने अपनी योजनाकी व्याख्या करते हुए मुझसे कहा: "गांधीकी निष्क्रिय प्रतिरोधकी नीतिके विरुद्ध हमलोग एक सम्मिलित घोषणा जारी करने जा रहे हैं। हम दोनोंकी यह राय है कि हिन्दुस्तान क्रान्तिकी उस स्थितिपर पहुंच गया है, जब अधिक सक्रिय नीतिसे काम करनेकी आवश्यकता है। शब्दोंको लेकर कुछ कठिनाई उठ खड़ी हुई है। मैं चाहता हूँ कि जहांतक हो सके, कटुता न लायी जाये। मेरे नौजवान दोस्त बोसका यह विश्वास है कि आक्रमण छुरेकी धारकी तरह तीक्ष्ण और तीव्र होना चाहिये, जब कि मैं समझता हूँ कि किसीको अपने घरमें भी असावधान न रहना चाहिये।"

बात काटते हुए बोसने कहा, "गांधी अब उस फर्नीचरकी भांति हैं, जो पुराना और बेकार पड़ गया है। उन्होंने अपने समयमें अच्छी सेवा की है, लेकिन अब तो वे मार्गका रोड़ा हैं।" अनिच्छापूर्वक सम्मत होते हुए पटेलने कहा, "हो सकता है कि कर्मशील राजनीतिज्ञकी हैसियतसे वे आज पथका रोड़ा ही हों, लेकिन उनके नामका महान और स्थायी मूल्य है। हमें इस बातको सदा ध्यानमें रखना चाहिये।"

बोसने अपनी मादरी जबानमें कुछ कहा और तब वे घोषणापत्रको दूसरी तरह लिखने बैठे। पटेलने अपनी विलक्षण, प्रतिभाशाली काली-काली आंखोंको मेरे ऊपर गड़ाते हुए कहा, "पुरानी दोस्तीका ख्याल करके मैं चाहता हूँ कि आप पहले संवाददाता हों जो इस घोषणा-पत्रको, जो सम्भवतः कालान्तरमें अत्यन्त महत्वका सिद्ध हो सकता है, प्राप्त करें। बहुत मुमकिन है कि इससे व्यर्थकी होनेवाली गोलमेज कानफरेंसें हमेशाके लिये खतम हो जायें।" मैंने साहसपूर्वक कहा कि गोलमेज कानफरेन्सोंसे यद्यपि कोई निश्चित परिणाम नहीं निकलता तथापि बातें खुलासा हो जाती हैं। बोसने लिखना बन्द करके बात काटते हुए कहा,—"इतिहासमें आज तक कभी कहीं कोई वास्तविक परिवर्तन वार्तालाप और विचार विनिमय द्वारा नहीं हुआ।"

"और दूसरा एकमात्र रास्ता हिंसा है।" मैंने उत्तर दिया। "क्रान्ति और युद्ध, वर्तमान क्षुब्ध और खौलती हुई परिस्थितियोंमें विश्वयुद्ध तककी नौबत पहुंच सकती है।"

"तो क्या हुआ?" आवेशके साथ बोसने प्रत्युत्तर दिया। "अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करनेके लिये लाल—बलिदानकी आवश्यकता है और भारत वह कर सकनेकी स्थितिमें है। ३९ कोटि दुःखी प्राणी मुक्तिकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

क्षीण मुसकानके साथ पटेलने मेरी ओर देखा—"युवक भारतके मनकी बात बोस कहते हैं।" उन्होंने धीरेसे कहा, "यह विचार उज्ज्वल भी हो सकता है, मूर्खतापूर्ण भी हो सकता है। यह विचार रचनाशील हो अथवा आत्मघातक। लेकिन उनके मनकी यह बात है और यदि देवता प्यासे हैं तो रक्तदानके सिवा हम और क्या कर सकते हैं।"

बोसने लिखना समाप्त किया, मैंने उनके कन्धेके ऊपर दृष्टि डाली तो इस वाक्यपर मेरी नजर पड़ गयी। "हम लोगोंका यह स्पष्ट मत है कि राजनीतिक नेताकी हैसियतसे महात्मा गांधी असफल हुए। ऐसी हालतमें असहयोगके रूपको बदलकर उसे अधिक क्रियात्मक बनाना और स्वतन्त्रताकी लड़ाईको सभी मोर्चोंपर जारी करना आवश्यक है।"

बोसने वह हस्तलिपि पटेलको दी जिन्होंने अपनी सम्मतिके साथ उसपर अपना हस्ताक्षर कर दिया। उन्होंने अपना प्रभावोत्पादक, भविष्यकी चिन्ताओंसे पूर्ण ललाट मेरी ओर घुमाया और दर्द भरी मुसकानके साथ कहा "सम्भव है, यही मेरा आखिरी राजनीतिक कार्य हो। अगर आप चाहें, मेरे दोस्त, मूल घोषणा-पत्र आप अपने पास रख सकते हैं। किसी दिन यह एक दिलचस्प दस्तावेज हो सकता है। अथवा बतौर स्मृति ही सही।"

और सचमुच वह उनका अन्तिम राजनीतिक काम था। थोड़े दिन बाद ही हृदयके आक्रमणसे उनका देहावसान हो गया। ऐसी स्थितिमें वह सम्मिलित अपील बोसको पटेलके उत्तराधिकारी और गांधीके प्रतिद्वन्द्वीकी भांति अपनी प्रतिष्ठा कायम करनेमें बड़ी सहायक हुई। इस तरह वह हस्तलिखित घोषणापत्र,—जो इस समय मेरे पास है, वस्तुतः एक महत्वपूर्ण दस्तावेज बन गया है।

१९३४ में बोसने यह बात स्वीकार की थी कि उन्होंने मास्कोसे अपना नाता तोड़ कर रोमसे जोड़ा है। अब तो वे खुल्लमखुल्ला फासिज्मकी प्रशंसा करने लगे। यद्यपि उन्होंने इस बातका ध्यान रखा कि सांसतमें पड़ी हुई आस्ट्रियन सरकारके मनोभावोंको आघात न पहुंचाया जाये लेकिन इससे अधिक उन्होंने इस बातका परिचय दिया कि नाजीवादके कितने ही पहलुओं-से उनकी अच्छी जानकारी है। हिटलरकी शक्ति-की वृद्धिके साथ-साथ युवक भारतीय नेता बर्लिनकी ओर अधिकाधिक आकृष्ट होने लगा। राजदूत वान पापेनको अपने इस नये शिकारका महत्व समझनेमें देर नहीं लगी और उन्होंने -बोस को हिटलर, रिवनट्राप, गोयरिङ्ग और हेस एवं अन्य नाजी नेताओंसे मिलाया। धीरे-धीरे बोस अपने लिबरल लोकतन्त्रीय और समाजवादी मित्रोंसे दूर होने लगे और क्रमशः नाजी बंधुओं और सहानुभूति दिखानेवालोंका साथ अधिक बढ़ने लगा।

वियेनामें लिखी गयी पुस्तकमें बोसने यूरोपियन मतमतान्तरों और वाद प्रतिवादोंसे अपनेको दूर तटस्थ रखा है। लेकिन अकसर वे जर्मनी की यात्रा करते, और वहांकी स्थितिका अध्ययन करनेके लिये जर्मनीसे उनके पास ऐसे व्यक्तियों का आगमन होने लगा जो अपनी गति-विधि गुप्त और रहस्यपूर्ण रखते थे। बोससे मिलने जो भारतीय आते उनसे वे जर्मन सेना और इटालियन नौ-सेनाकी बढ़ती हुई ताकत और ब्रिटिश साम्राज्यके होने वाले विनाशकी चर्चा करते थे।

एक दिनकी बात है कि जातीय-चैतन्य जागृत बोस एक नार्दिक युवतीके साथ दिखायी दिये। वह युवती बड़ी सरस और आकर्षक ढङ्गसे भारतीय आर्यत्वकी चर्चा कर रही थी और बीच-बीचमें अपनी प्रणय सूचक दृष्टि अपने भूरे साथी पर फेंक रही थी। यह स्पष्ट दृष्टि-गोचर हो रहा था कि उसने बोसके दिलसे जाति-गत छोटप्पनके भावको दूर कर दिया था। बादमें यह अफवाह उड़नेमें आयी कि वह युवती गेस्टापोकी एजेण्ट थी। बोसका नाजी सम्पर्क अब एक खुला रहस्य था। उनका प्रभाव और शक्ति भी बढ़ने लगी। :उस समय उनको बर्लिन से आर्थिक मदद मिलती थी या नहीं, यह तो मैं नहीं जानता। लेकिन उनको पैसेका अभाव न था और पटेलके नाम और प्रतिष्ठासे उन्होंने बड़ा लाभ उठाया। यह मानी हुई बात है किबोस जान बूझकर सावधानी पूर्वक जातीय सिद्धान्तों को काममें लानेसे दूर रहते थे, जिनका हिन्दुस्तानमें बहुत बड़ा महत्व था। किन्तु हिटलर और गोयबलकी शिक्षा उन्होंने ग्रहण करनेमें जरा भी विलम्ब नहीं लगाया। जनसाधारणके लिये लिखे गये अपने लेखोंमें उन्होंने समाजवादी दृष्टिको बनाये रखा, लेकिन समाजवादी बातोंके क्षीण आवरणके द्वारा वे अधिकाधिक घृणा और प्रतिहिंसाकी आगको भड़काने और संकीर्ण राष्ट्रीयताका भाव भरने लगे।

जो धनी भारतीय उनसे मिलने आते थे उनको बोस बराबर यह आश्वासन देते कि भारत के नवीन उद्योग-धन्धे और लेन-देन (बैकिङ्ग) की प्रथाकी रक्षा की जायेगी। यह आश्वासन भी दिया जाता था कि ब्रिटिश प्रतियोगितासे उनको मुक्ति दिलायी जायेगी। अछूतोंको पूर्ण समानता और मुसलमानोंको सांस्कृतिक स्वतन्त्रता एवं लम्बी राजनीतिक रियायतें और सुविधाएं देनेका आश्वासन दिया जाता था। लेकिन भारतको विभक्त करनेवाली पाकिस्तानकी योजना के वे कट्टर विरोधी थे। ब्रिटिश भारतमें १९३५ के भारतीय विधानको, जिसके अनुसार ब्रिटिश भारतमें प्रांतीय स्वराज्यकी योजना बनी, वे "लचर और भ्रामक गांधी समझौता" कह कर उसकी तीव्र निन्दा करते थे। लेकिन अपनी महत्वाकांक्षाओंकी पूर्तिके लिये उससे लाभ उठानेमें वे सबसे आगे देखे गये।

१९३७में कांग्रेस पार्टीके हाथमें आठ नयी प्रान्तीय सरकारोंका नियन्त्रण आया। अङ्गरेजों और भारतीयोंके बीचकी तना-तनी कुछ ढीली पड़ी और दिल्ली सरकारने बोसके भारत लौटने पर आपत्ति नहीं की। भारत आते ही बोसने कांग्रेस पर अधिकार करनेका राजनीतिक आन्दोलन शुरू कर दिया। उन्होंने अपने अनुयायियोंको, कांग्रेसके भीतर और बाहर, तानाशाही ढङ्ग पर सङ्गठित किया और १९३८में गांधी को अपने पक्षमें करने और कांग्रेसके प्रेसीडेण्ट बननेमें उनकी चाल कारगर हो गयी। उनका सङ्गठन, फारवार्ड ब्लाक दो भागोंमें बिभक्त था। एक भाग पार्लमेण्टरी दल था और दूसरा (आतंक फैलाने वाला दल) स्टार्म ट्रूप था। प्रथम भाग नवीन प्राप्त राजनीतिक सुविधाओंसे लाभ उठानेके लिये उच्छृंखल प्रचार कार्य करने लगा और दूसरा दल, युद्ध, क्रान्ति और आतङ्कका शासन आनेकी प्रत्याशामें, पर्देके पीछे गुप्त तौर-तरीकोंसे काम करने लगा। अपने ऐसे एशियाई-चेले पर हिटलरको गर्व था और यह गर्व अकारण न था।

संसार-संकटको आसन्न देख बोसके हौसले बढ़ गये और खुल्लम खुल्ला अंग्रेजोंसे सम्पर्क छिन्न कर लेनेका प्रचार करने लगे। कांग्रेसके प्रेसिडेण्टकी हैसियतसे उनकी प्रतिष्ठा इतनी बढ़ गयी थी कि उनको अपने द्वैध सङ्गठनको देश भरमें फैलाने एवं पड़ोसी राज्योंकी सरकारों एवं राजनीतिक पार्टियोंसे सम्पर्क बढ़ानेमें सहायता और सुविधा मिली। उनके अत्यन्त घनिष्ट मित्रोंमें तत्कालीन बर्माके प्रधान मन्त्री यू० सा० थे जिनको बर्मा पर आक्रमणके कुछ ही दिन पहले शत्रुके साथ षड़यन्त्र करनेके अभियोगमें अङ्गरेजों ने गिरफ्तार कर लिया था।

बर्माके साथ-साथ बोसने अपने ब्रिटिश विरोधी षड़यन्त्रको थाईलैण्ड, मलय, सिंगापुर और इण्डोचीन तक फैलाया और इस

कार्यमें उनको जापानी और जर्मन एजेन्टोंसे पूरी मदद मिली। पश्चिममें नाजी आक्रमण और पूर्वमें जापानी हमलेका सामना करते रहनेके समय ब्रिटेन पर पीछेसे वार करनेके इरादेसे एक एशियायी पांचवें कालमका सङ्गठन आरम्भ हो गया था। १९३९ में जब अन्तर्राष्ट्रीय तनातनी संघर्षकी स्थिति पर आ गयी थी, बोसने कांग्रेस से अपना तीर छोड़नेको कहा। उन्होंने कहा कि यही उपयुक्त अवसर है सम्पूर्ण स्वतन्त्रताकी घोषणा करनेका। विद्रोहके लिये वे उतावले हो उठे। वे अङ्गरेजोंके खिलाफ जेहादका प्रचार करने लगे। जिस समय बोस इस तरहका प्रचार कर रहे थे ठीक उसी समय, ताज्जुबकी बात है कि, हिटलर इस बातकी आप्राण चेष्टा कर रहे थे कि ब्रिटेनको जर्मन-पोलिश संघर्षमें हस्तक्षेप करनेसे रोका जाये। लेकिन इस बार हिटलर और बोस दोनों असफल हुए।

ब्रिटेनने पुनर्शस्त्रीकरणके लिये प्रबल वेगसे प्रचण्ड प्रचेष्टा आरम्भ की। इस प्रचेष्टाके फलस्वरूप भारतके उद्योगपतियोंके सामने धन कमानेका स्वर्ण अवसर आया। अभूत पूर्व उद्योग-विस्तार और धनैश्वर्य-वृद्धिका सुयोग देखकर स्वभावतः क्रान्ति करनेकी तरफसे उनका झुकाव हटा और खासकर असफल क्रान्तिका पल्ला पकड़ कर इस तरहके सुन्दर सुयोगको कौन जाने दे सकता था। फलतः भारतीय धनिक और उद्योगपति बोसके कट्टर विरोधी बन गये। इस विरोधमें कांग्रेसके अनुदार और माडरेटोंने गांधी-जीके नेतृत्वमें उनका साथ दिया। बाध्य होकर बोसको कांग्रेससे इस्तीफा देकर हट जाना पड़ा।

इस समय महात्मा और संघर्षशील उच्छृङ्खल बोसके बीचमें कितना मौलिक वैषम्य था, यह स्पष्ट दृष्टि गोचर हुआ। युद्धारम्भ में ही गांधीजीने यह घोषणा की कि अङ्गरेजों के सामने उपस्थित घातक खतरेसे लाभ उठाने के लिये किये जानेवाले किसी भी कार्यका मैं विरोधी हूं। मैं जापानियोंकी मदद नहीं कर सकता, भारतको स्वतन्त्र करनेके लिये भी नहीं। उन्होंने अधार्मिक कार्योंके लिये हिट-लरको मानव जातिका निकृष्ट अभिशाप बताया। उन्होंने जोरदार शब्दोंमें कहा था "अङ्गरेजोंसे भारतका कोई झगड़ा नहीं है। अपने देशवासियोंकी तरह ही उनसे भी मुझे प्रेम है।"

बोसने ब्रिटिश साम्राज्यके संकटको भारतसे अङ्गरेजोंको मार भगानेका अच्छा सुयोग समझा। हिटलरसे वे इस बातमें सहमत हैं कि 'दया दुर्ब-लताका नाम है।' बोसका कथन है कि अङ्गरेजोंके विरुद्ध घृणाका भाव पैदा करना भारतको ऐक्य सूत्रमें बांधनेका सबसे पक्का बंधन है।

कांग्रेस प्रेसीडेण्टकी हैसियतसे असफल होने के बाद बोसने गांधीके खिलाफ जबर्दस्त आन्दो-लन शुरू किया और इसके साथ उनके गुप्त दलने आतंकवादकी लहर फैला दी। एक वर्ष बाद वे गिरफ्तार कर लिये गये, कलकत्ता स्थित ब्लैक होल स्तम्भको उखाड़ फेंकनेके लिये चलाये गये एक बनावटी आन्दोलनका नेतृत्व करनेके अभि-योगमें। वैसे ही बनावटी बहानेपर, अर्थात् अन-शन आरम्भ करनेके कारण और उनके यह वचन देनेपर कि वे राजनीतिक कार्योंसे अलग रहेंगे, उनको छोड़ दिया गया।

अवश्य ही इस बार बोस लापता हो गये। वे जापान निकल गये और वहांसे जर्मनी गये जहां उनके आगमनका डा० गोयबलने खूब प्रचार किया। हिटलरने उनका बड़ा सम्मान किया और अपना एशियायी व्यूह फैलानेके लिये हिट-लरने बोसको अपना प्रधान साधन बनाया।

बोस बर्लिनसे उड़कर फिर टोकियो पहुंचे और जापानी प्रधान मन्त्री तोजोके साथ एक पैक्ट किया। १९४३ के ग्रीष्मकालके आरम्भमें एक जापानी सबमेरीन बोसको जबर्दस्त ब्रिटिश पराजयके स्थान, सिंगापुरमें ले गयी, जहां उन्होंने स्वतन्त्र भारतका झण्डा फहराया। तत्काल उन्होंने "स्वतन्त्र भारत" सरकार और 'मुक्ति सेना' का सङ्गठन करना आरम्भ कर दिया। उन्होंने थाईलैण्डके तत्कालीन प्रीमियर सोंगग्राम और बर्माके प्रीमियर बा० मासे मैत्री सम्बन्ध स्थापित किया और ब्रिटिश भारत पर होनेवाले आक्रमणकी घोषणा की।

जिस दिन फील्ड मार्शल लार्ड वावेल दिल्ली में वायसरायकी गद्दीपर बैठे उसी दिन सुभासचन्द्र बोसने सिंगापुरमें अपनी समानान्तर सरकारकी स्थापनाकी घोषणा की और इसके बाद, उन्होंने अपनी सेनाको दिल्लीके लिये कूच करनेका फरमान जारी किया।

फिर भी, यह बात नहीं है कि दीवाल पर अंकित संकेत बोस नहीं देख पाते। धुरीचक्र लड़खड़ा रहा है। इटालीका पतन हो चुका है। जर्मनीको अपनी जानके लाले पड़े हैं और जापान का गुब्बारेकी तरह फूला हुआ साम्राज्य अमे-रिका और ब्रिटेनके विराट युद्धोद्योगकी छाया से ही सिकुड़ता जा रहा है। किन्तु एक बार जर्मन विमान और जापानी सबमेरीनमें पैर रख चुकने बाद भारतके स्वयम्भू फूहररके लिये पैर पीछे रखनेका कोई रास्ता नहीं रह गया। कोई आशा हो या न हो, भले ही युद्ध कुछ और लम्बा हो जाये और रक्त गङ्गामें स्नान करने वालोंकी संख्या बढ़े, लेकिन बोस अधिकार हस्तगत करनेके लिये कदम उठा चुके हैं, जीवनका मायामोह छोड़ कर। हिन्दुस्तानके सम्राट्का राज मुकुट हस्तगत करने और अपने प्रकाशसे महात्मा गांधीके आलोकको अस्त करनेके लिये सुभास बोस चल पड़े हैं। मानव बलिदानमें विश्वास करते हैं वे!

पावस

बूंदसे कहती बूंद पुकार, चलो हम भर दें पारावार!

घटायें उठी, गरजती चलीं
बरसती चलीं मचाती शोर!
विदेशी लौटे घर की ओर,
लताएं चलीं वृक्ष की ओर!
नयन-से-नयन धरा से गगन मिले लेकर जल-धार!

मचलती लता मचलते वृक्ष,
मचलती धारा दोनों कूल!
मचल कर विटप चढ़ाने लगें,
घटा की बूंद बूंद पर फूल!
बिजलियां चीर मेघ का वक्ष, व्योम में चमकी बारम्बार!

—पन्नालाल महतो 'हृदय'
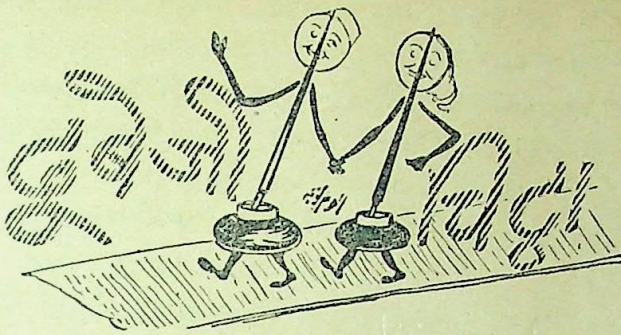
श्री —गजपुटानन्द

उस दिन अपने रामके परिचित एक महाशयकी कन्याका विवाह हुआ। कन्याने एम० ए० पास किया है, और वर भी कन्याके तुल्य ही सुशिक्षित है। बरके पिता-माता सुलझे हुए विचारके हैं। कन्याका परिवार परमहंस गतिको पहुंच चुका है। अर्थात् जिस प्रकार परमहंसके लिये विधि-निषेधका बन्धन लागू नहीं होता इसी प्रकार इस परिवारके लिये भी कोई विधि-निषेध नहीं है। एकदम मुक्त। वेदान्तका कथन है कि 'मन एव मनुष्याणां कारणं बंध मोक्षयोः' अर्थात् मन ही मनुष्यके बन्धन तथा मोक्षका कारण है। वेदान्तके इस कथनका मर्म इसी परिवारने समझा है। मनने जिस बातको बुरा कह दिया वह बुरी हो गयी और जिसे अच्छा समझ लिया उसे शङ्कराचार्य अथवा रामानुज भी बुरा नहीं प्रमाणित कर सकते। शङ्कराचार्य इत्यादि तो तर्कका सहारा लेंगे और उनका सारा तर्क वेदोंपर ही आश्रित होगा। परन्तु यह परिवार इसका प्रबन्ध बहुत पहलेसे किये बैठा है; क्योंकि इसे यह खटका था कि 'इति-श्रुतः' कहने वाले नाकों दम कर देंगे। अतः इसने पहिले श्रुतिकी ही गर्दन नापी। जब खूंटा ही न होगा तो बछड़ा किसके बल उछलेगा। वेद-सेद सब कपोल-कल्पित हैं। इसका मतलब यह न समझना चाहिये कि इस परिवारको वेदोंके अस्तित्वमें ही विश्वास नहीं। प्रकाशकों तथा पुस्तक बिक्रेताओंकी कृपासे ऐसा विश्वास तो करना ही पड़ता है। आंखोंके सामने वेदोंकी पुस्तकें धरी रहते संसारका कोई तर्क उनकी अस्तित्वहीनताको प्रमाणित नहीं कर सकता। अतएव जहां तक छपे ग्रन्थोंका प्रसङ्ग है वहां तक तो वेदोंका अस्तित्व यह परिवार भी मानता है। जब तोता मैना और छबीली भटियारीका अस्तित्व केवल पुस्तकोंको देखकर ही मानना पड़ता है तब वेदोंके अस्तित्वसे कैसे इन्कार किया जा सकता है। ऐसा करना तो अन्याय होगा। इसलिए सबसे अच्छा उपाय यह है कि पुस्तकका अस्तित्व तो सत्य परन्तु पुस्तकके अन्दर जो कुछ लिखा है वह एकदम मिथ्या। अब शंकराचार्य शास्त्रार्थ करें। जिस श्रुतिके अवलम्बपर शंकराचार्यने दिग्विजय की उस श्रुतिको ही न माना जाय, बस झगड़ा समाप्त। न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी। और शंकराचार्यकी चालाकी तो देखिये, जगतको तो मिथ्या माना है परन्तु जगतके अन्दर छपने और बिकनेवाले वेद सत्य! यह तो वैसी ही बात हुई कि कुंआ तो मिथ्या-परन्तु कुंएके अन्दर रहनेवाला मेंढक सत्य! क्या मजाक है। न हुए शंकराचार्य इस कालमें नहीं तो सारा तर्क भूल जाते। 'लाजिक' (तर्क शास्त्र) के सामने मुंह बन्द हो जाता। पहले वेदोंको तो सत्य प्रमाणित करें फिर आगे दूसरी बात! अस्तु।

इस परिवारके मनमें क्या है इसका पता पहिलेसे ही लग सकना तो बड़ा कठिन जान पड़ता है। अव्यवस्थित चित्तवाले कब क्या सोचेंगे, इसका पता कैसे लग सकता है; लेकिन इसमें सन्देह करनेकी तनिक भी गुंजायश नहीं है कि वे कुछ सोचेंगे अवश्य! और जो सोचेंगे वह कमसे कम उनके स्वार्थके प्रतिकूल कदापि न पड़ेगा। हां तो, कन्याका विवाह हुआ। कन्या पक्षवालोंने आरम्भसे ही 'सादगी' का ऐसा सुन्दर चित्रण किया कि उनकी बातें सुननेवालोंको अपने चोलेसे भी घृणा हो गयी। क्योंकि यह चोला भी तो बड़ा पेंचदार बना हुआ है। और कमबख्तमें ऐसे-ऐसे महीन पेंच लगे हुए हैं कि 'लेडीवाच' की बालकमानी भी उनके सामने हाथी बांधनेकी जञ्जीर मालूम पड़ती है। इसका नाम सादगी नहीं है। इस प्रकार 'सादगी' का शोर मचाकर कन्या पक्ष वालोंने कई खर्चकी मदें लोप कर दीं। यद्यपि वर पक्षवालोंने पहिले तो कन्या पक्षवालोंकी 'सादगी' की घोषणा पर 'साधु। साधु।' कहा था, परन्तु जब उन्होंने देखा कि 'सादगी' का विकार उन्हींकी खोपड़ी पर डाला गया तब वे चकराये। वरके बाबा अपने पोपले मुखमें सुपारीहीन पानके प्रति अहिंसा-व्रतका पालन करते हुए बोले—"सादगी! सादगी! सुनते-सुनते कान पक गये। ऐसी सादगी किस कामकी कि आवश्यक रस्में भी उड़ा दी जायं। बाज आये ऐसी सादगी से! द्वाराचारमें लड़केको एक अंगूठी तक न दी। लड़की आयी और जयमालडा लकर चली गयी। हो गया द्वाराचार! वाहरी सादगी।" वरपक्षके एक हंसोड़ बराती बोले—"जिस काममें रुपये या सोना चिपका हुआ हो वह सादा कैसे हो सकता है। इसमें सन्देह नहीं कि कन्यावाले सादगीका पूरा निर्बाह कर रहे हैं। मानना पड़ेगा।"

"तो इनकी सादगीका नजला हमारे ऊपर ही गिरेगा क्या?" लड़केका पिता बोला।

"और नहीं तो क्या आप चाहते हैं कि बरातियोंपर गिरे?"

"खाना भी सादा ही मिलेगा, यह याद रखिए! तर माल उड़ानेकी आशा छोड़ दीजिये।"

"हम तो घरपर भी मूंगकी दाल और लौकी परवलका साग खाते हैं यहां भी कमसे कम इतना तो मिल ही जायगा।"

एक दूसरे महाशय बोले—"क्यों न मिलेगा। अजी साहब इस मंहगाईमें यदि एक दो दिन कोई पेट भर भोजन खिला दे तो वही बहुत है।"

"जान पड़ता है अपने घरमें उपवास ही करते हो।"

"मूंगकी दाल और लौकीका साग केवल उपवास भङ्ग ही करता है भोजन तो उसे कह नहीं सकते।"

"जी हां, आपको तो जब तक अण्डा मुर्गी न मिले तबतक आपका भोजन ही नहीं होता।"

"क्या वाहियात बक रहे हो। सादी बातें करो सादी!" एक तीसरे महाशय बोले। इस पर लोग हंस पड़े।

वर पक्ष वालोंने जब देखा कि सादगीकी आड़ लेकर कन्यापक्ष वाले उनकी हजामत बनाने पर तुले हैं तो उन्होंने भी बहुरूप रचा। कन्यापक्ष वाले सादगी प्रेमी बने, ये लोग 'नेति नेति' प्रेमी बन गये। जहां इनके कुछ खर्च करनेकी बात आवे वहां झट कह दें—"यह नहीं।" कारण पूछा जाय तो कभी कह दें कि यह रस्म हमारे यहां नहीं होती, किसीके सम्ब-

न्धमें बिलकुल अनभिज्ञ बन जायं। "हमारी तो यह बात समझी हुई नहीं है, कैसे करें ?" अब बराबर की जोड़ छूटी। अब कन्यापक्ष वालोंने भी समझा कि उनके अनुरूप ही समधी मिले हैं। लड़की वाले अत्याधुनिक सादगी पसन्द बने तो लड़के वाले ठेठ विदेशी बन गये अर्थात् अपनी रस्में भी भूल गये। विवाह कार्यका प्रश्न उठने पर वरका पिता बोला—"देखिये,यह सब झगड़ा न हमें आता है और न पसन्द है। लड़के लड़की से थोड़ा हवन करवा दीजिये, तत्पश्चात दोनों एक दूसरेके गलेमें जयमाल डाल दें, बस हो गया।"

"और फेरे तथा प्रतिज्ञा इत्यादि जो होता है वह ?" कन्याके पिताने पूछा।

"फेरे लोकाचार है, प्रतिज्ञाका कोई पालन नहीं करता, इस कारण सब व्यर्थ है।"

"वाह साहब, हम तो अपने यहांकी पद्धतिके अनुसार करेंगे।"

"जैसी आपकी इच्छा। हमें उसमें भी कुछ नहीं कहना है।"

परन्तु जब विवाहके समय वरपक्षके 'पण्डित' की तलबी हुई तो बरके पिताने कहा-हमारे साथ कोई पण्डित नहीं है। उन्हें आवश्यकता हो तो स्वयं हमारी ओरसे भी किसी पण्डितको बिठा दें।"

अन्तको कन्या पक्षवालोंने झख मारकर वर-पक्षकी ओरसे भी एक अपना पण्डित बिठाया। जब उसकी दक्षिणा वरपक्षसे मांगी गयी तो उत्तर दिया गया—हमने तो पण्डित बिठाया नहीं जिसने बिठाया है वही दक्षिणा भी दे।"

इसपर कुछ देर बहसा-बहसी और कहा सुनी हुई परन्तु वरपक्ष वाले टससे मस न हुए। तब हार कर कन्यापक्षने ही वरपक्षके पण्डितका भी सब खर्च सहन किया। अब कन्यापक्षने समझा कि ये तो हमारे भी चचा निकले। परन्तु अब क्या हो सकता था।

विवाह होनेके पश्चात वरपक्षको यह पता लगा कि सवेरे बिदा हो जायगी। वरका बाबा बोला—"यह कैसे हो सकता है, बड़हार न होगी ?"

यहां यह चर्चा हो ही रही थी कि कन्यापक्ष की ओरसे एक आदमीने आकर कहा—"दोपहर को बिदा होगी, आप लोग तैयार रहियेगा।"

"इतनी जल्दी बिदा कैसे हो सकती है ? यह तो कोई तरीका नहीं है। जरा समधी साहब को तो भेजो, उनसे बात करें।"

बरातियोंने जो सुना कि दोपहरको बिदा होगी तो वे भी बहुत कुड़मुड़ाये। "वाह यह कहांका तरीका है। ऐसा तो हमने कहीं नहीं देखा। कायदेसे आज बड़हार होनी चाहिये और कल बिदा।"

एक परिहास प्रेमी बोले—"हम तो समझे थे कि कमसे कम पांच समयका खाना मिलेगा, यहां दो में ही टाला जा रहा है। तीन रातिब काट लिये गये। दूसरे महाशय बोले-"भई मंहगाईका समय है यह तो देखिये।"

समधी साहब आये। उनसे पूछा गया कि इतनी जल्दी बिदा क्यों की जा रही है तो वह बोले--"हम लोग सुधार कर रहे हैं। अब वह समय नहीं रहा जब चार-चार दिन बरात पड़ी रहती थी। तब उसका औचित्य था। बरातें बैलगाड़ियोंद्वारा मंजिलतय करती हुई पहुंचती थीं इस कारण उन्हें थकावट उतारनेमें कुछ समय लग जाता था। इसी कारण चार-पांच रोज बरातों को टिकना पड़ता था। अब तो रेलकी कृपासे दममें कहींसे कहीं पहुंचा जा सकता है। इस कारण अब पड़े रहनेकी क्या आवश्यकता है। मुख्य कार्य विवाह हो ही गया। अब अपने घर जाइये और अपने-अपने काममें लगिये, हमें भी छुट्टी मिले।"

"ऐसी छुट्टी चाहते थे तो सिविल मेरीज की होती। बरात-सरातका झगड़ा ही क्यों किया ?"

आप तो सिविल मेरीज हीके सामान कर रहे थे, अपनी ओरसे पण्डित तक न किया। आपको तो विदा पर कोई आपत्ति ही न होनी चाहिए। आप अपने यहांकी रस्में जानते नहीं इसलिए हमारे यहांकी रस्मोंका पालन कीजिये। हम तो सादगी पसन्द करते हैं। काम हो गया अब अपने अपने घर जाइये।"

बरका पिता झल्लाकर बोला—"ऐसी सादगी की ऐसी-तैसी ! सुनते सुनते कान भट हो गये। सादगी, सादगी। कोई हद भी है इस सादगी की ? इतनी जल्दी बरात बिदा हो जायगी तो हमारी बदनामी न होगी ?"

"आपकी नेकनामी तो पन्द्रह रोज पड़े रहने में होगी। परन्तु हम ऐसा नहीं कर सकते। हम तो समयके अनुसार काम करेंगे। आज कल एक समयके भोजनमें क्या खर्च होता है यह भी पता है ? एक समयके भोजनमें उतना खर्च होता है जितना पहले चार समयके भोजनमें होता था। इस हिसाबसे आठ समयका भोजन आपको मिल जायगा। इस समय आपको पक्का भोजन मिलेगा और वह बड़हारके टक्करका होगा।"

"सवेरे तो बड़हार कहीं होती नहीं।"

"अब हम आरम्भ कर रहे हैं। सुधार कार्य में तो पहले पहल किसी न किसीको आगे बढ़ना ही पड़ेगा।"

"तो यह सुधारोन्माद आपको हमारे ही समय पर होना था।"

"बात यह है कि आप भी तो सुधार कर रहे हैं। बहुत सी रस्में आपने उड़ा दीं। किसीको व्यर्थ कह दिया, किसीसे अनभिज्ञता प्रकट की किसीके सम्बन्धमें कह दिया कि यह हमारे यहां नहीं होती। यह देखकर हमें प्रसन्नता हुई और हमने सोचा कि हमारी सुधार योजना आपके सहयोगसे सफल होगी, इस कारण हम ऐसा कर रहे हैं।

जब बरपक्षने देखा कि यहां ठठेरे ठठेरे ... लाई है तो बोले—"अच्छी बात है कीजिये सुधार !"

समधी साहब चले गये। एक बराती बोला "हमें क्या, यहांसे जल्दी चलेंगे तो आपके यहां ठहर जायेंगे। हम तो दिन पूरे करके ही जायेंगे।"

दूसरे बरातीने पूछा—"यह क्यों ?"

वह बोला—"घर वाले घुसने ही न देंगे समयसे पहिले पहुंचेंगे तो बाहर ही पड़े रहना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त इनकी (बर पक्षकी) बदनामी होगी। हम इनकी बदनामी थोड़े ही करायेंगे।" यह भी न चाहेंगे कि इनकी बदनामी हो।

बरका बाबा बोला—"ऐसा धोखा कभी नहीं खाया था। पहिले तो कुछ कहा नहीं कि इतनी जल्दी बिदा कर देंगे—अब यह रूप लाये। अच्छा सम्बन्ध हुआ।"

"बहुत अप-टु-डेट घर ढूंढ़नेमें यही होता है। पुराने तरीके पर चलनेसे एम० ए० लड़की नहीं मिलती।"

खैर, दोपहरके भोजनके पश्चात् बिदा हुई उसमें भी काफी कहा-सुनी हुई। एक डाल ... तो दूसरा पात पात ! जहां खर्च करनेका अवसर आये वहां 'सुधार' 'सुधार' का नारा लगने लगे। जहां लेनेका अवसर हो वहां ...

...जायं—चाहे जितना दे दो इन्कार नहीं ...।

बराती लोग भी सूखे टरकाये गये, किसीको रुमाल तक नहीं मिला। एक बराती बोले "अच्छा सुधार किया। न अच्छी तरह खाये और न कुछ भेंट मिली। सुधारकी धारने ...ता ही गला काटा।"

उधर सुशिक्षित वर अपनी सुशिक्षित पत्नीको सीधा घरमें घुस गया और अपने कमरेमें ...। यहां घरकी स्त्रियां इस प्रतीक्षामें ... कि वर-वधूका द्वार पर स्वागत किया ...गा और उस समयकी रस्में पूरी की जांयगीं। ... रस्म पूरी होनी तो दूर उसकी नाम-मात्र खानापूरी भी नहीं की गई। स्त्रियोंने ...या कि अब घोर कलिकाल आ गया, अंग्रेजी ...ने धर्म्म कर्म्मका लोप कर दिया।

थोड़ी देर बाद वर महोदय पत्नीको साथ स्त्रियोंमें आये और पत्नीको सबका परिचय ...लो। यह तुम्हारी सास हैं, यह तुम्हारी ...हैं, यह अमुक है, इत्यादि। पत्नी मुस्करा मुस्करा कर सबको हाथ जोड़ रही थी। एक ...को यह देख कर फिट आ गया। थोड़ी देर ...जब वह कुछ स्वस्थ हुई तो बोली—"हम तो सास ससुर तथा गुरुजनोंकी उपस्थितिमें कभी अपने आदमी (पति) के सामने तक नहीं आई, यह मुंह खोले हंस हंस कर पतिसे अंग्रेजीमें बात करती है। हे भगवान! न जाने अभी क्या क्या होनहार है।"

एक स्त्री वधूसे बोली—"अपनी सास और बड़ी-बूढ़ियोंके पैर छुओ।"

वधू पतिसे अंग्रेजीमें बोली—"मैं इन गंवारिनोंके पैर कदापि नहीं छू सकती।" स्त्रियों में एक लड़की थी जिसने मैट्रिककी परीक्षा दी थी। उससे स्त्रियोंने पूछा—"यह क्या गिट-गिट कर गई।" उस लड़कीने बता दिया कि तुम सबको गंवारिन कहती है। बस इतना सुनना था कि एक वृद्धा बिगड़ उठी। वह बोली—"हम गंवारिनें हैं तो तुम भी गंवारी हो। तुम जो जानती हो वह हम नहीं जानती इसीलिये हम गंवारिन हैं। हमको अंग्रेजी नहीं आती, हमको फैशन बनाना नहीं आता हम पराये मर्दोंमें मिल-जुल कर और हंस हंस कर बात करना नहीं जानती, बस इतनी ही बात तो है। परन्तु मेरी बन्नो जो हम जानते हैं वह तुम्हें भी नहीं आता। न तुम्हें गृहस्थीका ज्ञान है, न संसारका अनुभव। यदि तुमको अपनी शिक्षा पर घमण्ड है तो हमें भी अपने ज्ञान और अनुभव पर घमण्ड है। इसलिये यदि तुम्हारे लिये हम गंवार हैं तो हमारे लिये तुम भी गंवार हो, केवल गंवार ही नहीं निर्लज्ज, ढीठ और बेसहूर हो।"

इतना सुनना था कि वधू आग हो गई। जो मुंहमें आया बकती चली गई। स्त्रियोंने कह-कहा लगाया। एक बोली—"वाह री छछूंदर!"

दूसरीने कहा—"अपने दांव कैसी तलुवोंसे लगी। दूसरोंको कहना जानती है।"

"कोट पर इतना घमण्ड करती है?" चौथी बोली।

"इनके एम० ए० की पूंछ लगी है, उसी पूंछ पर इतना घमण्ड है।"

यह सुनकर स्त्रियोंने अट्टहास किया। सास ने यह सब देख-सुनकर सिर पीट लिया कि—"हे भगवान! क्या सोचा था क्या हो गया।"

अब सुना जाता है कि वर-वधू माता-पिताले अलग रहनेकी बात सोच रहे हैं; क्योंकि उनकी सुशिक्षिता पत्नी गंवार स्त्रियोंके बीचमें रहना पसन्द नहीं करती। इस प्रकार यह विवाह समाप्त हुआ।

—:०:—

प्रभात

...नी के सलज्ज मुख पर
यौवन अरुणाभा झांकी,
...तो उसे लूटने आई
किरणें कहां कहां की। १

पवन स्पर्शसे नव कलियोंमें
फूट उठी तरुणाई,
देखो राग रंग से रंजित
अधरों की अरुणाई। २

सुमनों से भर गई धरा,
उजड़े उपवन की झोली,
चली पराग लूटने रसलोलुप
मधुपों की टोली। ३

...हर उठी पनघट पर
नूपुरकी किंकिणि स्वर-लहरी,
...सुधा पीकर घट में
जल भरती सरिता गहरी। ४

यह वियोग के साथ साथ
देखो मिलाप की वेला,
किस अभिशापसे अधीर है
मन मधुपों का मेला। ५

जाग उठा किस उत्कण्ठासे
जग का कोना कोना,
अपने आप भर गया
सुमनोंसे तरुदलका दोना। ६

नाच रही है नव किरणोंसे
तरु की चञ्चल छाया,
यह रङ्गीन नावता नभ से
किसका अञ्चल आया। ७

—श्री श्यामबिहारी शुक्ल "तरल"
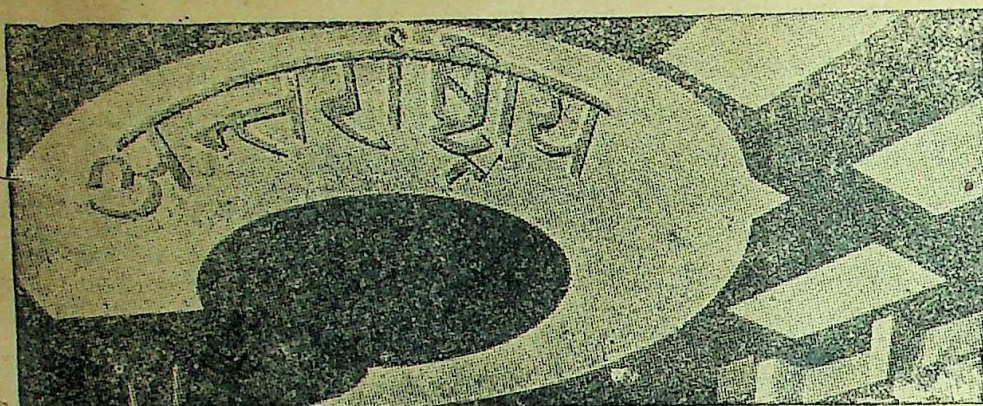
पेरिसका उद्धार—

२३ अगस्तका दिन फ्रांसके इतिहासमें स्वर्णाक्षरोंसे लिखा जायेगा। यह दिन सदा गर्व और गौरवके साथ स्मरण किया जायेगा। ५० महीने बाद देशभक्त फ्रांसीसियोंने पेरिसका उद्धार करके अपने ललाटपर लगे हुए कलङ्कके टीकेको मिटाकर सचमुच यह सिद्ध कर दिया है कि विजय लक्ष्मी उनको गौरवान्वित करती है, जिनका शरीर बन्धनमें रहनेपर भी जिनकी आत्मा स्वतन्त्र रहती है। जर्मनोंने पेरिसपर अधिकार कर लिया था; किन्तु पेरिस निवासियोंकी आत्मापर वे विजय नहीं पा सके। विद्रोही आत्मा अपनी लुप्त गौरव-गरिमाको पुनः लौटा लानेके लिये अवसरकी ताकमें थी। उत्तर और दक्षिणकी ओरसे मित्र-सेनाओंने फ्रांसपर आक्रमण करके देशभक्त फ्रांसीसियोंको यह अवसर दिया कि संसारको वे अपने मनुष्यत्वका परिचय दें और सचमुच उन्होंने उस अवसरसे लाभ उठाया। फ्रांसमें युद्धकी प्रगति को देखते हुए यह बात तो स्पष्ट ही भासित होने लगी थी कि पेरिसका उद्धार होकर रहेगा। किन्तु मित्र-सैनिकोंद्वारा यदि पेरिसका उद्धार होता, तो उसका इतना महत्व न था, जितना पेरिस निवासियोंद्वारा किये गये उद्धारका महत्व है। वस्तुतः फ्रेंच राष्ट्र पुनः बड़ी तीव्रगतिके साथ अपनी खोयी हुई महानताको वापस ला रहा है और अब यह पेरिस-उद्धार तो राष्ट्रको और अधिक बल और स्फूर्ति प्रदान करेगा, इसमें जरा भी सन्देह नहीं है।

इतने दिनोंतक यत्नपूर्वक छिपाकर रखे गये शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित ५० हजार पेरिसवासी २३ अगस्तको फ्रांसकी राष्ट्रीय पताका हाथमें लेकर निकल पड़े। उनके पीछे लाखों निहत्थे नागरिक थे। जर्मन सेनाने इनका सामना न करके बुद्धिमानीका ही काम किया। पेरिसमें एक आवाज पर ५० हजार सशस्त्र नागरिकोंका निकल पड़ना इस बातका सूचक है कि पहले-ही-से जबर्दस्त तैयारी और सुन्दर योजनाकी रचना की जा चुकी थी। जेनरल डि० गलेके नेतृत्वमें सङ्गठित अस्थायी सरकारके आदेशपर जेनरल कोनिग्सने जिस चतुरता और शीघ्रताके साथ गुप्त सङ्गठन और तैयारी कर ली, उससे यह स्पष्ट है कि जर्मनोंके प्रति प्रत्येक साधारण फ्रांसीसियोंके हृदयमें कितने भारी असन्तोषका बवण्डर छिपा हुआ था। इस मुक्ति-सेनाका सामना असम्भव समझ कर ही जर्मन चुपचाप अपना बोरिया-बिस्तर बांधनेको बाध्य हुए होंगे। जो भी हो, जेनरल कोनिग्सने, जो पेरिसके सैनिक गवर्नर नियुक्त किये गये थे, नियुक्तिके बाद इतना शीघ्र पेरिसका उद्धार करके अपना नाम पेरिसके इतिहासमें सदाके लिये अमर कर दिया है।

आजसे ५० महीने पहले १४ जून १९४० को पेरिसने प्रचण्ड जर्मन सैनिक-शक्तिके आगे आत्म-समर्पण किया था। अपने उस लज्जाजनक समर्पण को गौरवयुक्त उद्धारमें परिणत करके पेरिसने बरबस संसारकी आंखें अपनी ओर आकृष्ट कर ली हैं। अब यह देखना है कि तृतीय प्रजातन्त्र (थर्ड रिपब्लिक) की राखपर कैसे नवीन फ्रांसकी सृष्टि होती है।

फ्रांसका भविष्य—

निस्सन्देह यह बड़ा ही सुन्दर श्री गणेश है। पेरिसके दक्षिण भागके फ्रांसका उद्धार भी अब बहुत दूर नहीं है। बोर्डो एरियामें मित्र सेना उतर पड़ी है। दक्षिण भागसे मित्र सेनाकी प्रगति अति शीघ्रगामी है। उत्तरी फ्रांसका उद्धार निश्चय ही अधिक कठिन काम है। किन्तु अब कितने ही ऐसे मार्गोंपर मित्र सेनाका अधिकार है जो सीधे जर्मनी तक पहुंचते हैं। जर्मनोंको आज बाध्य होकर बचावकी लड़ाई लड़नी पड़ रही है। किन्तु सर्वत्र बचावके लिये पर्याप्त शक्ति और साधनोंका मिलना सम्भव नहीं जान पड़ता। ऐसी स्थितिमें युद्धको तत्काल अतिशीघ्र समाप्त करनेके लिये पेरिस और फ्रांसका नव-निर्माण आवश्यक है।

अमेरिकन सरकारने पहले ही फ्रेञ्च कमिटी आफ नेशनल लिबरेशनको, जेनरल डिगले जिसके प्रधान हैं, उस समय तकके लिये फ्रांसके मुक्त किये गये भागकी कार्यवाहक सरकार और शासक-सत्ता मान लिया है जबतक नवीन निर्वाचन नहीं होता। ब्रिटेन तो आरम्भ हीसे जेनरल डिगले का समर्थक रहा है।

अभी हाल ही में बेस्तील दिवसके उपलक्षमें सन्देश देते हुए प्रेसिडेण्ट रूजवेल्ट ने कहा था कि मुझे पूर्ण विश्वास है कि आगामी वर्ष फ्रांसीसी अपना राष्ट्रीय दिवस नाजियों और फ्रेञ्च कठपुतलोंसे मुक्त फ्रेञ्च भूमिपर ही मनायेंगे। इस तरह वाशिङ्गटनने, भी जो पेतां और डिगलेके बीचमें झूल रहा था, हर्षकी बात है कि पेरिस उद्धारके पहले ही डिगलेकी सत्ताको स्वीकार कर लिया था। इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि जितनी निर्वासित सरकारें हैं उनमें फ्रेञ्च कमेटी सर्वाधिक प्रबल और प्रतिनिधि-सरकार है। पेरिसके उद्धारसे तो यह बात अब बिलकुल निर्विवाद हो गयी है। जबसे इस सरकारने अपना सदर मुकाम एलजियर्समें कायम किया है तभीसे इसने अपने भीतर राष्ट्रीय लोकमतके सभी दलों को स्थान देकर अपनी स्थितिको काफी मजबूत बना लिया है। एलजियर्समें आकर इसने कनसलटेटिव एसेम्बली (परामर्श परिषद्) की स्थापना की है और इसमें गुप्त प्रतिरोध आन्दोलनके ३४ प्रतिनिधि हैं। इसकी बैठक नियमित रूपसे हुआ करती है। जेनरल डिगलेके रूपमें फ्रेञ्च कमेटीको ऐसा नेता मिला जिसने अपनी दृढ़ता, संकल्प और कार्यनीतिसे अपने राष्ट्रका नाम उज्ज्वल किया है।

डिगलेके सम्बन्धमें यह कहा जाता है कि वह नेपोलियनकी तरह महत्वाकांक्षी और उच्चाभिलाषी हैं। लेबानन संकटके समय उनकी रीति-नीतिसे भी यही सिद्ध होता है कि वे कट्टर साम्राज्यवादी हैं। अपनी औपनिवेशिक नीतिके सम्बन्धमें गत मासमें उन्होंने जो वक्तव्य दिया था उससे यह बात बिलकुल स्पष्ट है कि अपने पृष्ठपोषक चर्चिलकी तरह वे भी फ्रेञ्च साम्राज्यका स्वप्न देख रहे हैं और ऐसा

कोई काम करनेको तैयार न होंगे जिससे उनका पहलेका फ्रेञ्च साम्राज्य स्वतंत्र उपनिवेशोंमें परिणत दिखायी दे। डिगलेकी यूरोप सम्बन्धी फ्रेञ्च नीति भी बहुत आशाप्रद और प्रगतिशील नहीं मालूम होती। उनका यह वक्तव्य कि राइनलैंडपर फ्रेञ्च पताका फहरायेगी, इस बातका सूचक है कि अबतक वारसाई वाली भावना उनके भीतर जागृत है। ऐसा लगता है मानो डिगलेकी वाणीमें क्लीमेनसूकी आत्मा बोल रही है। वास्तवमें यह लक्षण अच्छा नहीं है और पेरिस विजयने यदि डिगलेको फिर नेपोलियन और क्लीमेनसूके स्वप्न राज्यमें लापटका तो यह बात निर्विवाद है कि जहां तक फ्रान्सका सम्बन्ध है, युद्धका द्वार खुला ही रहेगा। फ्रेञ्च कमेटीमें कितने ही प्रगतिशील विचार वाले व्यक्ति हैं और उनका यह कर्त्तव्य है कि जब निर्वाचनका समय आये तो वे इस तरफसे सतर्क रहें और देखें कि डिगलेकी सैनिक और साम्राज्यवादी भावनाकी विजय न होने पाये। मित्रराष्ट्रोंने यह बात स्पष्ट कर दी है कि फ्रांसके राष्ट्रीय मामलोंमें वे किसी तरहका हस्तक्षेप नहीं करना चाहते। फ्रांसके लोकमत और लोकतन्त्रीय भावनाकी परीक्षाका समय आसन्न है। प्रजातन्त्रके आवरणमें सैनिकवाद और साम्राज्यवाद, जिसने पेरिस और फ्रान्सको लांछित और अपमानित करनेमें कोई कसर उठा नहीं रखी थी, विजयके आवेशमें कहीं फिर न जड़ जमा ले, यह देखना फ्रान्सकी उस जनताका काम है जिसने २३ अगस्तको पेरिसको भीतरी और बाहरी शत्रुओंसे स्वतंत्र किया है।

रूमानियाने पांसा पलटा—

रूसद्वारा की गयी सन्धि-वार्ताको स्वीकार कर रूमानियाके बादशाह किङ्ग माइकेलने मित्र राष्ट्रोंसे लड़ना बन्द कर दिया है। एण्टोनेस्कू भाग गये। शायद जर्मनीमें जाकर उन्होंने शरण ली है। जेनरल कोनस्टेनटिन सेनातस्कूने नयी सरकार बनायी है।

रूसकी सन्धिकी शर्तोंको स्वीकार करते हुए किंग माइकेलने इस आशयका ब्राडकास्ट किया : "रूमानियनों, देशके सङ्कट-कालमें मैंने मित्रराष्ट्रोंसे तत्काल युद्ध बन्द कर देनेका निश्चय किया है। देशकी रक्षाका ख्याल कर ही मैं इस निश्चयपर पहुंचा हूं। राष्ट्रीय एकताकी परिचायक सरकारका निर्माण करके उसे मैं आदेश देता हूँ कि मित्र-राष्ट्रोंसे वह सन्धि करे। डिक्टेटरकी आशाओंका हमेशाके लिये अन्त हो गया और उसीके साथ तमाम अत्याचारोंका। नयी सरकार नये युगका सन्देश है, जिसमें हमारे तमाम नागरिकोंके अधिकारों और स्वतन्त्रताओंकी रक्षा और सम्मान किया जायेगा। रूमानियनों! देशका भाग्य हमारे साहसपर निर्भर है। मैं सेनाको आदेश देता हूं कि वह अपनी पूरी शक्ति और पूर्ण साधनोंके साथ शत्रुका सामना करे, बड़े-से-बड़े बलिदानकी परवाह न करके। जो व्यक्ति सरकारकी मदद नहीं करता और राष्ट्रकी इच्छाका प्रतिरोध करता है, वह देशका शत्रु है।"

इस तरह देखा जाता है कि इतिहासकी पुनरावृत्ति हो रही है। १९१५ में इटली, जो जर्मनीका साथी था, मित्रोंसे मिल गया। १९१६ में रूमानियाने भी इटलीका पदानुसरण किया। आज फिर रूमानियाने इटलीका अनुसरण किया है। अप्रेलके महीनेमें भी रूसने रूमानियाके सामने सन्धिकी शर्तें उपस्थित की थीं, किन्तु उस समय सम्भवतः मित्रराष्ट्रोंकी विजयमें सन्देह के कारण रूमानियाने आजकी अपेक्षा अधिक सम्माननीय शर्तोंको अस्वीकार कर दिया था। खैर, देर आये दुरुस्त आये।

रूमानियाके पुराने राज्यमें ट्रानसिलवेनिया (हंगरीसे) बुकोविना (आस्ट्रियासे) तथा बेसारेबिया (रूससे), पिछले विश्वयुद्धके बाद मिलाये गये। बीचमें रूमानियामें नाजियोंके अनुरूप एक दल पैदा हो गया और कुछ दिनोंतक इसने बड़ा ऊधम मचाया। अपने अधिकारोंपर आंच लगते देख १९३८ में बादशाह तत्कालीन प्रधान मन्त्री गोगाको बरखास्त कर स्वयं अधिनायक बन बैठे थे। सब दल तोड़ दिये गये थे। १९३९ के मार्चमें एक नया शासन-विधान बना और मो० कालिनेस्कू प्रधानमन्त्री बना। अक्तूबर १९३९ में आइरन गार्ड दलके किसी व्यक्तिने उसे गोलीसे उड़ा दिया। मार्च १९४० में, जर्मनीके दबावसे, आइरन गार्ड दल सरकारमें मिला लिया गया और प्रधानमन्त्री तातारेस्कूकी सरकारने रूमानियाको धुरी राष्ट्रोंका साथी घोषित कर दिया। जुलाई १९४० में, अल्टीमेटम देनेके बाद, सोवियत रूसने बेसारेबिया और उत्तरी बुकोविनापर अधिकार कर लिया और धुरीराष्ट्रोंके प्रभावसे वियेना समझौतेके अनुसार रूमानियनोंको आधा ट्रानसिलवेनिया हंगरीको दे देना पड़ा और सितम्बर १९४० में दक्षिण दबरूजा बलगेरियाके हकमें छोड़ देना पड़ा। इस तरह रूमानियाका जो क्षेत्र-विस्तार पिछले युद्धके बाद हुआ था, वह फिर संकुचित हो गया। ट्रानसिलवेनियाका आधा हिस्सा निकल जानेसे आइरन गार्डने फिर ऊधम मचाया। सितम्बर १९४० में जेनरल अन्तोनेस्कू प्रधान-मन्त्री बना और उसका सहकारी बना आइरन गार्डका नेता होरिया सीमा। रूमानियाको फौजी राज्य घोषित कर दिया गया। ६ सितम्बरको बादशाह केरोल, जो उस समय गद्दीनशीन थे, अपनी प्रेयसीके साथ विदेश भाग गया और माइकेल राजा बना; किन्तु शासनाधिकार प्रधानमन्त्री अन्तोनेस्कूके हाथमें दे दिये गये। तबसे अबतक अन्तोनेस्कू ही रूमानियाका कर्ताधर्ता था, नाममात्रके लिये, क्योंकि ७ अक्तूबर १९४३ को रूमानी सेनाको तालीम देनेके बहाने जर्मन सेनाने रूमानियापर आधिपत्य कर लिया। अन्तोनेस्कू जर्मनोंके हाथमें कठपुतली बन गया और ब्रिटेनने रूमानियासे राजनीतिक सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया। जून १९४१ में जब जर्मनीने रूसपर आक्रमण किया रूमानियोंने जर्मनीका साथ दिया और बेसारेबिया एवं बुकोविनापर फिर अधिकार कर लिया। ६ सितम्बर १९४१ को ब्रिटेनने रूमानियाके और १२ दिसम्बर १९४१ को रूमानियाने संयुक्त-राज्य अमेरिकाके खिलाफ युद्ध-घोषणा की थी।

अब मित्रराष्ट्रोंका फिर साथी बन जानेसे शान्ति-सम्मेलनमें रूमानिया अवश्य इस बातकी आशा करेगा कि पिछले विश्वयुद्धके बाद उसका जो स्वरूप था, वही कायम रखा जाये, लेकिन यह सम्भव नहीं है। इस बार शान्ति-सम्मेलनमें रूसके रुख पर ही बालकन और बालटिक देशोंके भाग्यका निपटारा होगा, यह मानी हुई बात है। सम्भव है कि रूमानियाको ट्रानसिलवेनियाका कुछ हिस्सा फिर अपने राज्यमें मिलाने दिया जाय किन्तु बेसारेबिया और उत्तरी बुकोविना तो हरगिज उसे न मिलेंगे। सम्भवतः दक्षिणी डबरूजा भी, जो बलगेरियाके पास है, उसे न मिलेगा। मित्र राष्ट्र बलगेरियाकी ढुलमुल नीतिसे सम्भवतः इस सम्बन्धमें अभी किसी निश्चय पर नहीं पहुंचे लेकिन यह स्पष्ट है कि बलगेरियाकी तरफ उनका अधिक झुकाव है। बलगेरिया भी ब्रिटेन और अमेरिकाके साथ शान्ति सम्बन्धका इच्छुक है और रूसके खिलाफ लड़नेसे तो उसने साफ इनकार कर ही दिया है।

(शेष ६० वें पृष्ठपर)

मृत्युको जीतनेवाली आत्माएं—

वीर बैरागी—दिल्लीने रक्तपात और हत्याके अनेक दृश्य देखे हैं, परन्तु जो दृश्य अभी हमारे सामने आनेको है, वैसा न कभी दिल्लीमें हुआ और न कभी होगा। दिल्लीकी कौन कहे, उसकी उपमा संसारके इतिहासमें भी कहीं नहीं मिलती। एक महावीर और सच्चा त्यागी लोहेके पिंजड़ेमें बन्द करके दिल्ली लाया गया। उसके सात सौ चालीस और साथी थे। ये उसकी सेनाका निचोड़ थे। सबको काली भेड़ोंकी खालें पहनाई गयीं और गधोंपर सवार कराया गया। बैरागीका मुंह काला कर दिया गया। इन सबोंको गली-कूचोंमें फिराया गया। काजियोंने कहा, इस्लाम ग्रहण कर लो, तुम्हें प्राण-दान दिया जायगा। इस प्रस्तावको इन वीरोंने अपना अपमान समझा। तब इनको हत्याकी आज्ञा सुनाई गयी। सबके मुख-मण्डल प्रसन्नतासे चमक उठे। प्रति दिन एक सौ वीर कोतवालीके सामने लाये जाकर मारे जाते थे। आठवें दिन बैरागीकी बारी आयी। मुहम्मद अमीन नामक एक अमीर ने कहा—"तुम्हारे जैसे समझदार मनुष्यने ऐसा कर्म क्यों किया, जिसका दण्ड तुम आज भुगतने-को हो?" बैरागीने कहा—"मैं तो प्रजा-पीड़कों को दण्ड देनेके लिये भगवानके हाथमें एक अस्त्र था। क्या तुमने नहीं सुना है कि जब संसारमें अहङ्कार और अत्याचार सीमाका उल्लङ्घन कर जाते हैं, तब मुझ जैसा दण्ड-दाता उत्पन्न होता है।"

बादशाहने बैरागीसे पूछा कि तुम्हें किस मौत मारा जाये? बैरागीने उत्तर दिया—'जैसी तुम्हारी इच्छा हो, मारो। मेरे लिये सब मृत्युएं एक-सी हैं। मैं तो इस शरीरको ही दुःखका कारण समझता हूं।'

बैरागीके चारों ओर नेजोंकी कतारें खड़ी की गयीं। उनपर उनके साथियोंके सिर टंगे हुए थे। उनका नन्हा-सा पुत्र उनकी जांघोंपर रखा गया। बादशाह फर्रुखसियरने बैरागीके हाथमें छुरा देकर आज्ञा दी कि अपने हाथसे इसका वध करो। बैरागीके इनकार करनेपर वधिक ने बच्चेका वध कर डाला। उसका रक्तसे भरा हुआ कलेजा निकालकर बैरागीकी छातीपर दे मारा। तत्पश्चात् लोहेकी गरम सलाखोंसे बैरागी को मारना आरम्भ किया। गरम जम्बूरों और चिमटोंसे खींच-खींच कर उसके मांसके लोथड़े बाहर निकाल लिये। यहांतक कि शरीरकी हड्डियां दिखायी देने लगीं। परन्तु अन्तिम श्वासतक उसके मनमें यह विश्वास था कि मैंने अन्याय और अत्याचारके पेड़की जड़ोंको उखाड़ डाला है। न तो उसके मुख-मण्डलपर विषण्णताकी कोई रेखा थी और न उसके मुखसे हाहाकार निकलता था। जिस समय उसकी बोटियां नोंची जा रही थीं, वह जनककी भांति प्रशान्त भावसे बैठा था। नजीबुद्दौला राजमन्त्री ने पूछा—"क्या बात है कि इतना दारुण कष्ट और यातनाएं मिलनेपर भी तुम प्रसन्न देख पड़ते हो?" बैरागीका उत्तर था—"जो आत्मा को जानता है, वह जानता है कि आत्मा इन सब दुःखोंसे परे है।

कहते हैं कि इतनी यातनाओंके पश्चात् उसे हाथीके पांवके नीचे कुचलवा कर मरवा डाला गया और उसकी निर्जीव देह एक खाईमें फेंक दी गयी।—भाई परमानन्द कृत 'वीर बैरागी'से

सुकरात—जिस दिन सुकरातको विषका प्याला पीना था, उस दिन उसने जेलमें मित्रोंके साथ बातचीत करते-करते समय बिता दिया। उसकी प्रार्थनापर, गोदमें बच्चेको लिये रुदन करती हुई उसकी भार्याको घर भेज दिया गया था। जब शोकातुर जेलर विषका प्याला लाया, तो सुकरातने उससे पूछा कि मैं क्या करूं। उत्तर मिला, जबतक आपकी टांगें भारी न हो जायें, तबतक टहलते रहिये और फिर लेट जाइये। सुकरातने प्याला मुंहको लगाया और गट-गट पी गया।

जब उसके मित्रोंने देखा कि विषका प्याला खाली हो गया, तो वे अपने आंसुओंको न रोक सके। उस समय अकेला सुकरात ही शान्त था। वह बोला—"यह विचित्र चीत्कार क्या है? मैंने सुन रखा है कि मनुष्यको शान्तिसे मरना चाहिये। इसलिये शान्त और धैर्य रखिये।"

जबतक उसकी टांगोंने काम दिया, वह इधरसे उधर टहलता रहा; फिर लेट गया। विषका प्रभाव धीरे धीरे बढ़ता गया, यहांतक कि उसका शरीर अकड़कर ठण्डा हो गया। परन्तु बोलनेकी शक्ति बन्द होनेके पूर्व उसने कहा, 'क्राईटो, मुझे एस्कूलोपियसको एक कुक्कुट देना है। क्या तुम मेरा यह ऋण चुका दोगे?'

क्राईटोने कहा, 'यह ऋण चुका दिया जायगा। क्या कुछ और भी कहना है?' पर इसका कोई उत्तर नहीं मिला।—'मन आफ माईट'से

दयानन्द—संवत् १९४० विक्रमीके कार्तिक मासकी अमावस और मङ्गलका दिन था। सांझ के पांच बजा चाहते थे। दयानन्दकी समूची देहपर विषके छाले उभर रहे थे। सांस रुक-रुककर आती थी। जलनसे सारा शरीर जल रहा था। आत्मा शरीरको छोड़नेकी तैयारीमें थी। परन्तु महात्मा चुपचाप आरामसे लेटे थे। एक भक्तने पूछा, 'महाराजकी तबीयत कैसी है?'

स्वामीजीने उत्तर दिया, 'अच्छी है। प्रकाश और अन्धकारका मिलाप है।'

इन्हीं बातोंमें जब पांच बजे, तो स्वामीजीने कमरेके सब द्वार और खिड़कियां खुलवा दीं। फिर भक्तोंको अपने पीछे खड़े होनेका आदेश दिया।

इसके बाद उन्होंने अपनी दृष्टिको चारों ओर घुमाया। फिर बड़े गम्भीर स्वरसे वेद-मन्त्रोंका पाठ करने लगे। उनके स्वरसे और उनकी ध्वनि से तनिक भी दुर्बलता न टपकती थी। उनका चेहरा हंस रहा था।

वेद-मन्त्रोंका गान करनेके बाद, वे चुप हो गये और देरतक बिना हिले-डुले, स्वर्ण प्रतिमाके सदृश समाधिमें बैठे रहे।

समाधिको भङ्ग करनेके पश्चात् महाराजने दोनों आंखें खोल दीं और दिव्य ज्योतिकी किरणें छोड़ते हुए कहा, 'हे दयामय! हे सर्वशक्तिमान! तेरी यही इच्छा है। परमात्मदेव! तेरी इच्छा पूर्ण हो। अहा, मेरे परमेश्वर! तूने अच्छी लीला की।'

इन शब्दोंके साथ ही ब्रह्मर्षिने परमधामको पानेके लिये अपने आत्मिक प्राणोंको स्वर्गकी सीढ़ीपर चढ़ाया और फिर श्वासको कुछ देरतक भीतर रोककर 'ओ३म्' कहते हुए एकबारगी बाहर निकाल दिया।—स्वामी सत्यानन्द कृत 'दयानन्द-प्रकाश'से।

लार्ड नेलसन—ट्राफालगरके युद्धमें लार्ड नेलसन और कैप्टन हार्डी जहाजके तख्तपर घूम रहे थे कि एकाएक गोली लगनेसे नेलसन गिर पड़ा। अपनेको सम्भालनेके लिये उसने एक हाथ उठाया। हार्डीने उसे उठाया और कहा कि घाव अधिक नहीं। परन्तु नेलसनने उत्तर दिया—"अन्तको उन्होंने मेरा काम तमाम कर ही दिया। गोली मेरी रीढ़की हड्डीको चीर कर निकलगयीहै।"

उस अन्तकालमें भी उसे अपनी कुछ चिन्ता न थी। जब वे उसे उठाकर नीचे ले जाने लगे, तो उसने अपना मुंह और पदक आदि ढंक लिये, जिससे जहाजके सिपाही उसे उस समय पहचान कर हतोत्साह न हो जायें। एक छोटेसे डिब्बेमें हताहत सिपाही भरे पड़े थे। वहां लेण्टर्नका धुंधला-सा प्रकाश था। वहीं नेलसनने मृत्युका आलिंगन किया। उस अन्त समयमें भी कर्तव्यका विचार उसके मनमें भरा था। उसका परम मित्र उसपर झुककर देखने लगा, तो नेलसनने पूछा—'हार्डी, युद्ध कैसा चल रहा है?' हार्डीने तुरन्त उत्तर दिया—'बहुत अच्छा चल रहा है। हमने शत्रुके १२-१४ जहाजोंको मारा है।' कर्तव्यमें बंधा होनेके कारण हार्डीको ऊपर जहाजके तख्ते पर जाना पड़ा। परन्तु एक ही घण्टा बाद वह लौटकर नेलसनको पूर्ण विजयकी सूचना देने और युद्धका ऐसे उत्तम ढङ्गसे सञ्चालन करनेके लिये बधाई देने आया। नेलसनकी आत्मा इस समय अपने पञ्चभौतिक शरीरसे शीघ्रताके साथ विदा हो रही थी।

तब नेलसनको अपना विचार आया। वह बोला—"हार्डी! मेरी प्यारी लेडी हैमिल्टनका ख्याल रखना। हार्डी, मुझे चूमो।" कैप्टनने झुककर मरणासन्न नेलसनका चुम्बन किया। तब नेलसन बोला—"मुझे अब सन्तोष है। परमात्माका धन्यवाद है कि मैंने अपना कर्तव्य पालन किया।" इसके पश्चात् उसका सांस रुकने लगा और उसकी आवाज धीमी पड़ गयी। उसके अन्तिम शब्द जितने सुने जा सके, ये थे—'परमेश्वर और मेरा देश।'—'हीरोइक लाईव्ज'से

चार्ल्स फ्रोहमन—७ वीं मई सन् १९१९ को तीसरे पहर, २ बजकर ९३ मिन.पर एक जर्मन पनडुब्बीने लूसीटेनिया नामक जहाजपर टारपीडो का वार किया। उस समय चार्ल्स फ्रोहमन ऊपरके डकपर जार्ज वर्ननके साथ बातें कर रहा था। वर्ननकी साली एक्ट्रेस रीट जो लिवटा और कैप्टन स्काट नामका एक अंगरेज भी उनमें आकर मिल गये। फ्रोहमन सिगार पी रहा था। वह शान्त जान पड़ रहा था। स्काट कुछ लाईफ-बेल्टें लेने नीचे गया। वह केवल दो ही लिये हुए लौटा। मिस लोलिवटके पास एक बेल्ट थी। स्काटने एक बेल्ट फ्रोहमनको पहना दी। परन्तु उसने प्रतिवाद किया। उसने स्काटको बेल्ट पहनने पर जोर दिया। इस पर सिपाहीने उत्तर दिया—"यदि आपको अवश्य मरना है तो एक ही बार मरोगे।" फ्रोहमनके मुख-मण्डल पर एक शङ्कामयी मुस्कराहट आ गई। वह सिगार पीता रहा। तब उसने जर्मनोंके सम्बन्धमें बातें आरम्भ कर दीं। ऊपरसे देखने पर जहाजमें उससे कम घबराया हुआ और अधिक शान्त पुरुष दूसरा न था! जहाज लुढ़कने लगा। उसकी सूची बड़ी हो गई। भीमकाय लहरें उछलने लगीं। उनमें लाशें और जहाजके टुकड़े बहने लगे। चारों ओर प्रलयका दृश्य होते हुए भी फ्रोहमनने शान्त भावसे अपने साथियोंसे कहा—"मृत्युसे क्यों डरते हो? यह जीवनका अति सुन्दर साहसिक कार्य है।" चारों मनुष्य अपने आप एक दूसरेके पास आगये और एक दूसरेका हाथ पकड़ कर अन्त कालकी प्रतीक्षा करने लगे। जहाज सहसा लुढ़का। एक बार फिर हरित वर्ण अमित जल-राशि ऊपरको दौड़ी और लाशों और मलवेष्टको उठा ले गई। एक बार फिर फ्रोहमन भाषण करने लगा। यह उसकी अन्तिम बिदाका भाषण था। उसने मुश्किलसे अभी पहले तीन शब्द कहे थे कि पानीने इस मित्र मण्डलीको आकर घेर लिया और सबके सब सागरके गर्भमें विलीन हो गये। चारोंमेंसे एक मात्र जीती बचने वाली कुमारी जोलियट थी। उसीने उन रोमांचकारी अन्तिम घड़ियोंकी करुण कहानी सुनाई। —आईज़ाक एफ आर्कीस्सन रचित 'चार्लस फ्रोहमन'से।

रेडियोकी कहानी—

रेडियो बोल उठा—"युद्ध और शान्तिकालमें मेरी समान रूपसे उपयोगिता देखकर आप अवश्य मेरी कहानी सुननेको उत्सुक होंगे, लीजिये आज मेरी कहानी मेरी ही जबानी सुनिये।

प्रसिद्ध गणितज्ञ कलर्क मैक्सवेलने १८६४ में इस बातका पता लगाया था कि विद्युतकी लहरें भी किसी खास यन्त्र द्वारा ग्रहणकी जा सकती हैं और १८८८ में प्रसिद्ध जर्मन वैज्ञानिक हर्टने परीक्षाके तौर पर इन लहरोंको एक यन्त्र द्वारा ग्रहण किया। संसारमें प्रथम बार यन्त्र रूपमें मेरा इसी दिन जन्म हुआ। मि० हर्टके घर जन्म ग्रहण कर मैं सर ओलिवर लाज, रूदर फोर्ड और मार्कोनी जैसे महान व्यक्तिके द्वारा पाला-पोसा जाने लगा। १८९० में मैं तुतला कर कुछ बोल लेनेकी अवस्थामें पहुंचा। मुझे अनेकों वैज्ञानिकोंकी प्रयोग शालाओंमें जाना पड़ा पर संसारके सामने मेरी महत्ता और आश्चर्य जनक गुणको लाने वाले एक मात्र मि० मार्कोनी ही हैं। सन् १९०० के पहले मुझमें इतनी शक्ति आ गयी थी कि ९ मील दूरकी आवाज मैं ग्रहण कर लेता था। बीसवीं शताब्दीके आरम्भमें २०० मील दूरकी आवाज मैं ग्रहण करने लग गया और १९०१ के दिसम्बरमें तो मुझमें इतनी शक्ति आ गई कि प्रशान्त महासागरके पारकी आवाजको मैं इङ्गलैंडमें ग्रहण करने लग गया। मेरी इस बढ़ती हुई शक्ति पर लोग सन्देह करने लग गये कि कहीं मैं काम करता करता हठात फेल न कर जाऊँ। मुझे विश्वासनीय बनानेके लिये लोग मुझमें आवश्यक सुधार करने लग गये और इस सुधारके फलस्वरूप मुझमें इतनी शक्ति आ गयी कि मैं प्रशांत सागरके दोनों किनारों पर समान रूपसे शब्द ग्रहण करने लग गया। कुछ लोग तब भी मेरी शब्द ग्रहण करने की शक्ति पर अविश्वास करते थे पर मैं इन सारे अविश्वासोंको रौंदता हुआ कुशल अभिभावकोंकी देख रेखमें निरन्तर नवीन शक्ति प्राप्त करने लगा। देखते देखते मैंने अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर ली। १८९८ में जब मैं बिल्कुल शैशवावस्थामें था, मेरा प्रयोग रूस जापान युद्धमें किया गया। खुशीकी बात है कि मैं इस परीक्षामें सफल रहा। १९०७ में मि० ली० द० फारेस्टने स्वर विस्तार करनेके लिये मुझमें "ग्रिड" नामक एक नया यन्त्र जोड़ दिया। इससे मेरी शक्तिको एक नया बल मिला और मैं दूने वेगसे संसारके सामने आ खड़ा हुआ। इन आवश्यक संशोधनों के बाद मैं पिछले विश्व-युद्धके अन्तिम अध्याय १९१७ में युद्धके काममें लाया गया। उस समय मैंने कई आकस्मिक जहाजी दुर्घटनाओंको बचाकर हजारों व्यक्तियोंकी प्रान रक्षाकी।

१९२४ में स्वर निकलने वाले छिद्रके सामने झांझरी दार कपड़ा लगा दिया गया जिसकी सहायतासे मुझमें इतनी शक्ति आ गयी कि मैं एक सेकिंडके सातवें हिस्सेमें संसारके इस छोरसे लेकर उस छोर तकके किसी स्थानका संवाद ग्रहण करने लग गया। हालां कि मुझमें लगातार सुधार होते रहेंगें फिर भी मेरी क्षमताका लोहा आज सारा संसार मान रहा है। मेरी उपयोगिता

आम जनताके लिये तथा व्यक्ति गत मनोरंजनके दोनों स्थानोंमें समान रूपसे है। १९२१ में मार्कोनी कम्पनीके नामसे पहला ब्राडकास्टिंग स्टेशन कायम हुआ और उसके ठीक एक साल बाद ही ब्रिटिश ब्राडकास्टिंग कार्पोरेशनकी स्थापना हुई और तबसे मेरे प्रति लोगोंका आकर्षण और बढ़ने लगा। १९२४ के सुधारके बाद १९२८में "पेनटोट वल्वस"(Pentode valves) जोड़ कर मुझमें एक और सुधार किया गया। इसके द्वारा मुझमें जो शक्ति आई वह आश्चर्य जनक है। पहले आप मुझसे संगीतका साफ और स्पष्ट सुमधुर स्वर नहीं सुन पाते थे पर अब आप आरामसे उसे साफ साफ सुन सकते हैं। अब आप मेरी स्वर लहरी इच्छानुसार कम या ज्यादा कर सकते हैं। अब आप मुझसे एक साथ ही भिन्न भिन्न तरहके प्रोग्राम सुन सकते हैं, तथा इच्छानुसार चीजोंसे अपना मनोरंजन कर सकते हैं।

शुरू शुरू बैटरी द्वारा मुझसे काम लिया जाता था। पर १९२८ में फिलिप्सकी कृपासे बिजली द्वारा मेरा सञ्चालन होने लगा। तबसे मेरा प्रचार बढ़ने लग गया। क्यों कि कोई भी व्यक्ति आजकल चार छः पैसेकी बिजली खर्च कर संसार भरकी जानकारी मुझसे प्राप्त कर सकता है। आप पूछ सकते हैं कि तुम्हारे भीतर इतने आश्चर्य एक साथ कैसे इकट्ठे हो गये हैं। साफ बात तो है कि मैं हवामें हर देशोंसे विद्युत द्वारा आने वाली प्रत्येक बातोंको पकड़ लेता हूँ और आप उन्हें अलग अलग खूँटी घुमाकर मन मुताबिक मुझसे सुन लेते हैं। इन सारे कामोंको करनेके लिये मुझे केवल एक ६० वा के बल्वकी जरूरत है। मेरी रक्षाके लिये मेरे साथ खूब सावधानीसे व्यवहार करना चाहिये। मेरा व्यवहार आप समय समय पर समाचार, संगीत आदि सुननेके लिये करें। बीचमें मुझे भी आराम करनेका समय दिया करें। अमूमन जब आप समझ लें कि मुझसे १००० या १५०० घण्टा काम लिया जा चुका है तो आप केवल मेरा बल्व (Valve) बदलवा दें। अस्वस्थ हो जाने पर आप मुझे किसी कुशल इंजीनियरके हाथमें दें ताकि मैं जल्दी आराम हो जाऊँ क्योंकि मेरे अधिक दिनों तक अस्वस्थ्य रहनेसे आपका मनोरंजन रुक जायगा और आप अपने प्रिय से प्रिय सिनेमा अभिनेत्रीके गीत नहीं सुन सकेंगे।

आजकल तो मेरा रूप अत्यधिक निखर उठा है और आकार भी इतना छोटा हो गया है कि आप आरामसे उसे अपने पढ़नेकी टेबुल पर रख सकते हैं। आपका कमरा मेरी उपस्थितिसे बराबर आनन्द-मय बना रहेगा। मुझे यह देखकर बड़ा दुख होता है कि अन्य देशोंकी तरह भारतमें मेरा घर घर प्रचार नहीं हो रहा है। अधिकतर भारतीय यह कहते हुए पाये जाते हैं कि हमारे पूर्वज योग बलसे दूर दूरकी बात सुन लेते थे पर मुझे दुख होता है कि जब मैं उनकी सेवा करनेको तैयार ही हूं तो वे फिर अतीतका रोना गर्थमें क्यों रोते हैं।' भारतीय अगर भारतमें ही मुझे बनानेकी व्यवस्था कर लें तो पचीस रुपयेमें ही मैं प्राप्त हो सकता हूँ। अमेरिकामें मेरे लिये कोई लाइसेंस फीस नहीं है और वहां मैं हर घरमें बराबर बर्तमान रहता हूँ। मेरी आवाज कभी कभी जो अत्यन्त विकट हो जाती है इसका कारण प्रकृति द्वारा पैदा किया हुआ उपद्रव होता है। इसके लिये भी हमारे संरक्षक वैज्ञानिक किसी यन्त्रकी खोजमें हैं और वह निकट भविष्यमें ही पूरा हो जायगा।"

टिड्डी हमारा शत्रु—

मिश्रमें ४५०० साल पुराने एक मीनारपर एक ओर एक पतिंगे और दूसरी ओर एक बहुत लम्बी छुरीका चित्र इस बातकी आज भी याद दिलाता है कि ये पतिंगे मानव जातिके सबसे बड़े दुश्मन हैं जिनका मूलोच्छेद कर देना चाहिये। इनका नाश कर देनेके लिये बहुत तरहके उपाय इसलिये काममें नहीं लाये जा सके कि अबतक इस बातका पता ही नहीं लगा था कि कब ये दल बांध कर उर्वर भूमिको नष्ट कर देनेके लिये धावा बोल देंगे।

डा० बी० पी० उवारावने इनके विषयमें बहुत-सी दिलचस्प बातोंका पता लगाया है। ये पतिंगे मिट्टीके भीतर ढेरके ढेरके अण्डे देते हैं। अण्डे कुछ दिनों तक गीली मिट्टीमें रखे जाते हैं और फिर इन्हें बड़े पतिंगे सावधानीसे सेते हैं। जब मौसम अधिक गरम और अधिक ठण्डकी स्थितिमें आता है तो इन अण्डोंमेंसे बच्चे निकलने शुरू होते हैं। इनके माता-पिता इस समय इनकी काफी देख-रेख करते हैं। अण्डेसे बाहर निकले हुए जब उन्हें कुछ दिन हो जाते हैं तभी वह समय आता है जब ये दल बांध कर एक स्थान से दूसरे स्थानके लिये यात्रा आरम्भ करते हैं। कम संख्यामें ये यात्रा करनेकी हिम्मत नहीं करते और तब ये केवल इधर-उधर उड़कर उस स्थानकी सारी घास चाट जाते हैं, और जब ये बहुत बड़ी संख्यामें होते हैं तब ये यात्रा करते हैं और रास्तेमें पड़ने वाली फसलको चाटते जाते हैं। ये भिन्न-भिन्न सूरत शकल और रङ्गके होते हैं, इनकी यात्रामें एक बात विशेष रूपसे देखी जाती है कि ये उस ओरको धावा नहीं मारते जहां अधिकाधिक अन्न पैदा होता है, बल्कि ये हमेशा गर्म प्रदेशोंकी ओर जाना पसन्द करते हैं और इसीलिये ये उपजाऊ भूमिकी अपेक्षा रेगिस्तानको अधिक पसन्द करते हैं।

इन्हें तबाहीके गर्तमें पहुंचाने सम्बन्धी बातोंका पता बहुत आवश्यक खोजके बाद लगाया गया है। इन पतिंगोंको पिंजड़ेमें बन्द कर रक्खा गया और इन्हें मौसमके अनुसार ही बिजली द्वारा सर्दी और गर्मी पहुंचानेकी व्यवस्था की गयी। इस तरह इस बातका पता लगा कि कब ये अण्डा देते हैं, कब उनसे बच्चा बाहर निकलता है, और कब इनकी यात्राका समय होता है। हांला कि अभी तक वैज्ञानिक इस स्थितिमें नहीं पहुंच सके हैं कि इन्हें इनके निवास स्थानपर ही समाप्त कर दिया जाय फिर भी अब वे यह जान गये हैं कि ये कब किस दिशाकी ओर यात्रा करते हैं। इस जानकारीसे भी बहुत बड़ा काम होता है, क्योंकि इनकी गतिविधि मालूम रहनेपर उनको स्थानमें ही नष्ट करके उनकी ध्वंसक यात्राको रोका जा सकता है। इस संबंध में वैज्ञानिकोंकी खोज बराबर जारी है और ऐसी आशा की जाती है कि बहुत शीघ्र मलेरिया के कीटाणु लिये फिरनेवाले मच्छरोंकी तरह इनके विनाशका भी कोई प्रभावशाली उपाय निकाला जायेगा।

———

प्रेम या अनाचार—

व्यक्ति समाजका एक अंग है! श्रृङ्खलाबद्ध समाजके आदर्शकी रक्षा करना हर व्यक्तिका काम है! भावनाओंकी धारणा जितनी गहराई तक विवेकके अन्तस्तलमें प्रवेश कर जाती है वे उतनी ही पैनी और चोख हो जाती हैं। इस धारणाका पहला काम होता है उस हितकी रक्षा करना जिसके लिये उसकी धार पैनी हुई है। पानी काटना एक बात है और तैर कर निकल जाना एक दूसरी बात है। आज हर व्यक्ति अपनी जगह पर खड़ा होकर केवल अपने पासका पानी काट रहा है। आगे बढ़कर उस पार निकल जानेका साहस किसीमें दृष्टिगोचर नहीं होता। हमारी सभ्यता घरके भीतर कम, घरके बाहर ही अधिक प्रकट है। घरके भीतर बैठकर हम शराब पी सकते हैं, मांस खा सकते हैं, गाली बक सकते हैं, अपनी श्रीमतीजीको पीट सकते हैं और बूढ़े बापकी मूंछ उपार ले सकते हैं, पर रास्तेमें चलते फिरते, सभ्यताके नाम पर, इनमेंसे कोई कार्य नहीं कर सकते! यह हमारी उस अन्तर्भावनाकी प्रेरणा है जिसे हम सभ्यताकी संज्ञाके अन्तर्गत मानते हैं। हमारी यह सभ्यता हमारे वर्तमान समाजकी देन है।

समाज हमें प्रत्यक्षतः कार्य रूपमें वही करनेको कहता है जिससे हमारे पास पड़ोसमें कोई हल-चल न पैदा हो जाय। शिक्षाका दूसरा स्वरूप भी इसी हलचलको दूसरे प्रकारसे दबानेका एक शस्त्र है। हमारी शिक्षा युग युगसे हमें उसी दिशाकी ओर प्रवाहित कर रही है जिस तरफ समाजका हित सुरक्षित रहा है। हम जिस युगमें भारतको छोड़कर किसी दूसरे देशको नहीं जानते थे उस समय हमारी शिक्षा देशीय ही रही थी। उस समय हम केवल उसी तरहकी शिक्षा पाते थे जिस तरहकी हमारे समाजकी अवस्था और आवश्यकता थी। उस समय का हमारा समाज देशीय समाज था पर आज तो हमारा समाज विश्व बन्धुत्वकी प्रेरणाका पिता बन चुका है। हमारी शिक्षा आज संसार भर में फैले हुए तमाम देशोंकी शिक्षा-प्रणालीके आधार पर पहलेसे अधिक उदार और प्रगतिशील कही जाती है। हमारे विचार पहलेकी अपेक्षा अधिक प्रांजल हैं। हमारा बौद्धिकस्तर आज पहलेकी अपेक्षा कहनेको अधिक उन्नत अवस्थामें है पर आजके हमारे आचार और कर्म ठीक हमारी शिक्षा और विचारके प्रतिकूल हैं। हम पढ़ते हैं—जहां नारीकी पूजा होती है वहीं देवता निवास करते हैं, पर हम करते हैं इससे भिन्न। हम नारीकी पूजा तो कम करते हैं नारीकी "सेवा" ही अधिक करते हैं। हमारे पढ़े लिखे "बाबू" लोग नारीका अर्थ समझते हैं एक ऐसी हाड़ मांसकी बनी सुन्दर प्रतिमा जिसका उपयोग केवल काम-वासनाकी तृप्तिके लिये होती है। नारीका यह रूप मनुष्यकी कितनी घिनौनी और भ्रष्ट कल्पना है।

नारीके सम्बन्धमें हमारा यह कदर्य विचार हमारी मानसिक पवित्रताका द्योतक नहीं है। आज हम प्रेम प्रेमकी रट लगाये पपीहा या चातक से कम विकल अपनेको नहीं पाते। हमारी यह प्रेमकी भावना इस बुरी तरह प्रयोगमें लाई गई है कि प्रेम अब एक मात्र वासनाके रूपमें हो गया है। आज हमारे सामने इस तरहके अनेकानेक प्रमाण मौजूद हैं जिनके आधार पर हम यह कह सकते हैं कि हमारे कितने ही नवयुवक आज समाजके शरीरमें कोढ़की तरह फूट पड़े हैं। कोई प्रेमी अपनी प्रेमिकाके दरवाजे पर सत्याग्रह शुरू कर देता है तो कोई छतके एक सिरे पर खड़े होकर प्रेमिकासे यह पूछता है कि बताओ तुम मुझसे प्रेम करती हो या नहीं अगर नहीं तो मैं छतसे कूद कर प्राण दे दूँगा। यू० पी० में एक जगह प्रेमी महाशय आधी रातको प्रेमिकाके घरमें सेंध लगाते पकड़े गये। अदालतमें अपनेको चोरीके जुर्मसे बचाते हुए सफाईमें प्रेमिकाका वह पत्र पेश किया जिसमें उसने होलीकी रातमें उन्हें मिलनेका निमन्त्रण दिया था। सचमुच अगर देखा जाय तो यह प्रेम करनेका कितना घिनौना और भद्दा उदाहरण है। न रहे लैला मजनू इस युगमें वरना वे प्रेमके इस तरीकेको देखकर जरूर जहर खाकर प्राण दे देते। प्रेम करना बुरा नहीं है। प्रेम तो सदासे पवित्र और निर्दोष रहा है पर प्रेम करनेका तरीका इतना निन्दनीय बन चुका है कि हमें इस तरीके पर विशेष आपत्ति है। प्रेम चाय नहीं है कि जहां जीमें आया चार पैसा फेंक कर गरमागर्म आनन्द ले लिया। प्रेम तो जीवनकी एक साधना है। रास्तेमें चलने वाली हर छोकरियोंसे छेड़खानी करना प्रेम नहीं है। यह तो शरारत है जिसका जवाब आये दिन सड़कों पर चप्पलोंसे मिलने लगा है। प्रेम और रोमांसके पीछे पागल होकर हाय हाय करने वाले ये कामुक व्यक्ति समाजके गलित अंग हैं जिन्हें जितनी जल्दी सम्भव हो निकाल फेंकना चाहिये। यूरोपकी सभ्यता युरोपमें ही फैल सकती है भारतमें उसके लिये कोई स्थान नहीं है। हमारे कन्धों पर आज जिस सभ्यताका भार है हम उसे ही ढोनेमें अपना गर्व समझते हैं। सच पूछा जाय तो विदेशी सभ्यताकी आड़ लेकर हम अपने भीतरके शैतानको खुलकर खेलनेका मौका देते हैं। इन सारी बातोंके पीछे हमारी कुत्सित भावनायें ही छिपी हैं। धीरे धीरे ये बुरी भावनायें हमारे नव युवकोंके भीतर घर कर गई हैं और अब यह उनमें संस्कारके रूपमें परिणत हो गई हैं। यह संस्कार उनके जीवनमें तदाकार हो गया हो ऐसी बात नहीं। यह तो उनका बनाया हुआ संस्कार है जो क्षण मात्रमें ही मनसे हटाने पर हट सकता है, हमारे नवयुवकों

को चाहिये कि वे अपने इस नये कुसंस्कारको संस्कृत न होने दें। इससे वे सदा सर्वदाके लिये अपनेको छुड़ा लें ताकि समाजका यह कोढ़ समाजको गला सड़ा कर ही न छोड़े।

उदाहरणोंकी कमी नहीं—

हमारे नवयुवक, जिनपर समाजकी सारी आशा टिकी हुई है, आज किस ओर जा रहे हैं, यह प्रेसवालोंकी कृपासे अविदित नहीं है। पञ्जाब तो इस गुण्डेशाहीमें अपना एक विशेष स्थान रखता है। आये दिन लाहौरकी सड़कों पर लड़कियोंसे छेड़छाड़ करनेकी घटनाएं आंखोंके सामनेसे गुजरती हैं। इतना सब कुछ होनेपर भी हमारे नवयुवक अपनी इस "वृहत्तर योजना" से विमुख होते नजर नहीं आते। अभी हालमें ही कलकत्तेमेंश्री नृपेन्द्रनारायणदत्त चौधरी नामक एक पढ़ा-लिखा नवयुवक लीलावती पाल नामक एक अविवाहिता लड़कीको भगानेके अभियोगमें पकड़े गये हैं। मामला किसी तरह तय हो गया जब कि अभियुक्तने उस लड़कीके साथ शादी करनेकी इच्छा मजिस्ट्रेटके सामने प्रकट की। मामला तो तय होगया पर यह सनसनीखेज समाचार कुछ दिनों तक लोगोंके मनोरञ्जनका रोचक मसाला बना रहा। शादी होनेको हुई पर यह शादीका स्वरूप कितना वीभत्स हुआ, यह शर्मनाक बात है। औरतोंके भगानेका मामला आज कल इस तरह वृद्धि कर गया है कि वह हमारे लिये चिन्ताका विषय बन चुका है।

सुनते थे कि हालीवुडकी अभिनेत्रियां बराबर पहरेमें रहा करती थीं और रास्तेमें अपहरणके भयसे कभी अकेली नहीं चलती थीं। आज यही बात भारतमें देखनेको मिल रही है। प्रसिद्ध फिल्म अभिनेत्री सुरतरी बेगमको कुछ लोगोंने हर लेनेकी ठानी। सुरतरी बेगम अपने नवविवाहित पति मि० अब्दुल अजीजके घरपर ही थी कि एक दिन कुछ गुण्डोंने उनके मकानपर छापा मारा। गुण्डोंने बाकायदा उनके घरमें उनके नौकरोंसे डटकर मोर्चा लिया और सुरतरी बेगम का मुंह बन्दकर उन्हें एक तांगेमें बिठा लिया। सौभाग्यवश तांगा शहरके बीचो-बीचसे भागा और सुरतरी बेगमके हल्ला करनेपर पुलिस वालोंने बेगम साहिबाको गुण्डोंके हाथसे बचाया। इस तरहकी एक दो घटनाएं नहीं बल्कि सैंकड़ों घटनाएं हमारी आंखोंके सामनेसे गुजरती हैं और हम उन्हें मर्माहत होकर देखा करते हैं। हमारा पुरुषार्थ जागृत नहीं होता। असहायावस्थामें पड़ी हुई त्रस्ता नारीकी रक्षाके लिये हम आगे नहीं बढ़ते। संकटको गले लगाना हम भूल गये हैं। हमारी आत्मा संकुचित हो गयी है। उसमें वह निर्भीकता नहीं रह गयी जो मनुष्य को ऊंचे उठाती है। वह हममें साहस नहीं रहा जो सङ्कटकी परवाह न करके अन्यायके प्रतिकार के लिये मनुष्यको कृत-संकल्प बनाता है। यह सब गुलामीके अभिशाप हैं। उसने हमारे विवेकको नष्ट कर दिया है। आचार-विचारको भ्रष्ट कर दिया है। हमारी महानताको कुण्ठित कर दिया है। हमारी मानवताको दीन-हीन बनाकर छोड़ दिया है।

पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृतिमें जो कुत्सित है उसे हमने अपनाया है, जो सुष्ठु है, सुन्दर है उसे हम नहीं ग्रहण कर सके। यही कारण है कि आज पाश्चात्य शिक्षा संस्कृतिमें पले उच्च वर्गीय समाजके भीतर अनाचार ताण्डव कर रहा है। धन और समाजका बल उसका समर्थक है, इसलिये उच्च स्तरका अनाचार अपनी सीमाके भीतर खुल खेल रहा है। मध्यम वर्गके मध्यस्तरके लोगोंको धन और समाजका बल न होनेके कारण उनकी कुत्सित भावनाएं, उनके मनोविकार चौड़े आ जाते हैं। इसी तरहके लोग हाट, बाट और घाटमें अपने शिकार तड़े रहते हैं और यही वजह है कि हम आये दिन नारी-अपहरण और राहघाटमें युवतियोंके साथ सुन्दर स्वस्थ, सबल और शिक्षित युवकोंके मनमानी करनेके प्रयासों के समाचार सुनते और पढ़ते हैं। आजका समाज इस तरहकी घटनाओंको रोकनेमें असमर्थ है। कानून बने हैं, किन्तु उनके पीछे वह बल नहीं है जो उनको प्रभावशाली बनाता है। वह बल लोकमत है और समाजोपयोगी लोकमत बनानेकी आशा हमें विदेशी सत्तासे न करनी चाहिये।

यदि हम चाहते हैं कि हमारा समाज स्वस्थ, सबल बन कर सदाचारी हो और आये दिन होने वाली राहबाटकी घटनाओंको रोकने लायक पर्याप्त शक्ति और साधनोंसे सम्पन्न बने तो हमें समाज सुधारकी उपयोगी योजनाओंके साथ-साथ मूलपर कुठाराघात करना चाहिये। परतन्त्रतासे मुक्ति पानेपर ही हम स्वतन्त्र होकर सत्यं, शिवं सुन्दरम्‌के आदर्श पर समाजकी प्रतिष्ठा कर सकेंगे।

अन्तर्राष्ट्रीय

(शेषांश)

जो कुछ हो, रूमानियाके धुरी शक्तियोंके दलसे निकल आनेका सैनिक महत्व कम नहीं है। लक्षणोंसे यह प्रतीत होता है कि जर्मनी अपनी अन्तिम रक्षा पंक्ति रूमानिया नहीं हंगरीमें कायम करना चाहता है। ऐसी हालतमें यदि रूमानियन सैनिक जर्मन मोर्चे और सैनिक अड्डेके बीचके यातायात मार्गकी पंक्तिको काट दे सके तो आगे बढ़ते हुए रूसी सैनिक जर्मनोंको पीछे हटनेसे रोक बीचमें ही घेर कर उनका सफाया कर डालेंगे। इस क्रमसे यूनान और सरबियाके अधिक भागके उद्धारकी भी सम्भावना है। इससे मार्शल टीटोकी ताकत भी बढ़ेगी। वे रूमानियाके इस कार्यसे अधिक प्रोत्साहित होंगे। दरअसल रूमानियाने धुरीराष्ट्रके छोटे छोटे मददगार देशोंको रास्ता दिखानेका काम किया है।

कहानियोंका प्रवाह—

साहित्यका स्तर इतना ऊंचा होता है कि वह जीवनकी तमाम समस्याओंपर सम्पूर्ण रूपसे एक साथ प्रकाश डालता है। जीवनकी अलग अलग समस्याओंको वह अपने ओजसे सदैव प्रकाशमें रखता है ताकि वह अन्धकारमें रहकर कहीं उचित उपचारसे वञ्चित न रह जाय। साहित्य शब्दकी सृष्टि ही स-हितको दृष्टिकोणमें रख कर की गयी है। साहित्य जहां जीवनको विषमताओंसे कसमसाता हुआ दृष्टिगोचर होता है वहीं वह सम्पूर्णको पर्णताका द्योतक भी है। अभावकी सत्ता सदा मान्य है और यह किसी भी युगमें कभी ऐसा नहीं हुआ कि अभावकी सत्ता को एकदम नष्ट कर दिया गया हो। अभाव ही तो नवीन चीजोंकी सृष्टि करनेकी लालसाका जन्मदाता है। अतः यह बात आपसे आप स्पष्ट हो जाती है कि साहित्यसे जहां एक अभावकी पूर्ति की जाती है वहीं दूसरा अभाव उसके सामने उठ खड़ा होता है। साहित्यकी गति इसीसे कहीं रुकती नहीं। हां, समस्याका समाधान करते समय ऐसा सम्भव हो सकता है कि साहित्यको कुछ देरतक उचित उपायकी खोजमें ठहरना पड़े। पर यह उसका 'रुक जाना' नहीं हो सकता। हिन्दीमें जो अनेक वादोंकी सृष्टि हुई है वह किसी न किसी अभावकी पूर्तिमात्र है। वादोंका जन्म तभी होता है जब कोई गहरी समस्या सुलझती नजर नहीं आती और तभी वादके रूपमें बीमारीका नाम देकर उसके लिये दवाकी खोज होती है। हमारे सामने छायावाद, प्रगतिवाद आदि जितने वाद आये, सभी किसी न किसी अपूर्ण समस्याकी पूर्ति करने आये और आकर वे अपने अस्तित्वकी छाप छोड़ गये। वादोंकी लहर केवल घोंघें ही लायी हो ऐसी बात नहीं है! ऐसे अनमोल मोती भी इन लहरोंसे किनारे लगे जिनका मूल्य युग युग तक कोई आंक नहीं सकेगा। जीवन कालमें साहित्यकार जितना प्रसंशित होता है उससे कहीं अधिक वह अपनी चीजोंके कारण मृत्युकेबाद यश प्राप्त करता है। जीवनकालमें तो व्यक्तिगत विरोधी, उसके समकालीन साहित्यकार आदि कुछ ऐसे आधि व्याधि होते हैं जो जनतामें उसके विरुद्ध गलत प्रचार करते हैं। पर मृत्युके बाद केवल उसकी कृतियां रह जाती है जिन्हें समाज ध्यानपूर्वक पढ़ता है और उस दिवंगत आत्माकी कृतियोंपर निष्पक्ष भावसे सम्मति देता है। साहित्यकार अपने जीवनमें तो कम पर अपने जीवनके बाद अपनी चीजोंका मूल्य पाता है। हां तो, वादोंकी सृष्टि जिस अभावकी पूर्तिके लिये की गई वह तो कम या अधिक हुई ही पर उन वादोंकी आड़में आजकल कुछ ऐसे साहित्यकी सृष्टि बेरोक-टोक हो रही है जो वांछनीय नहीं है। इस तरहका साहित्य जीवनकी पूर्णतामें दरार डाल देता है जिससे वाहियात चीजें दिमागमें अनाहूत अतिथिकी तरह आ जाता है और उसका प्रभाव मनपर पड़ने लगता है। हम जो कुछ भी पढ़ते हैं उसका प्रभाव हमारे मस्तिष्कपर पड़ता है और उसके फलस्वरूप लगातार पड़नेवाले प्रभावसे हमारे मनमें जिस बस्तुका बीजारोपन होता है वह उस प्रभावका ही वंशज होता है। इस तरह हमारे मस्तिष्ककी भावना गंदे साहित्यके लगातार पढ़ते रहनेसे दूषित हो जाती है और हमारा दृष्टिकोण बदल जाता है। छतपर धूपमें बैठकर फर्श समतल करनेवाली मजदूरनीको देखकर जहां एकके मनमें उसकी लाचारीके प्रति करुणा और समाजके इस वैषम्यके विरुद्ध भीषण प्रतिहिंसाकी भावना जाग पड़ती हैं वहीं दूसरे को फर्श पीटते समय उसके लगातार उठते गिरते रहनेवाले हाथकी क्रियासे उसके वक्षस्थलके चढ़ाव उतारको देखकर उसके मनमें वासनामय भावना का उद्वेग होता है। मानव स्वभावकी यह कमजोरी सदैव उसके भीतर बनी रहती है जिसे दबाये रखनेके लिये चारों ओरसे उसपर आक्रमण होते रहनेकी आवश्यकता है। आजकल हमारे यहां कहानियोंकी बाढ़ सी आ गयी है। मासिक, साप्ताहिक आदि पत्रोंको छोड़कर केवल कहानियोंके दर्जनों पत्र निकल रहे हैं। इन पत्रों की बिक्री भी जोरोंसे होती है, क्योंकि कहानी पढ़ना हर व्यक्ति बजाय और चीजोंके अधिक पसन्द करता है।

दिमागी कसरतसे भी कहानी पढ़नेसे छुटकारा मिलता है और सस्ते घाट मनोरंजन भी हो जाता है। इन कहानियोंमें जिस तरहके चित्र हमारे सामने आते हैं वे हमारी अन्तर्भावना को बजाय उन्नत बनानेके पतनके गर्तमें ढकेलते हैं। कहानियोंका पाठ कामुक प्रेमसे ही शुरू होता है और विविध प्रकारकी गन्दी घटनाओंके चढ़ाव उतारके बाद या तो मिलन या वियोगकी अवस्थामें समाप्त होता है। इसमें सस्ती भावुकताके सिवाय गहरी अनुभूतिका कहीं पुट नहीं होता। इन उद्देश्य विहीन कहानियोंका पठन पढ़नेवालोंके दिमागपर बुरा असर डालता है और वे कहानी पढ़ लेनेके बाद बहुत देरतक गन्दी भावनाके हिंडोलेपर झूलते रहते हैं। रियलिज्म का गलत अर्थ समझनेवाले उसका लगातार गलत प्रयोग कर रहे हैं। और उनके इस गलत प्रयोगका प्रभाव पाठकके मस्तिष्कपर बुरा असर डाल रहा है। इस प्रवाहको रोकना आज का एक जबर्दस्त काम है। यह सस्ती भावुकता आज भले ही आसानीसे मिल जाती है पर इसका असर भविष्यके कहानी लेखकोंपर बुरी तरह पड़ेगा। इस तरहकी कहानियां नपुंसक भी नहीं होती, वरन ये तो दिमागके चढ़ाव उतार

का गलत रास्तेपर ले जानेवाली होती हैं। आजके साहित्यमें इन कहानियोंका मूल्य यद्यपि महत्व-पूर्ण नहीं है फिर भी इसका प्रभाव बहुत ही भयानक है। हमें चाहिये कि इस तरहकी कहा-नियोंको जनताकी आंखोंके आगे आनेसे बचायें ताकि समाजमें अनाचार और अव्यवस्था न फैलने पाये। भविष्य सामने खड़ा है और वह आगे रहनेवाले साहित्य निर्माताओंको, यदि वे इस धाराको नहीं बदल सके तो, अवश्य कोसेगा।

पंचविध जनपद कल्याणी योजना

वैसे तो कार्य अनन्त हैं, पर सुविधाके लिये पांच वर्षकी एक सरल योजनाके रूपमें उसकी कल्पना यहां प्रस्तुत की जाती है। इसका नाम जनपद कल्याणी योजना है। प्रत्येक व्यक्ति इसमें सुविधाके अनुसार परिवर्तन-परिवर्धन कर सकता है। इसका उद्देश्य कार्यकी दिशा का निर्देश कर देना है।

वर्ष १—साहित्य, कविता, लोकगीत, कहानी आदि जनपदीय साहित्यके विविध अंगों की खोज और संग्रह। वैज्ञानिक पद्धतिसे उनका सम्पादन और प्रकाशन।

वर्ष २—भाषा-विज्ञानकी दृष्टिसे जनपदीय भाषाका सांगोपांग अध्ययन—अर्थात् उच्चारण या ध्वनि-विज्ञान, शब्द-कोष, प्रत्यय, धातुपाठ, मुहावरे कहावत और नाना प्रकारके पारिभा-षिक शब्दोंका संग्रह और आवश्यकतानुसार सचित्र सम्पादन।

वर्ष ३—स्थानीय भूगोल, स्थानोंके नामकी व्युत्पत्ति और उनका इतिहास, स्थानीय पुरातत्व इतिहास और शिल्पका अध्ययन।

वर्ष ४—पृथिवीके भौतिक रूपका समग्र परिचय प्राप्त करना—अर्थात् वृक्ष, वनस्पति, मिट्टी, पत्थर, खनिज, पशु, पक्षी, धान्य, कृषि-उद्योग-धन्धोंका अध्ययन।

वर्ष ५—जनपदके निवासी जनोंका सम्पूर्ण परिचय—अर्थात् मनुष्योंकी जातियां, लोकका रहन-सहन, धर्म, विश्वास, रीति-रिवाज, नृत्य-गीत, आमोद-प्रमोद, पर्व उत्सव, मेले, खान-पान, स्वभावके गुण-दोष, चरित्रकी विशेषताएं—इन सबकी बारीक छानबीन और पूरी जानकारी प्राप्त करके ग्रंथ रूपमें प्रस्तुत करना।

यह पञ्चविध योजना वर्षानुक्रमसे पूरी की जा सकती है। अथवा एक साथ ही प्रत्येक क्षेत्रमें कार्यकर्त्ताओंकी इच्छानुसार प्रारम्भ की जा सकती है। किन्तु यह आवश्यक है कि वार्षिक कार्यका विवरण प्रकाशित होता रहे। प्रत्येक जनपद अनेक क्षेत्रके साधनोंको एकत्र करके 'मधुकर' 'व्रजभारती' और 'बांधव'के ढङ्गके पत्र प्रकाशित करें तो और अच्छा है। स्थानीय कार्यकर्ताओंकी सूची तैयार होनी चाहिये और कार्यके सम्पादनके लिये विविध समितियोंका संगठन करना चाहिये। उदाहरणार्थ कुछ समि-तियोंके नाम ये हैं—

(१) भाषा-समिति—जनपदीय भाषाका अध्ययन, वैज्ञानिक खोज और कोषका निर्माण। धातुपाठ और पारिभाषिक शब्दोंका संग्रह इसीके अन्तर्गत होगा।

[२] भूगोल या देशदर्शन-समिति-भूमि-का आंखों देखा भौगोलिक वर्णन तैयार करना, स्थानोंके प्राचीन नामोंकी पहचान, नदियोंके सांगोपांग वर्णन तैयार करना।

[३] पशु-पक्षी-समिति—अपने प्रदेशके सत्वोंकी पूरी जांच पड़ताल करना इस समितिका कार्य होना चाहिये। इस विषयमें लोगोंकी जान-कारीसे लाभ उठाना, नामोंकी सूचियां तैयार करना, अङ्गरेजीमें प्रकाशित पुस्तकोंसे नामोंका मेल मिलाना आदि विषयोंको अध्ययनके अन्त-र्गत लाना चाहिये।

[४] वृक्ष-वनस्पति-समिति—पेड़, पौधे, जड़ी बूटी, फूल-फल मूल सबका विस्तृत संग्रह तैयार करना।

[५] ग्राम-गीत समिति—लोकगीत, कथा-कहानी आदिके संग्रहका कार्य।

[६] जन-विज्ञान-समिति—विभिन्न जा-तियों और वर्णोंमें लोगोंके आचार-विचार और रीति-रिवाजोंका अध्ययन।

[७] इतिहास-पुरातत्व समिति—प्राचीन इतिहास और पुरातत्वकी सामग्रीकी छानबीन, उसका अध्ययन, संग्रह और प्रकाशन। पुरातत्व-सम्बन्धी खुदाईका भी प्रबन्ध करना।

[८] कृषि-उद्योग समिति—जनताके कृषि-विज्ञान, उद्योग धन्धों और खनिज पदार्थोंका अध्ययन।

इस प्रकार साहित्यिक दृष्टिकोणको प्रधानता देते हुए,अपने लोकका रुचिके साथ एक सर्वाङ्गपूर्ण अध्ययन प्रस्तुत करना इस योजनाका उद्देश्य है।

—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल एम०ए० पी० एच० डी०।

समालोचना

लोकवार्ता (त्रैमासिक-पत्र) सम्पादक कृष्णा-नन्द गुप्त, टीकमगढ़ (मध्यप्रांत)! पत्रके नामसे ही प्रकट है कि लोकवार्ता ही इस पत्रका प्रमुख विषय है। हमारे यहां कथा, कहानियोंके रूपमें हमारे संस्कारोंके इतिहास बिखरे पड़े हैं जिनकी ओर आजतक किसीका भी ध्यान नहीं गया है। हर प्रान्तके निवासियोंकी अपनी एक कहानी है। जुदे जुदे रस्मो-रिवाज हैं। इन रीति-रिवाजोंकी आवश्यकता कब और क्यों हुई, यह जानकारी प्राप्त किये बगैर ही हम उन्हें लगातार करते जाते हैं। ये रस्मोरिवाज हमारे लिए एक रूढ़िगत संस्कार मात्र रह गये हैं। लोक-वार्ता केवल मात्र इस विषयकी जानकारी प्राप्त करनेके ही लिये निकाला गया है। लोकवार्ताका पहला अङ्क अपने भीतर काफी सुपाठ्य सामग्री लिये हमारे सामने है। अङ्क सुपाठ्य और उपयोगी है।

आँधी-पानी-रचयिता श्री 'प्रताप' बी० ए०, प्रकाशक बीसवीं सदी पुस्तकालय, गऊघाट मिरजापुर। मूल्य बारह आना।

कवि प्रतापकी २८ कविताओंका यह पहला संग्रह है। कविताएं सरल और सरस हैं। भाषा में ओज और प्रवाहके साथ माधुर्यकी कमी नहीं है। कविके ऊपर कई वादोंके कवियोंकी छाप है—ऐसा उन्होंने अपने निवेदनमें स्वीकार भी किया है। यद्यपि भूमिकामें लेखकने प्रचलित 'वादों' की आलोचना करते हुए अपने 'वाद' को ही सही बताया है। छपाई सफाई साधारण है।

सम्बलपुर (इतिहास), लेखक एवं प्रका-शक पं० भैरवलाल नन्दवाना, पृष्ठ संख्या ३८, मूल्य (प्रथम संस्करण) १)। मिलनेका पता—हिंदी साहित्य मन्दिर, सम्बलपुर।

उत्कल प्रान्तमें सम्बलपुर एक विशेष स्थान रखता है। प्रस्तुत पुस्तिकामें उसीका गत ४०० वर्षोंका संक्षिप्त इतिहास है। यद्यपि अंग्रेजी और उड़िया भाषाओंमें उड़ीसा प्रान्तके अनेक इतिहासकेग्रन्थ उपलब्ध हैं, तथापि हिन्दी भाषामें इसका बिलकुल अभाव है। नन्दवानाजीने इस छोटी सी पुस्तिकाको लिखकर इस कमीको कुछ अंशोंमें पूरा करनेकी प्रशंसनीय चेष्टा की है। सम्बलपुरका नाम हीराखण्ड और बीरभूमि भी है। कहते हैं कि प्राचीन कालमें सैकड़ों बीरोंने इस भूमिमें जन्म लिया था। इसमें सन्देह नहीं कि लेखकका यह सत्प्रयास उत्कल साहित्यकी और हिन्दी भाषियोंकी अभिरुचि पैदा करेगा। लेकिन पुस्तिकाका आकार देखते हुए दाम कुछ अधिक जंचता है।

ये हैं चर्चिल—

लार्ड वावेलने महात्माजीके रचनात्मक प्रस्ताओंको अस्वीकार करते हुए जो अन्तिम उत्तर गांधीजीको दिया है वह निराशा-जनक होते हुए भी उन भारतीयोंकी आखें खोलने वाला है जो ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंकी नेकनीयती और ईमानदारी पर अब भी विश्वास रखते हैं। महात्माजीके प्रस्तावोंको विचार-विनिमयके आधारके लिये अनुपयुक्त और अपर्याप्त बताते हुए लार्ड वावेलने जिन बहानोंका आश्रय लिया है उन पर सरसरी नजर डालनेसे भी यह स्पष्ट हो जाता है कि ब्रिटिश सरकार युद्धोत्तर कालमें भी तब तक सच्चे अधिकार हस्तान्तरित करनेको तैयार नहीं है जब तक, महात्माजीके शब्दोंमें, हममें लड़कर अधिकार छीन लेनेकी पर्याप्त शक्ति न आजाये। महात्माजी जब लड़नेकी बात कहते हैं तो यह समझ लेना चाहिये कि उनकी लड़ाईका ढंग और तौर-तरीके विशुद्ध नैतिक और अहिंसात्मक ही होंगे।

लार्ड वावेल कहते हैं कि "१९४२ में भारतमें सर स्टैफर्ड क्रिप्सके सामने मौलाना आजाद द्वारा रखे गये प्रस्तावोंका जो आशय था, गांधीजीके प्रस्ताओंका सार भी वही है। किन्तु पहली बाततो यह है कि युद्धकालमें शासन-विधानमें किसी तरहका परिवर्तन असम्भव है। और आपके (गांधीजीके) सुझावके अनुरूप केन्द्रीय असेम्बलीके सामने राष्ट्रीय सरकारको तभी जिम्मेदार बनाया जा सकता है जब विधानमें परिवर्तन हो। दूसरी बात यह है कि जब तक युद्ध समाप्त नहीं हो जाता तब तक डिफेंस और युद्ध-की जिम्मेदारियोंको सरकारकी अन्य जिम्मेदारियोंसे अलग नहीं किया जा सकता। इसके अलावा जब तक युद्ध नहीं समाप्त होता तब तक सम्पूर्ण क्षेत्रोंमें सम्राट्की सरकार और गवर्नरजेनरल अपना उत्तरदायित्व पूर्ववत् बनाये रहेंगे।"

कामन्स सभामें हिन्दुस्तानके मामले पर पिछली बहसका जवाब देते हुए भारत मन्त्री मि० एमरीने कहा था कि 'यह बात नहीं है कि युद्ध-स्थिति अनुकूल हो जानेसे हमारी भारत सम्बन्धी नीतिमें कोई परिवर्तन हो गया है।' किन्तु वायसरायके ऊपर लिखे उत्तर और भारतसे वापस जाने पर सर स्टैफर्ड क्रिप्सने पार्लमेण्टके सामने जो वक्तव्य दिया था, इन दोनोंको साथ मिला कर पढ़नेसे यह स्पष्ट मालूम होगा कि उस समयकी और आजकी ब्रिटिश भारत नीतिमें कितना अन्तर है। उस समय ब्रिटिश सरकार भारतकी लोक-प्रिय सरकारके हाथोंमें सिर्फ असामरिक उत्तर दायित्व ही नहीं बल्कि डिफेंस का आंशिक उत्तरदायित्व सौंपना भी बांछनीय और सम्भव समझती थी। जो योजना क्रिप्स लेकर भारत आये थे उसकी दफा (ई) का उल्लेख करके सर स्टेफर्डने कामन्समें इस प्रकारकी व्याख्याकी थी "इस दफाकी रचना इस प्रकार की गयी है कि ब्रिटिश सरकार और भारत सरकारके उत्तरदायित्वोंका विभाजन, जहां तक सम्भव है स्पष्ट रूपसे, व्यक्त कर दिया गया है।" ब्रिटिश सरकारके मातहत युद्ध संचालन और लड़ने वाली सैनिक शक्तियों पर स्वतन्त्र और पूर्ण नियन्त्रण रखा गया था। डिफेंसकी अन्य दिशाओंके सम्बन्ध में सर स्टैफर्डने कहा था कि 'मैंने यह स्पष्ट कर दिया था कि वायसरायकी कार्य समितिके युद्ध सदस्य (War Member) की हैसियतसे कमाण्डर इन चीफ भारत सरकारके मातहत रह कर सुचारु रूपेण युद्ध जारी रखनेके लिये अन्य तमाम व्यवस्था सम्बन्धी कार्य करेंगे। इतना ही नहीं बल्कि सर स्टैफर्डने यह भी स्वीकार किया था, और उस समय वायसराय तथा कमाण्डर इन चीफ दोनों ही उनसे इस बातमें सहमत थे कि "वायसरायकी एकजीक्यूटिव कौंसिलके भारतीय प्रतिनिधियोंके लिये भारतके लोकमतको अपने साथ रखनेमें कठिनाई होगी, अगर वे यह न कह सकेंगे कि, जो बिलकुल न्याय सङ्गत है, डिफेंस का कमसे कम कुछ हिस्सा भारतीय प्रतिनिधि और प्रकारान्तरसे, भारतीय जनताका उत्तरदायित्व है।' अपने इसी दृष्टिकोणको कार्यमें परिणत करनेके विचारसे सर स्टैफर्ड क्रिप्सने कमाण्डर इनचीफ और भारतीय डिफेंस मेम्बरके कर्तव्योंकी अलग अलग दो तालिकाएं भी तैयार की थीं। भारतीय सदस्यके लिये तैयार की गयी तालिकाको देखकर पण्डित जवाहरलाल नेहरूने कहा था कि भारतीय सदस्यको डिफेंसका स्टेशनरी डिपार्टमेंट (कागज, कलम, स्याही इत्यादि छोटी मोटी चीजोंका विभाग) सौंपा जा रहा है। खैर, इससे यह बात तो स्पष्ट ही है कि उस समय सर स्टैफर्ड क्रिप्स, ब्रिटिश सरकारकी पूर्ण स्वीकृतिसे, लोक-प्रिय भारतीय सरकारको सिर्फ असैनिक उत्तर-दायित्व ही नहीं बल्कि डिफेंसके भी कुछ विभाग सौंपनेको तैयार थे। यद्यपि सर स्टैफर्डने उस समय भी यह स्थिति ग्रहण की थी कि युद्ध-कालमें विधानमें महत्वपूर्ण परिवर्तन करना सम्भव नहीं है किन्तु उन्होंने बराबर इस बात पर जोर दिया था कि लोकप्रिय सरकार कायम करनेकी जनताकी मांगको वर्तमान स्थिति में भी पूरा किया जा सकता है। इङ्गलैण्ड वापस जानेपर कामन सभामें भी उन्होंने ऐसा ही कहा था: "ब्रिटिश सरकार आग्रह पूर्वक उत्सुक थी कि जिस किसी तरह हो वर्तमान विधानका ध्यान रखते हुए भी दफा (ई) के अन्तर्गत किये गये प्रस्तावोंको वास्तविकताका रूप दिया जाये। परस्पर समझदारी और दोनों पक्षमें सहयोगकी भावना होनेपर ऐसी परिस्थितिमें भी बहुत कुछ किया जा सकता है खासकर जब सभी भारतकी रक्षा जैसे महत्वपूर्ण और विषद उद्देश्यपर एकमत हैं।"

इस वक्तव्यसे स्पष्ट है कि युद्धकी प्रतिकूल स्थितिने दो वर्ष पूर्व ब्रिटिश सरकारको कुछ विचलित कर दिया था और इसीलिये सर

स्टैफर्ड क्रिप्सको भेजा गया था। आज स्थिति बिलकुल भिन्न है। उस समय कूटनीतिक चालें चलनेका समय था। सर स्टैफर्ड क्रिप्स इसके लिये उपयुक्त समझे गये। आज भारतपर अपने आधिपत्यको अधिक मजबूत बनानेकी आवश्यकता है; और फील्ड मार्शल लार्ड वावेलसे अधिक उपयुक्त व्यक्ति इस कामके लिये और कौन हो सकता है।

लार्ड कर्जनने आजसे वर्षों पहले कहा था कि यदि हमारे साम्राज्यसे अन्य सभी डोमिनियन निकल जायें तब भी हम जीवित रह सकते हैं। किन्तु भारतको हम जिस दिन खो देंगे, ब्रिटिश साम्राज्यका सूर्य उसी दिन अस्त हो जायेगा और प्रधान मन्त्री चर्चिलने कह ही दिया है कि I did not become His Majesty's First Minister in order to preside over the liquidation of the British Empire! अर्थात् ब्रिटिश साम्राज्यको छिन्न भिन्न करनेके लिये मैं सम्राट्का प्रधान मन्त्री नहीं बना हूं। इतने पर भी जो भारतीय नेता यह आशा करते हैं कि विचार विनिमय द्वारा ही भारतको स्वतन्त्रता मिल जायेगी वे आत्म प्रवञ्चना करते हैं। त्याग और बलिदान एवं कष्ट सहनका जीवन ग्रहणकर सकने का साहस जिनमें नहीं है वे ही इस तरहकी बातें कह कर जनताको भ्रममें डाल सकते हैं। सेवाग्रामका सन्त दिव्य दृष्टि रखता है। अतः यदि सचमुच हमें भारतको स्वतन्त्र करना है तो महात्माजीके कथनानुसार हमें ब्रिटेनसे अधिकार ले लेनेकी पर्याप्त शक्ति अपने भीतर प्राप्त करनी चाहिये। वर्ना ये हैं अङ्गरेज, बातें बनाने और अपना मतलब साधनेमें और आवश्यकता पड़नेपर मनमाने आर्डिनेन्स जारी करके अपने आधिपत्यको बनाये रखनेमें दुनियामें इनका जवाब नहीं है।

जिसकी लाठी उसकी भैंस—

लार्ड वावेलने यह बात स्पष्ट करदी है कि जब तक सम्भव है भारत-सरकार भारतीय नियन्त्रणसे दूर और ब्रिटिश सरकारके मातहत रहेगी। यह बात लार्ड वावेल ही नहीं बल्कि ब्रिटेनके सभी दल कह रहे हैं। स्थिति यह है कि अगर आज हिन्दू-मुसलमान एवं अन्य प्रमुख दल भावी विधान बनानेकी रूप-रेखाके सम्बन्धमें किसी एक समझौते पर पहुंच जायें तो ब्रिटिश सरकार इस प्रश्नपर विचार करनेकी कृपा कर सकती है कि वायसरायकी शासन समितिमें लोकप्रिय प्रतिनिधियोंको लिया जा सकता है या नहीं। महात्मा गांधी ने ठीक ही कहा है कि यदि हिन्दू-मुसलिम समझौता भी हो जाये तो जैसे जादूगर अपने थैलेसे चकित करनेवाली भांति-भांतिकी चीजें निकालने लगता है वैसे ही ब्रिटिश सरकार भी स्वतन्त्रताके मार्गमें रोड़ा अटकानेवाले अपने कितने ही "खिलौनों" को भूगर्भसे निकाल खड़ा कर देगी।

लार्ड वावेलने महात्मा गांधीको जो अन्तिम उत्तर दिया है उसपर ब्रिटिश समाचार पत्रोंकी टीका-टिप्पणियां पढ़नेसे यह बिलकुल साफ मालूम होता है कि भारतीयोंके हाथोंमें शासनाधिकार हस्तान्तरित न करनेके सम्बन्धमें ब्रिटेनके सभी दल एक मत हैं। लिबरल पार्टीके पत्र 'मैंचेस्टर गार्जियन' का कहना है कि जब भारतीय ब्रिटिश सरकारकी सभी घोषणाओंको सन्देहकी दृष्टिसे देखते हैं तो अङ्गरेज ही महात्मा गांधीकी युद्धमें सहयोग देनेकी बातपर कैसे विश्वास कर सकते हैं। 'गार्जियन' कहता है कि "यदि युद्धकालमें भारतीय राष्ट्रीयतावादी चाहते हैं कि देशके शासन में उनको हिस्सा दिया जाये तो यह तभी हो सकता है जब मित्रराष्ट्रोंको इस बातकी पूरी प्रतीति करा दी जाये कि समान युद्धोद्योगमें सम्मिलित उत्तरदायित्व लेनेकी बातपर राष्ट्रवादियोंका विश्वास किया जा सकता है। क्या हम और हमारे मित्रराष्ट्र भारतीय प्रतिनिधियोंका इस मामलेमें विश्वास कर सकते हैं?" मैंचेस्टर गार्जियनका यह आक्षेप स्पष्ट ही कांग्रेस और उसके नेता गांधीजी पर है। आजसे पिछले १० वर्षों की कांग्रेसकी वैदेशिक नीतिपर जिस किसीने पक्षपात रहित होकर दृष्टिपात किया है उसे आज यह विश्वास दिलानेकी आवश्यकता नहीं है कि कांग्रेस उस समयसे फासिस्ट और नाजी-विरोधी है जब फासिस्टों और नाजियोंको सन्तुष्ट करनेके लिये ब्रिटेन फासिज्मकी वेदीपर यूरोप और एशियाके उन राष्ट्रोंकी बलि चढ़ा रहा था जिनको स्वयं ब्रिटेनने संकटके समय सहारा देनेका आश्वासन दे रखा था। मानव स्वभाव होता है कि वह अपने ही जैसा दूसरोंको भी समझता है। जो अपने स्वार्थके लिये अपने सिद्धान्तोंकी भी निर्मम हत्या कर सकता है, जिसकी नैतिकता सिर्फ अपने स्वार्थसाधनका एक जरिया है, वह यदि महात्मा गांधीपर अविश्वास करता है तो आश्चर्य नहीं। किन्तु जब भारतीयोंको शासनाधिकार सौंपनेके प्रश्नपर यह बात उठायी गयी है कि मित्रराष्ट्रोंको भी यह विश्वास होना चाहिये कि भारत युद्धोद्योगका सम्मिलित उत्तरदायित्व लेनेको तैयार है तो क्या यह अच्छा न होगा कि भारतकी नीयतकी जांच करनेका भार भी मित्रराष्ट्रोंको सौंप दिया जाये। ब्रिटेन और भारतके झगड़ेमें मित्रराष्ट्र किसीकी तरफदारी करेंगे यह समझनेका कोई कारण नहीं है। इसके विपरीत मित्र मोर्चाको मजबूत बनानेके लिये सब सम्भव उपायोंसे काम लेना उनके लिये भी उतना ही महत्व रखता है जितना ब्रिटेनके लिये। जब "मैंचेस्टर गार्जियन" यह कहता है कि "जब तक युद्धकी स्थितिकी गम्भीरता बनी है यह नितान्त आवश्यक है कि भारतीय सरकार ब्रिटिश सरकारके सामने और उसके द्वारा मित्रराष्ट्रोंके सामने उत्तरदायी रहे।" तो गांधीजीके प्रस्तावमें सचाई है या नहीं, यह निर्णय करनेका अन्तिम उत्तर दायित्व भी मित्रराष्ट्रोंका होना चाहिये। किन्तु हाथीके दिखाऊ दांत उसे खानेमें मदद नहीं देते। मैंचेस्टर गार्जियनका भी यह तर्क कि भारत सरकारको अङ्गरेजों के जरिये मित्रराष्ट्रोंके सामने उत्तरदायी होना चाहिये दिखावटी बहाना मात्र है। भारतके मामलेमें पञ्चायत करना तो दूर की बात है, ब्रिटेन यह भी बरदाश्त करनेको तैयार नहीं है कि मित्रराष्ट्र किसी तरहकी दस्तन्दाजी भी करें। उस समय तो हिन्दुस्तान ब्रिटेनका घरेलू मामला बन जाता है। दर असल भारतको अपने नियन्त्रणमें रखनेके सम्बन्धमें जितने तर्क अङ्गरेज उपस्थित करते हैं कसौटीकी रगड़में उनकी कलई उतर जाती है और यही तर्क खरा निकलता है कि जिसकी लाठी उसकी भैंस।

साम्प्रदायिक समझौता—

कायदे आजम जिन्नाके अस्वस्थ हो जानेसे गांधी-जिन्ना सम्मेलनके दिन टलते ही चले गये। सितम्बरके द्वितीय सप्ताहके आरम्भमें सम्मेलन हो सकता है, ताजे समाचारोंसे ऐसा प्रतीत होता है। जिन्ना साहबसे मिलनेके पूर्व महात्मा गांधी प्रमुख प्रमुख नेताओं एवं इस वार्तालापसे सम्बन्धित दलोंके प्रतिनिधियोंसे मिलकर उनके भाव जान और समझ लेना चाहते हैं। एसोसिएटेड प्रेसका संवाद दाता २९ अगस्तको वर्धासे लिखता है 'यह समझा जाता है कि महात्मा गांधीने कुछ प्रमुख नेताओं से अनुरोध किया है कि वे गांधी-जिन्ना मुलाकातके समय बम्बई आनेको प्रस्तुत रहें।'

साम्प्रदायिक समझौतेके लिये अनुकूल वातावरण बनानेको देशके सभी समझदार व्यक्ति और दल प्रयत्न शील हैं और जगह जगहसे राजाजी की योजनाको समर्थन मिलनेके समाचार आ रहे हैं। ये शुभ लक्षण हैं। जो व्यक्ति पहले अपने स्वार्थों और बादमें देशके स्वार्थोंको देखते हैं, वे देश हितकी किसी योजनाका भी समर्थन नहीं कर सकते, यह मानी हुई बात है। हम इस तरहके विरोधियोंकी उपेक्षा, इच्छा रहने पर भी, नहीं कर सकते। एक तीसरे दलके यहां उपस्थित रहनेकी वजहसे इस तरहके लोगोंको महत्व मिल ही जाता है और जब तक यह तीसरा दल मौजूद रहेगा तब तक इन भले मानसोंको महत्व मिलता ही रहेगा। इनका महत्व घटानेका एक ही रास्ता है और वह यह है कि हम पहले तीसरे दलका प्रभाव मिटानेकी कोशिश करें। और इसके लिये पहले यह आवश्यक है कि समयानुकूल साम्प्रदायिक समझौता हो। किन्तु समझौतेको स्थायी और कार्यकारी बनानेके लिये यह आवश्यक है कि जिन कारणोंने हिन्दुओं और मुसलमानोंको एक दूसरेसे इतना दूर कर दिया है कि आज वे एक दूसरेके कट्टर विरोधी बन गये हैं उनको दूर करके हम फिर एक दूसरेके निकट आयें। सन्देह, अविश्वास और भय ही वे कारण हैं जिन्होंने हमें परस्पर एक दूसरेका विरोधी बना दिया है। ये तीनों कारण तीसरी शक्तिकी देन हैं। उसने पहले इन मिथ्या कारणोंकी सृष्टिकी बादमें अपनी कूटनीतिक चालों द्वारा उनको इतना पुष्ट किया है कि मिथ्या सत्य बन गया है। इन मिथ्या कारणोंको गांधीजी और जिन्ना साहब ही दूर कर सकते हैं। ऐसी अवस्थामें हमारा यह कर्त्तव्य है कि गांधी-जिन्ना मिलनके पूर्व हम उपयुक्त और वांछनीय वातावरण बनानेमें सहायक हों। हम यदि यह नहीं कर सकते तो हमें चाहिये कि कमसे कम ऐसा कोई काम तो न करें जो समझौतेके मार्गमें बाधक हो।

यह कहा जाता है कि दो वर्ष पूर्व महात्मा जी जिस पाकिस्तानका विरोध कर रहे थे, उसका आज समर्थन करना स्पष्ट ही परस्पर प्रतिकूल बात है। किन्तु वे आलोचक इस बात को क्यों भूल जाते हैं कि आजकी परिस्थितियां १९४२ से भिन्न हैं। विचार-परिवर्तनको परस्पर-प्रतिकूलता तो नहीं कहा जा सकता। प्रतिकूलता तो तभी हो सकती है जब एक सी परिस्थितिमें कोई व्यक्ति दो परस्पर विरोधी बातें कहे। किन्तु परिस्थितियोंके परिवर्तनसे जब एक नयी स्थिति उत्पन्न हो जाती है उस समय उस नवीन स्थितिका सामना करनेके लिये मत-परिवर्तन करना परस्पर प्रतिकूलता नहीं बुद्धिमानी है। इस तरहके परिवर्तन राजनीतिक प्रभावको बढ़ाने वाले और प्रगति सूचक हैं। ऐसी स्थितिमें हमें महात्मा गांधीके ऊपर आस्था रखकर समझौतेके मार्गको प्रशस्त बनानेमें सहायक होना चाहिये। महात्मा गांधी और कायदे आजम जिन्ना, दोनों ही कोटि कोटि देशवासियोंके श्रद्धा और विश्वास भाजन हैं। ऐसे दो व्यक्ति यदि किसी समझौते पर पहुंच सकें तो हिन्दू-मुसलिम एकता और देशमें ऐक्य-स्थापनका जो आधार प्रस्तुत होगा उसे प्रचण्डसे प्रचण्ड शक्तिका आघात भी न तोड़ सकेगा। यह समय धैर्य और संयमका परिचय देनेका है। अपने आचरणसे हमें यह चरितार्थ न करना चाहिये कि हम लड़ना ही जानते हैं मिलना नहीं जानते।

अपमानका घूंट—

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा सम्मेलनमें भाग लेनेवाले भारतीय प्रतिनिधिमण्डलके दो सदस्य सर षंमुखम चेट्टी और मि० ए० डी० श्राफने, भारत वापस आनेपर जो वक्तव्य दिया है उसे हम अपमानका घूंट ही कह सकते हैं। इनके सम्मिलित वक्तव्यसे यह स्पष्ट है कि पराधीन होनेके कारण भारतकी कैसी निष्ठुर उपेक्षा की जा रही है। अन्तर्राष्ट्रीय फण्ड और अन्तर्राष्ट्रीय बैंककी स्थापनाके दो महत्वपूर्ण निश्चय मुद्रा सम्मेलनमें हुए हैं। सम्मेलनमें भाग लेनेवाले देश इन निश्चयोंसे बंधे हुए नहीं हैं। पहले प्रतिनिधिगण अपने अपने देशके सामने मुद्रा सम्मेलनकी रिपोर्ट उपस्थित करेंगे। इन देशोंके, सम्मेलनकी कार्यवाहीका समर्थन करनेपर ही उक्त निश्चयोंके कार्यमें परिणत होनेकी सम्भावना है। दरअसल संयुक्त राज्य अमेरिकाके रुखपर ही यह निर्भर करता है कि मुद्रा सम्मेलनके निश्चय कार्यमें परिणत होंगे या नहीं।

अन्तर्राष्ट्रीय बैंक स्थापनाकी योजनाको कार्यान्वित करनेके लिये जो उप समिति बनी है उसके सदस्योंमें भारतको स्थान नहीं मिला। प्रथम पांच सदस्योंमें अमेरिका, ब्रिटेन, रूस, चीन और फ्रांस हैं और ये ही संयोजित बैंकके कार्याधिकारी होंगे। सम्मेलनमें उपस्थित सभी प्रतिनिधियोंका यह मत था कि इस योजनामें भारतका बड़ा महत्वपूर्ण हिस्सा होगा और प्रथम पांच सदस्योंमें एक स्थान उसका भी होता, मगर राजनीतिक कारणोंसे उसे प्रथम पांचमें स्थान नहीं दिया जा सकता। भारत गुलाम जो है। स्वतन्त्र देशके प्रतिनिधियोंके साथ उसे कैसे स्थान मिल सकता है।

अन्तर्राष्ट्रीय फण्डकी स्थापना बैंकसे भी अधिक महत्वपूर्ण है। भारतीय प्रतिनिनिधियोंने इस बातकी चेष्टा की कि भारत जैसे पिछड़े हुए औद्योगिक देशोंको इस फण्डसे सहायता दी जानी चाहिये। सभी देशोंने इसका विरोध किया। इस तरह यह स्पष्ट है कि आर्थिक और औद्योगिक दृष्टिसे सम्पन्न राष्ट्र ही इस फण्डसे लाभ उठायेंगे। भारतीय प्रतिनिधियोंने इस बातकी भी कोशिश की कि जिन देशोंका पावना जमा होता जा रहा है, जैसे पौण्डके रूपमें ब्रिटेनके यहां अरबोंकी संख्यामें भारतका ही पावना है, उसपर भी विचार करके उसकी अदायगी इसी फण्डके अन्तर्गत आजानी चाहिये। इसका भी यह कहकर विरोध किया गया कि पावनेकी रकम इतनी भारी है कि यह फण्ड उसकी जिम्मेदारी ले सकने की स्थितिमें नहीं है। प्रस्तावित फण्ड ८ अरब ८० करोड़ डालरका है जबकि पावनेकी रकम १२ अरब डालर है जिसमें ४ अरब डालर भारतका ही है। इस तरह ब्रीटन-उड कानफरेन्समें भारतके हितोंकी पूर्ण उपेक्षा की गयी और यह सिर्फ इसलिये कि वह परतन्त्र है और जिसमें उसका हित है उसीमें ब्रिटेन का अहित है। उक्त सम्मेलनमें भाग लेनेवाले जितने प्रतिनिधि मण्डल थे सबके लीडर राष्ट्रीय थे। भारतका ही एक ऐसा प्रतिनिधि मण्डल था जिसका नेता अराष्ट्रीय अर्थात अङ्गरेज था। स्वतन्त्र वातावरणमें पहुंचनेपर भारतीय प्रतिनिधियोंको भी यह बात खली, लेकिन अपमान का घूंट पीनेका जो अभ्यस्त रहता है उससे अधिक आशा नहीं की जा सकती। उक्त दोनों प्रतिनिधियोंको अब भी इस बात की आशा है कि भारतके स्टर्लिंग पावनाके सम्बन्धमें ब्रिटिश सरकारके प्रतिनिधियोंसे, जोलनेजके इर्द गिर्द बैठकर बातचीत करनेसे अवश्य ही सन्तोषजनक परिणाम निकलेगा। धन्य है इस विश्वासको!

विश्व रक्षा सम्मेलन—

डूमबरटन ओक्स नामक स्थानमें अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति रक्षा सम्मेलनका उद्घाटन करते हुए संयुक्त राज्य अमेरिकाके राष्ट्र सचिव मि०

कार्डेल हल्ने २१ अगस्तको अपने भाषणमें युद्धके बाद, यदि आवश्यकता पड़े तो, शान्ति रक्षाके लिये बल प्रयोगकी आवश्यकता पर जोर दिया।

इसमें सन्देह नहीं कि दुष्टोंके दमनके लिये बल प्रयोग होना आवश्यक है, किन्तु क्या एक मात्र इसी साधनसे विश्वमें शान्ति स्थापित हो सकती है। दुष्टोंके दमनके साथ साथ शिष्टों पर भी तो अंकुश रखनेकी आवश्यकता है। शान्ति और व्यवस्थाके नाम पर परतन्त्र देशोंमें जो अशान्तिका स्थायी बीज बो रखा गया है जब तक उसका उन्मूलन नहीं होता तब तक शान्ति रक्षाकी चर्चाका अर्थ तो मित्र राष्ट्रोंके स्वार्थ-रक्षाकी चिन्ता ही समझा जायगा।

संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन और सोवियट रूसके प्रतिनिधियोंकी उपस्थितिमें उक्त सम्मेलन हुआ था। मि० कोर्डेल हल्ने यह भी कहा कि 'हमारे सामने उपस्थित कार्य यह है कि इस तरहका आधार कायम किया जाये कि विजयके बाद उसके ऊपर शान्ति, स्वतन्त्रता और उत्तरोत्तर उत्कर्षका इतना मजबूत और सुन्दर महल खड़ा किया जाय कि वह कई पीढ़ियों तक कायम रहे। मानव जातिको दासत्व-शृङ्खला में जकड़नेमें पशुता और बर्बरताकी शक्तियां प्रायः सफलताके निकट पहुंच गयी थीं क्योंकि शान्ति प्रेमी राष्ट्र-ऐक्य सूत्रमें बंधे हुए नहीं थे।" किन्तु बात यह नहीं है। 'शान्ति कामी' राष्ट्र उस समय अपने अपने स्वार्थकी ताकमें थे। सब अपने अपने दांव पेंच खेल रहे थे। एकको दूसरे से भिड़ा कर अपना उल्लू सीधा करनेकी धुनमें शान्ति-कामी राष्ट्रोंने रक्तकी गंगा बहानेका उपक्रम कर दिया। इस लिये स्थायी शान्तिकी रक्षाका आधार बल प्रयोग नहीं स्वार्थ त्याग और मानव मात्रका जातीय अधिकार-स्वतन्त्रता होना चाहिये। विश्वशान्ति रक्षा सम्मेलनमें भाग लेने वाले प्रतिनिधियोंको आत्म-दर्शनकी आवश्यकता है। अपने अपने हृदयको टटोल कर देखें। यदि वहां अब भी स्वार्थ घुसा हुआ है तो इन सम्मेलनोंसे कोई लाभ नहीं। भले ही कुछ दिनों तक बल प्रयोग द्वारा वे अपनी मनमानी गंगा बहालें किन्तु एक दिन फिर आयेगा जब उनके भीतर घुसा हुआ चोर, स्वार्थ, शान्ति की हत्या करायेगा और तब इससे भी अधिक भयङ्कर रक्तपात होगा।

अतएव दूसरोंके ऊपर जिम्मेदारी मढ़नेके पहले यह देखना भी आवश्यक है कि इस कार्यके रक्तपातमें हमारा किस हद तक हाथ है। "बुरा जो खोजन मैं चला बुरा न दीखै कोय। जो दिल खोजा आपना मुझसा बुरा न कोय।" जिस दिन मित्र राष्ट्र इस सत्यको समझ लेंगे उसी दिन संसारमें सच्ची शान्ति और स्वतन्त्रता स्थायी होगी। इस लिये मित्र राष्ट्रोंको लम्बी लम्बी बातें करनेके पहले यह देखना चाहिये कि हम स्वयं तो किसीके स्वार्थका अपहरण करके शान्ति भंग करनेका अपराध नहीं कर रहे। मित्र-राष्ट्र जबतक साम्राज्यवादको किसी न किसी रूपमें पनपाये रहेंगे, भारत जैसे देश जब तक स्वतन्त्रता के प्रकाशमें नहीं लाये जायेंगे तब तक सच्चे अर्थ में शान्ति स्थापित नहीं हो सकती।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन—

इसी महीनेके अन्तिम सप्ताहमें हिन्दी साहित्य सम्मेलनका वार्षिक अधिवेशन जयपुरमें गोस्वामी गणेशदत्त शर्माके सभापतित्वमें होने जा रहा है। यह हर्ष की बात है कि सम्मेलनके प्राण श्रीयुत पुरुषोत्तम दास टण्डन भी जेलसे छूटकर बाहर आ गये हैं। सम्मेलनने टण्डनजीके नेतृत्वमें हिन्दी साहित्यको सर्वांगपूर्ण बनानेकी दिशामें जो सराहनीय कार्य किया है वह किसी से छिपा नहीं है। किन्तु खेदकी बात है कि हिंदी साहित्यिक सम्मेलनके कार्योंमें विशेष दिलचस्पी नहीं लेते। ऐसा क्यों? त्रुटि कहीं अवश्य है और वह दूर होनी चाहिये। इस दिशामें यदि मनोनीत सभापति टण्डनजीके सहयोगसे कुछ करें, साहित्यिकोंका पूर्ण सहयोग प्राप्त करें तो निस्सन्देह उनका सभापतित्व काल सदा स्मरणीय रहेगा।

सम्मेलनके सामने कितने ही महत्वपूर्ण प्रश्न और समस्याएं हैं। हिन्दी-हिन्दुस्तानी और लिपिका प्रश्न अभीतक हल नहीं हुआ। अन्यत्र प्रकाशित जनपदीय कल्याणी योजना भी, जिसके प्रवर्तक श्री वासुदेव शरण अग्रवाल एम० ए० पी० एच० डी० हैं, सम्मेलनके सामने है। इसके लिये बनायी गयी उप-समितिने अभीतक अपने कार्यका कोई विवरण सर्व साधारणके सामने उपस्थित नहीं किया। प्राप्त समाचारोंसे यह जान पड़ता है कि उप-समितिके सदस्योंमें भी विकेन्द्रीयकरण और केन्द्रीयकरणको लेकर मतभेद है। इसी तरहकी अन्य कितनी ही समस्याएं सम्मेलनके सामने उपस्थित हैं। आशा है कि गोस्वामीजी अपने कार्यकालमें सम्मेलनको दलबन्दियोंका अखाड़ा न बनने देंगे और जो साहित्यिक किसी कारण वश आज सम्मेलन से अपनेको अलग-दूर रखते हैं उनको अधिकाधिक निकट खींच लानेका प्रयत्न करेंगे। त्रिवेणी के सङ्गम स्थानपर स्थित सम्मेलनके अधिकारियों को इस भौगोलिक और ऐतिहासिक सत्यपर दृष्टि रख कर हिन्दी साहित्यिकोंके विभिन्न दलोंको सम्मेलन-गंगामें लाकर मिलानेका प्रयत्न करना चाहिये।

———